।।ओ३म्।।

सांख्यदर्शनम्

ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्

तत्र

प्रथमोऽध्यायः

भाष्य विस्तार - पूज्य स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक
(निदेशक- दर्शन योग महाविद्यालय)

।।ओ३म्।।

सांख्यदर्शनं ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्

तत्र

प्रथमोऽध्यायः

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिर्वृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ।।१।।

(अथ) अथ शब्दोऽधिकारार्थः, इदानीं (त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिः) त्रिविधस्य त्रिप्रकारस्य-आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकभेदान्वितस्य दुःखस्यात्यन्तनिवृत्तिरनपरान्तनिवृत्तिः (अत्यन्तपुरुषार्थः) परमः पुरुषार्थः परमं पौरुषं पुरुषत्वं मानवस्य-मानवजीवनस्य परमं साफल्यं यदस्ति तदत्राधिक्रियते ।।१ ।।

।।ओ३म् ।।

सांख्यदर्शनं ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्

तत्र

प्रथमोऽध्यायः

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिर्वृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ।।१ ।।

सूत्रार्थ= तीन प्रकार के दु:खों से पूर्णतया छूट जाना पुरुष=जीवात्मा का ये तीन सर्वोच्च अंतिम प्रयोजन है।

भाष्य विस्तार = ***(अथ)*** **अथ शब्दोऽधिकारार्थः** भाष्यकार कहते हैं कि अथ शब्द यहाँ पर अधिकार अर्थ में है, (अथ शब्द के अनेक अर्थ है यहाँ पर जो प्रमुख अर्थ लिया है वह है ''किसी विषय को आरंभ करना'', अब एक विषय आरंभ किया जाता है), **इदानीं** अब यहाँ इस विषय में बताते हैं ***(त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिः)*** **त्रिविधस्यत्रिप्रकारस्य-आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकभेदान्वितस्य दुःखस्यात्यन्तनिवृत्तिरनपरान्तनिवृत्तिः** तीन प्रकार के दु:ख कि निवृत्ति (दु:ख का पूरी तरह से हट जाना) ऐसी निवृत्ति जो शीघ्र समाप्त न हो, अत्यंतनिवृत्ति= मुक्ति काल तक तीन प्रकार के दु:खों से छूट जाना ***(अत्यन्तपुरुषार्थः)*** **परमः पुरुषार्थः परमं पौरुषं पुरुषत्वं मानवस्य-मानवजीवनस्य परमं साफल्यं यदस्ति तदत्राधिक्रियते** ये परम पुरुषार्थ है, ये सबसे ऊंचा पुरुष का उद्देश्य है, मानव जीवन कि सबसे बड़ी सफलता जो है उसका यहाँ अधिकार किया जाता है, इस विषय को आरंभ किया जाता है ।।१ ।।

नहीं

में

तदुपायचिन्तनायां दृष्टसाधनस्यापर्याप्तत्वं दर्श्यते - (तीन प्रकार के दु:खों से छूटने का)इसका उपाय सोचते सोचते जो इसके दृष्ट साधन (भोजन, वस्त्र, मकान, धन आदि) हैं, ये अपर्याप्त हैं-

तदुपायचिन्तनायां दृष्टसाधनस्यापर्याप्तत्वं दर्श्यते -

न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेरप्यनुवृत्तिदर्शनात्* ।। २।।

(दृष्टात् तत्सिद्धिः-न) दृष्टात् साधनात् खलु लोके प्राप्यमाणात् साधनात् तथाभूतनिवृत्तिसिद्धिर्न भवति न भवितुमर्हति । यतः (निवृत्तेः-अपि-अनुवृत्तिदर्शनात्) कस्यचिन्निवृत्तेरनन्तरमपि पुनरनुवृत्तिर्दृश्यते हीत्यतः ।। २।।

दृष्टसाधनाद् दुःखप्रतीकारे खलु -

प्रात्याहिकक्षुत्प्रतीकारवत्तत्प्रतीकारचेष्टनात् पुरुषार्थत्वम् ।। ३।।

(प्रात्याहिकक्षुत्प्रतीकारवत्) प्रत्यहं यथा क्षुत्प्रतीकारो भोजनात् क्रियते तद्वत् (प्रतीकारचेष्टनात्) तस्य त्रिविधदुःखस्य प्रतीकारव्यापारात् (पुरुषार्थत्वम्) पुरुषार्थता भवतु न त्वत्यन्तपुरुषार्थतेति यावत् ।। ३।।

न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेरप्यनुवृत्तिदर्शनात्* ।। २।।

सूत्रार्थ= दृष्ट भौतिक साधनों से समस्त दुःखों से निवृति मोक्ष कि प्राप्ति नहीं हो सकती, कुछ देर के लिए दुःख छूट जाने पर भी फिर से वे दुःख आजाते हैं, ऐसा देखा जाने से।

भाष्य विस्तार = ***(दृष्टात् तत्सिद्धिः-न)*** **दृष्टात् साधनात् खलु लोके प्राप्यमाणात् साधनात् तथाभूतनिवृत्तिसिद्धिर्न भवति न भवितुमर्हति** दृष्ट साधनों से लोक में प्राप्त होने वाले साधन से, उस प्रकार कि जो दुःखों से पूरी निवृत्ति है दुःखों से पूरी तरह छूटने कि सिद्धि न होती और न हो सकती । **यतः** क्योंकि ***(निवृत्तेः-अपि-अनुवृत्तिदर्शनात्)*** **कस्यचिन्निवृत्तेरनन्तरमपि पुनरनुवृत्तिर्दृश्यते हीत्यतः** किसी दुःख के छूटने जाने के बाद भी (जैसे भूख लगने पर भोजन किया तो भूख छूट गयी उससे निवृत्ति हो गयी) फिर से उसकी अनुवृत्ति दिखाई देती है, इसलिए भौतिक साधनों से दुःख कि पूरी तरह निवृति नहीं हो सकती ।। २।।

दृष्टसाधनाद् दुःखप्रतीकारे खलु - दृष्ट साधनों से यदि हम दुःख का प्रतीकार करते हैं तो ऐसा करने में तो-

प्रात्याहिकक्षुत्प्रतीकारवत्तत्प्रतीकारचेष्टनात् पुरुषार्थत्वम् ।। ३।।

सूत्रार्थ= दैनिक भूख के निवारण के तुल्य उन तीन दुःखों को हटाने कि चेष्टा करने से वह पुरुषार्थ तो कहलाएगा किन्तु अत्यंत पुरुषार्थ नहीं कहा जाएगा।

भाष्य विस्तार = ***(प्रात्याहिकक्षुत्प्रतीकारवत्)*** **प्रत्यहं यथा क्षुत्प्रतीकारो भोजनात् क्रियते तद्वत् (प्रतीकारचेष्टनात्) तस्य त्रिविधदुःखस्य प्रतीकारव्यापारात्** ***(पुरुषार्थत्वम्)*** **पुरुषार्थता भवतु न त्वत्यन्तपुरुषार्थतेति यावत्** जैसे प्रतिदिन भोजन से हम भूख का विनाश करते हैं, उसी तरह से उन तीन प्रकार के दुःखों का प्रतीकार करने से अलग अलग दुःख आने पर अलग अलग उपाय करने से पुरुष का प्रयोजन तात्कालिक रूप से तो सिद्ध हो जाएगा, परंतु पूरी तरह से दुःखों से निवृत्ति नहीं हो पाएगी ।। ३।।

तत्र च - और उसमें भी -

तत्र च -

सर्वासम्भवात् सम्भवेऽपि सत्त्वासम्भवाद्धेयः प्रमाणकुशलैः ।।४।।

(सर्वासम्भवात्) दृष्टसाधनाद् दुःखप्रतीकाररूपायां पुरुषार्थतायां कस्यचिदेकस्यैव दुःखस्य प्रतीकारो भविष्यति यतस्तस्मादेकस्माद्दृष्टसाधनात् तत्सम्बद्धमेव दुःखं निवर्तिष्यते, नहि सर्वदुःखनिवृत्तिसम्भवस्तस्मात् (सम्भवे-अपि) अथ च बहुविधदृष्टसाधनसमुदायात् सर्वदुःखप्रतीकारसम्भवेऽपि (सत्त्वासम्भवात्) सत्त्वस्य वास्तविकदुःखप्रतीकारस्य नितान्तदुःखनिवृत्तिरूपस्य मोक्षस्यासम्भवात् ।उक्तं हि यथा ''परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः'' (योग ० २. १५) तस्मात् (प्रमाणकुशलैः-हेयः) प्रकृष्टं मीयते येन तत्प्रमाणं समतोलनं तत्र कुशलैः समतोलनकुशलैर्दूरदर्शिभिर्विवेकिभिः स एष दृष्टसाधनगणाद् दुःखप्रतीकारस्त्याज्यो नादरणीयः ।।४।।

सर्वासम्भवात् सम्भवेऽपि सत्त्वासम्भवाद्धेयः प्रमाणकुशलैः ।।४।।

सूत्रार्थ= एक साधन से सब दुःखों का दूर होना असंभव है। ५० साधनों से ५० दुःखों से दूर होने पर भी मोक्ष नहीं हो पाएगा, इस कारण से प्रमाणों में जो कुशल बुद्धिमान लोग हैं उन्होने बताया की भौतिक साधनों से मोक्ष प्राप्ति असंभव है।

भाष्य विस्तार = ***(सर्वासम्भवात्)*** **दृष्टसाधनाद् दुःखप्रतीकाररूपायां पुरुषार्थतायां कस्यचिदेकस्यैव दुःखस्य प्रतीकारो भविष्यति** कहते हैं दृष्ट साधनों से दुःख के विनाशरूपी पुरुषार्थता में किसी एक साधन से एक प्रकार के दुःख की निवृत्ति हो पाएगी **यतस्तस्मादेकस्माद्दृष्टसाधनात् तत्सम्बद्धमेव दुःखं निवर्तिष्यते** क्योंकि उस एक दृष्ट साधन से उससे संबन्धित जो दुःख है उसकी ही निवृत्ति होगी, **नहि सर्वदुःखनिवृत्तिसम्भवस्तस्मात्** समस्त दुःखों की निवृत्ति एक साधन से संभव नहीं है, इसलिए ***(सम्भवे-अपि)*** **अथ च बहुविधदृष्टसाधनसमुदायात् सर्वदुःखप्रतीकारसम्भवेऽपि** ***(सत्त्वासम्भवात्)*** **सत्त्वस्य वास्तविकदुःखप्रतीकारस्य नितान्तदुःखनिवृत्तिरूपस्य मोक्षस्यासम्भवात्** बहुत सारे दृष्ट साधनों के समुदाय से बहुत सारे दुःखों की निवृत्ति तात्कालिक रूप से होने पर भी सत्व अर्थात जो वास्तविक दुःख है उसके प्रतीकार की उसके विनाश की नितांत दुःख की निवृत्ति रूप जो मोक्ष है वह असंभव है। **उक्तं हि यथा** जैसे दुःखों के विषय में योगदर्शन में कहा ही है **''परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः (योग ०२.१५)''** परिणाम, ताप, संस्कार, गुणवृत्ति विरोध। ये चार प्रकार के दुःख होंने से विवेकी को सब दुःख ही दुःख दिखता है **तस्मात्** इसलिए ***(प्रमाणकुशलैः-हेयः)*** **प्रकृष्टं मीयते येन तत्प्रमाणं समतोलनं तत्र कुशलैः समतोलनकुशलैर्दूरदर्शिभिर्विवेकिभिः स एष दृष्टसाधनगणाद् दुःखप्रतीकारस्त्याज्यो नादरणीयः** प्रमाण उसको कहते है जिससे किसी वस्तु को ठीक से माप तौल किया जाए,किसी साधन से वस्तु की ठीक ठीक जानकारी प्राप्त हो जाए वह प्रमाण है, अच्छी प्रकार से माप तौल करने का साधन, उसमें जो कुशल हैं ऋषि लोग, उन ऋषियों के द्वारा दूर तक देखने वाले बुद्धिमान विवेकीजनों के द्वारा वह यह दृष्ट साधन समुदाय से जिससे दुःख का प्रतीकार हुआ है वह त्याज्य है, उससे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी ।।४।।

अपरं च -

उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः ।।५।।

(उत्कर्षात्-अपि) शास्त्रविहितयज्ञदिदृष्टसाधनानुष्ठानाद् भवतूत्कर्षः, परन्तूत्कर्षाद्धेतोरपि मोक्षे हि खलूत्कर्षो न तथा यज्ञादिदृष्टसाधनसाध्ये दुःखनिवृत्तिरूपे पुरुषार्थे । यतः (मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः) मोक्षस्य हि सर्वोत्कर्षविषयिका श्रुतिरस्तीति हेतोः ''अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः'' (छान्दो० ८.१२.१)''एषाऽस्य परमा गतिरेषाऽस्य परमा सम्पत्'' (बृह०६.३.३२) तस्माद् दुःखात्यन्तनिवृत्तिरूपाय मोक्षाय तदेतद् यज्ञादिदृष्टसाधनमुपादेयं न, किन्तु यमनियमाद्यष्टा ३योगानुष्ठानमदृष्ट- साधनमुपादेयम् ।।५।।

भवतु मोक्षस्य सर्वोत्कृष्टत्वम्, मोक्षो भविष्यति हि बद्धस्य तर्हि बद्धस्य मोक्षे -

---

अपरं च -

उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः ।।५।।

सूत्रार्थ= यज्ञ आदि दृष्ट साधनों से भी आत्मा की उन्नति तो होगी परंतु उससे भी मोक्ष नहीं हो पाएगा, वेदों में मोक्ष अवस्था को सबसे उत्तम बताया गया है इसलिए।

भाष्य विस्तार = ***(उत्कर्षात्-अपि)*** **शास्त्रविहितयज्ञदिदृष्टसाधनानुष्ठानाद् भवतूत्कर्षः** शास्त्र में बताए गए यज्ञ आदि दृष्ट साधनों के अनुष्ठान से भी उन्नति होती है, **परन्तूत्कर्षाद्धेतोरपि मोक्षे हि खलूत्कर्षो न तथा यज्ञादिदृष्टसाधनसाध्ये दुःखनिवृत्तिरूपे पुरुषार्थे** परंतु इन सब कार्यों से उन्नति होने पर भी जैसा उत्कर्ष मोक्ष में होता है, जैसी दुःख निवृत्ति मोक्ष में होती है वैसी यज्ञ आदि दृष्ट साधनों के अनुष्ठान से नहीं होती। यज्ञ आदि से पुनर्जन्म की प्राप्ति, विशेष सुख साधनों की प्राप्ति तो हो जाएगी, किन्तु मोक्ष नहीं हो पाएगा। **यतः *(मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः)* मोक्षस्य हि सर्वोत्कर्षविषयिका श्रुतिरस्तीति हेतोः** क्योंकि शास्त्रों में मोक्ष के विषय में सबसे उत्तम स्थिति बतलाई है ''**अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः*(छान्दो ० ८.१२.१)*** '' जब व्यक्ति शरीर रहित हो जाता है ऐसे आत्मा को सांसरिक सुख- दुःख नहीं छू सकते ''**एषाऽस्य परमा गतिरेषाऽस्य परमा सम्पत्*(बृह ० ६.३.३२)***'' यही इसकी परम गति है यही इसकी परम संपत्ति है **तस्माद् दुःखात्यन्तनिवृत्तिरूपाय मोक्षाय तदेतद् यज्ञादिदृष्टसाधनमुपादेयं न** इसलिए अत्यंत दुःख की निवृत्ति रूप मोक्ष की प्राप्ति के लिए यज्ञ आदि जो दृष्ट साधन हैं इनको अपनाना भी ठीक नहीं है, किन्तु **यमनियमाद्यष्टा ३योगानुष्ठानमदृष्टसाधनमुपादेयम्** किन्तु यम नियम आदि अष्टांग योग जो अदृष्ट साधन हैं मोक्ष प्राप्ति के लिए इन्ही का अनुष्ठान करना चाहिए ।।५।।

भवतु मोक्षस्य सर्वोत्कृष्टत्वम्, मोक्षो भविष्यति हि बद्धस्य तर्हि बद्धस्य मोक्षे - चलो मान लिया मोक्ष सबसे उत्कृष्ट है शास्त्रों में बताया है, हमको समझ में आ गया। मोक्ष होगा बद्ध का फिर बद्ध जीवात्मा का मोक्ष होने में-

अविशेषश्चोभयोः ।।६।।

अविशेषश्चोभयोः ।।६।।

(उभयोः) दृष्टादृष्टयोः साधनयोः (च) अपि (अविशेषः) अभेदोऽस्ति नास्ति भेदः साधनत्वाद् यथा यज्ञादिदृष्टं साधनं तथैव योगाभ्यासश्रवणादिकमदृष्टं साधनमुभयोः साधनसाम्यमस्ति हि, साधनसाम्याददृष्टसाधनादपि बद्धस्य विमोक्षो न भवेदिति पूर्वपक्षः। अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये हरिप्रसादवैदिकवृत्तौ च सूत्रमिदन्यथाव्याख्यातं तत्र पूर्वापरसंगतेरभावोऽस्मद्भाष्ये पूर्वापरसांगत्यं प्रत्यक्षम् ।।६।।

अत्रोच्यते -

न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधिः ।।७।।

(स्वभावतः-बद्धस्य) स्वरूपतो बद्धस्य (मोक्षसाधनोपदेशविधिः-न) मोक्षसाधनोपदेशविधानं

सूत्रार्थ= दृश और अदृष्ट दोनों साधनों एम साधनत्व समान होने से अष्टांग योग रूपी साधन से भी मोक्ष प्राप्ति नहीं हो पाएगी ।

भाष्य विस्तार = ***(उभयोः)*** **दृष्टादृष्टयोः साधनयोः** ***(च)*** **अपि** ***(अविशेषः)*** **अभेदोऽस्ति नास्ति भेदः साधनत्वाद् यथा यज्ञादिदृष्टं साधनं तथैव योगाभ्यासश्रवणादिकमदृष्टं साधनमुभयोः साधनसाम्यमस्ति हि** पूर्वपक्षी कहता है दोनों प्रकार के साधन आपने बताए दृष्ट और अदृष्ट। दृष्ट और अदृष्ट दोनों साधनों में भी कोई भेद नहीं हैं क्योंकि दोनों ही साधन हैं, जैसे यज्ञ आदि दृष्ट साधन हैं वैसे ही योगाभ्यास-श्रवण आदि अदृष्ट साधन हैं। दोनों ही साधन हैं । जब एक साधन से मोक्ष नहीं होता तो दूसरे से कैसे हो जाएगा।, **साधनसाम्याददृष्टसाधनादपि बद्धस्य विमोक्षो न भवेदिति पूर्वपक्षः** दोनों में साधन स्वरूप समान होने से अदृष्ट साधन अष्टांग योग से भी बद्ध आत्मा का मोक्ष नहीं हो पाएगा, ऐसा पूर्वपक्ष ने कहा। **अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये हरिप्रसादवैदिकवृत्तौ च सूत्रमिदन्यथाव्याख्यातं तत्र पूर्वापरसंगतेरभावोऽस्मद्भाष्ये पूर्वापरसांगत्यं प्रत्यक्षम्** अनिरुद्ध वृत्ती में विज्ञानभिक्षु भाष्य में तथा हरिप्रसाद वैदिक वृत्ती में इस सूत्र की व्याख्या ठीक नहीं की गयी है इन तीनों की व्याख्या में पूर्वापर संगति नहीं है। हमारे भाष्य में पूर्वापर सूत्रों की संगति ठीक बैठ रही है ।।६।।

अत्रोच्यते -

न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधिः ।।७।।

सूत्रार्थ= यदि जीवात्मा स्वभाव से बद्ध होता तो उसके मोक्ष के साधनों का कथन शास्त्रों में नहीं होता।

भाष्य विस्तार = ***(स्वभावतः-बद्धस्य)*** **स्वरूपतो बद्धस्य** ***(मोक्षसाधनोपदेशविधिः-न)*** **मोक्षसाधनोपदेशविधानं न भवति** यदि स्वरूप से जीवात्मा बद्ध होता और उसकी मुक्ति असंभव होती तो फिर शास्त्रों में मोक्ष का उपदेश विधान न होता, **अस्ति हि शास्त्रेषु मोक्षसाधनोपदेशः** जबकि शास्त्रों में मोक्ष का उपदेश किया हुआ है "**तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति**" परमात्मा को जानकार व्यक्ति मृत्यु से पार हो जाता है,

न भवति, अस्ति हि शास्त्रेषु मोक्षसाधनोपदेशः ''तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति'' (यजु ०३१ .१८) ''तमेव विदित्वा न बिभाय मृत्योः'' (अथर्व ०१०.८.४४) ''भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।' (मुण्डको०२.२.८) ''भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति'' (केनो ०२.५) तस्माद् यदुक्तमुभयोर्दृष्टादृष्टयोः साधनयोर्विशेषो न बद्धस्य जीवात्मनोऽदृष्टसाधनाद् योगाभ्यासश्रवणाद्यनुष्ठानादपि मोक्षो न भविष्यतीति न युक्तं यतो जीवात्मा न स्वभावतो बद्धः किन्तु निमित्ततो बद्धः खलु सः, तथाभूतं बन्धननिमित्तमपनेतुं योगाभ्यासाद्यदृष्टसाधनं समर्थम् ।।७।।

स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधौ का हानिः । अत्रोच्यते -

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम् ।।८।।

(स्वभावस्य-अनपायित्वात्) स्वभावो भवत्यनपायी, यो यः स्वभावो यस्य यस्य द्रव्यस्य

(यजु ० ३१.१८) ''**तमेव विदित्वा न बिभाय मृत्योः** ''*(अथर्व ०१०.८.४४)* परमात्मा को जानकार जीवात्मा को मृत्यु से भय नहीं लगता ''**भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे** ।।' *(मुण्डको ० २.२.८)* जब हृदय की अविद्या की गांठ कट जाती है सारे संशय नष्ट हो जाते हैं, जो दूर से दूर है निकट से निकट है, उस परमात्मा को देख लेने पर वह सब कर्म बंधनों से मुक्त हो जाता है ''**भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भन्ति**''*(केनो ०२.५)* जड़-चेतन सभी वस्तुओं में परमात्मा का चिंतन करके ध्यानीजन योगीजन इस शरीर को छोड़करके अमृत हो जाते हैं मरने के बाद मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं **तस्माद् यदुक्तमुभयोर्दृष्टादृष्टयोः साधनयोर्विशेषो न, बद्धस्य जीवात्मनोऽदृष्टसाधनाद् योगाभ्यासश्रवणाद्यनुष्ठानादपि मोक्षो न भविष्यतीति न युक्तं** इसलिए जो आपने अभी कहा था कि दोनों दृष्ट और अदृष्ट साधनों में समानता है क्योंकि दोनों ही साधन है, इससे बद्ध जीवात्मा का मोक्ष दृष्ट साधन और अदृष्ट योगाभ्यास श्रवण आदि के अनुष्ठान से मोक्ष नहीं होगा, यह युक्ति ठीक नहीं है **यतो जीवात्मा न स्वभावतो बद्धः किन्तु निमित्ततो बद्धः खलु सः** क्योंकि जीवात्मा स्वभाव से बंधन में नहीं है अपितु वह निमित्त से बद्ध है, **तथाभूतं बन्धननिमित्तमपनेतुं योगाभ्यासाद्यदृष्टसाधनं समर्थम्** उस तरह के बंधन के कारण को दूर करने के लिए योगाभ्यास आदि जो अदृष्ट साधन हैं वह समर्थ हैं बंधन के कारण को समाप्त करने में ।।७।।

स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधौ का हानिः। अत्रोच्यते - जीवात्मा को स्वभाव से बद्ध मान लो उसके मोक्ष के उपदेश विधि होने से क्या हानी है? इस पर कहते हैं-

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम् ।।८।।

सूत्रार्थ= कोई भी स्वभाव कभी भी उस द्रव्य को नहीं छोडता है, इसलिए ऐसा उपदेश अप्रामाणिक है जिसका आचरण ही न किया जा सके।

भाष्य विस्तार = *(स्वभावस्य-अनपायित्वात्)* **स्वभावो भवत्यनपायी** स्वभाव कभी हटता नहीं, **यो यः स्वभावो यस्य यस्य द्रव्यस्य भवति स न तस्माद् द्रव्यादपैति** जो जो स्वभाव जिस जिस द्रव्य का

भवति स न तस्माद् द्रव्यादपैति, न हि तद्द्रव्यं परित्यजति वा स्वभावस्य यावद्द्रव्यभावित्वात्, तस्मात् स्वभावतो बद्धस्य (अनुनुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम्) मोक्षविधानमननुष्ठानावकाशं सदप्रामाण्यं स्यादप्रामाण्यदोषमाप्नुयात् ।।८।।

तथा च -

नाशक्योपदेशविधिरूपदिष्टेऽप्यनुपदेशः ।।९।।

(अशक्योपदेशविधिः-न) अशक्यकार्यस्योपदेशविधानं नोचितं यतः (उपदिष्टे-अपि-अनुपदेशः) उपदिष्टे सत्यपि तस्यानुपदेश एवानुष्ठानासम्भवाद् भवति, तस्माज्जीवात्मा न स्वभावतो बद्धः किन्तु तस्य निमित्ततो बद्धस्य योगाभ्यासश्रवणाद्यदृष्टसाधनानुष्ठानाद् भविष्यति मोक्ष इति कथनं समीचीनं मोक्षोपदेशसार्थक्यं च ।।९।।

शंकयित्वा समाधत्ते सूत्रद्वयेन -

होता है उस उस द्रव्य को कभी छोडता नहीं है, **न हि तद्द्रव्यं परित्यजति वा स्वभावस्य यावद्द्रव्यभावित्वात्** वह स्वभाव उस द्रव्य को कभी नहीं छोड़ता, स्वभाव तब तक रहेगा जब तक द्रव्य रहेगा, **तस्मात् स्वभावतो बद्धस्य** *(अनुनुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम्)* **मोक्षविधानमननुष्ठानावकाशं सदप्रामाण्यं स्यादप्रामाण्यदोषमाप्नुयात्** इसलिए यदि जीवात्मा स्वभाव से बद्ध होता तो ऐसे स्वभाव से बद्ध जीवात्मा का मोक्ष का जो विधान किया गया शास्त्रों मे, इसके आचरण के लिए अवकाश ही न रहता, फिर उसके अप्रामाणिक होने का दोष आ जाएगा ।।८।।

तथा च - और भी

नाशक्योपदेशविधिरूपदिष्टेऽप्यनुपदेशः ।।९।।

सूत्रार्थ= शास्त्र में असंभव कार्य का उपदेश नहीं होता, यदि कहीं असंभव कार्य का उपदेश हो तो भी व्यर्थ है।

भाष्य विस्तार = *(अशक्योपदेशविधिः-न)* **अशक्यकार्यस्योपदेशविधानं नोचितं** अशक्य=असम्भव कार्य के उपदेश का विधान करना उचित नहीं है **यतः** क्योंकि *(उपदिष्टे-अपि-अनुपदेशः)* **उपदिष्टे सत्यपि तस्यानुपदेश एवानुष्ठानासम्भवाद् भवति** उपदेश करने पर भी वह अनुपदेश के तुल्य है उसका अनुष्ठान असम्भव है, **तस्माज्जीवात्मा न स्वभावतो बद्धः किन्तु तस्य निमित्ततो बद्धस्य योगाभ्यासश्रवणाद्यदृष्टसाधनानुष्ठानाद् भविष्यति मोक्ष इति कथनं समीचीनं मोक्षोपदेशसार्थक्यं च** इसलिए जीवात्मा स्वभाव से बंधन में नहीं है किन्तु किसी कारण से बंधे हुए जीवात्मा का योगाभ्यास श्रवण आदि अदृष्ट साधन है उसका अनुष्ठान करने से मोक्ष हो जाएगा, ऐसा कथन उचित है। जो मोक्ष का उपदेश किया वह भी सार्थक हो जाएगा ।।९।।

शंकयित्वा समाधत्ते सूत्रद्वयेन - शंका करके समाधान करते हैं दो सूत्रों के द्वारा=

शुक्लपटवद्बीजवच्चेत् ।।१०।।

शुक्लपटवद्बीजवच्चेत् ।।१०।।

शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां नाशक्योपदेशः ।।११ ।।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -

(शुक्लपटवत्-बीजवत्-चेत्) शुक्लपटस्य यथा रागेण स्वाभाविक शुक्लत्वं हीयते बीजस्य वा यथाऽङ्कुरप्रादुर्भावादादितो वर्तमानं बीजस्वरूपं हीयते तथैव जीवात्मनोऽपि स्वाभाविको बन्धो हीयेतेति चेदुच्येत तर्हि (शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्याम्) शुक्लपटे रागग्रहणस्य बीजे चाङ्कुरप्रादुर्भावस्य शक्तिरस्ति स्वाभाविकी, नह्यस्वाभाविकी केवलं तस्याशक्तेरुद्भवोऽनुद्भवश्च दृश्यते। शुक्लपटे रागग्रहणशक्तेः पूर्वतो विद्यमानत्वात् तस्या रागप्रदानेनोद्भवो जायते, इत्थमेव बीजेऽङ्कुरप्रादुर्भावशक्तेः

सूत्रार्थ= जैसे सफ़ेद वस्त्र में सफेदी स्वाभाविक है और लाल रंग से रंगने से हट जाती है, जैसे बीज में बीज का रूप स्वाभाविक है और अंकुर फूटने पर वह नष्ट हो जाता है, ऐसे ही जीवात्मा का बंधन भी स्वाभाविक है। और वह भी किसी उपाय से नष्ट हो जाता है।

शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां नाशक्योपदेशः ।।११।।

सूत्रार्थ= सिद्धांती कहता है- ऐसी बात नहीं है, वास्तव में वहाँ पर वस्त्र और बीज में शक्ति का उद्भव और अनुद्भव होता है ,स्वाभाविक गुण नष्ट नहीं होता है। इसलिए शास्त्र में असम्भव बात का उपदेश नहीं है।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति - इन दोनों सूत्रों में परस्पर संबंध है-

भाष्य विस्तार = ***(शुक्लपटवत्-बीजवत्-चेत्)*****शुक्लपटस्य यथा रागेण स्वाभाविक शुक्लत्वं हीयते बीजस्य वा यथाऽङ्कुरप्रादुर्भावादादितो वर्तमानं बीजस्वरूपं हीयते** सूत्र १० में पूर्वपक्षी कहता है- (सिद्धांती का ऐसा कहना की ''स्वभाव तो छूटता नहीं'', ऐसा कहना ठीक नहीं है । संसार ऐसे बहुत देखन में आता है कि स्वभाव भी छूट जाते हैं) जैसे सफ़ेद वस्त्र को रंग लाल अथवा हरे रंग से रंग देने पर उसका स्वाभाविक सफ़ेद रंग हट जाता है और जैसे बीज का अंकुर फुट जाने से उसके जो सदा रहने वाला बीज स्वरूप था वह हट जाता है **तथैव जीवात्मनोऽपि स्वाभाविको बन्धो हीयेतेति चेदुच्येत** वैसे ही जीवात्मा का भी बंधन स्वाभाविक हट जाता है। यदि पूर्वपक्षी ऐसा कहते तो- **तर्हि** फिर ***(शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्याम्)*** **शुक्लपटे रागग्रहणस्य बीजे चाङ्कुरप्रादुर्भावस्य शक्तिरस्ति स्वाभाविकी** फिर सफ़ेद वस्त्र में रंग को ग्रहण करने की जो शक्ति है और बीज में अंकुर फूटने की जो शक्ति है वह स्वाभाविक शक्ति है, **नह्यस्वाभाविकी केवलं तस्याशक्तेरुद्भवोऽनुद्भवश्च दृश्यते** वह अस्वाभाविक नहीं है उसमें शक्ति के अद्भव और अनुद्भव दिखाई देता है। **शुक्लपटे रागग्रहणशक्तेः पूर्वतो विद्यमानत्वात् तस्या रागप्रदानेनोद्भवो जायते पूर्वं च राग प्रदानादनुद्भूता वर्तते** सफ़ेद वस्त्र में अन्य रंगों को ग्रहण करने की शक्ति पहले से विद्यमान होने से उस शक्ति का रंगाई करने से उद्भव हो जाता है, रंगे जाने से पहले वह छुपी हुई थी, **इत्थमेव बीजेऽङ्कुरप्रादुर्भावशक्तेः पूर्वतोविद्यमानत्वात् तस्या अंकुरप्रादुर्भावादुद्भवो भवति पूर्वं च प्रादुर्भावादनुद्भूता वर्तते हि** ऐसे ही बीज में अंकुर फूटने की जो शक्ति है वह पहले से विद्यमान होती है, अंकुर के फूटने से वह अद्भव हो जाती।

पूर्वतोविद्यमानत्वात् तस्या अंकुरप्रादुर्भावादुद्भवो भवति पूर्वं च प्रादुर्भावादनुद्भूता वर्तते हि, यद्येवं त स्यात् तर्हि शुक्लपटस्य शुक्लपटत्वं बीजस्य च बीजत्वं व्यर्थं भवेत् । तस्मात् (अशक्योपदेशः-न) शास्त्रेऽशक्योपदेशो न भवति। बन्धस्तु जीवात्मनो मोक्षोपदेशो नाशक्य इति सिद्धम् ।

अत्र ''शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां'' उद्भवानुद्भवशब्दौ प्रयुक्तौ, उद्भवः प्रादुर्भाव आविर्भावो वा तथा अनुद्भवः-अप्रादुर्भावोऽनाविर्भावो वा' इत्यर्थस्वारस्यं परित्यज्यखल्वनिरुद्धवृत्तौ 'अनुद्भवः' इत्यस्य 'अभिभवः' विज्ञानभिक्षुभाष्ये तस्यैव 'तिरोभावः' इति अर्थं विधाय दग्धबीजादप्यङ्कुरोत्पादो योगिसंकल्पाद् भवतीत्यप्रासंगिकी योगिसंकल्पना कृता सा खल्वयुक्तैव। नहि 'अनुद्भवशब्द उद्भव शब्दस्य प्रतियोगी, उद्भवस्तु प्रादुर्भाव आविर्भावो वा भवति 'अनुद्भवः' इत्यस्य तत्प्रतियोगिनाऽर्थेन भवितव्यं न हि 'अभिभवः' 'तिरोभावः' वा तत्प्रतियोगी किन्तु प्रादुर्भूतस्यापि केनचिद्बाधकेन भवत्यभिभवस्तिरोभावो वा, अत्र शक्तेरुद्भवोऽनुद्भवः प्रतिपाद्यते । तस्मात् तयोः कल्पनाऽयुक्ता ।।

है और अंकुर फूटने से पहले वह शक्ति दबी हुई थी, **यद्येवं त स्यात् तर्हि शुक्लपटस्य शुक्लपटत्वं बीजस्य च बीजत्वं व्यर्थं भवेत्** यदि ऐसा न होता तो सफ़ेद वस्त्र का सफ़ेद रंग और बीज का बीजत्व व्यर्थ हो जाता। **तस्मात्** इसलिए ***(अशक्योपदेशः-न)*** **शास्त्रेऽशक्योपदेशो न भवति** इसलिए शास्त्र में असभव बात का उपदेश नहीं होता। **बन्धस्तु जीवात्मनो न स्वाभाविका किन्तु निमितता अस्ति** जीवात्मा का बंधन तो स्वाभाविक नहीं है किन्तु वह तो निमित्त से है। **निमित्तों बद्धस्य जीवात्मनो मोक्षोपदेशो नाशक्य इति सिद्धम्** निमित्त से बंधे जीवात्मा का ही मोक्ष का उपदेश ठीक है, अशक्य=असम्भव नहीं है।

अत्र ''शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां'' उद्भवानुद्भवशब्दौ प्रयुक्तौ स्वामी ब्रह्म मुनिजी कहते हैं कि- इस सूत्र में ''शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां'' शक्ति का उद्भव और अनुद्भव ये दो शब्द हैं, **उद्भवः प्रादुर्भाव आविर्भावो वा** उद्भव का अर्थ है प्रादुर्भाव होना, आविर्भाव होना या प्रकट होना **तथा अनुद्भवः-अप्रादुर्भावोऽनाविर्भावो वा'** और अनुद्भव का अर्थ प्रादुर्भाव न होना अप्रकट होना ये अर्थ होने चाहिए **इत्यर्थस्वारस्यं परित्यज्यखल्वनिरुद्धवृत्तौ 'अनुद्भवः' इत्यस्य 'अभिभवः' विज्ञानभिक्षुभाष्ये तस्यैव 'तिरोभावः' इति अर्थं विधाय दग्धबीजादप्यङ्कुरोत्पादो योगिसंकल्पाद् भवतीत्यप्रासंगिकी योगिसंकल्पना कृता सा खल्वयुक्तैव** इस अर्थ कि सुंदरता को छोड़कर अनिरुद्ध वृत्ती में अनुद्भव का अर्थ किया ''अभिभव'' (दब जाना) और विज्ञानभिक्षु भाष्य में उसका ''तिरोभाव''(छुप जाना) अर्थ किया। इस अर्थ से जले हुए बीज से अंकुर कि उत्पत्ति स्वीकार की। इस प्रकार से योगी संकल्पना करके अप्रासंगिक अर्थ किया जो कि ठीक नहीं है । **'अनुद्भवशब्द उद्भव शब्दस्य प्रतियोगी** अनुद्भव शब्द उद्भव शव्द का प्रतिपक्षी है, **उद्भवस्तु प्रादुर्भाव आविर्भावो वा भवति** उद्भव का अर्थ होता है प्रादुर्भाव या आविर्भाव हो जाना **'अनुद्भवः' इत्यस्य तत्प्रतियोगिनाऽर्थेन भवितव्यं न हि 'अभिभवः' 'तिरोभावः' वा तत्प्रतियोगी** और अनुद्भव इसका प्रतियोगी शब्द होना चाहिए क्योंकि अभिभाव और तिरोभाव ये उसके प्रतियोगी नहीं है **किन्तु प्रादुर्भूतस्यापि केनचिद्बाधकेन भवत्यभिभवस्तिरोभावो वा** क्योंकि जो पूर्व में प्रकट हो चुकी है यदि वह किसी बाधक कारण से छूप जाती है, उसको तिरोभाव या अभिभाव कहते हैं, **अत्र शक्तेरुद्भवोऽनुद्भवः प्रतिपाद्यते** और जबकि इस सूत्र में तो शक्ति का उद्भव और अनुद्भव बताया गया है । **तस्मात् तयोः कल्पनाऽयुक्ता** इसलिए उन दोनों ने जो अर्थ कल्पना कि है वह अयुक्त है ।। १०-११ ।।

१०- ११।।

अस्तु तर्हि निमित्ततो बद्धस्य जीवात्मनो मोक्षोपदेशः कस्मान्निमित्तात् खलु स बद्ध इति युक्तिप्रयुक्तिभिर्मीमांस्यते, सैषा मीमांसा कतिपयैः सूत्रैः प्रवर्त्यते ।तत्र प्रथमं कालविषये -

न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात् ।।१२।।

(कालयोगतः-न) कालसम्बन्धात् स जीवात्मा न बद्धः कालनिमित्तको बन्धो न जीवात्मनः । यतः (व्यापिनः-नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्) कालस्तु व्यापी नित्यश्च स च सर्वैः सदा सम्बध्यते, व्यापिनः सर्वसम्बन्धवतः पदार्थात् खलु विमोक्षानुपपत्तिः ।नित्यश्च स, न हि सोऽनित्यो यत्कदाचित् तेन सह सम्बन्धो भवति कदाचिन्नेत्यपि न ।तस्मात् कालनिमित्ततो बन्धो न यतस्ततो तां विमोक्षानुपपत्तेः ।।१२।।

देशविषये -

अस्तु तर्हि निमित्ततो बद्धस्य जीवात्मनो मोक्षोपदेशः कस्मान्निमित्तात् खलु स बद्ध इति युक्तिप्रयुक्तिभिर्मीमांस्यते पूर्वपक्षी कहता है चलो मान लिया कि जीवात्मा इसी कारण से बंधन में है , वह किसी कारण से बंधन में आया उसके लिए मोक्ष का उपदेश होना चाहिए उसका मोक्ष होना चाहिए कारण हट जाएगा तो मोक्ष हो जाएगा इसका। अब यहाँ युक्ति प्रयुक्तियों के माध्यम से विचार किया जाएगा, **सैषा मीमांसा कतिपयैः सूत्रैः प्रवर्त्यते** इस प्रकार से जो जानने कि इच्छा है विचार है वह अगले कुछ सूत्रों से की जाती है। **तत्र प्रथमं कालविषये** - इस विषय में सबसे पहले काल के संदर्भ में विचार करते हैं-

न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात् ।।१२।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा काल के संबंध से बंधा हुआ नहीं है क्योंकि जो व्यापक और नित्य पदार्थ होता है उसके सबके साथ सदा संबंध बना ही रहता है, इसलिए काल बंधन का कारण नहीं है ।

भाष्य विस्तार = ***(कालयोगतः-न)*** **कालसम्बन्धात् स जीवात्मा न बद्धः कालनिमित्तको बन्धो न जीवात्मनः** काल के कारण से वह जीवात्मा बंधा नहीं है ।**यतः** ***(व्यापिनः-नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्)*** **कालस्तु व्यापी नित्यश्च स च सर्वैः सदा सम्बध्यते** क्योंकि काल तो सर्वव्यापक है और नित्य भी है वह प्रत्येक वस्तु के साथ सदा जुड़ा रहता है, **व्यापिनः सर्वसम्बन्धवतः पदार्थात् खलु विमोक्षानुपपत्तिः** व्याप्ति सर्व संबंध वाले सब पदार्थों के साथ संबंध रखता है जो ऐसे पदार्थ से छूटना असंभव है। **नित्यश्च स** वह काल नित्य भी है, **न हि सोऽनित्यो यत्कदाचित् तेन सह सम्बन्धो भवति कदाचिन्नेत्यपि न** काल नित्य है ऐसा नहीं है कि कभी काल से संबंध हो जावे और कभी छूट जावे यदि छूट गया तो काल नहीं रहेगा या आत्मा नहीं रहेगा। **तस्मात् कालनिमित्ततो बन्धो न यतस्ततो विमोक्षानुपपत्तेः** इसलिए काल के निमित्त से जीवात्मा बंधा हुआ नहीं है, क्योंकि काल से मोक्ष होना असंभव है ।।१२।।

देशविषये -

न देशयोगतोऽप्यस्मात् ।।१३।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा देश के कारण से बंधा हो ऐसी बात भी नहीं है, क्योंकि स्थान भी सर्वव्यापक है

न देशयोगतोऽप्यस्मात् ।।१३।।

(देशयोगतः-अपि न) देशोऽत्राकाशदेशः। आकाशरूपदेशसम्बन्धादपि न जीवात्मा बद्धो यदाकाशदेशात् तस्य विमोक्षोपदेशः स्यात् । कुतः (अस्मात्) पूर्वोक्तादेव हेतोर्व्यापिनो नित्यस्य ह्याकाशदेशस्य, न हि व्यापिनो नित्यात् स्याद् विमोक्षः कदाचित् ।।१३।।

अवस्थाविषये -

नावस्थातो देहधर्मत्वात् तस्याः ।।१४।।

(अवस्थातः-न) बाल्ययौवनवार्धक्यावस्थातो न जीवात्मा बद्धः, कुतः (तस्याः-देहधर्मत्वात्) तस्या बाल्यादिरूपाया अवस्थायाः खलु देहधर्मत्वात्, देहे हि बाल्याद्यवस्था परिणामोऽवतिष्ठते देहश्च प्राप्यते बन्धानन्तरम्, तस्मात् तथाकृत्वापि मोक्षोपदेशोऽनवसरः ।।१४।।

और नित्य है।

भाष्य विस्तार = ***(देशयोगतः-अपि न)*** **देशोऽत्राकाशदेशः** देश शब्द से यहाँ पर अभिप्राय आकाश से है। **आकाशरूपदेशसम्बन्धादपि न जीवात्मा बद्धो यदाकाशदेशात् तस्य विमोक्षोपदेशः स्यात्** आकाश रूपी देश के संबंध से भी जीवात्मा बंधा हुआ नहीं है, कि आकाश देश से उसके मोक्ष का उपदेश किया गया हो। **कुतः** ***(अस्मात्)*** **पूर्वोक्तादेव हेतोर्व्यापिनो नित्यस्य ह्याकाशदेशस्य** क्यों- आकाशरूपी जो स्थान है वह भी तो व्यापी और नित्य है, **न हि व्यापिनो नित्यात् स्याद् विमोक्षः कदाचित्** कभी भी जो व्यापक, नित्य द्रव्य है, उससे मोक्ष कभी भी हो ही नहीं सकता।।१३।।

अवस्थाविषये -

नावस्थातो देहधर्मत्वात् तस्याः ।।१४।।

सूत्रार्थ= जो शरीर में बाल्य युवा वृद्ध अवस्था है वह बंधन का कारण नहीं, क्योंकि अवस्था परिवर्तन तो देह का धर्म है।

भाष्य विस्तार = ***(अवस्थातः-न)*** **बाल्ययौवनवार्धक्यावस्थातो न जीवात्मा बद्धः** बाल्य, यौवन, वृद्ध अवस्था से भी जीवात्मा बंधा नहीं है, **कुतः** क्यों ***(तस्याः-देहधर्मत्वात्)*** **तस्या बाल्यादिरूपाया अवस्थायाः खलु देहधर्मत्वात्** बाल्य यौवन रूप आदि अवस्था तो शरीर के धर्म हैं, **देहे हि बाल्याद्यवस्था परिणामोऽवतिष्ठते** शरीर में ही बाल्य आदि अवस्थाओं का परिवर्तन होता रहता है **देहश्च प्राप्यते बन्धानन्तरम्** देह मिला बंधन के बाद और अवस्था मिली शरीर के बाद, **तस्मात् तथाकृत्वापि मोक्षोपदेशोऽनवसरः** इसलिए ऐसा मानकर के भी इनसे छूटने का उपदेश नहीं हो सकता ।।१४।।

पुनश्च -

असंगोऽयं पुरुष इति ।।१५।।

सूत्रार्थ= ये पुरुष= जीवात्मा असंग है, अवस्था परिणाम रूप देह धर्म से असक्त अर्थात प्रथक होता है।

पुनश्च -

असंगोऽयं पुरुष इति ।।१५।।

(अयं पुरुषः-असंगः-इति) अयं खलु देहाद् भिन्न आत्मा, असंगो देहधर्मादवस्थापरिणामादसंसक्त इति हेतोश्च, तथा च ''असंगो ह्ययं पुरुषः (बृह ०उ ०४.३.१५) इति साक्षाच्छ्रुतौ पठ्यते ।।१५।।

कालादियोगान्न बद्धो न चावस्थारूपाद्देहधर्माद् बद्धस्तर्हि कर्मणा बद्धः स्यात् । अत्रोच्यते -

न कर्मणाऽन्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च ।।१६।।

(कर्मणा न) अत्र कर्मशब्देन करणवृत्तिर्गृह्यते। कर्म कार्यं व्यवहारः करणव्यवहारो दानादानभाषणादिव्यवहारः। तेन कर्मणा न जीवात्मा बद्धः। यतः (अन्य-धर्मत्वात्)

भाष्य विस्तार = ***(अयं पुरुषः-असंगः-इति)*** **अयं खलु देहाद् भिन्न आत्मा** ये जो आत्मा है यह शरीर से भिन्न है, **अस ङ्गो देहधर्मादवस्थापरिणामादसंसक्त इति हेतोश्च** जीवात्मा इस देह के जो परिणाम है उससे वह असंसक्त है और इस कारण से, **तथा च ''असंगो ह्ययं पुरुषः *(बृह ०उ ०४.३.१५)* इति साक्षाच्छ्रुतौ पठ्यते** और श्रुति में साक्षात पाठ पढ़ने में आत्मा है कि ''जीवात्मा किसी से घुलता मिलता नहीं ''।।१५।।

कालादियोगान्न बद्धो न चावस्थारूपाद्देहधर्माद् बद्धस्तर्हि कर्मणा बद्धः स्यात् । अत्रोच्यते - काल आकाश आदि से यह बंधा नहीं है ये अवस्था आदि देह के धर्म है, तो यह शरीर के कर्मो से बंधा हो ऐसा माने तो। इस पर कहते हैं-

न कर्मणाऽन्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च ।।१६।।

सूत्रार्थ= इंद्रियों व अहंकार आदि से किए जाने वाले वर्तमान कर्मों से भी जीवात्मा बंधा हुआ नहीं है, ये कर्म अहंकार के धर्म हैं और इस पक्ष में अतिक्रमण करने का दोष भी आएगा ।

भाष्य विस्तार = ***(कर्मणा न)*** **अत्र कर्मशब्देन करणवृत्तिर्गृह्यते** यहाँ इस सूत्र में जो कर्म शब्द का प्रयोग हुआ उस कर्म शब्द से करणों की वृत्ती ग्रहण करनी चाहिए। **कर्म कार्यं व्यवहारः करणव्यवहारो दानादानभाषणादिव्यवहारः** कर्म शब्द से कार्य व्यवहार देना-लेना भाषण आदि व्यवहार है। **तेन कर्मणा न जीवात्मा बद्धः** शरीर इंद्रियों की इन क्रियाओं के कारण भी जीवात्मा बंधा हुआ नहीं है। **यतः *(अन्य-धर्मत्वात्)* पुरुषादन्यस्याहंकारस्य तदधीनेन्द्रियाणां च धर्मो हि कर्म तस्मात्** क्योंकि (जीवात्मा जो शरीर इंद्रियों तथा अहंकार आदि से कार्य करता है) अहंकार पुरुष से भिन्न वस्तु है उसके अधीन इंद्रियो का कार्य है और ये दोनों पुरुष के अधीन हैं जबकि उससे भिन्न हैं। **तथा *(अतिप्रसक्तेः-च)* अतिप्रसंगदोषादपि, अन्यधर्मेण बन्धस्वीकारे मुक्तानामपि बन्धप्रसंग आपत्स्यते तत्रान्यधर्मस्य बन्धहेतुत्वसामान्यात्** इसमें अति प्रसंग दोष भी आएगा, (कर्म करेंगे बद्ध जीवात्माएँ और भोगेंगे मुक्ति वाले) इससे मुक्तों का भी बन्ध प्रसंग आजाएगा, क्योंकि दोनों बातों में समानता ये रहेगी जैसे शरीर इंद्रिय कर्म करे और बंधे जीवात्मा।।१६।।

पुरुषादन्यस्याअहंकारस्य तदधीनेन्द्रियाणां च धर्मो हि कर्म तस्मात्। तथा (अतिप्रसक्तेः-च) अतिप्रसंगदोषादपि, अन्यधर्मेण बन्धस्वीकारे मुक्तानामपि बन्धप्रसंग आपत्स्यते तत्रान्यधर्मस्य बन्धहेतुत्वसामान्यात् ।।१६।।

अथान्योऽयमपि दोषोऽन्यधर्मस्य बन्धहेतुत्वे किलोपतिष्ठते –

विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे ।।१७।।

(अन्यधर्मत्वे) अन्यधर्मस्य फलहेतुत्वस्वीकारे (विचित्रभोगानुपपत्तिः) संसारे विविधभोगानामयुक्तता स्यात् । दृश्यन्ते खलु केचिद्बहुसुखिनः केचनाल्पसुखिनः केचित्सुखहीनाः केचिन्महादुःखिनस्तथा केचित्पूर्णांगाः केचन विकलांगा गलितांगाश्चेत्येते विविधभोगा नोपपद्येरन् यतोऽन्यस्य कृतकर्मणः फलमन्यश्चेद् भुञ्जीत ।।१७।।

प्रकृतिनिबन्धनाच्चेन्न तस्या अपि पारतन्त्र्यम् ।।१८।।

अथान्योऽयमपि दोषोऽन्यधर्मस्य बन्धहेतुत्वे किलोपतिष्ठते – अन्य के धर्म से अन्य बन्ध जावे ऐसा माने पर निश्चय से एक और दोष आजाएगा –

विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे ।।१७।।

सूत्रार्थ= एक के कर्म का फल यदि दूसरे को मिलने लगे तो ऐसा मानने पर संसार में जो कर्म फलों कि भिन्नता है वीएच नहीं होनी चाहिए ।

भाष्य विस्तार = ***(अन्यधर्मत्वे)*** **अन्यधर्मस्य फलहेतुत्वस्वीकारे** ***(विचित्रभोगानुपपत्तिः)*** **संसारे विविधभोगानामयुक्तता स्यात्** यदि ये माना जाए अन्य के धर्म का फल अन्य भोगे एक व्यक्ति के फल का कारण दूसरे व्यक्ति का कर्म माना जाए तो संसार में जो विविध प्रकार के भोग प्राप्त हो रहे हैं ये अयुक्त अनुचित हो जाएगा। **दृश्यन्ते खलु केचिद्बहुसुखिनः केचनाल्पसुखिनः केचित्सुखहीनाः केचिन्महादुःखिनस्तथा केचित्पूर्णांगाः केचन विकलांगा गलितांगाश्चेत्येते विविधभोगा नोपपद्येरन् यतोऽन्यस्य कृतकर्मणः फलमन्यश्चेद् भुञ्जीत** संसार में यह देखा जाता है कि कुछ लोग तो बहुत सुखी दिखते हैं, कुछ कम सुख वाले होते हैं, कुछ बहुत दुःखी होते हैं, कुछ पूर्णांग होते हैं कुछ विकलांग होते है कुछ गलितांग होते हैं, इस प्रकार के जो अलग अलग भोग होते हैं ये फिर सिद्ध नहीं हो सकते, यदि एक के कर्म से सभी को फल मिल जाए तो । यदि एक आत्मा के कर्म का फल अन्य भोग ले तो समस्या आजाएगी।।१७।।

प्रकृतिनिबन्धनाच्चेन्न तस्या अपि पारतन्त्र्यम् ।।१८।।

सूत्रार्थ= यदि कोई कहे कि प्रकृति जीवात्मा को बांध देती है । तो भी ठीक नहीं है, क्योंकि प्रकृति परतंत्र है।

भाष्य विस्तार = ***(प्रकृतिनिबन्धनात्-चेत्-न)*** **प्रकृतिरेव पुरुषं निबध्नातीति चेत् कल्प्येत तदपि न युक्तं यतः** पूर्वपक्षी कहता है कि- प्रकृति ने ही पुरुष को बान्ध लिया हो, ऐसा कल्पना करना भी ठीक नहीं है। क्योंकि ***(तस्याः-अपि पारतन्त्र्यम्)*** **तस्याः प्रकृतेरपि पारतन्त्र्यमस्ति** वह प्रकृति पराधीन है, **न**

(प्रकृतिनिबन्धनात्-चेत्-न) प्रकृतिरेव पुरुषं निबध्नातीति चेत् कल्प्येत तदपि न युक्तं यतः (तस्याः-अपि पारतन्त्र्यम्) तस्याः प्रकृतेरपि पारतन्त्र्यमस्ति, न हि प्रकृतिः स्वतन्त्रा जडत्वात् सा तु परतन्त्रा पुरुषतन्त्रा ।। १८।।

न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते ।। १९।।

(नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगः-न) नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववतः पुरुषस्य प्रकृतियोगो न सम्भाव्येत । 'तद्योगः' इत्यत्र तच्छब्देन पूर्वसूत्रप्रकृतिरभिप्रेयते । एवं पूर्वसूत्रे प्रकृतेः पुरुषेण सह योगोनिराकृतस्तस्याः परतन्त्रत्वात् पुनः पुरुषस्य स्वातन्त्र्ये सत्यपि सूत्रेऽस्मिन् तस्य प्रकृत्या सह योगः प्रत्याख्यातस्तस्य नित्यशुद्धबुद्ध-मुक्तस्वभाववत्त्वात् तस्य प्रकृतियोगं प्रति खलूपेक्षा। तदा (तद्योगात्-

---

हि प्रकृतिः स्वतन्त्रा जडत्वात् सा तु परतन्त्रा पुरुषतन्त्रा प्रकृति स्वतंत्र नहीं है, उसके जड़ होने से वह तो दूसरे के अधीन है पुरुष के आधीन है ।। १८।।

न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते ।। १९।।

सूत्रार्थ= सदा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाले जीव का प्राकृत के साथ स्वयं जाकर बंधना नहीं हो सकता, इन दोनों के अतिरिक्त कोई अन्य ही कारण बंधन का हो सकता है।

भाष्य विस्तार = ***(नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगः-न)*** **नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववतः पुरुषस्य प्रकृतियोगो न सम्भाव्येत** जीवात्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव वाला है, ऐसे जीवात्मा का प्रकृति से जाकर स्वयं बंधना भी संभव नहीं है। **'तद्योगः' इत्यत्र तच्छब्देन पूर्वसूत्रप्रकृतिरभिप्रेयते** इस सूत्र में जो ''तद्योग'' शब्द आया है, इसमें जो 'तद' शब्द है उससे पूर्व सूत्र में चली आ रही प्रकृति को कहना अभीष्ट है। **एवं पूर्वसूत्रे प्रकृतेः पुरुषेण सह योगोनिराकृतस्तस्याः परतन्त्रत्वात्** इस प्रकार से पूर्व सूत्र में प्रकृति का पुरुष के साथ योग का खंडन किया की प्रकृति आए और पुरुष को बांध ले ऐसा नहीं है, क्योंकि वह जड़ है और परतंत्र है **पुनः पुरुषस्य स्वातन्त्र्ये सत्यपि सूत्रेऽस्मिन् तस्य प्रकृत्या सह योगः प्रत्याख्यातस्तस्य नित्यशुद्धबुद्ध-मुक्तस्वभाववत्त्वात् तस्य प्रकृतियोगं प्रति खलूपेक्षा** फिर पुरुष के स्वतंत्र होने पर भी इस सूत्र में उसका प्रकृति के साथ योग का खंडन किया है, वह तो शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला है, वह तो प्रकृति की उपेक्षा करता है। **तदा *(तद्योगात्-ऋते)* तयोरुभयोः प्रकृतिपुरुषयोर्योगादृते पुनर्बन्धकारणं यत्कल्पयितुं शक्यते तद्विचार्यतेऽग्रिमसूत्रजातेन** उन दोनों के अर्थात प्रकृति और पुरुष के योग के बिना इसके अतिरिक्त जो भी कारण बंधन का कल्पित किया जा सकता हो, उसके अगले सूत्र में और विचार करेंगे ।

सूत्रेऽत्र 'तद्योगः' शब्दस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये स्वामिहरिप्रसादभाष्ये च 'बन्धयोगः' कृतः इस सूत्र में ''तद्योग'' इस शब्द का अर्थ अनिरुद्धवृत्ति में और विज्ञानभिक्षु भाष्य में और स्वामी हरिप्रसाद भाष्य में तीनों में 'बंधयोग' ऐसा अर्थ किया है, **परन्त्वत्र तथार्थेन न भवितव्यं** परंतु यहाँ ऐसा अर्थ नहीं होना चाहिए **यतः पूर्वसूत्रे पुरुषेण सह सम्बन्धाय प्रकृतिरसमर्था परतन्त्रत्वादुक्ताऽत्र** क्योंकि पूर्व सूत्र में पुरुष के साथ संबंध जोड़ने के लिए प्रकृति को असमर्थ बताया था **सूत्रे प्रकृत्या सह सम्बन्धाय पुरुषः प्रकृतिवत्परतन्त्रस्तु**

ऋते) तयोरुभयोः प्रकृतिपुरुषयोर्योगादृते पुनर्बन्धकारणं यत्कल्पयितुं शक्यते तद्विचार्यतेऽग्रिमसूत्रजातेन । सूत्रेऽत्र 'तद्योगः' शब्दस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये स्वामिहरिप्रसादभाष्ये च 'बन्धयोगः' कृतः, परन्त्वत्र तथार्थेन न भवितव्यं यतः पूर्वसूत्रे पुरुषेण सह सम्बन्धाय प्रकृतिरसमर्था परतन्त्रत्वादुक्ताऽत्र सूत्रे प्रकृत्या सह सम्बन्धाय पुरुषः प्रकृतिवत्परतन्त्रस्तु न किन्तु स्वतन्त्रः सन्नपि स नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वादनपेक्षस्तथोपेक्षावृत्तिकस्तस्मात् तस्य प्रकृतियोगो न सम्भावनीयः । अत एवात्र 'तद्योगः' शब्दस्यार्थः प्रकृतियोग एव सत्यार्थोऽन्यथा 'नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य इति कथनवैयर्थ्यं स्यात् पुरुषस्य 'नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावत्वं तस्य तद्योगनिषेधे प्रकृतियोगनिषेधे हेतुप्रदर्शनम् । पुनश्च 'तद्योगादृते' इत्यस्यार्थोऽपि तत्रोभयत्रानिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च 'प्रकृतियोगादृते' कृतः सोऽप्ययुक्त एव, पूर्वोक्तं हेतुद्वयमत्रापि यतः, कथं हि स्यात् प्रकृतियोगः प्रकृतिस्तु परतन्त्रा तद्द्वारा निषिद्ध एव, पुरुषद्वारा स्यात् प्रकृति योगस्तदापि न सोऽपि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववान् सन्ननपेक्षः

न किन्तु स्वतन्त्रः सन्नपि स नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वादनपेक्षस्तथोपेक्षावृत्तिकस्तस्मात् तस्य प्रकृतियोगो न सम्भावनीयः इस सूत्र में प्रकृति के साथ संबंध जोड़ने के लिए पुरुष अर्थात जीवात्मा प्रकृति के समान परतंत्र तो नहीं है, किन्तु स्वतंत्र होता हुआ भी वह जीवात्मा नित्य शुद्ध बुध मुक्त स्वभाव बाला होने से उसे कोई अपेक्षा नहीं है, और वह उपेक्षा वृत्ति वाला है। इसलिए वह प्रकृति में जाकर बंधे ऐसी कोई संभावना नहीं है। **अत एवात्र 'तद्योगः' शब्दस्यार्थः प्रकृतियोग एव सत्यार्थोऽन्यथा** अतः ''तद्योग'' शब्द का यहाँ सही अर्थ है प्रकृति योग, यही अर्थ ठीक है । **'नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य इति कथनवैयर्थ्यं स्यात्** अन्यथा जीवात्मा को नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव वाला कथन व्यर्थ हो जाएगा **पुरुषस्य 'नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावत्वं तस्य तद्योगनिषेधे प्रकृतियोगनिषेधे हेतुप्रदर्शनम्** इस सूत्र में जीवात्मा प्रकृति के साथ जाके स्वयं नहीं बंधेगा, इस विषय में हेतु बताया है कि वह नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला है इस प्रकार से इस हेतु का प्रदर्शन किया। **पुनश्च 'तद्योगादृते' इत्यस्यार्थोऽपि तत्रोभयत्रानिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च 'प्रकृतियोगादृते' कृतः सोऽप्ययुक्त एव** फिर स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं- ये जो 'तद्योगादृते' इस शब्द का अर्थ उन दोनों भाष्यों में अनिरुद्धवृत्ति और विज्ञानभिक्षु भाष्य में 'प्रकृतियोगादृते' ऐसा अर्थ किया है, वह भी ठीक नहीं है, **पूर्वोक्तं हेतुद्वयमत्रापि यतः** क्योंकि यहाँ भी पहले वाले हेतु लागू होते हैं, **कथं हि स्यात् प्रकृतियोगः प्रकृतिस्तु परतन्त्रा तद्द्वारा निषिद्ध एव** प्रकृति योग कैसे होगा क्योंकि वह तो परतंत्र है, इसलिए प्रकृति के द्वारा योग तो पहले ही निषेध किया था, **पुरुषद्वारा स्यात् प्रकृति योगस्तदपि न सोऽपि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववान् सन्ननपेक्षः तद्द्वाराऽपि प्रकृतियोगो निषिद्धः** दूसरी कल्पना की- कि पुरुष के द्वारा प्रकृति योग किया जा सकता है, वह भी ठीक नहीं है । क्योंकि जीवात्मा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला होता हुआ उसको कोई अपेक्षा नहीं जीवात्मा के द्वारा भी प्रकृति योग निषिद्ध है। **एवमुभयद्वारा निषिद्धे योग एकपक्षयोगो न सम्भावनीयः** इसीलिए जब दोनों नहीं जुड़ेंगे तब फिर एक के लिए कहना ठीक नहीं है, **सम्भावनीयस्तूभयाधीनः स स्वस्वामिभावरूपः शास्त्रान्ते स्वीकृतोऽस्ति** दोनों के अधीन जो संबंध है वह स्वस्वामीभाव सम्बंध है इसकी संभावना तो कर सकते है जो कि शास्त्र के अंत में कहा गया है। **तथा च तद्योगे भिन्नभिन्नहेतूनामयोग्यत्वं प्रदर्श्यान्ते पञ्चपञ्चाशत्तमें सूत्रे तद्योगस्य प्रकृतिपुरुषयोगस्य**

तद्द्वाराऽपि प्रकृतियोगो निषिद्धः । एवमुभयद्वारा निषिद्धे योग एकपक्षयोगो न सम्भावनीयः, सम्भावनीयस्तूभयाधीनः स स्वस्वामिभावरूपः शास्त्रान्ते स्वीकृतोऽस्ति । तथा च तद्योगे भिन्नभिन्नहेतूनामयोग्यत्वं प्रदर्श्यान्ते पञ्चपञ्चाशत्तमे सूत्रे तद्योगस्य प्रकृतिपुरुषयोगस्य कारणमुक्तमस्त्यविवेकः ''तद्योगोऽप्यविवेकान्न समानत्वम्'' ५५ प्रकृतिपुरुषयोर्योगस्य तयोः स्वस्वामिभावस्य कारणमाविवेकः प्रदर्शितः, यथा ह्यत्र तद्योगस्य कारणमविवेकः प्रदर्शितस्तथैव शास्त्रान्ते स्वस्वामिभावस्य कारणमविवेकः प्रादर्शयदाचार्यः ''अविवेकनिमित्तो वा पञ्चशिखः'' ६.६८तस्मादनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये तथा स्वामिहरिप्रसादवृत्तौ च नितान्तमयुक्तमुक्तम् ।। १९।।

अथ तद्योगस्य प्रकृतिपुरुषयोगस्यान्यत्कारणं यत्कल्पयितुं शक्यते तद्विचार्यते -

नाविद्यातोऽप्यवस्तुना बन्धायोगात् ।। २०।।

(अविद्यातः-अपि न) विद्याया अभावोऽविद्या तया खल्वभावरूपयाऽपि जीवात्मनो बन्धः कल्पयितुं न युज्यते। यतः (अयस्तुना बन्धायोगात्) तथाभूतयाऽवस्तु- रूपयाऽवस्तुरूपेणाभावेन

कारणमुक्तमस्त्यविवेकः इसी प्रकार से उन दोनों के योग में अलग अलग कारणों कि अयोग्यता दिखलाकरके इस सम्पूर्ण प्रसंग के अंत में ५ ५ वे सूत्र में उन दोनों के योग का कारण अविवेक को बताया गया है **''तद्योगोऽप्यविवेकान्न समानत्वम्'' ५ ५ प्रकृतिपुरुषयोर्योगस्य तयोः स्वस्वामिभावस्य कारणमाविवेकः प्रदर्शितः** प्रकृति और पुरुष के योग का उन दोनों के स्वस्वामी भाव सम्बंध का जो कारण है वह इस ५ ५ वे सूत्र में बताया 'अविवेक', **यथा ह्यत्र तद्योगस्य कारणमविवेकः प्रदर्शितस्तथैव शास्त्रान्ते स्वस्वामिभावस्य कारणमविवेकः प्रादर्शयदाचार्यः** जैसे इस सूत्र में दोनों के योग का कारण अविवेक बताया गया है वैसे ही शास्त्र के अंत में स्वस्वामी भाव के कारण को आचार्य ने अविवेक कहा **''अविवेकनिमित्तो वा पञ्चशिखः'' ६.६८ तस्मादनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये तथा स्वामिहरिप्रसादवृत्तौ च नितान्तमयुक्तमुक्तम्** पंचशिख आचार्य ने अविवेक को ही कारण माना है, इसलिए अनिरुद्ध वृत्ति में विज्ञानभिक्षु भाष्य में और स्वामी हरी प्रसाद वृत्ति में ये जो भाष्य किया वह नितांत अयुक्त है ।। १९।।

अथ तद्योगस्य प्रकृतिपुरुषयोगस्यान्यत्कारणं यत्कल्पयितुं शक्यते तद्विचार्यते-प्रकृति और पुरुष के योग का बंधन का और जो भी कोई कारण कल्पित किया जा सकता है, उस पर विचार करेंगे-

नाविद्यातोऽप्यवस्तुना बन्धायोगात् ।। २०।।

सूत्रार्थ= अभाव रूप अविद्या से भी जीवात्मा का बंधन नहीं हो सकता, क्योंकि अभाव के द्वारा किसी सत्तात्मक वस्तु को बांधना असंभव होने से।

भाष्य विस्तार = ***(अविद्यातः-अपि न)*** **विद्याया अभावोऽविद्या तया खल्वभावरूपयाऽपि जीवात्मनो बन्धः कल्पयितुं न युज्यते** सिद्धांती कहता है कि अभाव रूप जो अविद्या है वह तो जीवात्मा को बांध नहीं सकती। **यतः *(अयस्तुना बन्धायोगात्)* तथाभूतयाऽवस्तुरूपयाऽवस्तुरूपेणाभावेन बन्धयोगस्यासम्भवात्** क्योंकि जो ज्ञान का अभाव है, अभाव रूप वाली है, अवस्तु रूप वाली है उससे तो बंधन संभव नहीं हो सकता। **न हि क्वचिदवस्तु वस्तु बध्नाति** जो अवस्तु है वह किसी वस्तु सत्तात्मक को

बन्धयोगस्यासम्भवात्। न हि क्वचिदवस्तु वस्तु बध्नाति, वस्तुबन्धनयोगः केनचिद् वस्तुना भवितुं शक्यो नावस्तुना ।। २०।।

पुनः -

वस्तुत्वे सिद्धान्तहानिः ।। २१ ।।

(वस्तुत्वे सिद्धान्तहानिः) अविद्याया वस्तुत्वस्वीकारे दार्शनिकसिद्धान्तहानिर्भवति, न हि क्वचिद् दर्शने आर्षदर्शने अभावो वस्तुत्वेन स्वीक्रियते स्वीकर्तुं युज्यते वा दर्शनं तु तदेव स्वीकरोति यत्खलु सत्तारूपेण दृश्येत ज्ञानपथमागच्छेत् तदेव दर्शनस्य प्रतिपाद्यम् ।। २७।।

अन्यच्च -

विजातीयद्वैतापत्तिश्च ।। २२।।

(विजातीयद्वैतापत्तिः-च) अथ च भावाद् भिन्नोऽभावोऽपि वस्तु चेत् स्वीक्रियते तदा भावाद्

नहीं बांध सकती, **वस्तुबन्धनयोगः केनचिद् वस्तुना भवितुं शक्यो नावस्तुना** वस्तु बंधन योग जो है वो किसी वस्तु के बंधन के द्वारा ही संभव है अवस्तु के द्वारा नहीं ।। २०।।

पुनः -

वस्तुत्वे सिद्धान्तहानिः ।। २१।।

सूत्रार्थ= अभाव रूप अविद्या को सत्तात्मक पदार्थ मानने पर दार्शनिक सिद्धान्त कि हानी होती है ।

भाष्य विस्तार = (*वस्तुत्वे सिद्धान्तहानिः*)**अविद्याया वस्तुत्वस्वीकारे दार्शनिकसिद्धान्तहानिर्भवति** इस अभाव रूप अविद्या को वस्तु स्वीकार कर लेने पर दार्शनिक सिद्धान्त कि हानी होती है, **न हि क्वचिद् दर्शने आर्षदर्शने अभावो वस्तुत्वेन स्वीक्रियते स्वीकर्तुं युज्यते वा** कहीं पर भी दर्शन शास्त्र में आर्ष दर्शनों में अभाव को वस्तु के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है, अथवा स्वीकार करना युक्त हो ऐसा नहीं माना जाता **दर्शनं तु तदेव स्वीकरोति यत्खलु सत्तारूपेण दृश्येत ज्ञानपथमागच्छेत् तदेव दर्शनस्य प्रतिपाद्यम्** वैदिक दर्शन तो उसी वस्तु को स्वीकार करता है जो सत्तारूप में दिखे अथवा ज्ञानपथ को प्राप्त होवे, वही दर्शन का प्रतिपाद्य विषय है ।। २१।।

अन्यच्च -

विजातीयद्वैतापत्तिश्च ।। २२।।

सूत्रार्थ= अभाव को वस्तु रूप मान लेने पर दो प्रकार के विरुद्ध रूप वाले सत्तात्मक और असत्तात्मक अभाव मानने पड़ेंगे ।

भाष्य विस्तार = (*विजातीयद्वैतापत्तिः-च*) **अथ च भावाद् भिन्नोऽभावोऽपि वस्तु चेत् स्वीक्रियते** और इस पक्ष में दोष ये आता है कि- भाव से भिन्न अभाव को भी वस्तु मान लिया जाए **तदा भावाद् भिन्नस्याभावस्य भावविजातीयद्वैतमापद्यते यत्सोऽभावो भाववद् विजातीयोऽपरसत्तारूपोऽनर्थकारी स**

भिन्नस्याभावस्य भावविजातीयद्वैतमापद्यते यत्सोऽभावो भाववद् विजातीयोऽपरसत्तारूपोऽनर्थकारी स चानिष्टतो दर्शने ।। २२।।

यद्वा -

विरुद्धोभयरूपा चेत्।
न तादृक् पदार्थाप्रतीतेः ।। २३- २४।।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -

(विरुद्धोभयरूपा चेत्) यदि ह्यविद्या वस्त्वस्तुभ्यां विरुद्धा न वस्तु नाप्यवस्तु किन्तु विरुद्धा सती खलूभयरूपाऽस्तीति कल्प्येत तर्हि (न) नैतत्कल्पयितुं युज्यते । यतः (तादृक्पदार्थाप्रतीतेः) तादृशस्य पदार्थस्य प्रतीतिरुपलब्धिर्न भवति केनापि प्रमाणेन ।। २३- २४।।

पूर्वपक्षत्वेन पुनरुच्यते -

चानिष्टतो दर्शने तब भाव से भिन्न जो अभाव है उसके संदर्भ में दो प्रकार का भाव से विजातीय पदार्थ स्वीकार करना पड़ेगा वो जो दूसरा भाव होगा वह भाव के समान (विजातीय) दूसरी सत्ता वाला अनर्थकारी होगा वह अनिष्ट करेगा वह दर्शन शास्त्र में उचित नहीं है ।। २२।।

यद्वा -

विरुद्धोभयरूपा चेत् ।
न तादृक् पदार्थाप्रतीतेः ।। २३- २४।।

सूत्रार्थ= यदि अविद्या परस्पर विरोधी स्वरूप वाली हो तो, ऐसा मानना ठीक नहीं है । इस प्रकार का कोई भी पदार्थ कहीं भी प्रमाणों से सिद्ध नहीं हो सकता ।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति - दोनों सूत्रों में परस्पर सम्बंध है-

भाष्य विस्तार = ***(विरुद्धोभयरूपा चेत्)*** **यदि ह्यविद्या वस्त्वस्तुभ्यां विरुद्धा न वस्तु नाप्यवस्तु किन्तु विरुद्धा सती खलूभयरूपाऽस्तीति कल्प्येत तर्हि** ***(न)*** **नैतत्कल्पयितुं युज्यते** पूर्वपक्षी क़हता है यदि अविद्या को वस्तु और अवस्तु दोनों से विरुद्ध रूप वाली माना जाए, उसने तीसरी प्रकार की मान लिया जाए वह दोनों रूप वाली भाव भी नहीं और अभाव भी नहीं ऐसे रूप वाली मान ले तो, सिद्धांती कहता है- ऐसी कल्पना करना ठीक नहीं है। **यतः** ***(तादृक्पदार्थाप्रतीतेः)*** **तादृशस्य पदार्थस्य प्रतीतिरुपलब्धिर्न भवति केनापि प्रमाणेन** क्योंकि ऐसी वस्तु की प्रतीति उपलब्धि अथवा सत्ता किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होती ।। २३- २४।।

पूर्वपक्षत्वेन पुनरुच्यते -

न वयं षट्पदार्थ ादि वादिनो वैशिषिकादिवत् ।। २५।।

सूत्रार्थ= हम छः सोलह या पच्चीस आदि पदार्थ संख्याओं में सीमित पदार्थों को मानने वाले नहीं है,

न वयं षट्पदार्थ ादि वादिनो वैशिषिकादिवत् ।। २५।।

(वयं षट्पदार्थादिवादिनः-न) अप्रतीतोऽपि पदार्थो भवतु यतो वयं षट्षोडशपञ्चविंशतिपदार्थवादिनो न स्मः (वैशिषिकादिवत्) वैशेषिकनैयायिकसांख्या इव, यथा तैः षट्षोडशपञ्चविंशतिसंख्याकाः पदार्था नियम्यन्ते ।। अत्र वैशेषिकादिकथनं गुणवशादस्ति न तु संज्ञावशाद्, वैशेषिकादिसिद्धान्तवादिनः कणादादिभ्यः पूर्वमपि स्युरिति सम्भवः ।। २५।।

उत्तरयति –

अनियतत्वेऽपि नायौक्तिकस्य संग्रहोऽन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम् ।। २६।।

(अनियतत्त्वे) अपि पदार्थानां षट्षोडशपञ्चविंशतिसंख्या नियता न स्यात् तथापि

वैशेषिक न्याय सांख्य आदि विद्याओं के समान।

भाष्य विस्तार = ***(वयं षट्पदार्थादिवादिनः-न)*** **अप्रतीतोऽपि पदार्थो भवतु** जिसकी अप्रतीति हो रही है ऐसे पदार्थ को भी मान लो **यतो वयं षट्षोडशपञ्चविंशतिपदार्थवादिनो न स्मः** हम छः, सोलह, पच्चीस आदि पदार्थ मानने वाले नहीं है संख्यों में बंधे हुए नहीं है ***(वैशिषिकादिवत्)*****वैशेषिकनैयायिकसांख्या इव** जैसे वैशेषिक विद्या के मानने वाले, **यथा तैः षट्षोडशपञ्चविंशतिसंख्याकाः पदार्था नियम्यन्ते** जैसे इनके द्वारा छः, सोलह, पच्चीस आदि पदार्थ नियत किए हुए हैं।। **अत्र वैशेषिकादिकथनं गुणवशादस्ति न तु संज्ञावशाद्** इस सूत्र में जो वैशेषिक शब्द आया ये गुण-विद्या के आधार पर आया, **वैशेषिकादिसिद्धान्तवादिनः कणादादिभ्यः पूर्वमपि स्युरिति सम्भवः** क्योंकि वैशेषिक आदि सिद्धांतों को मानने वाले लोग कणाद आदि विद्वानों के पूर्व भी थे।। २५।।

उत्तरयति –

अनियतत्वेऽपि नायौक्तिकस्य संग्रहोऽन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम् ।। २६।।

सूत्रार्थ= पदार्थों की संख्या में निश्चित न होने पर भी मुक्ति से विरुद्ध बात को स्वीकार नहीं किया जाएगा। अन्यथा मूर्ख-पागल और नशे से ग्रस्त व्यक्तियों की बातें भी माननी पड़ेंगी।

भाष्य विस्तार = ***(अनियतत्त्वे)*** **अपि पदार्थानां षट्षोडशपञ्चविंशतिसंख्या नियता न स्यात्** सिद्धांती कहता है कि- आप छः, सोलह, पाचीस पदार्थों कि संख्या न भी मानें **तथापि तेषामनियतत्वस्वीकारेऽपि** फिर भी उनकी संख्या न स्वीकार करने पर भी ***(अयौक्तिकस्य संग्रहः-न)*** **युक्तिविहीनस्य तथाभूतस्य वस्त्वस्तुविरुद्धोभयरूपस्य संग्रहः संग्रहणं स्वीकारो न भवति** जो युक्ति से विहीन है उस तरह कि जो न वस्तु है और न अवस्तु दोनों से विरुद्ध तीसरे स्वरूप वाली है, इस बात का संग्रह अर्थात संग्रहण स्वीकार नहीं हो सकता ***(अन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम्)*** **अयौक्तिकस्वीकारे बालोऽज्ञः** अयुक्त वस्तु को स्वीकार करने पर वह बालक कहलाएगा, **उन्मत्तो मानसरोगेणोन्मनाः** अथवा वह उन्मत्त है मानसरोग से ग्रस्त है, **आदिना मादकद्रव्यसेवनेन भ्रान्तः** 'आदि' शब्द से अर्थ है जो मादक द्रव्य के सेवन से भ्रांति में पड़ गया हो। **तथाविधानां बालोन्मत्तभ्रान्तानां कथनमपि समानं स्वीकार्यं स्यात्** यदि आपकी बात

तेषामनियतत्वस्वीकारेऽपि (अयौक्तिकस्य संग्रहः-न) युक्तिविहीनस्य तथाभूतस्य वस्त्वस्तुविरुद्धोभयरूपस्य संग्रहः संग्रहणं स्वीकारो न भवति (अन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम्) अयौक्तिकस्वीकारे बालोऽज्ञः, उन्मत्तो मानसरोगेणोन्मनाः, आदिना मादकद्रव्यसेवनेन भ्रान्तः। तथाविधानां बालोन्मत्तभ्रान्तानां कथनमपि समानं स्वीकार्यं स्यात्। तस्मान्न तथाविधोऽविद्यापदार्थः स्वीकर्तुं योग्यः पुनस्तस्माद् बन्ध इति कथनस्य नावसरः ।। २६ ।।

जीवात्मनो बन्धविषयेऽन्या कल्पनोत्थाप्य परिह्रियते -

नानादिविषयोपरागनिमित्तोऽप्यस्य* ।। २७ ।।

(अनादिविषयोपरागनिमित्तः-अपि-अस्य न) अनादिविषयोपरागो निमित्तं यस्य तथाभूतोऽनादिविषयोपरागनिमित्तको बन्धः। प्रवाहेणानादिविषयवासनानिमित्तको- ऽपि किलास्य जीवात्मनो बन्धः स्यादित्यपि न वक्तुं शक्यते। क्षणिकवादे दोषापत्तिरेषा योज्या चतुस्त्रिंशे सूत्रे तत्पक्षप्रत्यक्षत्वात्, तत्र

मानलेवे तो बालकों कि, मतभ्रांत लोगों कि भी बात माननी पड़ेगी। **तस्मान्न तथाविधोऽविद्यापदार्थः स्वीकर्तुं योग्यः पुनस्तस्माद् बन्ध इति कथनस्य नावसरः** इसलिए उस तरह का अविद्या रूपी पदार्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता है, फिर जब वह वस्तु है ही नहीं उसके कारण से बंधन मानने का कोई अवसर ही नहीं आता ।।२६।।

जीवात्मनो बन्धविषयेऽन्या कल्पनोत्थाप्य परिह्रियते - जीवात्मा के बंधन के विषय में एक अन्य कल्पना उठाकर उसका समापन करते हैं-

नानादिविषयोपरागनिमित्तोऽप्यस्य* ।। २७ ।।

सूत्रार्थ= अनादि वासनाओं के संबंध के कारण भी इस जीवात्मा का बंधन क्षणिकवाद में सिद्ध नहीं होता।

भाष्य विस्तार = ***(अनादिविषयोपरागनिमित्तः-अपि-अस्य न)*** **अनादिविषयोपरागो निमित्तं यस्य तथाभूतोऽनादिविषयोपरागनिमित्तको बन्धः** अनादि काल से विषयों का जो उपराग है, वो है कारण जिसका अर्थात उन भौतिक वस्तुओं के प्रति जो अनादि काल से राग है वह भी बंधन का कारण नहीं हो सकता। **प्रवाहेणानादिविषयवासनानिमित्तकोऽपि किलास्य जीवात्मनो बन्धः स्यादित्यपि न वक्तुं शक्यते** प्रवाह से अनादि विषय वासना के कारण से जो जीवात्मा का बंधन हो गया है, इस तरह से भी कहा नहीं जा सकता है। **क्षणिकवादे दोषापत्तिरेषा योज्या चतुस्त्रिंशे सूत्रे तत्पक्षप्रत्यक्षत्वात्** ये जो दोष बताया जा रहा है यह क्षणिकवाद की मान्यता में दोष आएगा, क्षणिक वाद की चर्चा ३४ वे सूत्र में प्रत्यक्ष है, **तत्र क्षणिकवादे खल्वात्मनोऽस्थिरत्वादनाधारत्वाच्च बन्धानुपपत्तिः** क्षणिक वाद में आत्मा के अस्थिर होने से और कोई आधार न होने से बंधन की असिद्धि होती है ।। २७ ।।

तथा -

न बाह्याभ्यन्तरयोरुपरञ्ज्योपरञ्जकभावोऽपि देशव्यवधानात् स्रुघ्नस्थपाटलिपुत्रस्थयोरिव ।। २८ ।।

सूत्रार्थ= शरीर से बाहर विषय एवं शरीर के अंदर आत्मा का उपरंजक और उपरंज संबंध भी संभव

क्षणिकवादे खल्वात्मनोऽस्थिरत्वादनाधारत्वाच्च बन्धानुपपत्तिः ।। २७।।

तथा -

न बाह्याभ्यन्तरयोरुपरञ्ज्योपरञ्जकभावोऽपि देशव्यवधानात् स्त्रु घ्नस्थपाटलिपुत्रस्थयोरिव ।। २८।।

(बाह्याभ्यन्तरयोः-उपरञ्ज्योपरञ्जकभावः-अपि न) बाह्यविषयोपरागो जीवात्मनो बन्धस्य निमित्तमिति यदुक्तं कथमपि न युक्तं तत् । यतो बाह्यस्य विषयस्योपरञ्जकभावोऽभ्यन्तरस्यामन उपरञ्ज्यभावोऽपि न सम्भवति । यतः (देशव्यवधानात्) विषयाः सन्ति शरीराद् बहिरात्मा च शरीरस्यान्तरे, इति देशव्यवधानहेतोस्तत्र दृष्टान्तः । (स्त्रु घ्नस्थपाटलिपुत्रस्थयोः-इव) यथैतयोर्भिन्नभिन्न-देशस्थयोरुपरञ्ज्योपरञ्जकभावो न भवति तद्वदत्रापि ।। २८।।

नहीं है। स्थान की दूरी होने से । जैसे आगरा और पटना में स्थित दो पदार्थों में स्थान की दूरी होने से उपरंज और उपरंजक भाव (संबंध) नहीं होता ।

भाष्य विस्तार = ***(बाह्याभ्यन्तरयोः-उपरञ्ज्योपरञ्जकभावः-अपि न)*** **बाह्यविषयोपरागो जीवात्मनो बन्धस्य निमित्तमिति यदुक्तं कथमपि न युक्तं तत्** बाह्य विषयों के साथ जो उपराग है संबंध है वो इस जीवात्मा के बंधन का जो कारण कहा गया है, वह भी कहना उचित नहीं है । **यतो बाह्यस्य विषयस्योपरञ्जकभावोऽभ्यन्तरस्यामन उपरञ्ज्यभावोऽपि न सम्भवति** क्योंकि जो बाह्य विषयों का उपरंजक भाव है (दूसरे को रंगने बांधने का जो भाव है) आत्मा शरीर के अंदर और वस्तु शरीर से दूर। इतनी दूर से वह आत्मा को नहीं बांध सकती। **यतः *(देशव्यवधानात्)* विषयाः सन्ति शरीराद् बहिरात्मा च शरीरस्यान्तरे** शरीर से बाहर विषय तो दूर हैं और आत्मा शरीर के भीतर है , इति देशव्यवधानहेतोस्तत्र दृष्टान्तः इस तरह से देश के व्यवधान=दूरी बंधन में बाधक है, इस विषय में एक दृष्टांत है। ***(स्रु घ्नस्थपाटलिपुत्रस्थयोः-इव)*** **यथैतयोर्भिन्नभिन्नदेशस्थयोरुपरञ्ज्योपरञ्जकभावो न भवति तद्वदत्रापि** एक वस्तु (पेंट कलर) है आगरा में और दरवाजे हैं पटना मे, तो इतनी दूर से रंगा नहीं जा सकता है ।। २८।।

क्षणिकवादेऽभ्यन्तरो ह्यात्माऽस्तीति न किन्तूभयत्र बहिरन्तरयोः समानत्वेन तस्य वर्तमानत्वमस्ति पुनस्तस्य बहिःस्थेन विषयेण सह सम्बन्धो भविष्यतीत्यत्रोच्यते - आत्मा शरीर के अंदर ही है केवल हम इतना ही नहीं मानते, किन्तु वह तो शरीर के अंदर भी है और समान रूप से बाहर भी है। फिर बाहर वाली वस्तु से उसका संबंध हो ही जाएगा । इस पर कहते हैं-

द्वयोरेकदेशलब्धोपरागान्न व्यवस्था ।। २९।।

सूत्रार्थ= विषय और आत्मा इन दोनों के एक ही स्थान पर (शरीर के बाहर) उपलब्ध होने से दोनों का संबंध होने पर भी क्षणिकवाद में बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था ठीक से नहीं बन पाएगी ।

भाष्य विस्तार = ***(द्वयोः-एकदेशलब्धोपरागात्)*** **विषयस्य जीवात्मनश्च द्वयोरेकदेशे यो लब्ध उपरागः सम्बन्धस्तस्मात् खलु *(न व्यवस्था)* व्यवस्था न भविष्यति क्षणिकवादे** मान लेते है कि जीवात्मा और विषय दोनों ही एक स्थान पर उपलब्ध हैं परंतु वहाँ जो उन दोनों का संबंध हो जाएगा, ऐसा मानने से तो

क्षणिकवादेऽभ्यन्तरो ह्यात्माऽस्तीति न किन्तूभयत्र बहिरन्तरयोः समानत्वेन तस्य वर्तमानत्वमस्ति पुनस्तस्य बहिःस्थेन विषयेण सह सम्बन्धो भविष्यतीत्यत्रोच्यते -

द्वयोरेकदेशलब्धोपरागान्न व्यवस्था ।।२९।।

(द्वयोः-एकदेशलब्धोपरागात्) विषयस्य जीवात्मनश्च द्वयोरेकदेशे यो लब्ध उपरागः सम्बन्धस्तस्मात् खलु (न व्यवस्था) व्यवस्था न भविष्यति क्षणिकवादे बन्धस्य मोक्षस्य च सर्वेषामात्मनां च क्षणकत्वात् सर्वेऽपि बद्धा भविष्यन्ति शरीरिणोऽशरीरा या स्युर्विषयेण सह सर्वेषां समानसम्बन्धात् ।।२९।।

पुनराशङ्क्य समाधत्ते सूत्रद्वयेन प्रथममाशंकते -

अदृष्टवशाच्चेत् ।।३०।।

क्षणिकवाद में व्यवस्था नहीं बनेगी **बन्धस्य मोक्षस्य च सर्वेषामात्मनां च क्षणिकत्वात् सर्वेऽपि बद्धा भविष्यन्ति शरीरिणोऽशरीरा या स्युर्विषयेण सह सर्वेषां समानसम्बन्धात्** क्षणिकवाद में बंधन और मोक्ष कि ठीक व्यवस्था नहीं बनेगी सभी आत्माओं को क्षणिक होने से सबके सब बंधन में आजाएंगे और सभी आत्माओं के क्षणिक होने से बन्ध और मोक्ष भी क्षणिक, चाहे कोई शरीर धारी हो अथवा न हो सभी का विषयों के साथ समान संबंध होगा ।।२९।।

पुनराशङ्क्य समाधत्ते सूत्रद्वयेन प्रथममाशंकते - दो सूत्रों से पुनः शंका करके समाधान करते हैं । पहले शंका करते हैं -

अदृष्टवशाच्चेत् ।।३०।।

सूत्रार्थ= यदि पूर्वपक्षी कहे कि जिस आत्मा का संचित कर्म बच जाएगा तो उस आत्मा का बंधन हो जाएगा।

भाष्य विस्तार = ***(अदृष्टवशात्-चेत्)*** **सर्वे बद्धा न भविष्यन्ति किन्तु तत्र व्यवस्था भविष्यत्यदृष्टवशात्** सबके सब बंधन में नहीं आएंगे, अदृष्ट के कारण से वहाँ व्यवस्था हो जाएगी, **तेषु यस्य यस्यादृष्टमवशिष्टं तस्य तस्य विषयोपरागो भविष्यति विषयोपरागाच्च बन्धो न हि सर्वेषां बन्ध इति चेदुच्येत** पूर्वपक्षी यदि ऐसा कहे कि-सब जीवात्माओं में जिस जिसका अदृष्ट बचा हुआ है उस उसका विषयों से राग हो जाएगा , जिसका विषयों में राग हो उसका बंधन हो जाएगा, सबका बंधन नहीं होगा ।।३०।।

तर्हि -

न द्वयोरेककालायोगादुपकार्योपकारकभावः ।।३१ ।।

सूत्रार्थ= उन दोनों= अदृष्ट और बन्ध में कारण कार्य भाव संबंध नहीं हो सकता, दोनों एक काल में उपस्थित होने से।

भाष्य विस्तार = ***(एककालायोगात्-द्वयोः-उपकार्योपकारकभावः-न)*** **भिन्नभिन्नकाल-**

(अदृष्टवशात्-चेत्) सर्वे बद्धा न भविष्यन्ति किन्तु तत्र व्यवस्था भविष्यत्यदृष्टवशात्, तेषु यस्य यस्यादृष्टमवशिष्टं तस्य तस्य विषयोपरागो भविष्यति विषयोपरागाच्च बन्धो न हि सर्वेषां बन्ध इति चेदुच्येत ।।३०।।

तर्हि -

न द्वयोरेककालायोगादुपकार्योपकारकभावः ।। ३१ ।।

(एककालायोगात्-द्वयोः-उपकार्योपकारकभावः-न) भिन्नभिन्नकाल-सम्बन्धात्, अदृष्टकालेऽन्य आत्मा बन्धकाले चान्यो वस्तुज्ञातस्य क्षणिकत्वात्क्षणिकवादे। न हि कमप्यात्मानं प्रति द्वयोरदृष्टबन्धयोरुपकारकोपकार्यभावः कारणकार्यभावो निमित्तनैमित्तिकभावो वा सम्भवति ।तस्मात् क्षणिकवादे बन्धमोक्षव्यवस्था नोपपद्यतेऽत एव तत्र न प्रावादिकविषयोपरागो बन्धहेतुः ।। ३१ ।।

सम्बन्धात्, अदृष्टकालेऽन्य आत्मा बन्धकाले चान्यो वस्तुज्ञातस्य क्षणिकत्वात्क्षणिकवादे सिद्धांती कहता है- क्षणिकवाद में हर वस्तु क्षणिक है, एक क्षण तक वस्तु रहती है फिर वह नष्ट हो जाती है इसलिए जब आत्मा ने कर्म किया तब अलग आत्मा थी और जब बंधन का समय आया तो अलग आत्मा थी। हर वस्तु का भिन्न-भिन्न काल से संबंध के कारण कोई कारण कार्य संबंध बनेगा ही नहीं। **न हि कमप्यात्मानं प्रति द्वयोरदृष्टबन्धयोरुपकारकोपकार्यभावः कारणकार्यभावो निमित्तनैमित्तिकभावो वा सम्भवति** क्षणिक वाद के अनुसार किसी भी आत्मा के प्रति इन दोनों का अदृष्ट का और बंधन का उपकार और उपकार्य भाव अथवा कारण कार्य भाव निमित नेमित्तिक भाव संभव ही नहीं। **तस्मात् क्षणिकवादे बन्धमोक्षव्यवस्था नोपपद्यतेऽत एव तत्र न प्रावादिकविषयोपरागो बन्धहेतुः** इसलिए क्षणिकवाद में बंधन और मोक्ष कि व्यवस्था ठीक नहीं बनती, अतः इस क्षणिकवाद में प्रवाह से जो विषयों का राग है जो बंधन का कारण बनेगा, वास्तव में वह बंधन का कारण नहीं बन पाएगा ।। ३१।।

पुनराशंकते - फिर आशंका करते हैं-

पुत्रकर्मवदिति चेत् ।। ३२।।

सूत्रार्थ= पूर्वपक्षी यदि ऐसा कहे कि, पुत्र कर्म के समान अदृष्ट और बंधन में भी कारण कार्य संबंध हो जाएगा तो।

भाष्य विस्तार = ***(पुत्रकर्मवत्-इति चेत्)*** **पुत्रोत्पत्त्यर्थ गर्भाधानादिकं कर्म पुत्रकर्म** पुत्र कि उत्पत्ति के लिए जो गर्भाधान आदि कर्म किया जाता है, **तस्मिन् गर्भाधानादिकर्मणि पुत्रस्य भिन्नभिन्नरूपाणि भवन्ति** जिसमें गर्भाधान के के पश्चात गर्भ में भ्रूण (पुत्र) के भिन्न भिन्न रूप होते जाते हैं **तत्र पूर्वावस्थाके पुत्रे कृतं संस्कारकर्म परावस्थाके पुत्रे व्यज्यते** गर्भ में माँ के द्वारा किया गया पिछला-पिछला भोजन गर्भस्थ शिशु को लगता मिलता जाएगा और उसका कारण बनाता जाएगा **पूर्वपरयोः पुत्रस्वरूपयोः भिन्नभिन्नयोरप्युपकारकोपकार्यभावो भवति** जैसे एक महीने से दूसरे महीने में पुत्र के स्वरूप में भिन्न-भिन्न स्वरूपों में एक दूसरे का कारण कार्य भाव बनता है। **तद्वत अदृष्ट बन्धयोरभिन्नभिन्नयोरप्युपकारकोपकार्यभावो**

पुनराशंकते -

पुत्रकर्मवदिति चेत् ।। ३२।।

(पुत्रकर्मवत्-इति चेत्) पुत्रोत्पत्त्यर्थं गर्भाधानादिकं कर्म पुत्रकर्म, तस्मिन् गर्भाधानादिकर्मणि पुत्रस्य भिन्नभिन्नरूपाणि भवन्ति तत्र पूर्वावस्थाके पुत्रे कृतं संस्कारकर्म परावस्थाके पुत्रे व्यज्यते पूर्वपरयोः पुत्रस्वरूपयोः भिन्नभिन्नयोरप्युपकारकोपकार्यभावो भविष्यतीति चेदुच्येत् ।। ३२।।

तर्हि -

नास्ति हि तत्र स्थिर एकात्मा यो गर्भाधानादिना संस्क्रियते ।। ३३।।

(न) नह्येतद् युक्तमुक्तं यतः (तत्र स्थिरः-एकः-आत्मा-अस्ति हि) तत्र पुत्रस्य भिन्नभिन्नरूपेषु खलु स्थिर एक आत्मा गर्भाधानादादेहपातमस्ति हि (यः-गर्भाधानादिना संस्क्रियते) यो हि गर्भाधानादिना

भविष्यतीति चेदुच्येत् बालक के दृष्टांत के समान अदृष्ट के बन्ध में भी जो भिन्न-भिन्न काल में है (पहले महीने के भोजन से दुसरे महीने में शरीर बना) उसमें कारण कार्य भाव हो जाएगा, ऐसा यदि कहे तो ।।३२।।

तर्हि -

नास्ति हि तत्र स्थिर एकात्मा यो गर्भाधानादिना संस्क्रियते ।।३३।।

सूत्रार्थ= सिद्धांती कहता है - आपकी बात ठीक नहीं है, उस पुत्र कर्म वाले दृष्टांत में तो एक स्थिर आत्मा है। जो गर्भ से लेकर मृत्यु पर्यंत चलती है , जो गर्भाधान आदि संस्कारों से लाभ उठाती रहती है, वहाँ कारण कार्य भाव संबंध सिद्ध होता है। क्योंकि वहाँ तो आत्मा स्थिर है। इसलिए कारण कार्य संबंध क्षणिकवाद में सिद्ध नहीं होता है ।

भाष्य विस्तार = सिद्धांती कहता है कि आपका दृष्टांत ठीक नहीं है।७(आपकी मान्यता में क्षणिकवाद में हर वस्तु क्षणिक है परंतु जो दृष्टांत दिया गर्भस्थ शिशु का वह तो स्थिर है) आपने यह बात ठीक नहीं कही, क्योंकि वहाँ पुत्र के भिन्न-भिन्न रूपों में एक आत्मा स्थिर है उस स्थिर आत्मा के कारण गर्भाधान से लेकर जब तक शरीर समाप्त होगा तब तक वह पूरी आत्मा स्थिर रहेगा। उस आत्मा कि वजह से पिछला शरीर अगले शरीर का कारण बनता है, जो भी ये गर्भाधान आदि संस्कार कर्म से संस्कृत होती है लाभान्वित होती है, वह एक स्थिर आत्मा होती है। इसलिए आपकी मान्यता गलत है ।। ३३।।

पुनः पूर्वपक्षत्वेनोच्यते - फिर पूर्वपक्ष कि ओर से कहा जाता है-

स्थिरकार्यसिद्धेः क्षणिकत्वम् ।। ३ ४।।

सूत्रार्थ= संसार में कोई भी पदार्थ स्थिर उपलब्ध न होने से हर वस्तु क्षणिक है ।

भाष्य विस्तार = ***(स्थिरकार्यासिद्धेः क्षणिकत्वम्)*****स्थिरकार्यस्यानुपलब्धेः कस्मिंश्चिदपि वस्तुनि स्थिरकार्यस्य स्थिरपरिणामस्याभावाद् वस्तुमात्रस्य क्षणिकत्वं सम्भवति** पूर्वपक्षी कहता है संसार में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है, हर वस्तु में परिवर्तन हो रहा है, किसी भी वस्तु में स्थिरता का अभाव होने से स्थिर कार्य और ष्टिर परिणाम का अभाव होने से इसलिए हर वस्तु क्षणिक है **तस्मादात्मनोऽपि क्षणिकत्वं विज्ञेयम्।**

संस्कारकर्मणा संस्क्रियते ।। ३३ ।।

पुनः पूर्वपक्षत्वेनोच्यते –

स्थिरकार्यसिद्धेः क्षणिकत्वम् ।। ३४ ।।

(स्थिरकार्यासिद्धेः क्षणिकत्वम्) स्थिरकार्यस्यानुपलब्धेः कस्मिंश्चिदपि वस्तुनि स्थिरकार्यस्य स्थिरपरिणामस्याभावाद् वस्तुमात्रस्य क्षणिकत्वं सम्भवति तस्मादात्मनोऽपि क्षणिकत्वं विज्ञेयम् ।।३४ ।।

पुनरुत्तरयति –

न प्रत्यभिज्ञाबाधात् ।। ३५ ।।

(न) वस्तुमात्रस्य क्षणिकत्वं न। कुतः (प्रत्यभिज्ञाबाधात्) प्रत्यभिज्ञाया बाधप्रसंगात्, यैषा प्रत्यभिज्ञा भवति बाल्ये योऽहमासं स एवाहं यौवनेऽपि स एवाहं प्रातरासं स एवाहं सायमप्यस्मि, य एवाहं

इसलिए आत्मा को भी क्षणिक मानना जानना चाहिए ।। ३४ ।।

पुनरुत्तरयति – सिद्धांती फिर उत्तर देता है –

न प्रत्यभिज्ञाबाधात् ।। ३५ ।।

सूत्रार्थ= हर वस्तु क्षणिक नहीं है, क्षणिक मानने पर पुनः स्मृति नहीं हो पाएगी इसलिए आत्मा भी क्षणिक नहीं है।

भाष्य विस्तार = ***(न)*** **वस्तुमात्रस्य क्षणिकत्वं न** सिद्धांती कहता है हर वस्तु क्षणिक नहीं है। **कुतः** क्यों ***(प्रत्यभिज्ञाबाधात्)*** प्रत्यभिज्ञाया **बाधप्रस ३ात्** प्रत्यभिज्ञा (वस्तु को पहचान न पाने से) का बाध प्रसंग आने से आपकी बात ठीक नहीं है, **यैषा प्रत्यभिज्ञा भवति बाल्ये योऽहमासं स एवाहं यौवनेऽपि स एवाहं प्रातरासं स एवाहं सायमप्यस्मि** ये जो पहचान होती है, जो में बचपन में था आज वही पच्चीस वर्ष में हूँ, जो में सुबह था वही शाम को हूँ, **य एवाहं सायं शयनवेलायामासं स एवाहं प्रातर्जागरणवेलायामप्यस्मीति** जो मै सायं को सोया था वही प्रातः जागरण वेला में हूँ, **यैषा प्रत्यभिज्ञा पुनःस्मृतिः स्वविषया भवति तस्या बाधप्रसंगदोषः स्यात्** ये जो प्रत्यभिज्ञा होती है अपने ही संदर्भ मे, पुनः स्मृति होती है स्वयं के विषय मे, यदि सब कुछ क्षणिक मान लिया जाए तो प्रत्यभिज्ञा में बाध प्रसंग आएगा। **तस्मादात्मा स्थिरोऽस्ति न क्षणिकः क्षणिकवादेविषयोपरागो न बन्धहेतुः** इसलिए आत्मा स्थिर है क्षणिक नहीं है, क्षणिक वाद में जो बंधन का कारण विषयों का राग बताया वह सिद्ध नहीं होता ।। ३५ ।।

अन्यच्च –

श्रुतिन्यायविरोधाच्च ।। ३६ ।।

सूत्रार्थ= श्रुति, न्याय और तर्क से विरुद्ध होने के कारण भी आत्मा के क्षणिक होने की मान्यता ठीक नहीं है।

भाष्य विस्तार = ***(श्रुतिन्यायविरोधात्-च)*** **श्रुतिविरोधप्रसंगात् तथा न्यायविरोधप्रसंगादपि**

सायं शयनवेलायामासं स एवाहं प्रातर्जागरणवेलायामप्यस्मीति यैषा प्रत्यभिज्ञा पुनःस्मृतिः स्वविषया भवति तस्या बाधप्रसंगदोषः स्यात् । तस्मादात्मा स्थिरोऽस्ति न क्षणिकः क्षणिकवादेविषयोपरागो न बन्धहेतुः ।। ३५ ।।

अन्यच्च -

श्रुतिन्यायविरोधाच्च ।। ३६ ।।

(श्रुतिन्यायविरोधात्-च) श्रुतिविरोधप्रसंगात् तथा न्यायविरोधप्रसंगादपि नात्मा क्षणिकः। श्रुतिस्तावत् ''आत्मा....स इतः प्रयत्नेन पुनर्जायते'' (ऐ०उ०४.४) ''अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा'' (बृह ० ४.५.१४) न्यायविरोधात्-तर्कविरोधप्रसंगादपि भोक्तुकामः सन् पुरुषो भोगसाधनं पूर्वमनुतिष्ठति पश्चात् स एव तत्फलं भोगरूपं भुंक्ते 'यः कर्ता स भोक्ता' इति न्यायः । यदि साधनानुष्ठानकाले भिन्नः फलभोगकाले भिन्नस्तर्हि कः साधनान्यनुतिष्ठेत् तदा लोकव्यवहारो

नात्मा क्षणिकः इस क्षणिकवाद में एक तो श्रुति से विरोध आएगा और न्याय का व्यवहार संसार में चलता है उससे भी विरोध आएगा, इसलिए आत्मा क्षणिक नहीं है । **श्रुतिस्तावत् ''आत्मा....स इतः प्रयत्नेन पुनर्जायते''** श्रुति ऐसा बतलाती है, वह आत्मा जब शरीर छोड़के जाता है फिर वह दूसरा जन्म धारण करता है ***(ऐ ०उ० ४.४)*** **''अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा''** दूसरा उदाहरण दिया- अरे यह आत्मा अविनाशी है, इसका विच्छेद नहीं हो सकता ***(बृह० ४. ५. १४)*** **न्यायविरोधात्-तर्कविरोधप्रसंगादपि** न्याय और तर्क से भी आपकी मान्यता में विरोध आता है **भोक्तुकामः सन् पुरुषो भोगसाधनं पूर्वमनुतिष्ठति** भोगने की कामना वाला होकर पुरुष पहले भोग के साधन को क्रय करता है **पश्चात् स एव तत्फलं भोगरूपं भुंक्ते** उसके पश्चात वह ही उसका फल भोग के रूप में भोगता है **'यः कर्ता स भोक्ता' इति न्यायः** जो करता है वही भोक्ता होता है, यही न्याय है। **यदि साधनानुष्ठानकाले भिन्नः फलभोगकाले भिन्नस्तर्हि कः साधनान्यनुतिष्ठेत्** यदि साधन अनुष्ठान काल में भिन्न व्यक्ति हो और फल भोग काल में भिन्न व्यक्ति हो तो फिर इतना साधन पुरुषार्थ कोई क्यों करेगा? **तदा लोकव्यवहारो नोपलभ्येत विनष्टो भवेत्** क्षणिकवाद की मान्यता के अनुसार सारा व्यवहार नष्ट हो जाएगा, **प्रसिद्धं च ''को नामानुपभोग्ये कर्मणि तत्साधने वा प्रवर्तते''** एक कहावत है- जिस कर्म का फल भोगने को ही नहीं मिलेगा तो कौन बुद्धिमान होगा जो उस कर्म में प्रवृत्त होगा? **उपलभ्यते चैष व्यवहारो यदधुना साधनमनुतिष्ठेयं यतः पश्चात्फलं भुञ्जीय** ऐसा व्यवहार उपलब्ध ही होता है की आज अर्जित कर लेते है फिर बाद में इसका फल भोग करेंगे। **तस्मान्न क्षणिक आत्मा** इसलिए आत्मा क्षणिक नहीं है ।। ३ ६ ।।

अथ च -

दृष्टान्तासिद्धेश्च ।। ३ ७ ।।

सूत्रार्थ= क्षणिकवाद में दृष्टांत की असिद्धि होने से क्षणिक वाद ठीक नहीं है ।

भाष्य विस्तार = ***(दृष्टान्तासिद्धेः-च)*** **क्षणिकवादे दृष्टान्तस्यासिद्धत्वादपि** क्षणिकवाद में दृष्टांत की असिद्धि होने से भी क्षणिकवाद ठीक नहीं, **यतः क्षणिकपक्षस्थापनायां पूर्वं हेतुं प्रदाय पश्चात् तस्य**

नोपलभ्यत विनष्टो भवेत्, प्रसिद्धं च ''को नामानुपभोग्ये कर्मणि तत्साधने वा प्रवर्तते'' उपलभ्यते चैष व्यवहारो यदधुना साधनमनुतिष्ठेयं यतः पश्चात्फलं भुञ्जीय । तस्मान्न क्षणिक आत्मा ।। ३६ ।।

अथ च -

दृष्टान्तासिद्धेश्च ।। ३७ ।।

(दृष्टान्तासिद्धेः-च) क्षणिकवादे दृष्टान्तस्यासिद्धत्वादपि, यतः क्षणिकपक्ष- स्थापनायां पूर्वं हेतुं प्रदाय पश्चात् तस्य दृष्टान्तेन भाव्यं यद्वा पूर्वं दृष्टान्तमुदाहृत्य पश्चात् खलु हेतुः प्रदीयेतैवमुभयविधप्रक्रमेणापि दृष्टान्तस्य तद्विषये सिद्धिर्न भविष्यति यतोहि यदा पूर्वो हेतुप्रदानकालः पश्चात्स्याद्दृष्टान्तसाधनकालः तयोर्हेतुदृष्टान्तयोः पूर्वोत्तरकालस्थयोः क्षणिकत्वान्न सम्बन्धः सम्भवति यदस्य हेतोरयं दृष्टान्तः, पूर्वस्य हेतोः क्षणिकत्वात् स नोत्तरकालं दृष्टान्तं सम्बद्धुं शक्नुयादथ यदा पूर्वमुपस्थापितो दृष्टान्तः पश्चाच्च हेतुर्दत्तस्तदा स दृष्टान्तः स्वोत्तरकालेन हेतुना नाभिसम्बध्येतेत्येवमपि

दृष्टान्तेन भाव्यं क्योंकि क्षणिक पक्ष की स्थापना करने में पहले हेतु प्रस्तुत करे फिर उसका दृष्टांत देना चाहिए **यद्वा पूर्वं दृष्टान्तमुदाहृत्य पश्चात् खलु हेतुः प्रदीयेतैवमुभयविधप्रक्रमेणापि दृष्टान्तस्य तद्विषये सिद्धिर्न भविष्यति** जैसेकि पहले दृष्टांत दे देवे फिर उसका हेतु प्रस्तुत कर देवे, दोनों में से कोई भी क्रम अपनाए उसके पक्ष में दृष्टांत कि अपने पक्ष को सिद्ध करने कि सिद्धि नहीं हो पाएगी **यतोहि यदा पूर्वो हेतुप्रदानकालः पश्चात्स्याद्दृष्टान्तसाधनकालः** क्योंकि जब पहले हेतु देने का पहले काल होगा बाद में दृष्टांत देने का काल होगा **तयोर्हेतुदृष्टान्तयोः पूर्वोत्तरकालस्थयोः क्षणिकत्वान्न सम्बन्धः सम्भवति** फिर हेतु और दृष्टांत का जो पूर्व और उत्तर काल में स्थित है क्षणिक होने से उनका संबंध सिद्ध नहीं हो पाएगा **यदस्य हेतोरयं दृष्टान्तः** इस प्रकार का संबंध नहीं हो पाएगा कि इस हेतु का ये दृष्टांत है, **पूर्वस्य हेतोः क्षणिकत्वात् स नोत्तरकालं दृष्टान्तं सम्बद्धुं शक्नुयादथ** पूर्व हेतु के क्षणिक होने से वह हेतु दूसरे क्षण में प्रस्तुत किए गए दृष्टांत से संबंद्ध नहीं हो पाएगा **यदा पूर्वमुपस्थापितो दृष्टान्तः पश्चाच्च हेतुर्दत्तस्तदा स दृष्टान्तः स्वोत्तरकालेन हेतुना नाभिसम्बध्येतेत्येवमपि** जब दृष्टांत पहले प्रस्तुत कर दिया हेतु बाद में दिखाया गया इस पक्ष में भी वह दृष्टांत बाद में प्रस्तुत किए गए हेतु के साथ जुड़ नहीं पाएगा **स्याद् दृष्टान्तासिद्धिस्तस्य क्षणिकत्वात्** दृष्टांत कि सिद्धि न पहले हो सकेगी और न बाद में **तस्मात् क्षणिकवादो न साधुस्तत्र नहि स्याद् बन्धमोक्षव्यवस्था** इसलिए क्षणिकवाद ठीक नहीं है, वहाँ बंधन और मुक्ति कि व्यवस्था ठीक नहीं है ।। ३७ ।।

अथ च -

युगपज्जायमानयोर्न कार्यकारणभावः ।। ३८ ।।

सूत्रार्थ= जो दो वस्तुएँ एक साथ उत्पन्न होती हैं, उन दोनों में कार्य कारण भाव संबंध नहीं होता ।

भाष्य विस्तार = ***(युगपज्जायमानयोः)*** **समाने क्षणे काले वा जायमानयोः पदार्थयोः** ***(कार्यकारणभावः-न)*** **अस्येदं कारणं कार्यं वा न व्यवतिष्ठते** समान काल में अथवा समान क्षण में दो वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं उन दोनों में ये इसका कारण है और ये इसका कार्य है ये व्यवस्था नहीं बनती (क्योंकि कारण कार्य आगे पीछे होने चाहिए) **यतः कार्यात् पूर्वमेव कारणेन भवितव्यं काय च कारणात् पश्चादेव प्रवर्तते** क्योंकि कार्य से कारण पहले ही होना चाहिए और जो कार्य है वह कारण के पश्चात ही होता है। **अतएव**

स्याद् दृष्टान्तासिद्धिस्तस्य क्षणिकत्वात् तस्मात् क्षणिकवादो न साधुस्तत्र नहि स्याद् बन्धमोक्षव्यवस्था ।। ३७।।

अथ च -

युगपज्जायमानयोर्न कार्यकारणभावः ।। ३८।।

(युगपज्जायमानयोः) समाने क्षणे काले वा जायमानयोः पदार्थयोः (कार्यकारणभावः-न) अस्येदं कारणं कार्यं वा न व्यवतिष्ठते यतः कार्यात् पूर्वमेव कारणेन भवितव्यं कार्यं च कारणात् पश्चादेव प्रवर्तते। अतएव हेतुदृष्टान्तयोरपि न योगपद्यं समानक्षणत्वं भवितुमर्हति, न ह्येकस्मिन् क्षणे तयोः हेतुदृष्टान्तभावनिश्चयः सम्भवति तत्र पौर्वापर्यस्यावश्यम्भावात् तस्मात् क्षणिकवादे बन्धस्य केनापि सह कार्यत्वानुपपत्तिः ।। ३८।।

हेतुदृष्टान्तयोरपि न योगपद्यं समानक्षणत्वं भवितुमर्हति अतएव हेतु दृष्टांत भी एक साथ एक उपस्थित नहीं हो सकते, **न ह्येकस्मिन् क्षणे तयोः हेतुदृष्टान्तभावनिश्चयः सम्भवति** एक क्षण में उन दोनों का स्वरूप निश्चय नहीं हो सकेगा कि ये हेतु है और ये इसका दृष्टांत **तत्र पौर्वापर्यस्यावश्यम्भावात् तस्मात् क्षणिकवादे बन्धस्य केनापि सह कार्यत्वानुपपत्तिः** वहाँ उनमें आगे पीछे होना ये अवश्यमभावी है, इसलिए क्षणिकवाद में बंधन का किसी भी पदार्थ के साथ कार्यत्व कि असिद्धि है ।। ३८।।

यतः -

पूर्वापाये उत्तरायोगात् ।। ३९।।

सूत्रार्थ= पूर्व वस्तु नष्ट हो जाने पर दूसरी वस्तु के साथ उसका कोई संबंध न बनने से क्षणिकवाद में कारण कार्य सिद्धान्त ठीक नहीं है ।

भाष्य विस्तार = *(पूर्वापाये-उत्तरयोगात्)* यदा सर्वं क्षणिकं तदा पूर्वस्यापाये नाशे सति तदुत्तरवर्तिन उत्पन्नस्य तेन नष्टेन पदार्थेन सहायोगात् सम्बन्धाभावान्न स पूर्वः पदार्थस्तस्योत्तरस्य कारणमथ सिद्धांती कहते है कि- पूर्वपक्षी के मत है प्रत्येक वस्तु क्षणिक है तो पहले क्षण वाली वस्तु का नाश होने पर उसके पश्चात अगले क्षण में जो वस्तु उत्पन्न हुई उस दूसरे क्षण वाले उत्पन्न पदार्थ का कोई संबंध होगा नहीं, इसलिए पहले वाला पदार्थ दूसरे वाले पदार्थ का कारण नहीं बन सकता **न चोत्तरः पदार्थस्तस्य पूर्वस्य पदार्थस्य कार्यमस्ति सर्वस्य क्षणिकत्वात् सम्बन्धाभावात्** और जैसे पहले वाला पदार्थ दूसरे का कारण नहीं ऐसे ही दूसरे वाला पदार्थ पहले का कार्य भी नहीं है, उनकी मान्यता में हर वस्तु क्षणिक होने से, और जब क्षणिक है तो आपस में किसी का संबंध भी नहीं बनता, इसलिए कोई किसी का कार्य और किसी का कारण भी नहीं सिद्ध होता ।। ३९।।

पुनश्च -

तद्भावे तदयोगादुभयव्यभिचारादपि न ।।४०।।

सूत्रार्थ= कारण के होने पर भी कार्य के न होने से दोनों प्रकार से कार्य कर्ण का नियम भंग होने से क्षणिकवाद में कार्य कारण संबंध सिद्ध नहीं होता है ।

यतः -

पूर्वापाये उत्तरायोगात् ।। ३९ ।।

(पूर्वापाये-उत्तरयोगात्) यदा सर्वं क्षणिकं तदा पूर्वस्यापाये नाशे सति तदुत्तरवर्तिन उत्पन्नस्य तेन नष्टेन पदार्थेन सहायोगात् सम्बन्धाभावान्न स पूर्वः पदार्थस्तस्योत्तरस्य कारणमथ न चोत्तरः पदार्थस्तस्य पूर्वस्य पदार्थस्य कार्यमस्ति सर्वस्य क्षणिकत्वात् सम्बन्धाभावात् ।। ३९ ।।

पुनश्च -

तद्भावे तदयोगादुभयव्यभिचारादपि न ।। ४० ।।

(तद्भावे तदयोगात्) तस्य पूर्वस्य भावे विद्यमानत्वे तस्योत्तरस्य पदार्थस्यासम्बन्धात् तदा तस्य विद्यमानत्वात् (उभयव्यभिचारात्-अपि न) एवमुभयव्यभिचारात् क्षणिकयोः पूर्वोत्तरयोरुभयथापि

भाष्य विस्तार = ***(तद्भावे तदयोगात्)*** **तस्य पूर्वस्य भावे विद्यमानत्वे तस्योत्तरस्य पदार्थस्यासम्बन्धात् तदा तस्य विद्यमानत्वात्** पूर्व क्षण वाले पदार्थ के विद्यमान होने पर उस समय में दूसरे क्षण वाले पदार्थ का उससे संबंध नहीं है, तब उसके पहले वाले पदार्थ के विद्यमान होने से ***(उभयव्यभिचारात्-अपि न)*** **एवमुभयव्यभिचारात् क्षणिकयोः पूर्वोत्तरयोरुभयथापि तयोरसम्बद्धत्वात् कार्यकारणभावो न क्षणिकवादे सम्भवति** दोनों ही पक्षों में दोष आने से इसलिए क्षणिक लोग जो क्षणिक है, पूर्व पदार्थ और उत्तर पदार्थ इन दोनों के क्षणिक होने से दोनों प्रकार से उनका संबंध सिद्ध न हो पाने के कारण क्षणिकवाद में कार्य कारण भाव संबंध सिद्ध नहीं हो सकता ।। ४० ।।

पुनःशंकयित्वा समाधत्ते - पुनः शंका उठाके समाधान करते हैं-

पूर्वभाविमात्रे न नियमः ।। ४१ ।।

सूत्रार्थ= पूर्वक्षणवर्ती मात्र होने से कोई वस्तु किसी उत्तरक्षणवर्ती वस्तु का कारण नहीं बन सकती।

भाष्य विस्तार = ***(पूर्वभाविमात्रे नियमः-न)*** **यो यो हि पूर्वभावी पूर्वक्षणावर्ती स स पदार्थः तत्क्षणेऽवर्तमानोऽपि पूर्ववर्तित्वात् कारणं भवेदितिमात्रकथने नियमो नास्ति न भवितुमर्हति नोपलभ्यते** जो जो वस्तु पूर्वभावी है अर्थात पूर्वक्षणवर्ती है, वह वह पदार्थ दूसरे क्षण में न विद्यमान होता हुआ भी क्योंकि वह पहले था इसलिए कारण नहीं है, ऐसा कहने पर। सिद्धांती कहता है- ऐसा नियम नहीं देखा जाता संसार में कि जो पहले वाला हो वह कारण है और बाद वाला कार्य है (बिना संबंध दिखाये कारण कार्य नहीं माने जा सकते)। **यतः पूर्वक्षणवर्ती तु विनष्टो भवति क्षणिकवादे क्योंकि क्षणिकवाद** में पूर्वक्षणवर्ती पदार्थ तो नष्ट हो गया **पुनरुत्तरक्षणवर्तिनः पदार्थस्य कार्यरूपस्य किंकारणमिति प्रश्नः** फिर बाद वाले क्षण में जो कार्यरूपी पदार्थ है उसका कारण कौन है? (नष्ट हुई वस्तु तो कारण नहीं बनती)। **यदि हि पदार्थस्याक्षणिकत्वं स्थिरत्वं स्वीक्रियेत यत् कारणपदार्थः स्वकार्यस्य कालेऽपि वर्तते हि तदा तु नियमो भविष्यति** यदि ऐसा मान लिया जाए कि पदार्थ का अक्षणिकत्व अर्थात स्थिरत्व स्वीकार कर लिया जावे। जब कोई कार्य वस्तु उत्पन्न होती है तो उस समय भी कारण द्रव्य उसके अंदर विद्यमान रहता है, तब तो नियम ठीक बैठ जाएगा (कि मट्टी कारण और घड़ा कार्य) **यदिदमस्य कारणं कार्येऽन्वयित्वेनावतिष्ठते वस्त्रे तन्तवाभूषणे स्वर्णं**

तयोरसम्बद्धत्वात् कार्यकारणभावो न क्षणिकवादे सम्भवति ।। ४० ।।

पुनःशंकयित्वा समाधत्ते -

पूर्वभाविमात्रे न नियमः ।। ४१ ।।

(पूर्वभाविमात्रे नियमः-न) यो यो हि पूर्वभावी पूर्वक्षणावर्ती स स पदार्थः तत्क्षणेऽवर्तमानोऽपि पूर्ववर्तित्वात् कारणं भवेदितिमात्रकथने नियमो नास्ति न भवितुमर्हति नापलभ्यते । यतः पूर्वक्षणवर्ती तु विनष्टो भवति क्षणिकवादे पुनरुत्तरक्षणवर्तिनः पदार्थस्य कार्यरूपस्य किंकारणमिति प्रश्नः। यदि हि पदार्थस्याक्षणिकत्वं स्थिरत्वं स्वीक्रियेत यत् कारणपदार्थः स्वकार्यस्य कालेऽपि वर्तते हि तदा तु नियमो

घटे मृत्तिका, यथा उदाहरण देते है जैसे अमुक वस्तु इसका कारण है और वह कारण होती हुई कार्य के अन्वित रूप से विद्यमान है उसके साथ सम्बद्ध होकर बैठी है वह कारण वस्तु। जैसे वस्त्र में तन्तु बैठे हैं, आभूषण में स्वर्ण और जैसे घड़े में मिट्टी है। **अन्यथा स्वर्णं यद्वा मृत्तिकाऽपि वस्त्रस्य कारणतामापद्येत** यदि उनका आपस में संबंध न हो केवल पूर्व भावी मात्र हो, ऐसा मानने पर तो सोना या मिट्टी भी वस्त्र का कारण मान लिए जावेंगे। **तस्मान्न क्षणिकवादो युक्तस्तत्र बन्धस्य कारणानुपपत्तिः खलु तिष्ठत्येव** इसलिए क्षणिकवाद ठीक नहीं है, उस क्षणिकवाद में बंधन का कारण सिद्ध नहीं होता, ये दोष तो वहाँ पर बना ही रहेगा ।। ४१ ।।

विज्ञानवादो निरस्यते - विज्ञानवाद का खंडन किया जाता है- (अब यहाँ से नए पक्ष का खंडन करते हैं)

न विज्ञानमात्रं बाह्यप्रतीतेः ।। ४२ ।।

सूत्रार्थ= पूर्वपक्षी जो कहता है कि संसार में केवल ज्ञान मात्र ही है । हम कहते हैं 'न ऐसी बात नहीं है'। केवल ज्ञान मात्र नहीं है, वस्तुएँ भी हैं। बाह्य इंद्रियों से बाह्य वस्तुओं का प्रत्यक्ष होने के कारण।

भाष्य विस्तार = ***(विज्ञानमात्रं न)*** **सर्वं विज्ञानमात्रं न विज्ञानातिरिक्तं किञ्चित् तस्मान्न बन्धस्य कारणं वस्तुरूपमन्वेष्यं बन्धश्चापि न वास्तविकस्तस्यापि विज्ञानमात्रत्वादितीत्थं न विज्ञानमात्रम्** सिद्धांती ने पूर्वपक्षी का विचार प्रस्तुत किया- इस संसार में सब कुछ ज्ञान मात्र ही है (घड़ी, मोटर, कार, घर, गार्डन आदि आदि वस्तुओं का ज्ञान मात्र ही तो होता है) ज्ञान से अतिरिक्त वस्तु कुछ भी नहीं है, इसलिए बंधन का कारण कोई वस्तु रूप हो उसको खोजने की कोई आवश्यकता ही नहीं है, कि बंधन का कारण क्या है? बंधन भी कोई वास्तविक नहीं है, बंधन का जो ज्ञान हो रहा है वह भी ज्ञान मात्र ही है। **यतः** ***(बाह्यप्रतीतेः)*** **बाह्यवस्तुनो बाह्यैरिन्द्रियैः प्रतीतिर्भवति यतः** क्योंकि बाह्य वस्तुओं की बाह्य इंद्रियों से प्रतीति हो रही है। इसलिए वस्तु भी है, केवल ज्ञान मात्र नहीं है। **बाह्यैरिन्द्रियैः प्रतीयमानो घटोऽयं घटोऽस्तीति प्रतीयते न तु 'अहं घटः' इति प्रतीयते** बाह्य इंद्रियों से वस्तु की प्रतीति होते हुए ऐसा अनुभव होता है कि 'यह घड़ा है', न कि 'मै घड़ा हूँ' ।।। ४२ ।।

पुनश्च -

तदभावे तदभावाच्छून्यं तर्हि ।। ४३ ।।

सूत्रार्थ= यदि वस्तु का अभाव मान लिया जाए, तो ज्ञान का भी अभाव हो जाएगा। फिर तो शून्य की

भविष्यति यदिदमस्य कारणं कार्येऽन्वयित्वेनावतिष्ठते वस्त्रे तन्तवाभूषणे स्वर्णं घटे मृत्तिका, यथा अन्यथा स्वर्णं यद्वा मृत्तिकाऽपि वस्त्रस्य कारणतामापद्येत । तस्मान्न क्षणिकवादो युक्तस्तत्र बन्धस्य कारणानुपपत्तिः खलु तिष्ठत्येव ।। ४१ ।।

विज्ञानवादो निरस्यते -

न विज्ञानमात्रं बाह्यप्रतीतेः ।। ४२ ।।

(विज्ञानमात्रं न) सर्वं विज्ञानमात्रं न विज्ञानातिरिक्तं किञ्चित् तस्मान्न बन्धज्ञस्य कारणं वस्तुरूपमन्वेष्यं बन्धश्चापि न वास्तविकस्तस्यापि विज्ञानमात्रत्वादितीत्थं न विज्ञानमात्रम् । यतः (बाह्यप्रतीतेः) बाह्यवस्तुनो बाह्यैरिन्द्रियैः प्रतीतिर्भवति यतः । बाह्यैरिन्द्रियैः प्रतीयमानो घटोऽयं

प्रतीति होगी।

भाष्य विस्तार = **बाह्यविषयस्याभावे तस्य विज्ञानस्याभावोऽननुभवो भवेत्। बाह्यविषयस्याभावे** यदि बाह्य विषय न हो, अगर वस्तु ही नहीं है **तस्य विज्ञानस्याभावो** तो उसका ज्ञान भी नहीं होना चाहिए अननुभवो भवेत् फिर उसका अनुभव भी नहीं होना चाहिए। जो अनुभव वहाँ हो रहा है (जैसे अलग-अलग घड़ी, पंखा, मोटर, कार आदि दिख रहे हैं) **तदा शून्यं प्रस्यज्यते।** फिर तो शून्य ही होगा, कुछ भी न दिखेगा, किसी भी वस्तु का ज्ञान भी न होगा (जैसे बंद कमरे में गए और अंधेरा है चारों ओर तो हमें कुछ नहीं दिखता, तो सारी दुनियाँ में ऐसा ही दिखना चाहिए, हर जगह शून्य ही हो, किसी भी वस्तु का ज्ञान नहीं होना चाहिए । क्योंकि वस्तु तो है ही नहीं आपके विचार के आधार पर) **तस्मात** इसलिए जो आप बात कह रहे हैं वह ठीक नहीं है। **न विज्ञानमात्रम्** केवल ज्ञान मात्र ही नहीं है, **वस्तुस्थित्या भवितव्यमेव,** वस्तु कि स्थिति भी होना चाहिए अर्थात वस्तु का अपना अस्तित्व भी होना चाहिए, तभी हमें उसका ज्ञान हो पाएगा **अतश्च बन्धकारणस्यान्वेषणं तु कार्यमेव ।। ४३ ।।**

अतः जब वस्तुओं का ज्ञान हो रहा है तो इसका अर्थ हुआ कि वस्तुएँ हैं, यदि वस्तुएँ हैं तो बंधन भी है और बंधन है तो कोई न कोई कारण भी है, और यदि कोई कारण है तो उसकी खोज करनी चाहिए, फिर उस कारण को दूर कारण चाहिए । तभी तो दुःखों से मुक्ति मिलेगी ।। ४ ३ ।।

शून्यवाद उत्थाप्यते - अब विज्ञान मात्र के खंडन के बाद एक और पक्ष शून्यवाद को उठाते हैं- अब शून्य वाद को उठाया जाता है

शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य ।। ४४ ।।

सूत्रार्थ= पूर्वपक्षी कहता है- शून्य ही सत्य है, क्योंकि जो सत्तात्मक वस्तु है वह एक दिन नष्ट हो जाती है। विनाश तो प्रत्येक वस्तु का धर्म है।

भाष्य विस्तार = **शून्यं खलु तत्त्वं वस्तुत्त्वम्।** शून्यवादी कहता है- यदि ज्ञान मात्र ही है वस्तु कुछ नहीं, तो जब वस्तु ही नहीं तो ज्ञान किसका? **कुतः** क्यों **भावः सत्तात्मकः पदार्थो विनश्यति हि वस्तुधर्मत्वाद्** शून्य ही सत्य है। सिद्धांती पूछता है कि कैसे है? तब पूर्वपक्षी कहता है- **भावः** अर्थात जो सत्तात्मक पदार्थ है वह नष्ट हो जाता है (रेल, गाड़ी, मकान, मोटर आदि सब टूट-फुट जाएगा) **विनाशः खलु वस्तुधर्मो** विनाश

घटोऽस्तीति प्रतीयते न तु 'अहं घटः' इति प्रतीयते ।।४२।।

पुनश्च -

तदभावे तदभावाच्छून्यं तर्हि ।।४३।।

(तदभावे तदभावात्) बाह्यविषयस्याभावे तस्य विज्ञानस्याभावोऽननुभवो भवेत् (तर्हि शून्यम्) तदा शून्यं प्रस्यज्यते । तस्मान्न विज्ञानमात्रम्, वस्तुस्थित्या भवितव्यमेव, अतश्च बन्धकारणस्यान्वेषणं तु कार्यमेव ।।४३।।

शून्यवाद उत्थाप्यते -

शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य ।।४४।।

वस्तु का धर्म होने से **वस्तुनो भावस्य सत्तात्मकस्य पदार्थस्य विनाशो धर्मः,** वस्तु अर्थात जितने भी भावात्मक सत्तात्मक पदार्थ हैं उन सबका ये धर्म है विनाश (हर वस्तु अंत में नष्ट हो जाएगी) **सति विनाशे शून्यं सम्पद्यते** और जब हर वस्तु का विनाश हो जाएगा तव शून्य ही होगा (हमारे जितने महापुरुष अथवा पूर्वज थे वे अब कहाँ हैं? शरीर मृत्यु को प्राप्त हो गया है। अब हम उनको नहीं देख सकते और जो पुराने महल, किले आदि थे वे भी समय के साथ नष्ट हो गए । तो फिर सब शून्य हो गया न। इसलिए शून्यवाद ही सत्य है) **पुनर्बन्धकारणस्य तथा मोक्षस्यापि नाशो भविष्यति तदा बन्धकारणन्वेषणस्यावश्यकतैव न भवति ।।४४।।** तो हर वस्तु नष्ट होने वाली है **पुनर्बन्धकारणस्य** फिर बंधन का जो कारण है वह भी नष्ट हो जाएगा **तथा** और **मोक्षस्यापि नाशो भविष्यति** मोक्ष का भी नाश हो जाएगा **तदा** तब **बन्धकारणन्वेषणस्यावश्यकतैव न भवति** बंधन के कारण का अन्वेषण खोज करने कि अवश्यक्ता ही नहीं है। जब हर वस्तु नष्ट हो ही रही है तो फिर क्यों बंधन के कारण को नष्ट करने के लिए पुरुषार्थ करें? ।।४४।।

उत्तरयति - अब सिद्धांती उत्तर देता है -

अपवादमात्रमबुद्धानाम् ।।४५।।

सूत्रार्थ= जो अबुद्ध अज्ञानी जन हैं, उनका यह कथन प्रलाप मात्र है कि सब कुछ शून्य ही होगा ।

भाष्य विस्तार = शून्यं तत्त्वमथ च भावो विनश्यतीति कथनं खलु प्रलापमात्रमज्ञानां जनानाम्। सिद्धांती कहता है ये तो अज्ञानी कमबुद्धि वाले लोगों कि बातें हैं। **शून्यं तत्वम** शून्य ही सत्य है, क्यों **अथ च भावो विनष्यति** जो सत्तात्मक वस्तु है वह अंत में नष्ट हो ही जाएगी जब वह नष्ट हो जाएगी तब शून्य ही बचेगा। **इति कथनं खलु प्रलापमात्रमज्ञानां जनानाम्** ये कथन तो अज्ञानी लोगों का प्रलाप मात्र है। **यतः शून्यस्य साधनाय प्रमाणस्य स्वीकारः शून्यत्वघातकः** सिद्धांती कहता है कि- 'शून्य सत्य है' ये आपने प्रतिज्ञा की। अब इसकी सिद्धि के लिए कोई प्रमाण तो दोगे, बिना प्रमाण के तो कोई बात सिद्ध नहीं होती। **यतः क्योंकि शून्यस्य साधनाय प्रमाणस्य शून्यत्व** की सिद्धि के लिए जो प्रमाण दोगे अथवा प्रमाण मानोगे वो **स्वीकारः शून्यत्वघातकः** उस प्रमाण को स्वीकार करना शून्यत्व का घातक होगा (जो प्रमाण दोगे, जिस प्रमाण को सच्चा मानकर कहोगे, वह वास्तविक होगा, फिर उसकी सत्ता स्वीकारने से शून्यवाद तो नष्ट ही हो जाएगा) **प्रमाणस्य सद्भावात्** प्रमाण की सत्ता तो विद्यमान है (इसलिए आपका पक्ष 'सर्वं शून्यम' सिद्ध नहीं हो

(शून्यं तत्त्वम्) शून्यं खलु तत्त्वं वस्तुत्त्वम्। कुतः (भावः विनश्यति) भावः सत्तात्मकः पदार्थो विनश्यति हि वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य) विनाशः खलु वस्तुधर्मो वस्तुनो भावस्य सत्तात्मकस्य पदार्थस्य विनाशो धर्मः, सति विनाशे शून्यं सम्पद्यते पुनर्बन्धकारणस्य तथा मोक्षस्यापि नाशो भविष्यति तदा बन्धकारणन्वेषणस्यावश्यकतैव न भवति ।।४४।।

उत्तरयति -

अपवादमात्रमबुद्धानाम् ।।४५।।

(अबुद्धानाम्-अपवादमात्रम्) शून्यं तत्त्वमथ च भावो विनश्यतीति कथनं खलु प्रलापमात्रमज्ञानां

पाया) **तथाऽस्वीकारे प्रमाणाभावादसिद्धिः शून्यवादस्य**। यदि आप प्रमाण को स्वीकार न करोगे तो-प्रमाण के अस्वीकार करने से शून्यवाद की सिद्धि नहीं होगी (क्योंकि प्रमाण के बिना कोई वस्तु सिद्ध नहीं होती) **शून्यस्य साधनाय भावो विनश्यतीति कथने प्रथमं भावं स्वीकृत्यैव पश्चात् तस्य विनाशो दर्शितः**, अब पूर्वपक्षी ने जो कहा था '**शून्यं तत्वम भावो विनश्यति**' पहले प्रतिज्ञा कि 'शून्य ही सत्य है ', अब इसको सिद्ध करने के लिए इसने हेतु दिया '**भावो विनश्यति**' जितनी भी सत्तात्मक वस्तुएँ है वह अंत में नष्ट हो जाती हैं ।तो नाश तो बाद में कहा पहले वस्तु कि सत्ता को स्वीकार किया है उसके बाद इन सबके नष्ट होना दिखाया है। **विनाशोऽपि न कस्यचित् सर्वथाऽभावो भवति** विनाश का अर्थ है किसी भी वस्तु का सर्वथा विनाश अभाव नहीं होता (मकान को तोड़ेंगे तो ईंट पत्थर बचेंगे उनको तोड़ेंगे तो उसके छोटे छोटे कण बचेंगे, लकड़ी को जलाएंगे तो राख बचेगी, अर्थात सर्वथा लोप नहीं होगा) **पुनर्निरवयवस्यात्मनस्तु न विनाशसम्भवस्तस्याखण्डत्वात्,** फिर जो आत्मा है वह तो निरवयव है, उसके तो खण्ड होंगे नहीं, फिर उसका नाश कैसे संभव है। इसलिए आत्मा के अखंड रहने से उसका विनाश संभव नहीं है। **खण्डवान् पदार्थ एव विनष्टो भवति** जो खण्डवान् पदार्थ है वह ही विनष्ट होता है **खण्डं खण्डं भूत्वा**, खण्ड खण्ड हो करके खण्डखण्डभाव एव विनाशस्यार्थः खण्ड खण्ड हो जाना ही विनाश का अर्थ है **पुनः खण्डानां सत्तासद्भावान्न शून्यमिति** फिर खंडों कि सत्ता तो रहेगी, उनका भाव तो रहेगा, इसलिए सब कुछ शून्य तो नहीं होगा ।।४५।।

अपरञ्च -

उभयपक्षसमानक्षेमत्वादयमपि ।।४६।।

सूत्रार्थ= जितनी शक्ति पिछले दो हेतुओं में थी उतनी ही शक्ति इस (शून्यवाद) में भी है, जैसे पहले के दो पक्ष खंडित हो गए ऐसे ही यह पक्ष भी खंडित हो गया, ऐसा जानना चाहिए।

भाष्य विस्तार = उभययोः क्षणिकपक्षविज्ञानमात्रपक्षयोस्तुल्यनिराकरणहेतुत्वादयं शून्यवादपक्षोऽपि निराकृतोऽथायुक्तश्च विज्ञेयः। सिद्धांती कहते है **उभययोः** पहले जो दो पक्ष बताए थे **क्षणिकपक्षविज्ञानं** क्षणिकवाद और विज्ञानवाद। **अत्र पक्षयोस्तुल्यनिराकरणहेतुत्वाद** इन दोनों पक्षो के तुल्य जिन हेतुओं से पिछले दो हेतुओं का खंडन किया उन्ही हेतुओं से इस पक्ष का भी खंडन हो जाता है, इस कारण से ये **शून्यवादपक्षोऽपि** शून्यवाद भी **निराकृतोऽथायुक्तश्च विज्ञेयः**। खंडित हो गया ऐसा समझ लेना चाहिए और ये पिछले दो गलत हेतुओं के समान ही अयुक्त है। **तत्र क्षणिकपक्षे विज्ञानपक्षे च यथा**

जनानाम् । यतः शून्यस्य साधनाय प्रमाणस्य स्वीकारः शून्यत्व- घातकः प्रमाणस्य सद्भावात् तथाऽस्वीकारे प्रमाणाभावादसिद्धिः शून्यवादस्य। शून्यस्य साधनाय भावो विनश्यतीति कथने प्रथमं भावं स्वीकृत्यैव पश्चात् तस्य विनाशो दर्शितः, विनाशोऽपि न कस्यचित् सर्वथाऽभावो भवति पुनर्निरवयवस्यात्मनस्तु न विनाशसम्भवस्तस्याखण्डत्वात्, खण्डवान् पदार्थ एव विनष्टो भवति खण्डं खण्डं भूत्वा, खण्डखण्डभाव एव विनाशस्यार्थः पुनः खण्डानां सत्तासद्भावान्न शून्यमिति ।।४५।।

अपरञ्च -

उभयपक्षसमानक्षेमत्वादयमपि ।।४६।।

(उभयपक्षसमानक्षेमत्वात्-अयम्-अपि) उभययोः क्षणिकपक्षविज्ञानमात्रपक्ष-

प्रत्यभिज्ञया बाह्यप्रतीत्या च क्षणिकविज्ञानपक्षनिराकरणं कृतं तथैव प्रत्यभिज्ञाप्रतीतिभ्यां शून्यवादस्यापि निराकरणं भवतीति विज्ञेयम् ।।४६।। यथा जैसे **तत्र** वहाँ **क्षणिकपक्षे विज्ञानपक्षे च** क्षणिक पक्ष और विज्ञान पक्ष का (क्षणिकवाद और विज्ञानवाद कि मान्यता में जिस प्रकार से दो हेतु दिये थे) **प्रत्यभिज्ञया बाह्यप्रतीत्या च** प्रत्य भिज्ञा और बाह्य प्रतीति । हमें वस्तुओं की पहचान हो जाती है,(मेरी घड़ी-कपड़े-कार आदि) उस पहचान के कारण **क्षणिकविज्ञानपक्षनिराकरणं कृतं** क्षणिक और विज्ञान पक्ष का खंडन किया **तथैव** उसी प्रकार से **प्रत्यभिज्ञाप्रतीतिभ्यां शून्यवादस्यापि निराकरणं भवति** वस्तुओं की प्रतीति के कारण से शून्यवाद का भी निराकरण हो जाएगा **इति विज्ञेयम्** उन्ही दो हेतुओं से शून्यवाद का खंडन हो गया यह जानना चाहिए।

अथ च -

अपुरुषार्थत्वमुभयथा ।।४७।।

सूत्रार्थ= दोनों ही प्रकार से मानने पर जीवात्मा का पुरुषार्थ व्यर्थ जाएगा ।

भाष्य विस्तार = शून्यवादे खलूभयथा स्यादपुरुषार्थत्वं तत्र स्वस्यात्मनः शून्यत्वाय-अभावाय को यतेत तथा शून्यरूपायं मोक्षायापि कथं शास्त्रोपदेशः स्यात्। सिद्धांती कह रहे हैं **शून्यवादे** अर्थात शून्यवाद में **खलु अभयथा स्यात अपुरुषार्थत्वं** दोनों ही तरह से पुरुषार्थ हीनता होगी। यदि शून्यवाद मान ले तो जो पुरुष का प्रयोजन (सब दुःखों से छूटना वह) सिद्ध होगा ही नहीं । क्योंकि शून्यवाद की मान्यता तो ''**सर्वशून्यम**'' वाली है। यदि शून्य को ही सत्य मान लिया जाए तो अंत में आत्मा को भी खत्म मानना पड़ेगा **तत्र** वहाँ **स्वस्यात्मनः** अपनी आत्मा को भी **शून्यत्वाय-अभावाय कोयतेत** शून्य मानना पड़ेगा, क्या हम स्वयं के अभाव के लिए प्रयत्न कर रहे हैं? हर कोई ये चाहता है कि '' दुःख हट जाए'', 'में स्वयं हट जाऊ ऐसा कोई नहीं चाहता', **तथा** और उस **शून्यरूपायं** शून्य स्वरूप **मोक्षायापि** मोक्ष को प्राप्त करने के लिए **कथं शास्त्रोपदेशः स्यात्** शास्त्र का उपदेश कैसे होगा। **तथा** और यदि **सर्वस्य** सब कुछ **क्षणिकत्वे** क्षणिक मान लिया जाए तो **बन्धोऽपि** बंधन भी **क्षणिको** क्षणिक है **मोक्षोऽपि** मोक्ष भी **क्षणिकः** क्षणिक है। **तथा क्षणिकस्य बन्धस्य निवृत्त्यर्थः कृतः पुरुषार्थोऽपुरुषार्थः स्यात** तब तो क्षणिक बंधन कि निवृत्ति के लिए किया गया पुरुषार्थ भी अपुरुषार्थ हो जाएगा **नहि पुरुषार्थक्षणे बन्धोऽवतिष्ठते** क्योंकि जब हम पुरुषार्थ करेंगे

योस्तुल्यनिराकरणहेतुत्वादयं शून्यवादपक्षोऽपि निराकृतोऽथायुक्तश्च विज्ञेयः। तत्र क्षणिकपक्षे विज्ञानपक्षे च यथा प्रत्यभिज्ञया बाह्यप्रतीत्या च क्षणिकविज्ञानपक्षनिराकरणं कृतं तथैव प्रत्यभिज्ञाप्रतीतिभ्यां शून्यवादस्यापि निराकरणं भवतीति विज्ञेयम् ।। ४६ ।।

अथ च -

अपुरुषार्थत्वमुभयथा ।। ४७ ।।

(उभयथा-अपुरुषार्थत्वम्) शून्यवादे खलूभयथा स्यादपुरुषार्थत्वं तत्र स्वस्यात्मनः शून्यत्वाय-अभावाय को यतेत तथा शून्यरूपायं मोक्षायापि कथं शास्त्रोपदेशः स्यात्। तथा सर्वस्य क्षणिकत्वे बन्धोऽपि क्षणिको मोक्षोऽपि क्षणिकस्तथा क्षणिकस्य बन्धस्य निवृत्त्यर्थः कृतः पुरुषार्थोऽपुरुषार्थः स्यान्नहि पुरुषार्थक्षणे

(इस पहले क्षण में बंधन है और हर वस्तु क्षणिक है, और हम बंधन से छुटना चाहते हैं उसके लिए पुरुषार्थ करेंगे अगले क्षण में पुरुषार्थ करने पर उसके अगले क्षण में बंधन तो स्वत: ही खत्म हो जाएगा? क्योंकि हर वस्तु एक क्षण तक रहने वाली है, तो बंधन ही खत्म हो जाएगा तो पुरुषार्थ क्यों करें? दूसरा तथ्य यह है कि मान लेते है बंधन से मुक्ति के लिए पुरुषार्थ करें अर्थात मोक्ष के लिए पुरुषार्थ करते हैं किन्तु वह भी तो एक क्षण का ही है, फिर पुरुषार्थ क्यों करें?) **मोक्षस्यापि क्षणिकत्वात् तदर्थः कृतः पुरुषार्थोऽपुरुषार्थो भवेत् क्षणान्तरेऽस्थिरत्वात्** ।। ४७ ।। फिर मोक्ष के भी क्षणिक होने से उसके लिया किया गया पुरुषार्थ व्यर्थ हो जाएगा, इसलिए क्षणिकवाद कि मान्यता ठीक नहीं है ।।

गतिनिमित्तो बन्धः स्यादिति पक्षमुत्थाप्य निराकरोति सूत्रद्वयेन - अगले दो सूत्रों से सूत्रकार ''गति के कारण से बंधन हो सकता है'', इस पक्ष को उठाते हैं और फिर उसका उत्तर भी देते हैं- (यहाँ दो सूत्रों से ''बंधन का कारण गति नहीं है'' इस को कहेंगे)

न गति विशेषात् ।। ४८ ।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा में कोई अवयवों में होने वाली गति हो, उस गति विशेष के कारण जीवात्मा का बंधन नहीं है। क्यों

निष्क्रियस्य तदसम्भवात् ।। ४९ ।।

सूत्रार्थ= उसमें ऐसी कोई क्रिया होती ही नहीं है, तो वह बंधन का कारण भी नहीं हो सकती ।

भाष्य विस्तार = **एतयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति** - **एतयोः** इन दोनों **सूत्रयो** सूत्रों में **एक वाक्यता** परस्पर संबंध **अस्ति** है

भाष्य विस्तार = **गतिविशेषादात्मनो बन्धः स्यात्,** यदि आत्मा का बंधन गति विशेष के कारण मान लिया जाए, जैसे कि बताते हैं **अधमगत्या लोके बन्धमाप्नोति जन इत्यपि न**। अधम गति से मनुष्य संसार में बंधन को प्राप्त होता है, ये बात भी ठीक नहीं है। (ये जो व्याख्या स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने कि है वह ठीक नहीं है) **यतः** क्योंकि **निष्क्रियस्य आत्मनो गति असंभवात** आत्मा निष्क्रिय है और उसमें ये गति असंभव है । (ये बात ब्रह्ममुनि जी की शास्त्रों के अनुकूल नहीं है)

बन्धोऽवतिष्ठते मोक्षस्यापि क्षणिकत्वात् तदर्थः कृतः पुरुषार्थोऽपुरुषार्थो भवेत् क्षणान्तरेऽस्थिरत्वात् ।। ४७।।

गतिनिमित्तो बन्धः स्यादिति पक्षमुत्थाप्य निराकरोति सूत्रद्वयेन -

न गति विशेषात् ।।४८।।

निष्क्रियस्य तदसम्भवात् ।।४९।।

एतयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -

(गतिविशेषात्-न) गतिविशेषादात्मनो बन्धः स्यात्, अधमगत्या लोके बन्धमाप्नोति जन इत्यपि

अब इसकी सही व्याख्या क्या है? वह इस प्रकार से है- यहाँ पर गति का अर्थ ऊंची नीची योनि का प्राप्त होना मत करो ।यहाँ गति का अर्थ करेंगे- ''अवयवों में होने वाली गति'''जैसे सावयव (सेव केले आदि पदार्थों मे) द्रव्यों में संघात पदार्थों में गति होती है, ऐसी गति से जीवात्मा का बंधन नहीं हुआ ।क्यों नहीं हुआ ? आत्मा ऐसी गति से निष्क्रिय होने से, क्योंकि उसमें को अवयव है ही नहीं। तो फिर उस गति को बंधन का कारण मानना भी ठीक नहीं' ।ये अर्थ करना ठीक बैठेगा ।

पुनश्च -

मूर्तत्वाद् घटादिवत्समानधर्मापत्तावपसिद्धान्तः ।।५०।।

सूत्रार्थ= घड़े आदि के समान मूर्त=संघात होने से आत्मा में घड़े आदि के समान रूप आदि धर्म प्राप्त होते हैं, जो कि अपसिद्धांत=अनुचित सिद्धान्त है। (अतः घट आदि में गति=परिणाम के समान आत्मा में ऐसा परिणाम=गति नहीं होती है) इसलिए आत्मा का गति के कारण बंधन नहीं होता ।

भाष्य विस्तार = **गतेः सम्भवः खलु वस्तुनो मूर्तत्वाद् घटादिवत्, गतेः** गति का जो **संभवः** संभव है सड़ना-गलना, बढ़ना -घटना **खलु** ये तो **वस्तुनों** वस्तुओं के **मूर्तत्वाद** मूर्त होने में है **घटदिवत** जैसे घड़े आदि पदार्थ। तो वस्तु के मूर्त होने से उसमें परिवर्तन संभव है। **यथा घटादौ गतिरुपलभ्यते तस्य मूर्तत्वात्। यथा** जैसे **घटादि** घड़े आदि में **गतिः उप्लभयते** गति उपलब्ध होती है **तस्य** उसके **मूर्तत्वात** मूर्त होने से, ठोस होने से, परमाणु रूप होने से **आत्मनि गतिस्वीकारे घटादिसमानधर्माणां कठोरत्वघनत्वखण्डवत्वरूपादिमत्त्वानामापत्तिर्भवेत् तदा चापसिद्धान्तः प्रसज्यते,** यदि आत्मा में भी गति मान लें जैसे घड़े आदि में होती है **आत्मनि** आत्मा में **गतिस्वीकारे** गति स्वीकार कर लेने पर **घटादिसमानधर्म** जैसे घड़े आदि का धर्म होता है **कठोरत्व** कठोर होना, **घनत्व** स्थान घेरने वाला घना हो जाना, **खंड्वत्व** उसमें भी अनेक टुकड़े टुकड़े मानने पड़ेंगे **रूपादिमात्वानाम** घड़े के समान आत्मा में भी रूप आदि मानने पड़ेंगे , तो इस प्रकार से बहुत सारे घट के समान धर्म आत्मा में मनाने पड़ेंगे **तदा** तब तो **च अपसिद्धांत** स्वयं अपनी बात का खंडन करने का दोष आएगा। (न्यायदर्शन की भाषा में 'अपसिद्धांत' निग्रह स्थान का नाम है) **तस्मादात्मनि न गतिसम्भवोऽतो न गतिविशेषात् तस्य बन्धः कल्पनीयः** ।।५

न। यतः (निष्क्रियस्य तदसम्भवात्) निष्क्रियस्यात्मनो गत्यसम्भवात् ।। ४८- ४९।।

पुनश्च -

मूर्तत्वाद् घटादिवत्समानधर्मापत्तावपसिद्धान्तः ।।५०।।

(मूर्तत्वात्-घटादिवत्) गतेः सम्भवः खलु वस्तुनो मूर्तत्वाद् घटादिवत्, यथा घटादौ गतिरुपलभ्यते तस्य मूर्तत्वात् (समानधर्मापत्तौअपसिद्धान्तः) आत्मनि गतिस्वीकारे घटादिसमानधर्माणां कठोरत्वघनत्वखण्डवत्वरूपादिमत्त्वानामापत्तिर्भवेत् तदा चापसिद्धान्तः प्रसज्यते, तस्मादात्मनि न गतिसम्भवोऽतो न गतिविशेषात् तस्य बन्धः कल्पनीयः ।।५०।।

अथ च -

गतिश्रुतिरप्युपाधियोगादाकाशवत् ।।५१ ।।

०।। **तस्मात** इसलिए **आत्मनि** आत्मा में **न गति संभवो** गति होना संभव नहीं है, **अतो** इसलिए **गतिविशेषात** गति विशेष के कारण **तस्य** उसका **बन्धः** बंधन **कल्पनीयः न** कल्पित नहीं करना चाहिए । ।।५०।।

अथ च -

गतिश्रुतिरप्युपाधियोगादाकाशवत् ।।५१।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा में कहीं गति श्रुति होती भी हो वह उपाधि के योग से है अर्थात सूक्ष्म शरीर के संबंध से कही गयी है, आकाश के समान।

न कर्मणाऽप्यतद्धर्मत्वात् ।।५२।।

सूत्रार्थ= कर्म से भी उसका संबंध नहीं होता। उसके अपने धर्म नहीं होने से। अर्थात अहंकार आदि के धर्म होने से। इसलिए यह भी बंधन का कारण नहीं है ।

अतिप्रसक्तिरन्यधर्मत्वे ।।५३।।

सूत्रार्थ= अन्य के धर्म से अन्य का बंधन माने तो अन्याय अव्यवस्था का दोष आएगा ।

निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति ।।५४।।

सूत्रार्थ= यदि शरीर इंद्रियों के धर्म से जीवात्मा का बंधन माने तो निर्गुण आदि श्रुति से भी विरोध आता है।

एषां सूत्रणामेकवाक्यताऽस्ति - इन सूत्रों में एक वाक्यता है इसलिए एक साथ इनकी व्याख्या करते हैं-

भाष्य विस्तार = ***(गतिश्रुतिः)*** **या खलु तद्विषयेऽधमा गतिश्रुतिरस्ति** 'ये सिद्धान्त अर्थात वाक्य गलत है फिर भी इसका अनुवाद कर देते हैं- वो जो आत्मा के विषम में अधम गति बताई गई है शास्त्र में जैसे कि ''**असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः। तांस्ते प्रेत्यापिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।**'' **(यजु ० ४०.३)** ''**असुर्या नाम ते लोका** जो लोग असुर कहलाते हैं (स्वार्थी, राक्षस, बेकार, भ्रनित कर्म करने वाले) और **अन्धेन तमसाऽऽवृताः** खूब गहरे अज्ञान से अंधकार अविद्या से ढंके हुए **ये के चात्महनो**

न कर्मणाऽप्यतद्धर्मत्वात् ।।५२।।

अतिप्रसक्तिरन्यधर्मत्वे ।।५३।।

निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति ।।५४।।

एषां सूत्रणामेकवाक्यताऽस्ति -

(गतिश्रुतिः) या खलु तद्विषयेऽधमा गतिश्रुतिरस्ति "असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः। तांस्ते प्रेत्यापिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।" (यजु० ४०.३) "पापेन पापं लोकं नयति" (प्रश्नो

जनाः और जो कोई संसार में आत्म हनन करने वाले लोग हैं, यहाँ आत्मा का अर्थ है= ईश्वर। ईश्वर का हनन करने वाले (आत्मा ही नहीं मारता फिर ईश्वर कैसे मरेगा, तो यहाँ मारने का अर्थ है "ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध आचरण करने वाले") जो ईश्वर का विरोध है, (ईश्वर अंदर से सूचना कर रहा है भय, शंका, लज्जा के माध्यम से पर मनुष्य सुनता ही नहीं) **तांस्ते प्रेत्यापिगच्छन्ति** वे लोग मरने के पश्चात उन दु:ख युक्त योनियों में जाएंगे जहां भयंकर अज्ञान और दु:ख भोगना पड़ता है ।'हमको इस मंत्र से ये सीख मिलती है कि हम आत्मा का हनन करने वाले नहीं बनें'। "**पापेन पापं लोकं नयति**" **(प्रश्नो ०२.७)** प्रश्नोपनिषद में प्राण के संदर्भ में चर्चा चल रही थी इस प्रसंग के अनुसार "पाप कर्म के द्वारा पाप लोक में जाना पड़ता है"। पिछले सूत्र में अर्थ परिवर्तन किया था उसी के अनुसार यहाँ अर्थ करेंगे कि 'जीवात्मा में अवयव तो है नहीं उसके न होने से उसमें गति भी नहीं जो अवयवों में होती है' तो फिर यहाँ गति श्रुति कैसे हुई? आत्मा के संदर्भ में **सा** वह ***(उपाधियोगात्-आकाशवत्)*** **उपाधिरुपाधानमाश्रयः संसर्गस्तद्योगात्तत्सम्बन्धाद् भवति किलाकाशवत्,** तो उपाधिरुपाधानमाश्रयः आत्मा में जो गति है वह शरीर के कारण से है **संसर्गस्तद्योगात्तत्सम्बन्धाद्** जो संसर्ग वाली वस्तु है उसके संबंध से गति होती है, **किलाकाशवत्** कैसे होती है? आकाश का दृष्टांत दिया **यथाऽकाशो मलिनः**। जैसे कहा कि यहाँ आकाश मलिन है, मैला है, धुंधला है, साफ नहीं है। **नह्याकाशो मूर्तोऽस्ति तत्र मलिनत्वमुपाधियोगादेव भवति** वैसे **नह्याकाशो मूर्तोऽस्ति** आकाश कोई मूर्त ठोस पदार्थ नहीं है, आकाश का कुछ बिगड़ता नहीं है **तत्र** वहाँ **मलिनत्वमुपाधियोगादेव** आकाश में जो मैलापन है वह उपाधियोग से मट्टी आदि के संयोग से होता है वास्तव में मूल आकाश में कुछ नहीं बिगड़ता पर धूल मिट्टी के संयोग से हमने उसे धूल धूसरित कह दिया, मलिन कह दिया, **तथैवात्मन्यपि गतिश्रुतिरुपाधियोगात् तथैव** उसी प्रकार से **आत्मनि अपि** आत्मा में भी जो **गतिश्रुति** गतिश्रुति का कथन है **उपाधियोगत** वह भी उपाधि के संयोग से मानना चाहिए। **उपाधानयोगादाश्रययोगात् सूक्ष्मशरीरयोगात्, स्वरूपतो न**। आत्मा में जो गति श्रुति होगी वह सूक्ष्म शरीर के संयोग से कही जाएगी, स्वरूप से नहीं।

पुनश्च सा विशेषगतिः पापकर्महेतुत्वात् इतने अंश को छोड़ देते हैं यह प्रसंग विरोध है।

(कर्मणा-अपि न) **कृतेन कर्मणाऽऽत्मनि सम्भवतीत्यपि न वक्तुं शक्यते,** किए गए कर्म के कारण आत्मा में गति हो जाती हो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता (१ ६सूत्र में जो अर्थ लिया था उसी आधार पर यहाँ लेंगे) शरीर आदि इंद्रियों के माध्यम से जो कर्म किए गए वो बंधन के पश्चात किए गए तो ये भी बंधन का कारण नहीं हो सकते क्योंकि कारण तो पहले होना चाहिए। ***(अतद्धर्मत्वात्)*** **कर्म हि खलु नात्मधर्मः किन्त्वह १ करादिधर्मः कर्म, यदा कर्म हि खलु नात्मधर्मः पुनस्तन्निष्पन्ना गतिः कुतः स्यादात्मनो**

० २. ७) सा (उपाधियोगात्-आकाशवत्) उपाधिरुपाधानमाश्रयः संसर्गस्तद्योगात्तत्सम्बन्धाद् भवति किलाकाशवत्, यथाऽकाशो मलिनः। नह्याकाशो मूर्तोऽस्ति तत्र मलिनत्वमुपाधियोगादेव भवति तथैवात्मन्यपि गतिश्रुतिरुपाधियोगात्-उपाधानयोगादाश्रययोगात् सूक्ष्मशरीरयोगात्, स्वरूपतो न।

पुनश्च सा विशेषगतिः पापकर्महेतुत्वात् (कर्मणा-अपि न) कृतेन कर्मणाऽऽत्मनि सम्भवतीत्यपि न वक्तुं शक्यते, यतः (अतद्धर्मत्वात्) कर्म हि खलु नात्मधर्मः किन्त्वह १ करादिधर्मः कर्म, यदा कर्म हि खलु नात्मधर्मः पुनस्तन्निष्पन्ना गतिः कुतः स्यादात्मनो बन्धकारणं कर्म हि न बन्धकारणं भवतीति पूर्वोक्तत्वात्, अन्यस्य धर्मेण बन्धयोगे (अतिप्रसक्तिः-अन्यधर्मत्वे) भवेदतिप्रस ङ्गोऽन्यस्य धर्मेण बन्धयोगे पुनश्च (निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति) "अस ङ्गो ह्ययं पुरुषः" (बृह ० ४. २. १ ५) इति निर्गुणत्वादिप्रतिपादिकायाः श्रुतेर्विरोधो भवति तस्माद् गतियोगादपि बन्धो न ।।५ १ - ५ ४।।

बन्धकारणं कर्म हि न बन्धकारणं भवतीति पूर्वोक्तत्वात्, अन्यस्य धर्मेण बन्धयोगे ये भी ठीक नहीं इसलिए इसको भी छोड़ देते हैं

(अतिप्रसक्तिः-अन्यधर्मत्वे) **भवेदतिप्रस ङ्गोऽन्यस्य धर्मेण बन्धयोगे पुनश्च** अन्य के धर्म से अन्य का बंधन मानें तो अतिप्रसक्ति का दोष आएगा (करे कोई भरे कोई)

(निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति) **"असंगो ह्ययं पुरुषः" (बृह ०४.२.१५) इति निर्गुणत्वादिप्रतिपादिकायाः श्रुतेर्विरोधो भवति तस्माद् गतियोगादपि बन्धो न ।।५१ - ५४।।** इस व्याख्या को भी छोड़ देते हैं ।

अन्ततश्च - अब अंत में बंधन का वास्तविक कारण बताते हैं-

तद्योगोऽप्यविवेकान्नसमानत्वम्* ।।५५।।

सूत्रार्थ= प्रकृति और पुरुष का योग=संबंध अविवेक=मिथ्याज्ञान से होता है, इसके तुल्य और कोई निश्चित कारण नहीं है।

भाष्य विस्तार = ***(तद्योगः)*** **स एकोनविंशश्चतितमसूत्रप्रदर्शितः प्रकृतिपुरुषयोगः** सूत्र में जो तद्योग शब्द है ये उसका अर्थ है - उन्नीसवे सूत्र में जो दिखलाया था प्रकृति पुरुष योग (प्रकृति और पुरुष का जो संबंध है, बंधन है) बंधन है ***(अपिअविवेकात्)*** **अपि सम्भावनायाम्,** यहाँ जो **अपि** शब्द है वह संभावना अर्थ में है। संभावना का अर्थ **सम्यक भावनम** शत प्रतिशत से है। **अविवेकात्- अयथार्थज्ञानान्मिथ्याज्ञानात् स्वात्मनस्तथा प्रकृतेश्चास्वरूपज्ञानाद् भवति,** प्रकृति और पुरुष का जो बंधन है वह निश्चित रूप से अविवेक से है । उसका अंतिम निश्चित कारण है अविवेक। अविवेक का अर्थ = अयथार्थज्ञान। मिथ्या ज्ञान है। किसके संदर्भ में? आत्मा और प्रकृति के संबंध मे। **तद्योगः प्रकृतिपुरुषयोगस्तत्पृथक्-पृथक्स्वरूपाज्ञानसम्भवः।** प्रकृति और पुरुष का जो योग है बंधन है वह प्रकृति-पुरुष के स्वरूप के अलग-अलग स्वरूप के ज्ञान न होने से है। ***(न समानत्वम्)*** **तस्मात् बन्धकारणविचारे पूर्वोक्तकालादिकेन तथा तद्योगे प्रकृतिपुरुषयोगविमर्शे च भिन्नभिन्नहेतुववादेन सहास्य**

अन्ततश्च -

तद्योगोऽप्यविवेकान्नसमानत्वम्* ।।५५।।

(तद्योगः) स एकोनविंशतितमसूत्रप्रदर्शितः प्रकृतिपुरुषयोगः (अपिअविवेकात्) अपि सम्भावनायाम्, अविवेकात्-अयथार्थज्ञानान्मिथ्याज्ञानात् स्वात्मनस्तथा प्रकृतेश्चास्वरूपज्ञानाद् भवति, तद्योगः प्रकृतिपुरुषयोगस्तत्पृथक-पृथक्स्वरूपाज्ञानसम्भवः।(न समानत्वम्) तस्मात् बन्धकारणविचारे पूर्वोक्तकालादिकेन तथा तद्योगे प्रकृतिपुरुषयोगविमर्शे च भिन्नभिन्नहेतुववादेन सहास्य विवेकहेतुप्रदर्शनस्य न समानत्वं दोषसमानत्वं यतो यस्याविवेकस्तस्य बन्धनिमित्तभूतो योगस्तद्योगः प्रकृतिपुरुषयोगः प्राप्तविवेकस्य

अविवेकहेतुप्रदर्शनस्य न समानत्वं दोषसमानत्वं आगे कह रहे हैं **तस्मात् बन्धकारणविचारे** इसलिए प्रारम्भ से अब तक बंधन के जितने भी कारणों पर विचार किया **पूर्वोक्तकालादिकेन** जो पहले के सूत्र में काल आदि के विषय में था कि 'क्या काल इस जीवात्मा के बंधन का कारण है?' तथा और **प्रकृतिपुरुषयोगविमर्शे** प्रकृति और पुरुष का जो बंधन है इस सबके चिंतन विमर्श में च और जो **भिन्नभिन्नहेतुववादेन** सह तरह तरह के पक्ष उठाए थे शून्यवाद, विज्ञानवाद आदि-आदि इन सब कारणों के साथ ही अस्य इसके **अविवेकहेतुप्रदर्शनस्य** अविद्या वाले हेतु का **न समानत्वं** इसकी उन हेतुओं के साथ समानता नहीं है **दोषसमानत्वं** अर्थात जितना बड़ा दोष इस हेतु में बताया गया, उतना बड़ा दोष उन हेतुओं में नहीं है सबसे बड़ा दोष इस हेतु में बताया गया। जो बंधन का मुख्य कारण है, वो है अविवेक। **यतो यस्याविवेकस्तस्य बन्धनिमित्तभूतो योगस्तद्योगः प्रकृतिपुरुषयोगः प्राप्तविवेकस्य तद्योगो नात एव बन्धाभावे मुक्तो भवति सः**। आगे कहते हैं - **यतो** क्योंकि **यस्य** जिस-जिस आत्मा का **अविवेकस्य** अविवेक बचा हुआ है **तस्यबन्धनिमित्तभूतयोगः** उस उसका बंधन हो जाएगा बंधन के कारण से उसका बंधन हो जाएगा **तद्योग प्रकृतिपुरुषयोगः** उससे प्रकृति से पुरुष का बन्धन हो जाएगा। **प्राप्तविवेकस्य तद्योगो न** जिसको विवेक प्राप्त हो गया है उसका बंधन नहीं होगा ''जिसके होने से जो हो और जिसके न होने से जो न हो, उसको कारण कहते हैं '' **अत एव बन्ध अभावे मुक्तों भवति सः** इसलिए जिसको विवेक प्राप्त हो गया, वह पुरुष मुक्त हो जाएगा। क्योंकि बंधन का कारण रहा ही नहीं, इस प्रकार से बंधन छूट जाने पर वह मुक्त हो जाएगा। **प्राप्तविवेकं न कालादिर्बध्नीयात्** जिसको विवेक प्राप्त हो गया उसको काल आदि कोई भी वस्तु नहीं बांध सकती(भले ही काल सर्व व्यापक और नित्य क्यों न हो) **तथा न क्षणिकवादविज्ञानशून्यवादवदव्यवस्थां गच्छेत्**। और न वह क्षणिकवाद, शून्यवाद तथा विज्ञानवाद के जैसी अव्यवस्था को प्राप्त हो जाएगा। **अत्रत्यस्य 'तद्योगः' शब्दस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ धर्माधर्मयोगः कृतोऽन्यथार्थो** अब टीका टिप्पणी आरंभ होती है- **अत्रत्यस्य** ब्रह्ममुनि जी कह रहे हैं इस सूत्र में जो **'तद्योगः'** शब्द है, **शब्दस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ** इस शब्द का जो अर्थ किया गया अनिरुद्धवृत्ती में वह **धर्माधर्मयोगः** किया गया वह अन्यथा अर्थ था। **यतःस एव प्रकृतः पूर्वतस्तद्योगः प्रकृतिपुरुषयोगोऽत्रापि बन्धकारणनिर्णयसमाप्तये पुनरुक्तः।** क्योंकि जो वहाँ तद्योग शब्द आया था १९ वे सूत्र में उसी श्रृंखला में उसी प्रसंग में अर्थ यहाँ पर भी होना चाहिए था, इन्होंने वह अर्थ नहीं किया ।इसलिए यहाँ भी प्रकृति पुरुष का योग वही अर्थ होना चाहिए बंध कारण के निर्णय की समाप्ती के प्रसंग में फिर से उस शब्द की आवृत्ति की गई। **विज्ञानभिक्षुभाष्ये तु**

तद्योगो नात एव बन्धाभावे मुक्तो भवति सः। प्राप्तविवेकं न कालादिर्बध्नीयात् तथा न क्षणिकवादविज्ञानशून्यवादवदव्यवस्थां गच्छेत् ।अत्रत्यस्य 'तद्योगः' शब्दस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ धर्माधर्मयोगः कृतोऽन्यथार्थो यतःस एव प्रकृतः पूर्वतस्तद्योगः प्रकृतिपुरुषयोगोऽत्रापि बन्धकारणनिर्णयसमाप्तये पुनरुक्तः। विज्ञानभिक्षुभाष्ये तु तद्योगस्यार्थोऽस्मद्वत् प्रकृतिपुरुषसंयोगोऽत्र सूत्रे कृतः परन्तु तत्रैकोनाविंशे सूत्रे नेत्थमर्थो विहितस्तत्र तद्योगादृते प्रकृतिसंयोगंविना खलूक्तस्तत्रपूर्वत्रापि प्रकृतिपुरुषयोगोऽर्थो विधातव्यं आसीत् ।। ५५।।

अथं तर्हि तदुच्छित्तिरित्यत्रोच्यते -

तद्योगस्यार्थोऽस्मद्वत् प्रकृतिपुरुषसंयोगोऽत्र सूत्रे कृतः विज्ञान भिक्षु भाष्य में तो तद्योग शब्द का अर्थ हमारे तरह से प्रकृति पुरुष संयोग किया गया है **परन्तु तत्रैकोनाविंशे सूत्रे नेत्थमर्थो विहितः** परंतु विज्ञान भिक्षु ने जैसा अर्थ १९ वे सूत्र में किया वैसा यहाँ नहीं किया **तत्र तद्योगादृते प्रकृतिसंयोगंविना खलूक्तस्तत्रपूर्वत्रापि प्रकृतिपुरुषयोगोऽर्थो विधातव्यं आसीत्** वहाँ पर तद्योगादृते का अर्थ किया प्रकृति के संयोग के बिना तो वहाँ १९ वे सूत्र में भी यही अर्थ कारण चाहिए था 'प्रकृति पुरुष का योग' जैसा अर्थ यहाँ किया वैसा ही वहाँ भी करना चाहिए था जिससे संगति ठीक बैठती।।५५।।

कथं तर्हि तदुच्छित्तिरित्यत्रोच्यते - उस अविवेक का नाश कैसे होगा? इस विषय में अव कहा जाता है-

नियतकारणात्तदुच्छित्तिर्ध्वान्तवत् ।।५६।।

सूत्रार्थ= जैसे अंधकार का विनाश उसके विरोधी कारण प्रकाश से होता है, वैसे ही अविवेक का नाश उसके विरोधी कारण विवेक से होगा।

भाष्य विस्तार = (*त्तदुच्छित्तिःनियतकारणात्*)**तस्याविवेकस्य नाशः खलु भवति नियतकारणात् तत्प्रतिद्वन्द्वित्वं भजमानाद् विवेकाद् यस्मिन् ह्यसति तत्प्रवृत्तिर्भवति सति च निवर्तते।** भाष्यकार कहते हैं **तस्य अविवेकस्य नाशः** उस अविवेक का जो नाश है **खलु भवति नियतकारणात्** एक निश्चत कारण से ही उसका नाश होगा, और वह निश्चित कारण क्या है? **तत्प्रतिद्वन्द्वित्वं** जो उसका प्रतिद्वंदी है **भजमानाद्** शब्द का अर्थ है **सेवमानाद** जो उसका विरोधी है विवेक **विवेकाद्** उस विवेक से इस अविवेक का नाश होता है **यस्मिन् ह्यसति** जिस विवेक के न होने पर **तत्प्रवृत्तिर्भवति** अविवेक की प्रवृत्ति होती है **सति च निवर्तते**। यदि विवेक हो जावे तो अविवेक नष्ट हो जाता है। **कथमिव**। किसके समान **उच्यते** दृष्टांत देकर कहते हैं- **(ध्वान्तवत्) यथा हि ध्वान्तस्यान्धकारस्य नाशो भवति तत्प्रतिद्वन्द्विभूतात् प्रकाशात्** ध्वांत का अर्थ है अंधकार **यथा हि** जैसे **ध्वान्तस्यान्धकारस्य नाशो भवति** अंधकार का नाश होता है **तत्प्रतिद्वन्द्विभूतात् प्रकाशात्** उसके प्रतिद्वंदी प्रकाश से (जो प्रकाश है वह अंधकार का विरोधी है, और अपने विरोधी प्रकाश से अंधकार का नाश होता है) **प्रकाशो ह्यन्धकारस्य प्रतिद्वन्द्वित्वादन्धकारस्य नाशाय नियतकारणं** जैसे प्रकाश अंधकार के लिए उसका प्रतिद्वंदी होने से अंधकार के नाश का निश्चित कारण है **तथैवाविवेकस्य नाशाय विवेको नियतं कारणं तत्प्रतिद्वन्ध्वित्वात्।।५६।।** उसी प्रकार से अविवेक का नाश करने के लिए जो निश्चित कारण है अविवेक का प्रतिद्वंदी है वह विवेक (विवेक= तत्वज्ञान, शुद्धज्ञान, यथार्थज्ञान, प्रकृति पुरुष

नियतकारणात्तदुच्छित्तिर्ध्वान्तवत् ।।५६।।

(त्तदुच्छित्तिःनियतकारणात्) तस्याविवेकस्य नाशः खलु भवति नियतकारणात् तत्प्रतिद्वन्द्वित्वं भजमानाद् विवेकाद् यस्मिन् ह्यसति तत्प्रवृत्तिर्भवति सति च निवर्तते ।कथमिव। उच्यते (ध्वान्तवत्) यथा हि ध्वान्तस्यान्धकारस्य नाशो भवति तत्प्रतिद्वन्द्विभूतात् प्रकाशात् प्रकाशो ह्यन्धकारस्य प्रतिद्वन्द्वित्वादन्धकारस्य नाशाय नियतकारणं तथैवाविवेकस्य नाशाय विवेको नियतं कारणं तत्प्रतिद्वन्ध्वित्वात् ।।५६।।

ननु प्रकृतिपुरुषयोगोऽविवेकात् तद्विषयकाविवेकोच्छेदो भवतु विवेकात् किन्तु प्रकृतिपुरुषाभ्यामतिरिक्तानां महदादीनां शरीरान्तर्भूतानां बुद्ध्यादीनां विषये त्वविवेकोऽवस्थास्यते हि पुनः

का ज्ञान) है ।

ननु एक प्रश्न है **प्रकृतिपुरुषयोगोऽविवेकात् तद्विषयकाविवेकोच्छेदो भवतु विवेकात्** प्रकृति और पुरुष का जो योग है ये अविवेक से हुआ इतना हमें समझ में आ गया। और प्रकृति पुरुष के संबंध में जो अविवेक है उसका नाश होगा विवेक से। **किन्तु प्रकृतिपुरुषाभ्यामतिरिक्तानां महदादीनां शरीरान्तर्भूतानां बुद्ध्यादीनां विषये त्वविवेकोऽवस्थास्यते हि पुनः सोऽनिष्टं कुर्यात्,** किन्तु प्रकृति और पुरुष के अतिरिक्त भी तो अनेक पदार्थ हैं जो महतत्व आदि हैं जो शरीर के अंदर रहते हैं बुद्धि आदि पदार्थों के सूक्ष्म विषय हैं उनके विषय में तो अविवेक रहेगा ही फिर वह बीच में अनिष्ट करेगा फिर संसार में बाँधेगा तब मुक्ति कैसे होगी ? उनके प्रति उनके संबंध में भी तो बहुत प्रकार का अविवेक है **अत्रोच्यते** - इसके उत्तर में कहते हैं-

प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्य तद्धाने हानम् ।।५७।।

सूत्रार्थ= मुख्य वस्तु जीव और प्रकृति के संबंध में अविवेक होने से गौड़ पदार्थों के संबंध में भी अविवेक हो जाता है। और मुख्य पदार्थों के संबंध में अविवेक हट जाने पर गौड़ पदार्थों के संबंध में भी अविवेक हट जाता है।

भाष्य विस्तार = ***(प्रधानविवेकात्)*** **प्रधानस्य मुख्यस्य पदार्थस्य प्रकृतेः पुरुषस्य चाविवेकात् खलु** यहाँ सूत्र में जो प्रधान शब्द है उसका एक अर्थ है मुख्य पदार्थ और अप्रधान का गौण। तथा सांख्यदर्शन में प्रधान का अर्थ प्रकृति भी है। तो उत्तर में कहते हैं सिद्धांती- **प्रधानस्य** अर्थात **मुख्यस्य पदार्थस्य** जो मुख्य पदार्थ हैं **प्रकृतेः पुरुषस्य च** मूल प्रकृति और पुरुष के संबंध में जो **अविवेकात** अविवेक होता है तो उससे ***(अन्याविवेकस्य)*** **अन्यविषयकाविवेकस्य गौणविषयकाविवेकस्य सम्भवः** यदि मुख्य पदार्थों में अविवेक है तो गौण पदार्थों में अविवेक हो जाएगा क्योंकि गौण पदार्थ मुख्य पदार्थ में से ही बने हैं ***(तद्धाने हानम्)*** **तस्य प्रधानस्य मुख्यस्याविवेकहाने गौणविषयकाविवेकस्य हानं नाशो भवति ।।५७।।** यदि मुख्य प्रधान पदार्थ के संबंध में जो अविवेक है यदि वह नष्ट हो जाए तो उसके नष्ट होने पर गौण विषयों के संबंध में जो अविवेक है वह भी नष्ट हो जाएगा।।

असोऽयं पुरुष उच्यते पुनः कथमसंगे पुरुषेऽविवेकप्रसंगः पूर्वपक्षी ने प्रश्न उठाया कि 'पुरुष

सोऽनिष्टं कुर्यात्, अत्रोच्यते -

प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्य तद्धाने हानम् ।।५७।।

(प्रधानविवेकात्) प्रधानस्य मुख्यस्य पदार्थस्य प्रकृतेः पुरुषस्य चाविवेकात् खलु (अन्याविवेकस्य) अन्यविषयकाविवेकस्य गौणविषयकाविवेकस्य सम्भवः (तद्धाने हानम्) तस्य प्रधानस्य मुख्यस्याविवेकहाने गौणविषयकाविवेकस्य हानं नाशो भवति ।।५७।।

असंगोऽयं पुरुष उच्यते पुनः कथमस्मिन् पुरुषेऽविवेकप्रसंगः, इत्याकांक्षाया-मुच्यते -

वाङ्मात्रं न तु तत्त्वं चित्तस्थितेः ।।५८।।

(वाङ्मात्रं तु न तत्त्वम्) पुरुषेऽविवेकप्रतिपादनं कथनमात्रमुपचर्यमाणं तु भवति हि न तत्त्वं न तात्त्विकम् (चित्तस्थितेः) चित्तशब्दोऽन्तःकरणार्थः। तस्याविवेकस्य चित्तेऽन्तःकरणेऽवस्थानात्।

असंग है' ऐसा आपने कहा था । फिर पुरुष के असंग रहने से उसमें अविवेक कैसे घुस जाएगा?, **इत्याकांक्षायामुच्यते**- ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर ये उत्तर दिया जाता है-

सूत्र की भूमिका= अगर एक व्यक्ति को अविवेक हो गया वह उसको दूर करना चाहता है तो उसने विवेक प्राप्ति के लिए शास्त्रों का अध्ययन किया, शाब्दिक रूप से बहुत सी विवेक को जागृत करने वाली बातों को सुना पढ़ा। फिर सुनने के बाद भी उसका अविवेक दूर न हुआ। फिर अविवेक दूर क्यों न हुआ? आप तो कह रहे थे विवेक से अविवेक दूर हो जाता है- इस पर कहते हैं

वाङ्मात्रं न तु तत्त्वं चित्तस्थितेः ।।५८।।

सूत्रार्थ= अभी तो उसको वाणी मात्र से ज्ञान हुआ है, तत्वज्ञान नहीं हुआ है। अभी तो बहुत सारा अविवेक उसके चित्त में स्थिर है ।

भाष्य विस्तार = इस सूत्र का भाष्य स्वामी ब्रह्ममुनि जी ने ठीक नहीं किया- ***(वाङ्मात्रं तु न तत्त्वम्)*****पुरुषेऽविवेकप्रतिपादनं कथनमात्रमुपचर्यमाणं तु भवति हि न तत्त्वं न तात्त्विकम्** स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं पुरुष में जो अविवेक है यह तो कथन मात्र है यह तो कहने की बात है यह सत्य नहीं। वास्तव में उसमें अविद्या घुसती नहीं। ***(चित्तस्थितेः)*****चित्तशब्दोऽन्तःकरणार्थः** यहाँ चित्त शब्द का अर्थ अंतःकरण है। **तस्याविवेकस्य चित्तेऽन्तःकरणेऽवस्थानात्।** उसका अविवेक चित्त में अर्थात अंतःकरण में स्थित रहता है, आत्मा में नहीं। **अन्तःकरणद्वारकमनुभवत्यविवेकं पुरुषः ।।५८।।** पुरुष=जीवात्मा अन्तःकरण के द्वारा अविवेक का अनुभव करता है।

स्वामी ब्रह्ममुनि जी के भाष्य पर स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक की टिप्पड़ी- इनकी मान्यता के अनुसार पुरुष में अविवेक होता नहीं, यदि पुरुष में अविवेक नहीं होता तो वह बंधन में कैसे आता है, ''चित्त में अविवेक का रहना'' ये कथन भी गलत है। क्योंकि अविवेक तो सत्तात्मक है, ज्ञान के अभाव का नाम अविवेक है नहीं उसका अर्थ है=मिथ्याज्ञन। मिथ्याज्ञान ज्ञान का एक प्रकार है जैसे संशय, भ्रांति आदि । ज्ञानगुण चेतन में होता है जड़ में नहीं। जबकि चित्त जड़ होता है उसमें ज्ञान कैसे संभव है? इसलिए

अन्तःकरणद्वारकमनुभवत्यविवेकं पुरुषः ॥५८॥

तर्हि स एतादृशोऽविवेकस्तु श्रवणेनैव निवर्तिष्यते किं विवेकदर्शनाभ्यासेन महताऽध्यात्मप्रयासेन। अत्रोच्यते -

युक्तितोऽपि न बाध्यते दिङ्मूढवदपरोक्षादृते ॥५९॥

(युक्तितः-अपि न बाध्यते) किं श्रवणेन स्यात्, श्रवणमात्रस्य तु का कथा स तु युक्तितोऽर्थान्मननादपि न निवर्त्यते (दिङ्मूढवत् अपरोक्षात्-ऋते) दिशोविषये मूढो दिङ्मूढस्तस्य दिशामोहवतो दिग्भ्रमवतो मनुष्यस्येव यथा तस्य दिग्भ्रमो साक्षात् सूर्योदयदर्शनेन विना न निवर्तते तद्वत् सोऽविवेकोऽपि

इनकी व्याख्या ठीक नहीं है।

तर्हि स एतादृशोऽविवेकस्तु श्रवणेनैव निवर्तिष्यते किं विवेकदर्शनाभ्यासेन महताऽध्यात्मप्रयासेन। अत्रोच्यते - क्या यह सुनने मात्र से ही अविवेक दूर हो जाएगा (ये प्रसंग तो पहले सूत्र में ही हो गया है)

थोड़ा युक्ति तर्क लगाने मात्र से ही विवेक हो जावे अधिक परिश्रम क्यों करें?

युक्तितोऽपि न बाध्यते दिङ्मूढवदपरोक्षादृते ॥५९॥

सूत्रार्थ= वह अविवेक मनन करने से भी दूर नहीं होता, साक्षात विवेक का प्रत्यक्ष किए बिना, दिङमूढ व्यक्ति के समान।

भाष्य विस्तार = किं श्रवणेन स्यात्, श्रवणमात्रस्य तु का कथा स तु युक्तितोऽर्थान्मननादपि न निवर्त्यते। सुनने से क्या होता है, श्रवण मात्र की कथा ही क्या। कहानी केवल वाली मात्र से गुरु से सुन लिया इससे तो अविवेक हटने वाला नहीं, कोई बैठ के युक्ति से मनन-चिंतन-विचार करे तो ठोड़े चिंतन मात्र से भी अविवेक नहीं हटने वाला। (यहाँ चिंतन का, श्रवण का निषेध नहीं है, उसकी अपर्याप्तता बता रहे हैं) **दिशोविषये मूढो दिङ्मूढस्तस्य दिशामोहवतो दिग्भ्रमवतो मनुष्यस्येव** दिङ्मूढ़ उसे कहते हैं जिसे दिशा के संबंध में भ्रम हो अर्थात दिशा के विषय में जो मूढ़ हो जिसको दिशा के संबंध में मोह हो गया भ्रम हो गया ऐसे मनुष्य के समान **यथा तस्य दिग्भ्रमो साक्षात् सूर्योदयदर्शनेन बिना न निवर्तते** ऐसा मनुष्य का भ्रम दिशा के संबंध में साक्षात सूर्य दर्शन के बिना हटता नहीं है **तद्वत् सोऽविवेकोऽपि नापगच्छति स्वप्रतिद्वन्द्विना विवेकदर्शनाभ्यासेन बिना** उसी प्रकार से जो अविवेक है वह भी अपने विरोधी विवेक दर्शन अभ्यास के बिना नहीं हटता।॥५९॥

अथ स विवेकप्रकारो वर्ण्यते - अब विवेक का प्रकार बताते हैं कि विवेक कैसे-कैसे होगा-

अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिवविह्नेः ॥६०॥

सूत्रार्थ= जो वस्तुएँ आँख से नहीं दिखती उनका अनुमान से ज्ञान कर लेंगे जैसे धुआँ चिंगारी आदि के द्वारा अप्रत्यक्ष अग्नि का ज्ञान होता है।

भाष्य विस्तार = अप्रत्यक्षाणां बोधो विवेको भवत्यनुमाने प्रमाणेन। जो आँखों से दिखती है उनका तो प्रत्यक्ष हो जाएगा, जो आँखों से नहीं दिखती उनके विषय में तत्वज्ञान कैसे होगा? उसके विषय में बताते हैं- अप्रत्यक्षाणां जो अप्रत्यक्ष है अर्थात आँखों से दिखते नहीं हैं उनका **बोधो विवको भवति** जो ज्ञान

नापगच्छति स्वप्रतिद्वन्द्विना विवेकदर्शनाभ्यासेन विना ।।५९।।

अथ स विवेकप्रकारो वर्ण्यते -

अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः ।।६०।।

(अचाक्षुषाणाम्-अनुमानेन बोधः) अप्रत्यक्षाणां बोधो विवेको भवत्यनुमाने प्रमाणेन । कथम् । उच्यते (धूमादिभिः-इव वह्नेः) यथा धूमादिभिर्धूमविस्फुलिंगचटचटा-शब्दैरप्रत्यक्षस्याग्नेर्बोधो विवेकोऽनुमानाज्जायते । तत्र प्रत्यक्षपदार्थास्तु स्थूलभूतानि देहादयश्चाथाप्रत्यक्षास्तद्भिन्ना अन्ये प्रकृत्यादयः शेषाः सन्ति ।।६०।।

अनुमानेन विवेकप्राप्तये तेषां प्रत्यक्षाणां कार्यकारणभावः प्रदर्श्यते -

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्

होगा तत्वज्ञान होगा **अनुमाने प्रमाणेन** वह अनुमान प्रमाण से हो जाएगा। **कथं उच्यते?** कैसे होगा इसको समझाते हैं **यथा धूमादिभिर्धूमविस्फुलिंगचटचटाशब्दैरप्रत्यक्षस्याग्नेर्बोधो विवेकोऽनुमानाज्जायते**। जैसे धुआँ आदि उठाने लगे फिर चट चटचटाहट शब्द सुन करके इतना सब देख कर के जो अग्नि दिख नहीं रही है अप्रत्यक्ष है उसका अनुमान लगा लिया कि अग्नि के जलने से धुआँ आदि चट पट आवाज आ रही है, चिंगारी उठ रही हैं । **तत्र प्रत्यक्षपदार्थास्तु स्थूलभूतानि देहादयश्चाथाप्रत्यक्षास्तद्भिन्ना अन्ये प्रकृत्यादयः शेषाः सन्ति** । वहाँ जो (संसार के) पदार्थ है स्थूल भूत आदि वे तो प्रत्यक्ष हैं और देह आदि का भी प्रत्यक्ष हो जाएगा इनसे संबन्धित सारा अविवेक हट जाएगा और स्थूलभूत और शरीर के अतिरिक्त मन इंद्रियाँ आदि सूक्ष्म पदार्थ हैं उनका अनुमान से ज्ञान कर लेंगे। जैसे धुआँ देखकर अग्नि का ज्ञान कर लिया वैसे जगत के पदार्थ देखकर मूल प्रकृति का भी अनुमान से ज्ञान कर लेंगे। ऐसे तत्वज्ञान हो जाएगा और सब अविद्या अविवेक हट जाएगा ।।६०।।

अनुमानेन विवेकप्राप्तये तेषां प्रत्यक्षाणां कार्यकारणभावः प्रदर्श्यते - अनुमान से विवेक प्राप्त करने के लिए उन प्रत्यक्ष पदार्थों का कार्य कारण भाव दिखलाया जाता है-

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्
महतोऽहंकारोऽहंकारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यःस्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ।।६१।।

सूत्रार्थ= सत्व रज तम की समान अवस्था प्रकृति है, प्रकृति से महतत्व, महतत्व से अहंकार, अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ, ,मन और दोनों प्रकार की इंद्रियाँ तथा तन्मात्रा से स्थूल भूतों की उत्पत्ति होती है, और पच्चीसवा पदार्थ पुरुष (जीवात्मा और परमात्मा) है, ये पच्चीस पदार्थों का समूह जानने योग्य है।

भाष्य विस्तार= (सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः) सत्त्वरजस्तमांसि प्रकाशद्रवत्वस्तब्धत्वमयानि प्रकाशगतिस्थितिरूपशक्तिभूतानि वस्तूनि तेषां यद्वा यैर्जगति प्रकाशद्रवत्व-स्तब्धत्वानि प्रकाशगतिस्थितयो वा प्रवर्तन्ते तथाविधानां वस्तुशक्तिरूपाणां साम्यावस्था समावस्था निश्चेष्टा सरलाऽनुद्भूतस्वरूपाऽवस्था प्रकृतिरुच्यते। ये मूल प्रकृति का स्वरूप बतलाया है- <u>**सत्त्वरजस्तमांसि**</u>

महतोऽहंकारोऽहंकारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ।।६१।।

(सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः) सत्त्वरजस्तमांसि प्रकाशद्रवत्वस्तब्ध- त्वमयानि प्रकाशगतिस्थितिरूपशक्तिभूतानि वस्तूनि तेषां यद्वा यैर्जगति प्रकाशद्रवत्वस्तब्धत्वानि प्रकाशगतिस्थितयो वा प्रवर्तन्ते तथाविधानां वस्तुशक्तिरूपाणां साम्यावस्था समावस्था निश्चेष्टा सरलाऽनुद्भूतस्वरूपाऽवस्था प्रकृतिरुच्यते (प्रकृतेः-महान्) ततः प्रकृतेर्महत्तत्त्वमुद्भवति (महतः-अहंकारः) महत्तत्त्वादहंकारनामा प्रकृतेर्द्वितीयो विकारो जायते (अहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि-उभयम्-इन्द्रियम्) अहंकाराद् बाह्ये जगति पञ्चतन्मात्राणि सूक्ष्मभूतानि देहे ज्ञानकर्मेन्द्रियगणश्च सम्भवति (तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि) सूक्ष्मभूतेभ्यः पृथिव्यादीनि स्थूलभूतानि व्यज्यन्ते (पुरुषः) पुरुषश्च तेचनसत्ता तद्भिन्ना (इति पञ्चविंशतिः-गणः)

सत्व रज और तम ये तीन हैं, कैसे गुण वाले हैं? **प्रकाशद्रवत्वस्तब्धत्वमयानि** प्रकाश वाले गतिशील और स्तब्धता वाले इस स्वरूप वाले हैं ये तीनों दूसरे शब्दों में कहा **प्रकाशगतिस्थितिरूपशक्तिभूतानि वस्तूनि** प्रकाश गति स्थिरतारूप वाले ये पदार्थ हैं तेषां इनकी साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। **यद्वा यैर्जगति प्रकाशद्रवत्व-स्तब्धत्वानि प्रकाशगतिस्थितयो वा प्रवर्तन्ते** भाष्यकार ने इनको और खोला-जिन परमाणुओं के माध्यम से संसार में प्रकाश होता है स्तब्ध्ता होती है और गति होती है ये तीन व्यवहार (क्रियाएँ) देखी जाती हैं तथाविधानां जिनके द्वारा देखी जाती हैं- उस स्वरूप वाले **वस्तुशक्तिरूपाणां** वस्तु रूप व शक्तिरूप वाले हैं, उन सत्व रज तम की **साम्यावस्था** अर्थात **समावस्था** अर्थात **निश्चेष्ट** अवस्था, इसमें कोई गति नहीं है चुप चाप पड़े हैं सत्व रज तम **सरलाऽनुद्भूतस्वरूपाऽवस्था प्रकृतिरुच्यते** सरल अवस्था में उसमें कोई चीज अनुभूत नहीं हो रही उस अवस्था को प्रकृति कहते हैं। ततः प्रकृतेर्महत्तत्त्वमुद्भवति जो सत्व रज तम बिखरे हुए पड़े थे उन से ईश्वर ने पहली वस्तु बनाई जिसका नाम 'महतत्व' है महत्तत्त्वादहंकारनामा प्रकृतेर्द्वितीयो विकारो जायते महतत्व से अर्थात उसके पश्चात फिर अहंकार नामक प्रकृति का दूसरा विकार उत्पन्न होता है **(अहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि-उभयम्-इन्द्रियम्) अहंकाराद् बाह्ये जगति पञ्चतन्मात्राणि सूक्ष्मभूतानि देहे ज्ञानकर्मेन्द्रियगणःमनश्च सम्भवति।** अब अहंकार से क्या क्या बना ये बताते हैं- अहंकार के पश्चात जो वस्तुएँ बनी वो बाह्य जगत में कार्य करने वाली पाँच तनमात्राएँ अर्थात सूक्ष्मभूत बने और शरीर में कार्य करने वाली ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय का समुदाय और मन उत्पन्न हुआ। **सूक्ष्मभूतेभ्यः पृथिव्यादीनि स्थूलभूतानि व्यज्यन्ते** उन पाँच तन्मात्राओं से पृथ्वी आदि पाँच स्थूल भूत प्रकट होते हैं। (शब्द तन्मात्रा से आकाश स्थूलभूत फिर स्पर्श से वायु, रस से जल, रूप से अग्नि, गंध से पृथिवि स्थूल भूत की रचना हुई) **पुरुषश्च चेतनसत्ता तद्भिन्ना, इत्येष पञ्चविंशतिर्गणो बोध्यो विज्ञेयो विवेचनीयो विवेकेऽपेक्षणीयोऽस्ति ।।६१।।** २४ से भिन्न पुरुष चेतन सत्ता है (पुरुष के दो अर्थ= एक जीवात्मा दूसरा ईश्वर)। इस प्रकार से इन पच्चीस पदार्थों को जानना चाहिए विवेक करना चाहिए इनका विवेचन करना चाहिए, ये जानने योग्य हैं।

जो आँख से दिखती हैं घर, मोटर, कार आदि उनका प्रत्यक्ष हो जाएगा और जो आँख से नहीं दिखती उनको अनुमान से जान लेंगे इस प्रकार से बार सुनने मनन करने से विचार करने से और कुछ चीजों का बाह्य

इत्येष पञ्चविंशतिर्गणो बोध्यो विज्ञेयो विवेचनीयो विवेकेऽपेक्षणीयोऽस्ति ।।६१।।

तत्रानुमानप्रकारः प्रातिलोम्येन -

स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य ।।६२।।

(स्थूलात्) पृथिव्यादिस्थूलभूतगणात् कार्यात् तत्कारणस्य (पञ्चतन्मात्रस्य) सूक्ष्मभूतगणस्याविशेषस्यानुमानेन बोधो विवेकः कार्यः ।।६२।।

पुनः -

बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाहंकारस्य ।।६३।।

(बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैः-च) बाह्याभ्यन्तराभ्यामिन्द्रियगणाभ्यां तथा तश्च पञ्चतन्मात्रैः

प्रत्यक्ष करके तत्वज्ञान हो जाएगा ये तत्वज्ञान अविवेक का नाश करेगा जब अविवेक का नाश होगा तो बंधन का नाश होगा और बंधन का नाश होने से न शरीर धारण करना पड़ेगा और न दु:ख आवेंगे।

तत्रानुमानप्रकारः प्रातिलोम्येन - अब उलटे क्रम से स्थूल से सूक्ष्म की ओर चल करके इसका अनुमान करेंगे-

स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य ।।६२।।

सूत्रार्थ= पाँच स्थूल भूतों के समुदाय से उसके कारण तन्मात्राओं का ज्ञान होता है ।

भाष्य विस्तार = मोटे तौर पर कार्य को देखकर कारण का अनुमान होता है (वस्त्र को देखकर सूती धागों का अनुमान) **पृथिव्यादिस्थूलभूतगणात्** जो पृथ्वी आदि स्थूल भूतों का समुदाय है कार्यात् उस कार्य रूप पृथ्वी आदि पाँच भूतों से **तत्कारणस्य** उसके कारण का **सूक्ष्मभूतगणस्य** सूक्ष्म भूत समुदाय उनका **अविशेषस्य** (अविशेष का अर्थ तन्मात्राएँ योगदर्शन में कहीं थी) जो सूक्ष्म है प्रकट नहीं है ऐसी पाँच तन्मात्राओं का **अनुमानेन बोधो विवेकः कार्यः** अनुमान प्रमाण से ज्ञान कर लेना चाहिए ।।६२।।

पुनः -

बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाहंकारस्य ।।६३।।

सूत्रार्थ= बाह्य और आभ्यंतर इंद्रियों से तथा तन्मात्राओं के द्वारा अहंकार का ज्ञान होता है ।

भाष्य विस्तार = **बाह्याभ्यन्तराभ्यामिन्द्रियगणाभ्यां तथा तैश्च पञ्चतन्मात्रैः अहंकारस्यानुमानेन बोधो विवेकः कार्यो** जैसे हमने पहले अर्थ किया था "**उभयमिंद्रियम**" से वैसा ही अर्थ यहाँ करेंगे। **बाह्याभ्यन्तराभ्यामिन्द्रियगणाभ्यां** बाह्य इंद्रियों और आंतरिक इंद्रियों इन दोनों के समुदाय से **तथा** एवं **तैश्च पञ्चतन्मात्रैः** और उन तन्मात्राओं से **अहंकारस्यानुमानेन बोधो विवेकः कार्यो** इन सोलह पदार्थों से यह अनुमान कर लेना चाहिए कि इनका भी कोई कारण है। और वह है अहंकार, ऐसे अनुमान से अहंकार का ज्ञान हो गया। **यदेषां वृत्तिसंस्कारो यत्र तिष्ठति सोऽहंकारोऽस्ति हि**। ये जो वृत्ति संस्कार हैं ये जहां टहरते हैं, अर्थात

(अहंकारस्य) अहंकारस्यानुमानेन बोधो विवेकः कार्यो यदेषां वृत्तिसंस्कारो यत्र तिष्ठति सोऽहंकारोऽस्ति हि । तन्मात्राणां च संहतसूक्ष्मभावो यस्मिन् भवति ।। ६३ ।।

पश्चात् -

तेनान्तःकरणस्य ।। ६४ ।।

(तेन) अहंकारेण कार्येण (अन्तःकरणस्य) तत्कारणभूतस्य महत्तत्त्वस्यानुमानेन बोधो विवेकः कार्यो यद्बाह्यप्रसारतः केन्द्रसंकाचो यस्मिन् भवति ।। ६४ ।।

तदनु -

ततः प्रकृतेः ।। ६५ ।।

टूट-फुट कर जिसमें जाकर मिलेंगी वह अहंकार ही है। **तन्मात्राणां च संहतसूक्ष्मभावो यस्मिन् भवति** तन्मात्राओं का भी सूक्ष्म भाग टूट फूट कर जिसमें जाकर टिकेगा वह अहंकार है ।। ६३ ।।

पश्चात् -

तेनान्तःकरणस्य ।। ६४ ।।

सूत्रार्थ= उस कार्य रूपी अहंकार से उसके कारण द्रव्य अन्तः करण अर्थात महतत्व का ज्ञान कर लेना चाहिए।

भाष्य विस्तार = उस अहंकार रूपी कार्य द्रव्य से **तत्कारणभूतस्य महत्तत्त्वस्य** उसका जो कारणभूत है महतत्व उसका **अनुमानेन बोधो विवेकः कार्यो** अनुमान से बोध कर लेना चाहिए कि ये भी कोई कार्य है तो इसका भी कोई कारण होगा, तो अहंकार का कारण महतत्व। **यद्बाह्यप्रसारतः केन्द्रसंकाचो यस्मिन् भवति** जो बाहर के फैलाब से वापिस भीतर को लौट रहे हैं जिस केंद्र में संकुचित होता जा रहा है अहंकार उसका भी कारण महतत्व है ।। ६४ ।।

तदनु -

ततः प्रकृतेः ।। ६५ ।।

सूत्रार्थ= उस महतत्व से प्रकृति का अनुमान होता है।

भाष्य विस्तार = **ततो महत्तत्त्वात् कार्यात्** जो महतत्व रूपी कार्य है उससे **तत्कारणभूतायाः प्रकृतेः** उसका जो कारण भूत द्रव्य है प्रकृति, उस प्रकृति का **अनुमानेन** अनुमान प्रमाण से **बोधो विवेकः कार्यः** उसका भी ज्ञान कर लेना चाहिए कि ये भी कार्य द्रव्य है तो इसका भी कोई कारण होगा **सर्वथा निस्तब्धत्वं यस्मिन् भवति** जिस प्रकृति में सर्वथा निस्तब्धता होती है (कोई गति हलचल नहीं) उस मूल प्रकृति तक अनुमान से पहुँच जाएंगे ।। ६५ ।।

कार्यकारणप्रक्रियामनुसृत्य प्रकृतिपर्यन्तोऽनुमानप्रकारो दर्शितोऽत्रेदानीं पुरुषस्य बोधायानुमानप्रकारः प्रदर्श्यते- कार्य कारण प्रक्रिया का अनुसरण करके प्रकृति तक पहुँच गए वहाँ तक

(ततः प्रकृतेः) ततो महत्तत्त्वात् कार्यात् तत्कारणभूतायाः प्रकृतेरनुमानेन बोधो विवेकः कार्यः सर्वथा निस्तब्धत्वं यस्मिन् भवति ।। ६५।।

कार्यकारणप्रक्रियामनुसृत्य प्रकृतिपर्यन्तोऽनुमानप्रकारो दर्शितोऽत्रेदानीं पुरुषस्य बोधायानुमानप्रकारः प्रदर्श्यते -

संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य ।। ६६।।

(संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य) सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः सा च त्रिगुणसंहता तत्कार्याणि च महत्तत्त्वादीनि संहतानि सन्त्यन्योऽन्यसंहतानि तर्हि प्रकृतिपर्यन्तानि सर्वाणि वस्तूनि संहतानि, संहतं हि परार्थं भवति ''परार्थं संहत्यकारित्वात्'' (योग ०४.२४) तस्य संहतस्य वस्तुजातस्य परार्थत्वात् स परोभूतः पुरुषोऽस्तीति तस्य पुरुषस्यानुमानेन बोधो विवेकः सम्पद्यते ।। ६६।।

अनुमान करने का प्रकार दिखला दिया, अब इस सूत्र में पुरुष का ज्ञान करने के लिए अनुमान कैसे किया जाए, इस प्रक्रिया को दिखलाते हैं-

संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य ।। ६६।।

सूत्रार्थ= संघात के ''पर के'' लिए होने से अर्थात दूसरे के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला होने से पुरुष का अनुमान होता है।

भाष्य विस्तार = कह रहे हैं- **सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः सा च त्रिगुणसंहता** सत्व, रज और तम की जो साम्यावस्था है वो है प्रकृति। वो तीन गुणों का संघात है। **तत्कार्याणि च महत्तत्त्वादीनि संहतानि सन्ति** (अब जब मूल प्रकृति ही तीन पदाथो ५ का समुदाय है उससे जो भी वस्तु बनेगी वो भी संघात होंगी) प्रकृति से जो कार्य द्रव्य उत्पन्न हुए वे महतत्व आदि ये सब भी संहात रूप है। **अन्योन्यसंहतानि** ये भी एक दूसरे के साथ परमाणु को जोड़ जोड़के बनाए गए **तर्हि प्रकृतिपर्यन्तानि सर्वाणि वस्तूनि संहतानि,** इस प्रकार से पाँच महाभूत से लेकर प्रकृति तक सारी वस्तुएँ संघात रूप हैं। अब कहते हैं नियम **संहतं हि परार्थं भवति** जो संघात पदार्थ होता है वह दूसरों के लिए होता है, इसलिए योगदर्शन में कहा **''परार्थं संहत्यकारित्वात्'' (योग ०४.२४)** ''ये जितने भी संहात पदार्थ है वे दूसरे के लिए होते हैं'' इस नियम से **तस्य संहतस्य वस्तुजातस्य परार्थत्वात् स परोभूतः पुरुषोऽस्ति** वह जो संहात रूप वस्तु है सारी वह सब दूसरे के लिए हैं उस संहात से भिन्न जो पदार्थ है उसी का नाम पुरुष है। **इति तस्य पुरुषस्यानुमानेन बोधो विवेकः सम्पद्यते** इस पूरे जगत के संहात रूप पदार्थ है, इनका जो भोक्ता है वो एक खंड पदार्थ होना चाहिए। इससे उस भोक्ता पुरुष का अनुमान से बोध कर लेना चाहिए ।। ६६।।

या खलु प्रकृतिर्महदादेर्विकारजातस्य मूलमुक्तं किं तस्याः प्रकृतेरपि मूलेन भवितव्यं न वेत्याकांक्षायामुच्यते - जो प्रकृति महतत्व आदि सभी उत्पन्न पदार्थों का मूल कारण बताई गई थी, क्या उस प्रकृति का और भी कोई कारण होना चाहिए? अथवा नहीं होना चाहिए? ऐसा प्रश्न होने पर ये उत्तर देते हैं-

मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ।।६७।।

या खलु प्रकृतिर्महदादेर्विकारजातस्य मूलमुक्तं किं तस्याः प्रकृतेरपि मूलेन भवितव्यं न वेत्याकांक्षायामुच्यते -

मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ।।६७।।

(मूले मूलाभावात्) मूले तन्मूलस्याभावो भवति । तस्मात् (अमूलंमूलम्) मूलं भवत्यमूलं मूलस्य नहि मूलं कल्पनीयम्, प्रकृतिरेव महदादेर्मूलं नहि तस्या मूलभूताया अपि मूलेन भाव्यम् ।।६७।।

मूलस्याप्यन्यमूलकल्पनायाम् -

पारम्पर्येऽप्येकत्र परिनिष्ठेति संज्ञामात्रम् ।।६८।।

(पारम्पर्ये-अपि) मूलभूतायाः प्रकृतेरपि परं मूलमन्यदिति कल्पनायां पुनस्तस्मादपि परं तन्मूलमन्यत्पुनस्तस्मात्परमन्यदिति मूलपरम्परा प्रसज्यते तत्रेत्थं पारम्पर्ये परस्परमिति प्रवाहेऽपि (एकत्र

सूत्रार्थ= अंतिम कारण के और कारण का अभाव होने से अंतिम कारण विना कारण वाला होता है।

भाष्य विस्तार = **मूले तन्मूलस्याभावो भवति।** जो मूल कारण होता है उसका और मूल कारण नहीं होता, अंतिम कारण का कारण नहीं होता। **तस्मात् मूलं भवत्यमूलं** इसलिए जो मूल होता है वह विना मूल वाला होता है **मूलस्य नहि मूलं कल्पनीयम्,** मूल का मूल कल्पित नहीं करना चाहिए (कारण का कारण का कारण का कारण कहीं तो रुकोगे? अंतिम कारण का आगे नहीं सोचना चाहिए) **प्रकृतिरेव महदादेर्मूलं** प्रकृति ही महद आदि सभी कारणों का मूल=अंतिम कारण है, **नहि तस्या मूलभूताया अपि मूलेन भाव्यम्** तो जो अंतिम मूल कारण है उसका और मूल कारण सूक्ष्म द्रव्य नहीं होना चाहिए, यही न्याय, बुद्धिमत्ता व तर्कपूर्ण है ।।६७।।

मूलस्याप्यन्यमूलकल्पनायाम् - मूल के भी और मूल की कल्पना करते जाएंगे तब क्या होगा?

पारम्पर्येऽप्येकत्र परिनिष्ठेति संज्ञामात्रम् ।।६८।।

सूत्रार्थ= कारण के कारण होने की परंपरा में कहीं एक पदार्थ पर वह परंपरा समाप्त अवश्य होगी, उसका नाम मात्र का ही भेद रहेगा।

भाष्य विस्तार = **मूलभूतायाः प्रकृतेरपि परं मूलमन्यदिति कल्पनायां पुनस्तस्मादपि परं तन्मूलमन्यत्पुनस्तस्मात्परमन्यदिति मूलपरम्परा प्रसज्यते** मूलभूत प्रकृति है उस प्रकृति का भी और आगे कोई मूल अन्य पदार्थ हो ऐसी कल्पना करें फिर उससे आगे और कोई सूक्ष्म कारण हो उसका और कारण हो इस प्रकार से कारण के कारण की परंपरा चल पड़ेगी **तत्रेत्थं पारम्पर्ये परस्परमिति प्रवाहेऽपि** इस परंपरा में परम परम कारण कारण ऐसे प्रवाह में परिणाम ये निकलेगा **कस्मिंश्चिदेकस्मिन् वस्तुनि परिसमाप्तिः कथनपरिसमाप्तिर्वा विचारपरिसमाप्तिस्तु भविष्यति** कहीं न कहीं एक वस्तु पर जाकर के अगला कारण मानने की कहीं तो समाप्ती होगी अथवा कहीं तो परिसमाप्ति विचार की समाप्ती होगी ही, जो उत्पन्न न हुआ हो उसको अंतिम कारण तो मानना ही पड़ेगा। क्यों **अनवस्थादोषपरिहाराय तर्हि यस्मिन् समाप्तिस्तन्मूलं सर्वतोमूलममूलं प्रकृतिर्वाच्येति** जहां भी कथन परिसमाप्ति होगी, क्यों होगी? अनवस्था दोष को हटाने के लिए कहीं न कहीं तो रुकना पड़ेगा,

परिनिष्ठा-इति संज्ञामात्रम्) कस्मिंश्चिदेकस्मिन् वस्तुनि परिसमाप्तिः कथनपरिसमाप्तिर्वा विचारपरिसमाप्तिस्तु भविष्यत्येवानवस्थादोषपरिहाराय तर्हि यस्मिन् समाप्तिस्तन्मूलं सर्वतोमूलममूलं प्रकृतिर्वाच्येति गतं भिन्ननाम्नि संज्ञा मात्रभेद एव न मूलत्वभेदो न मूलस्यामूलत्वभेदश्च ।। ६८।।

प्रकृतेः संहतपरार्थत्वे पूर्वपक्ष उत्थाप्यते -

समानः प्रकृतेर्द्वयोः ।। ६९।।

(प्रकृतेः-द्वयोः समानः) प्रकृतेरिति पञ्चमीनिर्देशः। प्रकृतिसकाशाद् द्वयोर्मुक्तबद्धयोः पुरुषयोः समानोऽर्थलाभोऽस्ति प्रकृतिर्हि परमार्था पुरुषार्था तच्चेदमुक्तमेवानन्तरसूत्रे ''संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य'' ६६ तथैव योगदर्शनेऽपि'' परार्थं संहत्यकारित्वात्'' (योग ०४.२४) तेन समानोऽर्थः सिध्येत् प्रकृतिसकाशाद् द्वयोर्मुक्तबद्धयोः पुरुषयोः कथं कस्मैचिदपवर्गफलं कस्मैचिद् भोगः फलमभिव्यज्यते

अगर रुकेंगे नहीं तो फिर अनवस्था दोष आयेगा, कारण का भी और कारण इस परंपरा में तो समाप्ती होगी ही नहीं, दूसरा व्यवहार में बहुत से दोष आ जाएंगे। **यस्मिन समाप्ति** जहां पर जाके इस बात की समाप्ति होगी **तन्मूलम** वो मूल कहलाएगा **सर्वतोमूलम** वो सबसे अंतिम कारण होगा **अमूलम** उसका और कोई कारण नहीं होगा **प्रकृतिर्वाच्येति** और उसी का नाम प्रकृति कहना चाहिए **गतं भिन्ननाम्नि संज्ञा मात्रभेद एव न मूलत्वभेदो न मूलस्यामूलत्वभेदश्च** इस तरह से केवल नाम मात्र का भेद रहा हम इसे प्रकृति कह रहे हैं आप भले ही ५० वा पदार्थ कहलो, नाम मात्र का भेद होने से सिद्धान्त का भेद तो नहीं है, जब वेद कह रहा है कि प्रकृति ही आदि मूल है तो शब्द प्रमाण से स्वीकार कर लेना चाहिए, इसलिए इसको आदिमूल कारण मान लेना चाहिए ।।६८।।

प्रकृतेः संहतपरार्थत्वे पूर्वपक्ष उत्थाप्यते - प्रकृति संहात रूप है, और संहात परार्थ के लिए होता है। इस स्थिति में पूर्वपक्ष उठाया जाता है-

समानः प्रकृतेर्द्वयोः ।। ६९।।

सूत्रार्थ= जब प्रकृति परार्थ है तो प्रकृति से सब जीवात्माओं को समान लाभ होना चाहिए।

भाष्य विस्तार = **प्रकृतेरिति पञ्चमीनिर्देशः**। सूत्र में जो प्रकृतेः शब्द है इसमें पंचमी विभक्ति अथवा षष्ठी भी हो सकती है, यहाँ पंचमी अर्थ लेना चाहिए, पंचमी का निर्देश किया गया है। **प्रकृतिसकाशाद् द्वयोर्मुक्तबद्धयोः पुरुषयोः समानोऽर्थलाभोऽस्ति प्रकृतिर्हि परमार्था पुरुषार्था तच्चेदमुक्तमेवानन्तरसूत्रे ''संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य''** ६६ यहाँ कहते हैं **प्रकृतिसकाशाद्** प्रकृति से **द्वयोर्मुक्तबद्धयोः पुरुषयोः** मुक्तात्मा और बद्ध आत्मा दोनों को **समानोऽर्थलाभोऽस्ति** समान अर्थ लाभ होना चाहिए (प्रयोजन समान सिद्ध होना चाहिए), क्योंकि बताया ही था कि **प्रकृतिर्हि परमार्था पुरुषार्था** प्रकृति परमार्थ के लिए है, पुरुष के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए है। यह बात पिछले सूत्र ६६ में कही गई थी। **तथैव** वैसे ही **योगदर्शनेऽपि** योगदर्शन में भी कहा **''परार्थ संहत्यकारित्वात्''** वह वस्तु परार्थ होती है जो संहात होती है। **तेन समानोऽर्थः सिध्येत्** इस कारण से दोनों को समान लाभ होने चाहिए। **प्रकृतिसकाशाद् द्वयोर्मुक्तबद्धयोः पुरुषयोः कथं कस्मैचिदपवर्गफलं कस्मैचिद् भोगः फलमभिव्यज्यते**। पूर्वपक्षी प्रश्न उठा रहा है कि दो प्रकार के व्यक्ति हैं,

।

'द्वयोः' इत्यस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ 'वादिप्रतिवादिनोः' विज्ञानभिक्षुभाष्ये 'वादिप्रतिवादिनोः अथवा प्रकृतिपुरुषयोः' अर्थःकृतः, उभयत्राप्यर्थायुक्तिः। नह्यत्र वादिप्रतिवादिनौ प्रत्यक्षं सूत्रे प्रसज्येते। अग्रिमसूत्रासांगत्यं चापतति तथार्थविधाने तस्मात्तयोर्न युक्तार्थकारिता ।।६९।।

समाधत्ते -

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ।।७०।।

(अधिकारित्रैविध्यात्) अधिकारिणामुत्तममध्यममन्दरूपत्रिविधत्वात् (न नियमः) समानार्थसाधनस्य नियमो न भवति, तत्रोत्तमाधिकारी क्षिप्रं मुक्तो भवति मध्यमाधिकारी

एक ऊंचे वैराग्य वाले जो मुक्ति को प्राप्त होने वाले हैं उनको तो प्रकृति मोक्ष देने वाली है, और बाकी जो रागी द्वेषी है उनको यह मोक्ष देती नहीं । दोनों को अलग-अलग फल दे रही है प्रकृति।

'द्वयोः' इत्यस्यार्थोऽनिरुद्धवृत्तौ 'वादिप्रतिवादिनोः' विज्ञानभिक्षुभाष्ये 'वादिप्रतिवादिनोः अथवा प्रकृतिपुरुषयोः' अर्थःकृतः, उभयत्राप्यर्थायुक्तिः। स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं **'द्वयोः'** इस शब्द का अर्थ अनिरुद्धवृत्ति में किया है **'वादिप्रतिवादिनोः'** वादि और प्रतिवादी और विज्ञानभिक्षु भाष्य में दो अर्थ किए हैं **'वादिप्रतिवादिनोः** और **प्रकृतिपुरुषयोः'** ये दोनों टीकाओं में अर्थ अयुक्त है। **नह्यत्र वादिप्रतिवादिनौ प्रत्यक्षं सूत्रे प्रसज्येते।** यहा इस सूत्र में वादि और प्रतिवादी का कोई प्रसंग ही नहीं है। **अग्रिमसूत्रासा ङत्यं चापतति तथार्थविधाने तस्मात्तयोर्न युक्तार्थकारिता** उन दोनों ने जो अर्थ किया है उस अर्थ के साथ अगले सूत्र के साथ संगति नहीं बैठती, वैसा अर्थ करने में जैसा उन्होने किया, इसलिए उनका अर्थ=व्याख्या ठीक नहीं है ।।६९।।

समाधत्ते -

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ।।७०।।

सूत्रार्थ= मोक्ष प्राप्त करने के अधिकारी तीन प्रकार के हैं उत्तम, मध्यम और मंद। प्रकृति से सबको समान लाभ मिले, ऐसा कोई नियम नहीं है ।

भाष्य विस्तार = अधिकारिणामुत्तममध्यममन्दरूपत्रिविधत्वात् अब ७० वे सूत्र में सिद्धांती कहता है कि- मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी तीन प्रकार के होते हैं, उत्तम, मध्यम और मंदरूप अधिकारी **समानार्थसाधनस्य नियमो न भवति,** इसलिए सबको समान अर्थ लाभ होगा, ऐसा कोई नियम नहीं है। **तत्रोत्तमाधिकारी क्षिप्रं मुक्तो भवति** इन तीनों अधिकारियों में से जो उत्तम अधिकारी है उसका मोक्ष शीघ्रता से इसी जन्म में हो जाएगा **मध्यमाधिकारी चिरेणानेकजन्मजन्मान्तराण्यतिबाह्य मुक्तिभाग्भवति** जो माध्यम अधिकारी है उसको देर से होगा मोक्ष लंबे समय तक अनेक जन्म जन्मांतरों के बाद मोक्ष प्राप्त होगा जो तीसरे अधिकारी हैं **मन्दस्तु बद्धः सन् भोगमेवानुधावति** जो मंद अधिकारी है वह तो बंधन में पड़ा हुआ भोगों के पीछे भागता रहता है ।। ७०।।

चिरेणानेकजन्मजन्मान्तराण्यतिबाह्य मुक्तिभाग्भवति मन्दस्तु बद्धः सन् भोगमेवानुधावति ।।७०।।

कार्यकारणभावमाश्रित्यानुमानेन प्रकृतेरप्रत्यक्षायाः पुनः प्रकृतितद्विकाराणां च संहतत्वमवलम्ब्य पुरुषस्य च विवेकप्रकारं प्रदर्श्येदानीं प्रकृतेः पूर्वापरकार्यक्रममाह -

महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः ।।७१।।

(महदाख्यम्-आद्यं कार्यम्) 'प्रकृतेर्महान्' इत्युक्तं तन्महदाख्यं प्रकृतेराद्यं कार्यमस्ति (तन्मनः) तच्च सामष्टिकं मनो मननसाधनमध्यवसायात्मकमन्तःकरणम् ।।७१ ।।

कार्यकारणभावमाश्रित्यानुमानेन प्रकृतेरप्रत्यक्षायाः पुनः प्रकृतितद्विकाराणां च संहतत्वमवलम्ब्य पुरुषस्य च विवेकप्रकारं प्रदर्श्येदानीं प्रकृतेः पूर्वापरकार्यक्रममाह - कार्य कारण भाव को आधार बना कर अनुमान प्रमाण से जो कि आँख से नहीं दिखती ऐसी प्रकृति के और प्रकृति व उसके विकारी पदार्थ उनके संहात स्वरूप के आधार पर और पुरुष का विवेक प्रकार दिखलाकर के अब फिर प्रकृति के पूर्वापर कार्यक्रम को दिखलाते हैं-

महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः ।।७१।।

सूत्रार्थ= महत नाम वाला प्रकृति का प्रथम कार्य है, उसे मन=अन्त:करण (बुद्धि) कहते हैं।

भाष्य विस्तार = **'प्रकृतेर्महान्' इत्युक्तं** ''प्रकृति से महतत्व बनता है'' ऐसा कहा गया था **तन्महदाख्यं प्रकृतेराद्यं कार्यमस्ति** (प्रकृति से महतत्व बना) वो जो महतत्व है वह प्रकृति का पहल कार्य है, **तच्च सामष्टिकं मनो मननसाधनमध्यवसायात्मकमन्तःकरणम् । तच्च सामष्टिकं** यहाँ **'सामष्टिकं'** का कोई अर्थ नहीं है, यहाँ जो मनः शब्द है उसे महतत्व के नाम से कह दिया, मन का अर्थ इंद्रियों को निर्देश करने वाला उभय इंद्रिय नहीं है। महतत्व का नाम भी 'मन' है ये बात इस सूत्र में बताई जा रही है, मन नाम क्यों है? **''मन ज्ञाने''** धातु है से 'मनः' शब्द बना है । और इसका अर्थ है ज्ञान कराने वाला साधन। ज्ञान कई प्रकार का होता है एक है भ्रांतिवाला ज्ञान जिसे अविवेक कह रहे हैं । दूसरा संशयरूप ज्ञान है, तीसरा निश्चयात्मक ज्ञान है। निश्चियात्मक ज्ञान कराने वाला होने से इसका नाम 'मन' है और बुद्धि (महतत्व) का कार्य निश्चयात्मक ज्ञान कराना है। **मननसाधनमध्यवसायात्मकमन्तःकरणम्** मनन निर्णय कराने वाला निश्चय कराने वाला अंतकरण है ।।७१ ।।

चरमोऽहंकारः ।।७२।।

सूत्रार्थ= महतत्व के बात होने वाला कार्य अहंकार है ।

भाष्य विस्तार = **'महतोऽहंकारः'** 'महतत्व से अहंकार बना' **इति य उक्तः स** यह जो कहा गया था वह **महत्तत्त्वतश्चरमस्तत्पश्चाद्भूतः** महतत्व के पश्चात बाद में उत्पन्न होने वाला **कार्यत्वमापन्नोऽहंकारोऽस्ति** जो कार्य स्वरूप को प्राप्त हुआ था वो अहंकार कहलाता है ।।७२।।

तत्कार्यत्वमुत्तरेषाम् ।।७३।।

चरमोऽहंकारः ।।७२।।

(चरमः-अहंकारः) 'महतोऽहंकारः' इति य उक्तः स महत्तत्त्वतश्चरमस्तत्पश्चाद्भूतः कार्यत्वमापन्नोऽहंकारोऽस्ति ।।७ २।।

तत्कार्यत्वमुत्तरेषाम् ।।७३।।

(उत्तरेषां तत्कार्यत्वम्) 'अहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियम्' इत्येषामुत्तरेषां तत्कार्यत्वमहंकारकार्यत्वं पुनश्च तन्मात्रकार्याणां स्थूलभूतानां तत्कार्यत्वं तन्मात्रकार्यत्वमित्यप्युक्तं भवति ।।७३।।

तदत्र -

आद्यहेतुता तद्द्वारा पारम्पर्येऽप्यणुवत् ।।७४।।

सूत्रार्थ= अहंकार के बाद जो सोलह पदार्थ है वे अहंकार के कार्य हैं । अहंकार से बने है ।

भाष्य विस्तार = **'अहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियम्'** ६१ वे सूत्र में कहा था 'अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ और दोनों प्रकार की इंद्रियां उत्पन्न हुई थी' **इत्येषामुत्तरेषां तत्कार्यत्वमहंकारकार्यत्वं पुनश्च तन्मात्रकार्याणां स्थूलभूतानां तत्कार्यत्वं तन्मात्रकार्यत्वमित्यप्युक्तं भवति। इत्येषामुत्तरेषां** अगले अगले वाले पदार्थ पीछे वाले के कार्य हैं **तत्कार्यत्वमहंकारकार्यत्वं** इन सबका जो बाद में उत्पन्न हुए महतत्व के पश्चात तन्मात्राएँ इंद्रियाँ आदि वो सब अहंकार के कार्य है **पुनश्च** और फिर **तन्मात्रकार्याणां** जो तन्मात्रारूपी कार्य है **स्थूलभूतानां** तन्मात्राओं से जो स्थूल भूत उत्पन्न हुए वे **तत्कार्यत्वं तन्मात्रकार्यत्वमित्यप्युक्तं भवति** इस सूत्र में उसका भी कथन हो गया कि जो पाँच महाभूत है वे तन्मात्राओं के कार्य हैं ।।७३।।

तदत्र -

आद्यहेतुता तद्द्वारा पारम्पर्येऽप्यणुवत् ।।७४।।

सूत्रार्थ= जो सर्वप्रथम कारणता है वो प्रकृति की है कार्य कारण प्रवाह के द्वारा ऐसी परंपरा खोजने में जब प्रयोग करेंगे तो इस परंपरा में आद्यहेतुता प्रकृति की मिलेगी, जैसे घड़े को तोड़ने पर उसका आदि कारण अणु मिलता है।

भाष्य विस्तार = **प्रकृतेः कार्यं महत्तत्त्वं तस्य कार्यमअहंकारोऽअहंकारस्य कार्यं तन्मात्राणि तन्मात्राणां कार्याणि स्थूलभूतानीति कार्यपारम्पर्येऽपि** प्रकृति का जो कार्य है वो महतत्व है उसका कार्य अहंकार है, अहंकार का कार्य तन्मात्राएँ हैं, तन्मात्राओं के कार्य स्थूलभूत हैं इस प्रकार कार्य परंपरा होने पर भी **उक्तकार्यकारणप्रवाहद्वाराऽऽद्यहेतुता,** जैसा ऊपर कार्य कारण प्रवाह बतलाया इस प्रवाह के द्वारा इस परंपरा में जो आदि हेतु बनेगा। वो कौन होगा? **आदौ भव आद्यः,** जो आदि में हो उसका नाम है 'आद्य' **आद्यश्च हेतुराद्यहेतु** जो सबसे आरंभ में होने वाला हेतु है वो होगा **आद्यहेतु कारण। तस्य भाव आद्यहेतुता** अब हेतु में 'भव' प्रत्यय लगाया 'तल' तल का फिर 'ता' बन जाता है, **प्राथमिककारणता** तो आद्यहेतुता 'प्रथमकारणता'

(पारम्पर्ये-अपि) प्रकृतेः कार्यं महत्तत्त्वं तस्य कार्यमअहंकारोऽअहंकारस्य कार्यं तन्मात्राणि तन्मात्राणां कार्याणि स्थूलभूतानीति कार्यपारम्पर्येऽपि (तद्द्वारा-आद्यहेतुता) उक्तकार्यकारणप्रवाहद्वाराऽऽद्यहेतुता, आदौ भव आद्यः, आद्यश्च हेतुराद्यहेतुस्तस्य भाव आद्यहेतुता प्राथमिककारणता (अणुवत्) अणुवद्विज्ञेयाऽन्वेष्या यथा कस्यचिन्महत्परिमाणवतः कार्यवस्तुनो घटादिकस्य कारणतायामणुस्तस्यात्यन्तसूक्ष्मभाग आद्यं कारणं भवति तथैवात्रापि निर्णेतव्याऽऽद्यकारणता यदतः परं किं सूक्ष्मं पुनस्ततः परं किमिति प्रातिलोम्येन ।। ७ ४।।

पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोगः ।। ७ ५।।

(द्वयोः पूर्वभावित्वे) प्रकृतिपुरुषयोरखिलकार्यात् पूर्वसत्तावत्त्वे सति (एकतरस्य हाने)

ऐसा बनेगा । प्राथमिककारणता जिस पदार्थ में होगी, बो क्या है बताते हैं, तो **आद्य हेतुता अणुवद्विज्ञेयाऽन्वेष्या** अणुवत के समान समझनी चाहिए। एक दृष्टांत देते हैं **यथा कस्यचिन्महत्परिमाणवतः कार्यवस्तुनो घटादिकस्य कारणतायामणुस्तस्यात्यन्तसूक्ष्मभाग आद्यं कारणं भवति** जैसे किसी महत परिमाण वाले बड़े आकार वाले पदार्थ का **कार्यवस्तुनो घटादिकस्य** जैसे घड़ा है वस्त्र, दीवार, मकान है इनका जो आदि कारण होगा **कारणतायाम** इनका कारण इनको तोड़ते तोड़ते जब अंतिम कण मिला पार्थिव अणु ये इसका मूल कारण है जैसे घड़े आदि को तोड़ते समय अंतिम कारण पार्थिव अणु मिला इसी प्रकार से **तस्य अत्यन्त सूक्ष्मभाग आद्यं कारणं भवति** उसका अंतिम सूक्ष्म कारण आदिकरण होता है **तथैवात्रापि निर्णेतव्याऽऽद्यकारणता** उसी प्रकार जब जगत कि आदि कारणता ढूढेंगे तो यहाँ भी ऐसे ही स्थूल भूत तन्मात्राएँ को तोड़ते चले जाएंगे खोजते जाएंगे तब जो अंतिम कारण मिले वही मूल कारण है **यदतः परं किं सूक्ष्मं पुनस्ततः परं किमिति प्रातिलोम्येन** इस प्रकार से पृथ्वी का कारण सूक्ष्म पदार्थ तन्मात्राओं का अहंकार उसका महत्तव फिर प्रकृति इसका कोई कारण नहीं ये अंतिम है । इस प्रकार से अंतिम कारण खोजते खोजते प्रकृति पर जाकर रुकेंगे ।। ७४।।

पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोगः ।। ७ ५।।

सूत्रार्थ= दो वस्तुओं के पूर्णतः विद्यमान होने पर दो में से एक (पुरुष) की सर्वप्रथम कारणता असिद्ध होने पर दूसरी वस्तु प्रकृति को जगत का सर्वप्रथम कारण मानना चाहिए।

भाष्य विस्तार = प्रकृतिपुरुषयोरखिलकार्यात् पूर्वसत्तावत्त्वे सति एकतरस्यैकस्यचिदाद्यहेतुताहाने प्राथमिककारणत्वासिद्धौ आदिमूल कारण क्या है इसकी खोज करते हैं, दो वस्तु हैं एक प्रकृति दूसरा पुरुष। **प्रकृतिपुरुषयोरखिलकार्यात् पूर्वसत्तावत्त्वे सति** अखिल सम्पूर्ण जगत में जो पदार्थ बनाए गए इस सम्पूर्ण जगत के उत्पन्न पदार्थों से प्रकृति और पुरुष ये दोनों पूर्व सत्ता वाले थे (जगत बनने से पहले ये दोनों विद्यमान थे) उन्हीं में से कोई न कोई कारण होगा क्योंकि जगत का कारण जगत से पहले होना चाहिए था **एकतरस्यैकस्यचिदाद्यहेतुताहाने** जब हमने पुरुष के विषय में सोचा कि क्या जीवात्मा जगत का उपदान कारण हो सकता है? नहीं हो सकता। क्योंकि वह चेतन पदार्थ है। जो ठोस पदार्थ है बड़े बड़े तो इनका उपदान कारण भी कोई ठोस स्थूल होना चाहिए। क्या पुरुष ठोस है पत्थर की तरह? नहीं है। इस प्रकार से एक वस्तु

एकतरस्यैकस्यचिदाद्यहेतुताहाने प्राथमिककारणत्वासिद्धौ (अन्यतरयोगः) तद्भिन्नस्याद्यहेतुतायोगः प्राथमिककारणत्वयोगो विज्ञेयः। तत्र पुरुषे न पारम्पर्येणाणुत्वमस्ति, यथा योगदर्शनस्य व्यासभाष्ये सूचितम् ''पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मो विषयः, आप्यस्य रसतन्मात्रं तैजसस्य रूपतन्मात्रं वायवीयस्य स्पर्शतन्मात्रम्, आकाशस्य शब्दतन्मात्रमिति, तेषामअहंकारः, अस्यापि लिंगमात्रं सूक्ष्मोविषयः, लिंगस्यालिंग सूक्ष्मो विषयः, न चालिंगात्परं सूक्ष्ममस्ति, यथा लिंगात्परमलिंगस्य सौक्ष्म्यं न चैवं पुरुषस्य किन्तु लिंगस्यान्वयिकारणं पुरुषो न भवति, अतः प्रधाने सौक्ष्म्यं निरतिशयं व्याख्यातम्'' (योग ०१.४५ व्यासः) तस्मादखिलकार्यजाते प्रकृतेराद्यहेतुता प्राथमिकारणतेति गतम् ।। ७५ ।।

प्रकृतेराद्यहेतुता प्रतिपाद्यतेऽणुवदितिदृष्टान्तेन तर्ह्यणुरेव भवतु सर्वस्य जगत आद्यहेतुरित्याकांक्षायामुच्यते –

जगत के उपदान कारण होने में असिद्ध हो गई, इसलिए कहा एक वस्तु तो आद्य हेतु होने में असिद्ध हो गई **प्राथमिककारणत्वासिद्धौ** वो प्रथम कारण सिद्ध नहीं हो सकी। तब **तद्भिन्नस्याद्यहेतुतायोगः प्राथमिककारणत्वयोगो विज्ञेयः** पुरुष से भिन्न दूसरी वस्तु वो है प्रकृति। प्रकृति की आद्य हेतुता, उसी को प्राथमिक कारण मानना चाहिए, ये सिद्ध हुआ। **तत्र पुरुषे न पारम्पर्येणाणुत्वमस्ति,** जैसी परंपरा से अणुता (सूक्ष्म से भी सूक्ष्म ये कार्य कारण परंपरा थी) ये जैसी प्राकृतिक द्रव्य में थी वैसी पुरुष में नहीं, पुरुष में तो ऐसी परंपरा से स्थूलता है नहीं **यथा योगदर्शनस्य व्यासभाष्ये सूचितम् ''पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मो विषयः,** जैसी योगदर्शन के व्यास भाष्य में बताई गई सूक्ष्मता है वैसी पुरुष में नहीं घटती। पार्थिव अणु का जो सूक्ष्म पदार्थ है, वह है गंध तन्मात्रा। **आप्यस्य रसतन्मात्रं तैजसस्य रूपतन्मात्रं वायवीयस्य स्पर्शतन्मात्रम्, आकाशस्य शब्दतन्मात्रमिति**, जलीय पदार्थ का सूक्ष्म विषय है वह रस तन्मात्रा, तेजस का रूप तन्मात्रा, वायु का स्पर्श तन्मात्रा और आकाश का शब्द तन्मात्रा है। **तेषामअहंकारः,** इन सबका जो और सूक्ष्म विषय है वो है अहंकार। **अस्यापि लिंगमात्रं सूक्ष्मोविषयः,** इस अहंकार का भी सूक्ष्म विषय लिंगमात्र=महतत्व है, **लिंगस्यालिंगसूक्ष्मो विषयः,** लिंग का सूक्ष्म विषय अलिंग है। अलिंग नाम प्रकृति का है (सत्व रज तम)। **न चालिंगात्परं सूक्ष्ममस्ति,** और इस अलिंग से सूक्ष्म कुछ भी नहीं है। **यथा लिंगात्परमलिंगस्य सौक्ष्म्यं न चैवं पुरुषस्य** जैसी सूक्ष्मता महतत्व की तुलना में प्रकृति की है और उसका उपदान भी है, इस प्रकार से पुरुष में ऐसी सूक्ष्मता नहीं है **किन्तु लिंगस्यान्वयिकारणं पुरुषो न भवति,** लिंग=महतत्व का अन्वयी कारण पुरुष नहीं होता अपितु प्रकृति होती है। **अतः प्रधाने सौक्ष्म्यं निरतिशयं व्याख्यातम्''** इसलिए प्रधान में सबसे अधिक सूक्ष्मता स्वीकार की गई, कार्य कारण परंपरा से सबसे अधिक सूक्ष्मता प्रकृति की मानी गई **(योग १.४५ व्यासः) तस्मादखिलकार्यजाते प्रकृतेराद्यहेतुता प्राथमिककारणतेति गतम्** इस सम्पूर्ण कार्य पदार्थ में प्रकृति की आद्य हेतुता है अर्थात प्राथमिक कारणता है, ये सिद्ध हुआ ।। ७५ ।।

प्रकृतेराद्यहेतुता प्रतिपाद्यतेऽणुवदितिदृष्टान्तेन तर्ह्यणुरेव भवतु सर्वस्य जगत आद्यहेतुरित्याकांक्षायामुच्यते– प्रकृति की आद्य हेतुता प्रतिपादित की है की प्रकृति सबसे आदि मूल कारण है और इसको सिद्ध करने के लिए 'अणुवत' ये दृष्टांत दिया अब पूर्वपक्षी कहता है कि अणु को ही सब जगत का आदिमूल

परिच्छिन्नत्वान्न सर्वोपादानम्* ।।७६।।

(परिच्छिन्नत्वात्) अणोः परिच्छिन्नत्वादेकदेशित्वात् (सर्वोपादानं न) सर्वस्य जगत उपादानं न भवितुमर्हति, एकैकस्य घटादिकस्य वस्तुनः पार्थिवादिकस्य पदार्थस्य वा तत्तदणुः स्यादुपादानं कारणं न सर्वेषां वस्तूनां पार्थिवाप्य तैजसवायव्याकाशीयानां पदार्थानामणुरेकः सर्वोपादानं भवति किन्तु प्रत्येकस्य पृथक् पृथक् पदार्थस्य पृथक्पृथगेवाणुरुपादानं भवितुमर्हेत् सर्वोपादानं न । तस्मात् प्रकृतिरेव सर्वोपादानं तस्या एव सर्वोपादानत्वादाद्यहेतुतासम्भवः ।।७६।।

पुनश्च -

तदुत्पत्तिश्रुतेश्च ।।७७।।

कारण मान लें तो । ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं-

परिच्छिन्नत्वान्न सर्वोपादानम्* ।।७६।।

सूत्रार्थ= घट आदि पदार्थों का एक एक अणु एक देशी होने से सम्पूर्ण जगत के वस्तुओं का एक अणु उपादान कारण नहीं हो सकता ।

भाष्य विस्तार = **अणोः परिच्छिन्नत्वादेकदेशित्वात्** अणु के परिछिन्न होने से अर्थात एक देशी होने से **सर्वस्य जगत उपादानं न भवितुमर्हति,** सारे जगत का उपादान कारण नहीं हो सकता। **एकैकस्य घटादिकस्य वस्तुनः पार्थिवादिकस्य पदार्थस्य वा तत्तदणुः स्यादुपादानं कारणं** (एक एक वस्तु के अणु उसी एक एक वस्तु का उपादान कारण मानें जाएंगे) जो जो परमाणु जिस जिस वस्तु में विद्यमान है वह उस उस वस्तु का उपादान कारण माना जाएगा एक वस्तु में विद्यमान अणु सबका उपादान कारण नहीं माना जाएगा। **न सर्वेषां वस्तूनां पार्थिवाप्य तैजसवायव्याकाशीयानां पदार्थानामणुरेकः सर्वोपादानं भवति** पार्थिव जलीय वायवीय अग्नि आकाशीय पदार्थों का एक ही परमाणु सबका उपादान कारण नहीं हो सकता। **किन्तु प्रत्येकस्य पृथक्-पृथक् पदार्थस्य पृथक्पृथगेवाणुरुपादानं भवितुमर्हेत् सर्वोपादानं न**। किंतु प्रत्येक वस्तु का परमाणु उस उस वस्तु का उपादान बन सकता है सब वस्तुओं का उपादान नहीं हो सकता क्योंकि वह एक देशीय है। **तस्मात् प्रकृतिरेव सर्वोपादानं तस्या एव सर्वोपादानत्वादाद्यहेतुतासम्भवः** अणु हर वस्तु में विद्यमान नहीं है इसलिए हर वस्तु का वह उपादान नहीं हो सकता, जबकि सत्व रज तम प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है पूरे ब्रह्माण्ड में फैली है इसलिए वही प्रकृति सबका उपादान कारण है **।।७६।।**

पुनश्च -

तदुत्पत्तिश्रुतेश्च ।।७७।।

सूत्रार्थ= प्रकृति से ही सारे कार्य जगत की उत्पत्ति हुई है यह वेद से भी सिद्ध है ।

भाष्य विस्तार = **उत्पत्तिरत्र न भावनिर्देशः किन्तु कर्मनिर्देशः, उत्पत्तिरत्र न भावनिर्देशः** अब यहाँ सूत्र में 'तदुत्पत्ति' शब्द है इस उत्पत्ति के ऊपर ये चर्चा है 'उत्पत्ति' में 'क्तिन' प्रत्यय है जो कि यहाँ भाव अर्थ में नहीं है **किन्तु कर्मनिर्देशः** किन्तु यहाँ उत्पत्ति का अर्थ कर्म है जो उत्पन्न हुआ है पदार्थ वो है। **क्तिन्**

(तदुत्पत्तिश्रुतेः-च) उत्पत्तिरत्र न भावनिर्देशः किन्तु कर्मनिर्देशः, क्तिन् प्रत्ययस्य कर्मण्यपि विधानात्। तस्मात्-उत्पत्तिरर्थात् सृष्टिः, तदुत्पत्तिश्रुतेस्तस्सृष्टिश्रुतेः, तच्छब्धेन सैव प्रकृतिर्गृह्यते या प्रक्रियते, प्रकृतेः सृष्टिश्रुते प्रकृतेर्विकृतिविषयिका श्रुतिरस्तीति हेतोश्च प्रकृतिरेव सर्वोपादानमाद्यहेतुः। श्रुतिः खलु "तम आसीत् तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सर्वं सलिलमा इदम्। तुच्छ्येनाभ्वापिहितं यदासीत्तन्महिना जायतैकम्।।" (ऋ० १०. १२९. ३) 'आभु' अपिहितं यदासीत्तन्महिना जायतैकम् । यत् 'आभु' आसीत् तत उत्पत्तिश्रुतिः, तदेवैकं जायते महिना महत्तत्त्वरूपेण प्रथमा विकृतिः सृष्टिः ।"इयं विसृष्टिर्यत आबभूव" (ऋ० १०.१२९. ७) यत्पूर्वमुक्तम् 'आभु' ततः 'आबभूव सृष्टिः' इति कथनं च योगानुसारि। "तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत" (बृह० १.४-७) "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः" (श्वेता० ४.५) "प्रधानाज्जायते सृष्टिः" इत

प्रत्ययस्य कर्मण्यपि विधानात् क्तिन प्रत्यय का कर्म में विधान है **तस्मात्-उत्पत्तिरर्थात् सृष्टिः,** यदि भाव वाचक मानेगे तो 'उत्पन्न होने कि प्रक्रिया' ये अर्थ होगा और यदि कर्म वाचक मानेगे तो 'उत्पन्न हुआ द्रव्य' तो उत्पत्ति का अर्थ हो जाएगा 'सृष्टि' ये अंतर आएगा। **तदुत्पत्तिश्रुतेस्तस्सृष्टिश्रुतेः,** प्रकृति से सृष्टि का उत्पन्न होना सुनाई देता है, **तच्छब्धेन सैव प्रकृतिर्गृह्यते या प्रक्रियते,** सूत्र में जो 'तदुत्पत्ति' शब्द आया है उसमें जो 'तद' शब्द है इस तद शब्द से प्रकृति का ग्रहण करना चाहिए **प्रकृतेः सृष्टिश्रुते प्रकृतेर्विकृतिविषयिका श्रुतिरस्तीति हेतोश्च प्रकृतिरेव सर्वोपादानमाद्यहेतुः। प्रकृतेः सृष्टिश्रुते** प्रकृति से सृष्टि का उत्पन्न होना सुनाई देने से **प्रकृतेर्विकृतिविषयिका श्रुतिरस्ति** विकृति के विषय में ये श्रुति है कि प्रकृति से ही विकृति (विशेष रूप से बनी) बनी है **इति प्रकृतिरेव सर्वोपादानमाद्यहेतुः** ऐसा श्रुति वचन मिलता है इस कारण से प्रकृति ही सबका उपादान आदिमूल कारण है। **श्रुतिः खलु "तम आसीत् तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सर्वं सलिलमा इदम्। तुच्छ्येनाभ्वापिहितं यदासीत्तन्महिना जायतैकम् ।।" (ऋ० १०. १२९. ३)** भाष्यकार इसकी व्याख्या करते हैं **'आभु' अपिहितं यदासीत्तन्महिना जायतैकम्।** आभू नाम है यहाँ प्रकृति का । प्रलय अवस्था में जगत उत्पत्ति से पूर्व आभु नाम वाली प्रकृति थी वो ढकी हुई थी वह एक महतत्व के रूप में प्रकट हुई यत् 'आभु' आसीत् तत उत्पत्तिश्रुतिः, जो आभु नाम का पदार्थ था उसी से उत्पत्ति सुनाई दे रही है तदेवैकं जायते महिना महत्तत्त्वरूपेण प्रथमा विकृतिः सृष्टिः। वही एक महतत्व के रूप में प्रकट हुआ वो पहली विकृति रूप सृष्टि थी जिसका नाम था महतत्व। **"इयं विसृष्टिर्यत आबभूव"** यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस उपदान से प्रकट हुई है **यत्पूर्वमुक्तम् 'आभु' ततः 'आबभूव सृष्टिः' इति कथनं च योगानुसारि।** ये जो 'आभु' नाम की प्रकृति है जो पूर्व में बताई थी, **ततः 'आबभूव सृष्टिः'** उसी से सारी सृष्टि उत्पन्न हुई **इति कथनं च योगानुसारि** ये कथन योगानुसार=प्रसंगानुसार है। **"तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत"** प्रलय अवस्था में जब कुछ भी बना हुआ नहीं था उस समय नाम और रूप के माध्यम से वह प्रकट हुआ जगत बनकर के **"अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः"** इसमें कहते हैं कि एक प्रकृति को जो कभी जन्म नहीं लेती ऐसी एक मूल प्रकृति को लाल सफ़ेद और काले रंग वाली (सत्व रज तम वाली) बहुत सी प्रजा को वो उत्पन्न करती है, समान रूप वाली को उत्पन्न करती है । एक और वचन उद्धृत किया है

श्रुतिनाम्नाऽनिरुद्धवृत्तौ कुतश्चिदुद्धृतं वचनम् ।। ७७।।

प्रकृतेरदृश्यत्वात्सा न वस्तु तर्हि स्यादवस्तुनः सृष्टिः। उच्यते -

नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः ।। ७८।।

(अवस्तुनः-वस्तुसिद्धिः-न)अवस्तुनोऽभावात्-अभावरूपात् खलु वस्तु-सिद्धिर्जगद्रूपवस्तुसिद्धिर्न भवति। तस्माज्जगत उपादानकारणं प्रकृतिर्वस्तुरूपा नाभावरूपा ।।७८।।

जगदपि खल्ववस्तु भवतु। अत्रोच्यते -

''प्रधानाज्जायते सृष्टिः'' इत श्रुतिनाम्नाऽनिरुद्धवृत्तौ कुतश्चिदुद्धृतं वचनम् ये भी एक वचन है जो अनिरुद्ध वृत्ती में उद्धृत किया है ''उस प्रधान से सृष्टि बनी'' ।।७७।।

प्रकृतेरदृश्यत्वात्सा न वस्तु तर्हि स्यादवस्तुनः सृष्टिः। उच्यते - पूर्वपक्षी कहता है कि प्रकृति के अदृश्य होने से, वो कोई वस्तु थोड़ी है फिर तो अवस्तु से सृष्टि बनी। ऐसा मानना चाहिए। इसका उत्तर देते हैं-

नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः ।। ७८।।

सूत्रार्थ= अवस्तु=अभाव से वस्तु कि उत्पत्ति नहीं होती है ।

भाष्य विस्तार = अवस्तुनोऽभावात्-अभावरूपात् खलु वस्तु- सिद्धिर्जगद्रूपवस्तुसिद्धिर्न भवति। सिद्धांती ने उत्तर दिया जो अवस्तु है अभाव रूप है उससे भाव रूप जगत कि सिद्धि किसी वस्तु कि सिद्धि नहीं होती **तस्माज्जगत उपादानकारणं प्रकृतिर्वस्तुरूपा नाभावरूपा** इसलिए जगत का उपदान कारण वो प्रकृति वस्तु रूप है अभावरूप नहीं है ।।७८।।

जगदपि खल्ववस्तु भवतु। अत्रोच्यते - जगत भी अवस्तु हो जावे, उसे भी अवस्तु माने लें तो। इस का उत्तर देते हैं-

अबाधाददुष्टकारणजन्यत्वाच्च नावस्तुत्वम् ।।७९।।

सूत्रार्थ= प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से जगत का खण्डन न होने से और दोष रहित नेत्र आदि साधनों से जगत की प्रतीति होने के कारण जगत का अभाव रूप नहीं है ।

***सूत्रार्थ*= जगतोऽबाधात्,** सिद्धांती कहता है कि जगत का बाध नहीं होता **प्रमाणेन जगतो बाधो न भवति किन्तु प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैरुपलभ्यते** एक हेतु दिया जगत को सत्तात्मक सिद्ध करने का कि जगत अभाव रूप नहीं है कि प्रमाण से जगत का बाध (खंडन) नहीं होता किन्तु प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सब जगत दिखता है दूसरा हेतु **तथा दुष्टकारणजन्यमपि न जगत्,** और यह जो जगत है वह दुष्ट कारण से बना हुआ नहीं है, जगत का जो ज्ञान हो रहा है वह दुष्ट कारण से नहीं अपितु सही कारण से ज्ञान हो रहा है। **यथा कामलादिनेत्रदोषात् पीतशंखप्रतीतिर्भवति।** जैसे किसी को कामला (पीलिया) रोग हो जाए आँख में और उसे सफ़ेद शंख भी पीला दिखता है यह नेत्र दोष के कारण दिख रही है । सिद्धांती कह रहा है हमें

अबाधाददुष्टकारणजन्यत्वाच्च नावस्तुत्वम् ।। ७९ ।।

(अबाधात्-अदुष्टकारणजन्यत्वात्-च) जगतोऽबाधात्, प्रमाणेन जगतो बाधो न भवति किन्तु प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैरुपलभ्यते तथाऽदुष्टकारणजन्यमपि न जगत्, यथा कामलादिनेत्रदोषात् पीतशंखप्रतीतिर्भवति । तस्मात् (अवस्तुत्वं न) जगतोऽवस्तुत्वं न किन्तु वस्तुरूपमेवास्ति, तेन वस्तुत्वे सति जगतस्तस्य कारणेनापि वस्तुना भाव्यं यतो नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः ।। ७९ ।।

तस्मात् –

नेत्र रोग हो गया हो हमको जगत पीला दिख रहा हो ऐसा नहीं है **तस्मात् जगतोऽवस्तुत्वं न किन्तु वस्तुरूपमेवास्ति**, इसलिए जगत का अवस्तुत्व नहीं है किन्तु वस्तु रूप ही है। ऐसा ही मानना चाहिए। **तेन वस्तुत्वे सति जगतस्तस्य कारणेनापि वस्तुना भाव्यं यतो नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः** इस कारण से जगत को वस्तु रूप मान लेने पर उसका कारण भी वस्तु रूप होना चाहिए क्योंकि सृष्टि का ये नियम है अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती। जगत जब सत्तात्मक है प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सिद्ध होता है इसका मूल कारण द्रव्य प्रकृति भी सत्तात्मक है ये सिद्ध हुआ। तो पूर्वपक्षी की दोनों बाते गलत सिद्ध हुई एक तो प्रकृति को अभाव रूप कह रहा था और दूसरा जगत को भी **।। ७९ ।।**

तस्मात् –

भावे तद्योगेन तत्सिद्धिरभावे तदभावात् कुतस्तरां तत्सिद्धिः ।। ८० ।।

सूत्रार्थ= कारण द्रव्य के विद्यमान होने पर उसके संबंध से कार्य वस्तु की सिद्धि हो जाती है, और यदि कारण न हो फिर कार्य की सिद्धि कैसे हो सकती है ।

भाष्य विस्तार = कारणस्य वस्तुत्वे सति तत्सम्बन्धेन कार्यस्यापि वस्तुत्वसिद्धिर्भवति। भावे शब्द का अर्थ है 'कारणस्य भावे' कारण की सत्ता होने पर कारण के विद्यमान होने पर **तत्सम्बन्धेन** उसके संबंध से **कार्यस्यापि वस्तुत्वसिद्धिर्भवति** कार्य सत्तात्मक होगा अर्थात कार्य वस्तु की सिद्धि होती है। अब इसके उलटके बोलते हैं **कारणस्याभावेऽवस्तुत्वे तदभावयोगात् कुतो हि जगत्सिद्धिर्भवेन्न कुतोपीत्यर्थः** जब कारण का अभाव होगा वस्तुरूप होगा ही नहीं तब कारण का अभाव होने से फिर जगत की सिद्धि कैसे हो जाएगी? अर्थात किसी भी प्रकार से नहीं बनेगा। **अस्ति हि जगत् तस्मात् प्रकृत्याख्येन भावपदार्थेन जगत्कारणेन भवितव्यमेव** तो कह रहे हैं **अस्ति हि जगत्** जगत तो है, वह तो दिख रहा है प्रमाणों से सिद्ध हो रहा है **तस्मात्** इसलिए **प्रकृत्याख्येन भावपदार्थेन जगत्कारणेन** प्रकृति नामक भाव पदार्थ जो कि जगत का कारण है उसका अस्तित्व **भवितव्यमेव** होना ही चाहिए, अर्थात प्रत्येक स्थिति में प्रकृति सत्तात्मक है तभी उससे ये जगत बन पाया, अन्यथा नहीं बनता ।। ८० ।।

अथ –

न कर्मण उपादानत्वायोगात् ।। ८१ ।।

सूत्रार्थ= कर्म से जगत की उत्पत्ति नहीं है। कर्म में उपादान बनने की योग्यता न होने से ।

भावे तद्योगेन तत्सिद्धिरभावे तदभावात् कुतस्तरां तत्सिद्धिः ।।८०।।

(भावे) कारणस्य वस्तुत्वे सति (तद्योगेन) तत्सम्बन्धेन (तत्सिद्धिः) कार्यस्यापि वस्तुत्वसिद्धिर्भवति (अभावे) कारणस्याभावेऽवस्तुत्वे (तदभावात्) तदभावयोगात् (कुतस्तरां तत्सिद्धिः) कुतो हि जगत्सिद्धिर्भवेन्न कुतोपीत्यर्थः । अस्ति हि जगत् तस्मात् प्रकृत्याख्येन भावपदार्थेन जगत्कारणेन भवितव्यमेव ।।८०।।

अथ –

न कर्मण उपादानत्वायोगात् ।।८१।।

(न कर्मणः) यदि केनचित्कल्प्येत काऽऽवश्यकता भावरूपायाः प्रकृतेर्जगत्सिद्धौ यस्या विवेकोऽक्ष्येत भवतु कर्मणो जगत्सिद्धिः । तर्हि न कर्मणो जगत्सिद्धिः सम्भवति । यतः (उपादानत्वायोगात्)

भाष्य विस्तार = **यदि केनचित्कल्प्येत काऽऽवश्यकता भावरूपायाः प्रकृतेर्जगत्सिद्धौ यस्या विवेकोऽक्ष्येत भवतु कर्मणो जगत्सिद्धिः। यदि केनचित्कल्प्येत** यदि कोई व्यक्ति ऐसी कल्पना करे **काऽऽवश्यकता** 'क्या आवश्यकता है **भावरूपायाः भाव रूप प्रकृतेर्जगत्सिद्धौ** प्रकृति से जगत की उत्पत्ति मानने की' यदि ऐसा मान लेंगे तो फिर **यस्या विवेकोऽक्ष्येत** उस प्रकृति का विवेक भी करना पड़ेगा (यदि प्रकृति को सत्तात्मक मान लेंगे उससे जगत की उत्पत्ति मान लेंगे तो फी उसकी जानकारी=विवेक करना पड़ेगा) **भवतु कर्मणो जगत्सिद्धिः** । सीधे कर्म से जगत की उत्पत्ति मान लो, ऐसा यदि कोई कहे **तर्हि न कर्मणो जगत्सिद्धिः सम्भवति**। सिद्धांती कह रहा है कि आपकी मान्यता के अनुसार कर्म से जगत कि उत्पत्ति नहीं हो सकती। **यतः कर्मणो द्रव्यनिष्ठत्वाद् द्रव्याद्भिन्नं न तत् स्वसत्ताकं** क्योंकि कर्म तो द्रव्य निष्ठ है अर्थात कर्म द्रव्य में टिकता है द्रव्य के सहारे ही कर्म किया जाता है, द्रव्य से भिन्न उसकी सत्ता नहीं है **भवतु तत् कार्यस्य लक्षणं न तूपादानं तस्याद्रव्यत्वादुपादानत्वायोग्यत्वमस्ति**। ठीक है **भवतु तत् कार्यस्य लक्षणं न तूपादानं** कर्म कार्य का लक्षण तो माना जा सकता है, (कार्य जगत को देखकर ये अनुमान तो किया ही जा सकता है कि कर्म से ये हुआ है, प्रकृति के मूल कारण द्रव्य में ईश्वर ने क्रिया की उस क्रिया का परिणाम ये हुआ की कारण द्रव्य कार्य द्रव्य में परिवर्तित हो गया और जगत बन गया) परंतु प्रकृति को कारण उपदान से हटा देवे और कर्म को उपदान द्रव्य मान ले ये संभव नहीं है क्योंकि उसका स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं है । और वह द्रव्य ही नहीं है क्रिया है **तस्याद्रव्यत्वादुपादानत्वायोग्यत्वमस्ति** और क्रिया किसी द्रव्य का उपदान कारण नहीं बन सकती उसमें योग्यता नहीं है, इसलिए कर्म को जगत का उपादान नहीं मान सकते। **उपादानं तु तदेव भवति यद्रूपान्तरत्वमादत्ते परिणमते कर्म तु द्रव्यस्थं यावत्कर्मणोऽन्तः स्यात् तावदेवावतिष्ठते न स्थायि** उपादान तो वही हो सकता है जो भिन्न रूप को धारण करे (जो वस्तु अन्य अन्य रूप को धारण कर लेती है वो उपादान बन सकती है, वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है) और परिणाम को प्राप्त होता रहता है जबकि **कर्म तु द्रव्यस्थं** कर्म तो द्रव्य में स्थित रहता है **यावत्कर्मणोऽन्तः स्यात्** जब तक कर्म का अन्त होवे तावदेवावतिष्ठते वह उतनी देर तक ठहरता है **न स्थायि** वह स्थायी तो है नहीं। **किन्तु प्रकृतेरेव परिणामो जगत् तस्मात् प्रकृतेर्विवेकोऽपेक्ष्यते हि** किन्तु प्रकृति का ही ये परिणाम है जो जगत है इसलिए प्रकृति का विवेक

कर्मणो द्रव्यनिष्ठत्वाद् द्रव्याद्भिन्नं न तत् स्वसत्ताकं भवतु तत् कार्यस्य लक्षणं न तूपादानं तस्याद्रव्यत्वादुपादानत्वायोग्यत्वमस्ति। उपादानं तु तदेव भवति यद्रूपान्तरत्वमादत्ते परिणमते कर्म तु द्रव्यस्थं यावत्कर्मणोऽन्तः स्यात् तावदेवावतिष्ठते न स्थायि किन्तु प्रकृतेरेव परिणामो जगत् तस्मात् प्रकृतेर्विवेकोऽपेक्ष्यते हि ।।८१ ।।

नानुश्रविकादपि तत्सिद्धः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ।।८२।।

(आनुश्रविकात्-अपि तत्सिद्धिः-न) अनुश्रयते वेदादित्यानुश्रविकः, अनुश्रवो वेदोपदेशः । न भवतु कर्म जगत उपादानं किन्तु प्रकृतिर्जगत उपादानं पुनः प्रकृतेर्विवेकोऽपेक्ष्यते-इत्युच्यते परन्तु यदानुश्रविकं कर्म तस्मान्मोक्षसिद्धिर्भविष्यतीति प्रसंगेखलूच्यते-आनुश्रविकाद् वैदिककर्मणोऽपि मोक्षसिद्धिर्न भविष्यति। यतः (साध्यतेवेन) यथा लौकिककर्मणः फलं साध्यकोटौ तद्वद्वैदिककर्मणः

अपेक्षित है उसे जानना ही पड़ेगा ।।८१ ।।

नानुश्रविकादपि तत्सिद्धः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ।।८२।।

सूत्रार्थ= वेदोक्त यज्ञ आदि कर्मों से भी मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती, यज्ञ आदि कर्म मोक्ष प्राप्त कराने में असमर्थ होने से, पुनर्जन्म होने के कारण पुरुष का प्रयोजन (सम्पूर्ण दु:ख निवृत्ति) सिद्ध नहीं होता।

भाष्य विस्तार = **अनुश्रयते वेदादित्यानुश्रविकः**, सूत्र में जो आनुश्रविक शब्द है उसकी व्याख्या करते हैं कि इस शब्द का तात्पर्य क्या है वेद से हम सुनते हैं वेद से ऋषियों ने जाना फिर उन्होने अपने शिष्यों को सिखाया, ये आनुश्रविक है। **अनुश्रवो वेदोपदेशः**। अनुश्रव नाम है वेद उपदेश का (क्योंकि वेद आरंभ में सुन सुनके ही सीखा गया) **न भवतु कर्म जगत उपादानं किन्तु प्रकृतिर्जगत उपादानं** पूर्व पक्षी कहता है कि **कर्म जगत उपदानं न भवतु** कर्म जगत का उपादान कारण न बन पाए, न सही **किन्तु प्रकृतिर्जगत उपादानं** किन्तु प्रकृति जगत का उपादान बन जाए (ये भी मान लिया कि कर्म नहीं प्रकृति है जगत का उपादान) **पुनः प्रकृतेर्विवेकोऽपेक्ष्यते** फिर प्रकृति को उपादान मान लिया तो उसका विवेक भी कारण पड़ेगा उसको भी जानना पड़ेगा **इत्युच्यते** ऐसा आपने (सिद्धांती) कहा। **परन्तु यदानुश्रविकं कर्म तस्मान्मोक्षसिद्धिर्भविष्यतीति प्रसंगेखलूच्यते** पूर्वपक्षी कहता है सिद्धांती से आपने कहा प्रकृति को जानो विवेक को प्राप्त करो फिर मोक्ष होगा। **परन्तु** परंतु वेदों में जो कर्म करने को बताया है (यज्ञ दान सेवा परोपकर आदि) क्या इन कर्मों से मोक्ष नहीं होता? **यदानुश्रविकं कर्म तस्मान्मोक्षसिद्धिर्भविष्यति** इन आनुश्रविक कर्मों के करने से मोक्ष सिद्ध हो जाएगा? **इति प्रसंगेखलूच्यते** ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर सिद्धांती उत्तर देता है **आनुश्रविकाद् वैदिककर्मणोऽपि मोक्षसिद्धिर्न भविष्यति**। आनुश्रविक से वैदिक कर्म से भी जैसे- यज्ञ, दान, सेवा, परोपकार, वैदिक कर्म, उपदेश करना, पढ़ाना आदि से मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती। **यतः** क्योंकि **यथा लौकिककर्मणः फलं साध्यकोटौ तद्वद्वैदिककर्मणः फलमपि साध्यकोटौ साध्यत्वेन फलक्षयप्रसंगः**। यहाँ जो वैदिक कर्म है वो सकाम कर्म हैं **यथा लौकिककर्मणः फलं साध्यकोटौ** जैसे लौकिक कर्मों (नौकरी, धन्धा, व्यापार, कारीगरी, मजदूरी आदि) का फल साध्य कोटि में है (साध्य कोटि= इनसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता) इससे मोक्ष सिद्ध नहीं होता, इनसे तो जीवन चलता है लौकिक व्यवहार चलते हैं। **तद्वद्वैदिककर्मणः फलमपि साध्यकोटौ**

फलमपि साध्यकोटौ साध्यत्वेन फलक्षयप्रसंगः। उच्यते च "तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते" (छान्दो ० ८.१.६) पुनः (आवृत्तियोगात्) पुरुषस्यावृत्तियोगो भविष्यति। अतः (अपुरुषार्थत्वम्) अपुरुषार्थत्वं स्यात् ।। ८२।।

किन्तु -

तत्र प्राप्तविवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः ।। ८३।।

(तत्र) प्रकृतिपुरुषविषये (प्राप्तविवेकस्य) प्राप्तो विवेको येन विदुषा तस्य (अनावृत्तिश्रुतिः) अनावृत्तिश्रुतिरस्ति "तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्य .....एतममृतमभयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्ते" (प्रश्नो ०१.१०) ।। ८३।।

विवेकमन्तरेण कर्मणा तु -

वैसे ही जो वैदिक कर्म हैं से भी मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि ये सकाम भावना से किए जा रहे हैं। क्योंकि इन कर्मों में तत्वज्ञान नहीं है जिससे वैराग्य भी नहीं फिर निष्काम कर्म भी नहीं। **साध्यत्वेन फलक्षयप्रसंगः**। चूंकि ये सकाम कर्म है साध्य कोटि में नहीं है, इनका फल लौकिक जाति-आयु-भोग है। प्रमाण देते हैं- **उच्यते च "तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते" (छान्दो ० ८.१.६)** कहते हैं जैसे **तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते,** इस जन्म में सांसरिक कर्म से जो फल प्राप्त होता है वह उपभोग कर यहीं समाप्त ही जाता है **एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते** और जो दान सेवा परोपकार यज्ञ आदि कर्म किए उनका फल अगला जन्म है वह भी उपभोग के बाद नष्ट हो जाएगा। इसलिए सकाम कर्मों से मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। **पुनः पुरुषस्यावृत्तियोगो भविष्यति।** जो लौकिक कर्म थे उनका फल वर्तमान जन्म में भोग लेते हैं जो आध्यात्मिक सामाजिक कर्म है उनका फल अगले जन्म में भोग लेते हैं। फिर संसार में लौटना पड़ेगा अगला जन्म लेना पड़ेगा। **अतः अपुरुषार्थत्वं स्यात्** अतः मोक्ष मार्ग में तो इन कर्मों की अपुरुषार्थता है अर्थात इन लौकिक व वैदिक कर्मों से मोक्ष नहीं मिलेगा ।। ८२।।

किन्तु -

तत्र प्राप्तविवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः ।। ८३।।

सूत्रार्थ= प्रकृति और पुरुष के संबंध में विवेक प्राप्त कर लेने वाले व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता, ऐसा श्रुति कहती है ।

भाष्य विस्तार = **प्रकृतिपुरुषविषये प्राप्तो विवेको येन विदुषा तस्य अनावृत्तिश्रुतिरस्ति** कहते हैं सकाम कर्म से मोक्ष तो मिलेगा नहीं **परंतु प्रकृतिपुरुषविषये** प्रकृति पुरुष के विषय में **प्राप्तो विवेको येन विदुषा** जिस विद्वान ने विवेक प्राप्त कर लिया उसको तत्वज्ञान ईश्वर-जीव-प्रकृति का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाएगा **तस्य अनावृत्तिश्रुतिरस्ति** उसका अगला जन्म रुक जाएगा अर्थात उसका मोक्ष हो जाएगा उसकी संसार में आवृत्ती नहीं होगी। श्रुति में कहा **"तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्य .....एतममृतमभयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्ते"** जो मनुष्य तप से, ब्रह्मचर्य के पालन से श्रद्धा से,

दु:खाद् दु:खं जलाभिषेकवन्न जाड्यविमोक्ष: * ।।८ ४।।

(दु:खात्-दु:खम्) विवेकमन्तरेणानुश्रविककर्मणस्तु दु:खाद्दु:खमाप्नुयात्, एकं दु:खं निवृत्तमपरं दु:खमुपतिष्ठते तन्निवृत्तौ पुनरपरं दु:खमावर्तते। एवम् (जलाभिषेकवत्-जाड्यविमोक्ष:-न) यथा जलाभिषेकाज्जाड्यार्तस्य त्वग्विष्टब्धरोग- युक्तस्य विष्टब्धगात्रस्य शीतेन पीडितस्य वा जाड्यविमोक्षो न भवति ।।८ ४।।

काम्ये कर्मणि भवतु संसारदु:खसम्पर्को न त्वकाम्ये, तेनाकाम्येन कर्मणा स्यादेव विमोक्ष: । अत्रोच्यते -

काम्याकाम्येऽपि साध्यत्वाविशेषात् ।।८ ५।।

विद्या= शास्त्रों के अध्ययन से, आत्मा परमात्मा की खोज करते हैं वे लोग इस मोक्ष को प्राप्त हो जाएंगे जहां पर कोई भय नहीं ये जीवात्मा का सर्वोच्च स्थान है, मोक्ष को प्राप्त होकरके तुरन्त अगला जन्म नहीं मिलता (**प्रश्नो ०१.१०**) ।। ८३।।

विवेकमन्तरेण कर्मणा तु -

दु:खाद् दु:खं जलाभिषेकवन्न जाड्यविमोक्ष: * ।।८ ४।।

सूत्रार्थ= तत्वज्ञान के बिना केवल यज्ञादि वैदिक कर्म से व्यक्ति एक दु:ख के बाद दूसरे दु:ख को प्राप्त होता रहता है, जैसे शीतल जल से स्नान करने वाले को ठंड से मुक्ति नहीं मिलती।

भाष्य विस्तार = **विवेकमन्तरेणानुश्रविककर्मणस्तु दु:खाद्दु:खमाप्नुयात्,** तत्वज्ञान को प्राप्त किए बिना आनुश्रविक कर्म करने से तो एक दु:ख के बाद दूसरा दु:ख आता रहेगा, **एकं दु:खं निवृत्तमपरं दु:खमुपतिष्ठते** एक दु:ख के हटने पर दूसरा दु:ख आकर घेर लेगा तन्निवृत्तौ पुनरपरं दु:खमावर्तते। उस दु:ख की निवृत्ति होने पर आगे और फिर दु:ख आते रहेंगे। **एवं** इस प्रकार से **यथा जलाभिषेकाज्जाड्यार्तस्य त्वग्विष्टब्धरोग- युक्तस्य विष्टब्धगात्रस्य शीतेन पीडितस्य वा जाड्यविमोक्षो न भवति**। जैसे कोई जल से भिंगा हुआ है और ठंड के कारण दु:खी है इसके साथ ही शरीर=त्वचा सिकुड़ी हुई है ठंड के कारण शीत से पहले से ही दु:खी है और उपर से ठंडे पानी से नहाले इस स्थिति में उसको ठंड से मुक्ति नहीं मिलेगी। इसलिए तत्वज्ञान के बिना आध्यात्मिक कार्य करना ठीक नहीं है ।।८४।।

काम्ये कर्मणि भवतु संसारदु:खसम्पर्को न त्वकाम्ये, तेनाकाम्येन कर्मणा स्यादेव विमोक्ष:। अत्रोच्यते - पूर्वपक्षी कहता है-यदि सकाम कर्म करेंगे तब तो संसार में जन्म लेना पड़ेगा और संसार के दु:खों को भोगना पड़ेगा और यदि निष्काम कर्म करेंगे तब तो संसार का दु:ख नहीं भोगना पड़ेगा, इससे निष्काम कर्म करेंगे फिर तो मोक्ष हो जाएगा । इस पर कहते हैं-

काम्याकाम्येऽपि साध्यत्वाविशेषात् ।।८५।।

सूत्रार्थ= तत्वज्ञान शत प्रतिशत प्राप्त किए बिना सकाम या निष्काम कोई भी कर्म करने पर मोक्ष नहीं हो पाएगा, क्योंकि उन कर्मों का फल मोक्ष नहीं है।

(काम्याकाम्ये-अपि) विवेकमन्तरेण काम्ये वाऽकाम्येऽपि कर्मणि तथैव दु:खप्रसंगो भवति न विमोक्ष: (साध्यत्वाविशेषात्) फलस्यावरत्वात् क्षयित्वाच्च ।।८५।।

विवेकस्य साधनत्वे मोक्षफलक्षयो नेत्याह -

निजमुक्तस्य बन्धध्वंसमात्रं परं न समानत्वम् ।।८६।।

(निजमुक्तस्य) स्वरूपतो मुक्तस्य पुरुषस्य (बन्धध्वंसमात्रं परम्) विवेकात् खलु बन्धस्य ध्वंसमात्रं भवति तदेव परमभीष्टमत्यन्तपुरुषार्थत्वं मोक्षो वेति (न समानत्वम्) तत्रान्यै: साध्यफलै: सहास्य न समानत्वमस्ति नहि मोक्षस्य तद्वत्क्षयप्रसंग: ।।८६।।

विवेकसम्पादनाय सन्ति प्रमाणान्यपि साधनत्वेनोपयुक्तानीत्युच्यते -

---

भाष्य विस्तार = विवेकमन्तरेण काम्ये वाऽकाम्येऽपि कर्मणि तथैव दु:खप्रसंगो भवति न विमोक्ष: सिद्धांती कहता है यदि आपको **विवेकमन्तरेण** तत्वज्ञान नहीं हुआ **काम्ये वाऽकाम्येऽपि कर्मणि** फिर आप चाहे सकाम कर्म करो या निष्काम, **तथैव दु:खप्रसंगो भवति** उस निष्काम कर्म करने पर भी दु:ख का प्रसंग अगला जन्म होता ही रहेगा, **न विमोक्ष:** मोक्ष नहीं होगा **फलस्यावरत्वात् क्षयित्वाच्च** उसका फल भी अवर है पास वाला है निकट वाला है, **क्षयित्वाच्च** उसका फल क्षीण हो जाएगा तो मोक्ष नहीं हो पाएगा ।।८५।।

विवेकस्य साधनत्वे मोक्षफलक्षयो नेत्याह - सूत्र का अर्थ और इसकी भूमिका भिन्न है इसलिए भूमिका परिवर्तित करते हैं- मोक्ष का स्वरूप क्या है? मोक्ष की परिभाषा क्या है?

निजमुक्तस्य बन्धध्वंसमात्रं परं न समानत्वम् ।।८६।।

सूत्रार्थ= स्वरूप से मुक्त जीवात्मा के बंधन का विनाश हो जाना ही मोक्ष का स्वरूप है। इस मोक्ष फल की अन्य लौकिक फल से समानता नहीं है।

भाष्य विस्तार = स्वरूपतो मुक्तस्य पुरुषस्य विवेकात् खलु बन्धस्य ध्वंसमात्रं भवति कहते हैं **स्वरूपतो मुक्तस्य पुरुषस्य** जो जीवात्मा स्वरूप, स्वभाव से ही मुक्त है इतना होने पर भी **विवेकात् खलु बन्धस्य ध्वंसमात्रं भवति** तत्वज्ञान प्राप्त होने पर जो शरीर के साथ जीवात्मा का बंधन है वह नष्ट हो जाता है **तदेव परमभीष्टमत्यन्तपुरुषार्थत्वं मोक्षो वेति** तो ये जो बंधन कट गया इसी का नाम परम है सूत्र में 'परम' शब्द है इसे खोलते हैं- इसका ही नाम अभीष्ट है (हम यही चाहते है कि मोक्ष मिले), इसी का नाम अत्यंत पुरुषार्थ है (हमारा अंतिम प्रयोजन यही है कि दु:ख छूटना चाहिए) अथवा मोक्ष भी इसी का नाम है। **तत्रान्यै: साध्यफलै: सहास्य न समानत्वमस्ति** अन्य साध्य फलों के साथ इसकी समानता नहीं है **नहि मोक्षस्य तद्वत्क्षयप्रसंग:** अन्य लौकिक फलों के तुल्य मोक्ष के फल का क्षय प्रसंग नहीं है, वह तो करोड़ों अरबों वर्षों तक चलेगा ।।८६।।

विवेकसम्पादनाय सन्ति प्रमाणान्यपि साधनत्वेनोपयुक्तानीत्युच्यते -विवेक प्राप्ति करने के लिए प्रमाण की आवश्यकता है जो साधन के रूप में उपयोग किए जा सकते हैं । इस विषय में कहते हैं-

द्वयोरेकतरस्य वाऽप्यसन्निकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमा, तत्साधकतमं यत्तत्* त्रिविधं प्रमाणम्+।
तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः ।।८७-८८।।

(द्वयोः-एकतरस्य वा-अपि) प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकाय यद्वैकतरस्य पदार्थस्य प्रकृतेः पुरुषस्य विवेकायापि (असन्निकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमा) अनधिगतार्थस्य परिनिष्ठा परिज्ञानं निश्चयः प्रमाऽपेक्ष्यते (तत्साधकतमं यत् तत् त्रिविधं प्रमाणम्) तस्य साधकतमं यत् तत् त्रिविधं प्रमाणं भवति (तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेः) शास्त्रान्तरेषु स्युरधिकानि प्रमाणानि किन्त्वत्र तु त्रिविधप्रमाणसिद्धौ त्रिविधप्रमाणस्वीकारे त्रिविधप्रमाणव्यवहारे सर्वसिद्धेः प्रकृतिपुरुषविवेकयोग्यसर्वार्थसिद्धेः (न-आधिक्यसिद्धिः) प्रमाणत्रयादधिकस्य सिद्धिरत्र सांख्यप्रक्रियायां नापेक्ष्यते ।।८७-८८।।

द्वयोरेकतरस्य वाऽप्यसन्निकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमा, तत्साधकतमं यत्तत्* त्रिविधं प्रमाणम्+।
तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः ।।८७-८८।।

सूत्रार्थ= प्रकृति और पुरुष इन दो का ज्ञान प्राप्त करना हो अथवा दो में से किसी एक का। इन अज्ञात पदार्थों का निश्चियात्मक ज्ञान का नाम है 'प्रमा'। जो इस प्रमा की प्राप्ति का साधन है वह तीन प्रकार का है ।

भाष्य विस्तार = इन दो सूत्रों में परस्पर संबंध है। **प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकाय यद्वैकतरस्य पदार्थस्य प्रकृतेः पुरुषस्य विवेकायापि** प्रकृति पुरुष दोनों का विवेक करना हो अथवा दोनों में से किसी एक का ज्ञान करना हो, चाहे प्रकृति का करें अथवा पुरुष का विवेक प्राप्त करें। किसी भी पदार्थ का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करना हो **अनधिगतार्थस्य परिनिष्ठा परिज्ञानं निश्चयः प्रमाऽपेक्ष्यते** 'प्रमा' शब्द का अर्थ है=ज्ञान। **अनधिगतार्थस्य** 'अधिगत' कहते है जो प्राप्त हो चुका है और अनधिगत का अर्थ है जो अभी प्राप्त नहीं हुआ। जिस वस्तु का ठीक से ज्ञान नहीं हुआ है उस वस्तु का **परिनिष्ठा परिज्ञानं निश्चयः** परिनिष्ठा अर्थात परिज्ञान अर्थात निश्चय ठीक ठीक ज्ञान कि अमुक वस्तु ऐसी ही है, इस ज्ञान का नाम है 'प्रमा'। **तस्य साधकतमं यत् तत् त्रिविधं प्रमाणं भवति** उसका जो साधकतम है प्राप्त कराने का साधन (किसी वस्तु की प्राप्ति कराने में जो निकट का साधन होता है, उसे 'करण' कहते हैं -व्याकरण भाष्य) है वह तीन प्रकार का प्रमाण होता है। **शास्त्रान्तरेषु स्युरधिकानि प्रमाणानि किन्त्वत्र तु त्रिविधप्रमाणसिद्धौ त्रिविधप्रमाणस्वीकारे त्रिविधप्रमाणव्यवहारे सर्वसिद्धेः प्रकृतिपुरुषविवेकयोग्यसर्वार्थसिद्धेः** कहते हैं **शास्त्रान्तरेषु स्युरधिकानि प्रमाणानि** शास्त्रों में अधिक प्रमाण स्वीकार किए गए हैं, (सांख्यकार कहते हैं अन्यों ने अपने प्रयोजन सिद्धि के लिए अनेक प्रमाण माने हो, परंतु यहाँ तीन प्रमाणों से ही कार्य सिद्धि हो रही है) **किन्त्वत्र** किन्तु यहाँ तो **तु त्रिविधप्रमाणसिद्धौ** तीन प्रमाण सिद्ध होने पर **त्रिविधप्रमाणस्वीकारे** तीन प्रमाण स्वीकार कर लेने पर **त्रिविधप्रमाणव्यवहारे** तीन प्रकार के प्रमाणों से व्यवहार **सर्वसिद्धेः** सारे सिद्ध हो जाएंगे। इसलिए **प्रकृतिपुरुषविवेकयोग्यसर्वार्थसिद्धेः** प्रकृति पुरुष विवेक की सिद्धि इनसे हो जाएगी। **प्रमाणत्रयादधिकस्य सिद्धिरत्र सांख्यप्रक्रियायां नापेक्ष्यते** तीन प्रमाणों से सिद्धि होने से यहाँ अधिक की प्रक्रिया यहाँ संख्या में अपेक्षित नहीं है ।।८७-८८।।

तत्र प्रमाणत्रये विभाग उच्यते लक्षणं चैकैकस्य प्रदर्श्यते। प्रथमम् - प्रमाण के तीन विभाग होने

तत्र प्रमाणत्रये विभाग उच्यते लक्षणं चैकैकस्य प्रदर्श्यते। प्रथमम् -

यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् ।।८९।।

(यत्सम्बन्धसिद्धम्) यस्य सम्बन्धो यत्सम्बन्धस्तेन सिद्धं यत्सम्बन्धसिद्धम् । यस्य वस्तुनः सम्बन्धेन सिद्धं पुरुषेऽधिगतम् (तदाकारोल्लेखि विज्ञानम्) तद्वस्तुस्वरूपोद्धासि विज्ञानं भवति (तत् प्रत्यक्षम्) तत् प्रत्यक्षं प्रमाणम् ।।८९।।

अतः प्रत्यक्षलक्षणे यत्सम्बन्धसिद्धमित्येवोक्तं पुरुषस्य वस्तुना सह सम्बन्धद्वाराप्राप्तं ज्ञानं प्रत्यक्षं

पर अब एक एक प्रमाण के विषय में बतलाया जाएगा लक्षण सहित । प्रथम प्रमाण- प्रत्यक्ष प्रमाण (सबसे अधिक बलवान प्रमाण है)

यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् ।।८९।।

सूत्रार्थ= आत्मा के साथ जिस किसी भी वस्तु के साक्षात सम्बंध से प्राप्त होने वाला और उस वस्तु के स्वरूप को प्रकट करने वाला जो ज्ञान है वह प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है ।

भाष्यार्थ= इस सूत्र को व्याकरण से खोल रहे हैं। व्याकरण शास्त्र का नियम है जितने समास पद है उनको तोड़ तोड़के विभक्ति सहित समझाते हैं। जिसका जो संबंध है यस्य और संबंध इन दो शब्दों को जोड़कर एक समस्त पद बना यत्संबंधः फिर कहते हैं तेन सिद्धं यत्सम्बन्धसिद्धम्। उस वस्तु के सम्बंध से सिद्ध होने वाला प्राप्त होने वाला उसको बोलेंगे 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' ये समस्त शब्द हो गया। **यस्य वस्तुनः सम्बन्धेन सिद्धं पुरुषेऽधिगतम्** जिस वस्तु के सम्बंध से सिद्ध हुआ अर्थात पुरुष में प्राप्त हुआ= ज्ञान ।(जिस किसी वस्तु के सम्बंध से जीवात्मा को ज्ञान होता है) **तद्वस्तुस्वरूपोद्धासि विज्ञानं भवति** उस वस्तु के स्वरूप को प्रकट करने वाला ज्ञान विशेष ज्ञान होता है **तत् प्रत्यक्षं प्रमाणम्** उसको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं ।।८९।।

अतः प्रत्यक्षलक्षणे यत्सम्बन्धसिद्धमित्येवोक्तं पुरुषस्य वस्श्रतुना सह सम्बन्धद्वाराप्राप्तं ज्ञानं प्रत्यक्षं लक्षितं यहाँ सूत्र की भूमिका में चर्चा उठाते हैं- इस प्रत्यक्ष लक्षण में कहा- जिस किसी भी वस्तु के सम्बंध से ज्ञान प्राप्त हो, आत्मा का किसी भी वस्तु के साथ सीधा सम्बंध के द्वारा होता ज्ञान, वो प्रत्यक्ष बतलाया है **स वस्तुसम्बन्धः पुरुषस्य केनोपकरणेन भवतीति तूक्तमेव न तेनात्र प्रत्यक्षलक्षणे दोषः प्रतिभातीति भ्रान्तिरपाक्रियते** -उस वस्तु के साथ आत्मा का सम्बंध किस उपकरण के कारण होता है? पूर्वपक्षी कहता है इस कारण से हमें प्रत्यक्ष लक्षण में दोष दिखाई देता है । इस भ्रांति को दूर करते हैं-

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ।।९०।।

सूत्रार्थ= योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष भी पूर्व सूत्र में बतलाए गए प्रत्यक्ष लक्षण में संग्रहीत होने से पूर्व सूत्रोक्त प्रत्यक्ष लक्षण में कोई दोष नहीं है।

भाष्य विस्तार = योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमनिन्द्रियप्रत्यक्षमान्तरिकप्रत्यक्षं भवति तदप्यनेन गृहीतं स्यात्। योगियों का अबाह्य प्रत्यक्ष अर्थात अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष, तो योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष जो की बाहरी इंद्रियों के बिना ही होता है, वो प्रत्यक्ष भी तो होता है इसी सूत्र से इसका भी ग्रहण हो जावे, इसलिए सामान्य

लक्षितं स वस्तुसम्बन्धः पुरुषस्य केनोपकरणेन भवतीति तूक्तमेव न तेनात्र प्रत्यक्षलक्षणे दोषः प्रतिभातीति भ्रान्तिरपाक्रियते –

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ।। ९० ।।

(योगिनाम्-अबाह्यप्रत्यक्षत्वात्) योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमनिन्द्रियप्रत्यक्षमान्तरि-कप्रत्यक्षं भवति तदप्यनेन गृहीतं स्यात् । संसारिणां बाह्यं प्रत्यक्षं बाह्येन्द्रियेण वस्तुसम्बन्धजनितं भवति योगिनां प्रत्यक्षं तु खल्वबाह्यप्रत्यक्षमान्तरिकप्रत्यक्षमन्तःकरणेन वस्तुसम्बन्धसिद्धं भवति। अत्रास्माकं प्रत्यक्षलक्षणे 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' इति सम्बन्धसिद्धत्वलक्षणं तूभयेषां संसारिणां योगिनां च प्रत्यक्षे समानमतो न दोषो यतो योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमपि गृहीतं स्यादनेन प्रत्यक्षलक्षणेनेति सांख्यानां प्रत्यक्षलक्षणपरि-भाषायामित्याशयः। अनिरुद्धवृत्तौविज्ञानभिक्षुभाष्ये चास्मात् पूर्वं प्रत्यक्षलक्षणकं सूत्रं बाह्यप्रत्यक्षलक्षणपरमैन्द्रियिकप्रत्यक्षलक्षणपरं व्याख्यातम्, अत एवोक्तं ताभ्यां यत् ''बाह्यप्रत्यक्षलक्षणमिदं

शब्द कहा 'यत्संबंध सिद्धम'। **संसारिणां बाह्यं प्रत्यक्षं बाह्येन्द्रियेण वस्तुसम्बन्धजनितं भवति** संसारी लोगों का सामान्य लोगों का जो बाहरी प्रत्यक्ष होता है बाहरी इंद्रियों से वस्तुओं के साथ सम्बंध से होता है। **योगिनां प्रत्यक्षं तु खल्वबाह्यप्रत्यक्षमान्तरिकप्रत्यक्षमन्तःकरणेन वस्तुसम्बन्धसिद्धं भवति**। योगियों का प्रत्यक्ष तो अबाह्य प्रत्यक्ष होता है, अंदर की वस्तुओं का प्रत्यक्ष अन्तःकारण (मन) के द्वारा होता है। (जब तक जीवात्मा शरीर के बंधन में तब तक बिना साधन के कोई ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता) **अत्रास्माकं प्रत्यक्षलक्षणे 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' इति सम्बन्धसिद्धत्वलक्षणं तूभयेषां संसारिणां योगिनां च प्रत्यक्षे समानो** यहाँ जो हमने प्रत्यक्ष का लक्षण किया है, हमारे इस प्रत्यक्ष लक्षण में जो शब्द प्रयोग किया 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' जिस भी वस्तु के सम्बंध से प्राप्त होने वाला ये जो लक्षण है वह तो दोनों में योगियों में और सांसारिक लोगो के प्रत्यक्ष के प्रत्यक्ष में समान है। **अतो न दोषो यतः योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमपि गृहीतं स्यादनेन प्रत्यक्षलक्षणेनेति सांख्यानां प्रत्यक्षलक्षणपरिभाषायामित्याशयः**। इसलिए इस परिभाषा में कोई दोष नहीं है । योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष भी इसी प्रत्यक्ष लक्षण से ग्रहीत होगा, इस कारण से सांख्य विद्या को जानने मानने वाले लोगों का प्रत्यक्ष लक्षण की परिभाषा में ये आशय है । कोई कमी अथवा अधूरापन नहीं है ।

अनिरुद्धवृत्तौविज्ञानभिक्षुभाष्ये चास्मात् पूर्वं प्रत्यक्षलक्षणकं सूत्रं बाह्यप्रत्यक्षलक्षणपरमैन्द्रियिकप्रत्यक्षलक्षणपरं व्याख्यातम्, अनिरुद्ध वृत्ती में और विज्ञान भिक्षु भाष्य में इससे पूर्व सूत्र में प्रत्यक्ष लक्षण विषयक सूत्र उन्होने बताया है कि ८९ वे सूत्र में केवल बाह्यप्रत्यक्ष का लक्षण बताया है, उनकी व्याख्या में आंतरिक लक्षण को नहीं स्वीकारा। **अत एवोक्तं ताभ्यां यत् ''बाह्यप्रत्यक्षलक्षणमिदं लौकिकम्, योगिप्रत्यक्षन्तु-अबाह्यमलौकिकं च''** ये अनिरुद्ध वृत्ति के वचन हैं इसलिए उन दोनों ने ऐसी बात कही है। इसलिए उन्में पहले अनिरुद्ध का वचन दिखाया है, इस ८९ वे सूत्र में जो ये लक्षण बतया है प्रत्यक्ष का, ये बाह्य प्रत्यक्ष का लौकिक का लक्षण है और योगियों का प्रत्यक्ष तो आंतरिक होता है उसको अगले सूत्र में बताएँगे । इस तरह से उन्होने व्याख्या की है। **'ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षमेवात्र लक्ष्यं योगिनश्चाबाह्यप्रत्यक्षकाः''** विज्ञानभिक्षु ने कहा – इस (८९ वे) सूत्र में केवल इंद्रियक प्रत्यक्ष को बताना ही लक्ष्य है सूत्रकार का, जबकि योगी का तो अबाह्य प्रत्यक्ष होता है। ये कही और बताएँगे। **इत्थमुभयत्रापि सूत्रमन्यथा हि व्याख्यातम्**। इन

लौकिकम्, योगिप्रत्यक्षन्तु-अबाह्यमलौकिकं च'' (अनिरुद्धः) 'ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षमेवात्र लक्ष्यं योगिनश्चाबाह्यप्रत्यक्षकाः'' (विज्ञानभिक्षुः) इत्थमुभयत्रापि सूत्रमन्यथा हि व्याख्यातम् । पूर्वसूत्रे नेन्द्रियशब्द उपात्तः बाह्येन्द्रियेण वान्तःकरणेन वा सम्बन्धसिद्धं प्रत्यक्षमिति सामान्यलक्षणं 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' पदेन सूचितमत एव तत्र सूत्रोक्ते प्रत्यक्षलक्षणे न दोषस्तत्र योगिप्रत्यक्षेऽपि तद्व्याप्तेरभीष्टत्वात् ।। ९० ।।

पुनश्च -

लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः ।। ९१ ।।

(वा) अथवा (लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धात्-अदोषः) लीनानां सूक्ष्माणामतीन्द्रियाणां वस्तूनां लब्धोऽतिशयोऽप्रतिबद्धो निरन्तर आत्मीकृतः सम्बन्धो भवति हि योगिनां यथोक्तं योगदर्शने

दोनों टीकाकारों ने इस सूत्र कि गलत व्याख्या की है। **पूर्वसूत्रे नेन्द्रियशब्द उपात्तः** स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं- पूर्व सूत्र में इंद्रिय शब्द को ग्रहण ही नहीं किया **बाह्येन्द्रियेण वान्तःकरणेन वा सम्बन्धसिद्धं प्रत्यक्षमिति सामान्यलक्षणं 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' पदेन सूचितं** बाह्य इंद्रिय से हो चाहे अन्तःकरण से जिस भी साधन के संबंध से ज्ञान प्राप्त हो उसी का नाम प्रत्यक्ष है । इस प्रकार से ये सामान्य लक्षण किया है 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' इस शब्द से सूचित किया है। **अत एव तत्र सूत्रोक्ते प्रत्यक्षलक्षणे न दोषः** इसलिए उस सूत्र में बताए प्रत्यक्ष लक्षण में कोई दोष नहीं है। **तत्र योगिप्रत्यक्षेऽपि तद्व्याप्तेरभीष्टत्वात्** क्योंकि ये समान परिभाषा है 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' ये दोनों तरह के प्रत्यक्ष में ठीक बैठती है इसलिए कोई अधूरेपन का कोई दोष नहीं आता ।।९०।।

पुनश्च -

लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः ।। ९१ ।।

***सूत्रार्थ*=** योगियों का सूक्ष्म पदार्थों के साथ सीधा स्पष्ट संबंध होता है, इसलिए उस पूर्व परिभाषा में कोई दोष नहीं है । योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष का भी उसमें समावेश हो जाता है ।

भाष्य विस्तार = (वा) अथवा (लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धात्-अदोषः) लीनानां सूक्ष्माणामतीन्द्रियाणां वस्तूनां लब्धोऽतिशयोऽप्रतिबद्धो निरन्तर आत्मीकृतः सम्बन्धो भवति हि योगिनां अथवा एक और हेतु से ये सिद्ध करते हैं कि पूर्व में कोई दोष नहीं है। **लीनानां सूक्ष्माणामतीन्द्रियाणां** लीनानां अर्थात जो सूक्ष्म पदार्थ होते हैं इंद्रियाँ, तन्मात्राएँ, मन आदि उन वस्तुओं का लब्ध, अतिशय, प्रतिबद्ध, निरंतर, आत्मीकृत ये सब पर्यायवाची शब्द हैं, ये संबंध के विशेषण हैं । इन सूक्ष्म पदार्थों का भी सीधा-सीधा आत्मीकृत साक्षात संबंध होता है योगियों का (इन पदार्थों का और योगियों का सीधा आंतरिक संबंध होता है और उस आंतरिक संबंध होने से सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान होता है, वह ज्ञान भी योगियों का है आंतरिक है और सूक्ष्म द्रव्यों के साथ होता है, इस हेतु से भी पूर्व सूत्र में कोई कमी नहीं है) **यथोक्तं योगदर्शने** जैसा कि योगदर्शन में कहा गया ''**परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः**'' इस चित्त का वशीकर योगी लोग कहाँ तक करते हैं छोटे छोटे से अणु से लेकर बड़े से बड़े सूर्यादि पदार्थ तक योगियों का वशीकर अर्थात मन टिकता है, इन पदार्थों के साथ साक्षात संबंध स्थापित कर लेते हैं । तो इस सूत्र में बताया कि सूक्ष्म पदार्थों के साथ योगियो का संबंध होता है **(योग ०१.४ ०) इतिहेतोरुक्तप्रत्यक्षलक्षणेऽदोषो न दोषोऽस्ति** इस कारण से भी उक्त

''परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः''(योग ०१.४०)इतिहेतोरुक्तप्रत्यक्षलक्षणेऽदोषो न दोषोऽस्ति। पूर्वसूत्रेऽन्तःकरणसम्बन्धसिद्ध- त्वाद् दोषपरिहारोऽत्र सूत्रे निरन्तरात्मसम्बन्धसिद्धत्वाद् दोषनिराकरणमिति विशेषः।

अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चात्र प्रत्यक्षलक्षणप्रस ३ नितान्तासत्यकल्पना कृता । तत्र ''योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः'' ९० इति सूत्रमुभयत्र पूर्वप्रत्यक्षलक्षणाद् भिन्नविषयकं व्याख्यातं यत् पूर्वत्वैन्द्रियिकस्य बाह्येन्द्रियसाध्यस्य लौकिकस्य प्रत्यक्षस्य लक्षणमुक्तं न योगिनां प्रत्यक्षस्याबाह्यस्य ''बाह्यप्रत्यक्षलक्षणमिदं लौकिकं योगिप्रत्यक्षं त्वबाह्यमलौकिकं च, अतो नाव्यापकत्वदोषः''

प्रत्यक्ष लक्षण में भी कोई दोष नहीं है। **पूर्वसूत्रेऽन्तःकरणसम्बन्धसिद्धत्वाद् दोषपरिहारोऽत्र** अब ये दिखाना चाह रहे हैं ब्रह्ममुनि जी के दो सूत्रों में अंतर क्या है ९० और ९१ में ये बताया गया 'कि प्रत्यक्ष लक्षण में कोई कमी नहीं' तो दो सूत्रों में दो हेतु दिए गए हैं, उनमें आपस में अंतर क्या है? ये बता रहे हैं- **पूर्वसूत्रेऽन्तःकरणसम्बन्धसिद्धत्वाद् दोषपरिहारः** पूर्वसूत्र में तो ये कहा था दोष का जो निराकरण किया समाधान किया इस दृष्टि से किया कि जो योगियों का संबंध होता है सूक्ष्म संबंध होता है योगियों का जो आंतरिक प्रत्यक्ष होता है वह अन्तःकरण के माध्यम से होता है। वहाँ ये हेतु था । इस तरह से दोष का समाधान किया और **अत्र सूत्रे निरन्तरात्मसम्बन्धसिद्धत्वाद् दोषनिराकरणमिति विशेषः** इस सूत्र में पिछले सूत्र से ये भिन्नता है कि पहले बताया कि अन्तःकरण से संबंध होता है यहा बताया कि सीधा सम्बंध होता है और सूक्ष्म पदार्थों के साथ सम्बंध होता है, इन दो हेतुओ से एक ही बात सिद्ध की परिभाषा में कोई कमी अथवा दोष नहीं है।

अब यहाँ से खण्डन मंडन टीका टिप्पणी आदि है **अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चात्र प्रत्यक्षलक्षणप्रसंगे नितान्तासत्यकल्पना कृता । अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च** अनिरुद्ध वृत्ती में और विज्ञान भिक्षु भाष्य में **अत्र प्रत्यक्षलक्षणप्रसंगे** इस प्रत्यक्ष लक्षण वाले इस प्रसंग में इन सूत्रों में नितान्तासत्यकल्पना कृता नितांत असत्य कल्पना की गयी है। **तत्र ''योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः'' ९० इति सूत्रमुभयत्र पूर्वप्रत्यक्षलक्षणाद् भिन्नविषयकं व्याख्यातं** यहाँ जो ९० वा सूत्र है पूर्वप्रत्यक्ष लक्षण से भिन्न वाला व्याखान किया गया है यत् **पूर्वत्वैन्द्रियिकस्य बाह्येन्द्रियसाध्यस्य लौकिकस्य प्रत्यक्षस्य लक्षणमुक्तं** पहले तो ८९ वे सूत्र में एंद्रियक प्रत्यक्ष का बाह्य इंद्रियों से सिद्ध होने वाला लौकिक प्रत्यक्ष का लक्षण किया गया है **न योगिनां प्रत्यक्षस्याबाह्यस्य** जो योगियों का अबाह्य प्रत्यक्ष है उसकी चर्चा नहीं की **''बाह्यप्रत्यक्षलक्षणमिदं लौकिकं योगिप्रत्यक्षं त्वबाह्यमलौकिकं च, अतो नाव्यापकत्वदोषः''** इसलिए इसमें अव्यापकता का दोष नहीं है। अधूरापन का दोष नहीं, पूरी परिभाषा है। **''ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षमेवात्र लक्ष्यं योगिनश्चाबाह्यप्रत्यक्षकाः, अतो न दोषः''** विज्ञानभिक्षु ने कहा कि इस सूत्र में इतना ही बताना लक्ष्य है कि एंद्रियक प्रत्यक्ष ही है योगी तो आंतरिक प्रत्यक्ष वाले होते हैं, इसलिए इसमें कोई दोष नहीं है। **पुनश्च ''लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः'' इति सूत्रे योगिनां प्रत्यक्षस्यापि लक्षणं मतं तस्मिन्नेवैकस्मिन् सूत्रे** अब कहते हैं कि जो ९१ वे वा ''लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः'' सूत्र है इस सूत्र कि व्याख्या हुए उन्होने कहा कि योगियों का जो

(अनिरुद्धः)''ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षमेवात्र लक्ष्यं योगिनश्चाबाह्यप्रत्यक्षकाः, अतो न दोषः''(विज्ञानभिक्षुः) पुनश्च ''लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः''(९१) इति सूत्रे योगिनां प्रत्यक्षस्यापि लक्षणं मतं तस्मिन्नेवैकस्मिन् सूत्रे ''अथवा लक्षणेन योगिप्रत्यक्षस्यापि संग्रह इति पक्षान्तरमाह - लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः'' (अनिरुद्धः) ''वास्तवं समाधानमाह-लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः''(विज्ञानभिक्षुः) किं यत् ''योगिनामबाह्य-प्रत्यक्ष त्वान्न दोषः''(९०) तथा ''लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः'' (९१) इति सूत्रद्वयं पूर्वोक्तस्य ''यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्''(८०) इति सूत्रस्य व्याख्यानभूतं सांख्यकाराद् भिन्नस्य कस्यचिद् व्याख्याकारस्य वचनं यत् ''योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः'' (९०) इति सूत्राद् सन्तोषं प्राप्य पुनर्वास्तविक- समाधानम्''लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः''(९१)इति वचनं पुरः स्थापयति

आंतरिक प्रत्यक्ष है अलौकिक। उसका लक्षण भी इन्होने स्वीकार कर लिया ''**अथवा लक्षणेन योगिप्रत्यक्षस्यापि संग्रह इति पक्षान्तरमाह - लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः**'' अथवा कह कर के दूसरा पक्ष स्वीकार कर लिया अथवा लक्षणेन वो ८९ वे सूत्र से जिसमें प्रत्यक्ष का लक्षण कहा था, उस लक्षण वाले सूत्र से योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष भी स्वीकार है, इसलिए अब दूसरे पक्ष को कह रहे हैं, ये तो शब्द थे अनिरुद्ध के। अब विज्ञानभिक्षु के शब्द ''**वास्तवं समाधानमाह-लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः**'' **वास्तविक समाधान अब कहते हैं । (विज्ञानभिक्षुः) किं यत् ''योगिनामबाह्य-प्रत्यक्ष त्वान्न दोषः'' (९०) तथा ''लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः''(९१) इति सूत्रद्वयं पूर्वोक्तस्य ''यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्''(८०) इति सूत्रस्य व्याख्यानभूतं सांख्यकाराद् भिन्नस्य कस्यचिद् व्याख्याकारस्य वचनं यत् ''योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः'' (९०) इति सूत्राद् सन्तोषं प्राप्य पुनर्वास्तविक- समाधानम् ''लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः'' (९१) इति वचनं पुरः स्थापयति**। इस पर टिप्पणी लिखते हैं ब्रह्ममुनि जी ये जो दो सूत्र थे ९० और ९१ वे ये जो पूर्वोक्त (९० वा) सूत्र का व्याख्यान भूत है क्या? व सांख्यकार से भिन्न व्याख्याकार का वचन है? इस ९१ वे सूत्र से संतोष प्राप्त न करके उस समाधान में उसको पूरा संतोष नहीं है, इसलिए कहता है कि वास्तविक समाधान तो अब है । इस तरह से कहना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है **किं सूत्रकारस्यावास्तविकेन समाधानेनापि भाव्यं** ९१ वे सूत्र में कह रहे हैं कि वास्तविक समाधान तो अब है, क्या ९० वा सूत्र व्यर्थ था? क्या सूत्रकार नकली समाधान भी कहता है? ये आपत्ति उठाई ब्रह्ममुनि जी ने विज्ञानभिक्षु पर। **नैष शिष्टाचारः समाचारो वा तत्र साक्षात्कृतामृषीणाम्** ईश्वर का साक्षात्कार करने वाले शिष्टाचारी ऋषि लोगों का ऐसा व्यवहार आचरण नहीं होता कि पहले अवास्तविक समाधान करें। **पुनश्च ''योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः'' (९०) तथा ''लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः'' (९१) इति सूत्रे तु सांख्यशास्त्रस्य स्तः** फिर सूत्र ९० और ९१ ये तो सांख्यकार के हैं, किसी और व्याख्याकार के थोड़ी हैं जो स्वयम अपनी बात कहे फिर खंडन करे ये कोई बुद्धिमत्ता तो नहीं, **न हि कस्यचिद् व्याख्याकर्तुः** वह किसी अन्य व्याख्याकार के वचन नहीं है। **तस्मादनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चैष प्रसंगोऽनवबुद्ध्यान्यथा व्याख्यातः**। अत एव अनिरुद्ध वृत्ती में और विज्ञानभिक्षु भाष्य में ये जो प्रसंग है 'प्रत्यक्ष लक्षण वाला' ये ठीक से बिना समझे ही उन्होने गलत

।किं सूत्रकारस्यावास्तविकेन समाधानेनापि भाव्यं नैष शिष्टाचारः समाचारो वा तत्र साक्षात्कृतामृषीणाम् । पुनश्च ''योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः''(९ ०) तथा ''लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः'' (९ १) इति सूत्रे तु सांख्यशास्त्रस्य स्तः, न हि कस्यचिद् व्याख्याकर्तुः । तस्मादनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चैष प्रस ङ्गोऽनवबुद्ध्यान्यथा व्याख्यातः । अतएवाग्रे ''ईश्वरासिद्धेः''(९ २) इति सूत्रव्याख्यानमप्ययुक्तं जातम् । वस्तुत ईश्वरसाधनायैव योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्नदोषः''(९ ०) तथा ''लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः''(९ १)इति सूत्राभ्यां योगिनाम- बाह्यप्रत्यक्षस्याप्यन्तर्भावः पूर्वप्रत्यक्षलक्षणे स्यादिति कृत्वा ''यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्''(८ ९) सूत्रे 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' सामान्यलक्षणपरं पदं रक्षितम् । यत ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षेणेश्वरस्य सिद्धिर्न भवति तत्रेश्वरासिद्धिप्रसक्तिर्न भवेदत एव योगिप्रत्यक्षेण तत्सिद्धिर्भवेदिति प्रत्यक्षस्य सामान्यं लक्षणं सूत्रे

व्याख्यान कर दिया है। **अतएवाग्रे ''ईश्वरासिद्धेः''(९ २) इति सूत्रव्याख्यानमप्ययुक्तं जातम् ।** अब इससे अगला जो सूत्र है उसका व्याख्यान भी आयुक्त हो जाता है। **वस्तुत ईश्वरसाधनायैव योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्नदोषः''(९ ०) तथा ''लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः''(९ १) इति सूत्राभ्यां योगिनाम- बाह्यप्रत्यक्षस्याप्यन्तर्भावः पूर्वप्रत्यक्षलक्षणे स्यादिति कृत्वा ''यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्''(८ ९) सूत्रे 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' सामान्यलक्षणपरं पदं रक्षितम्।** वास्तव में ईश्वर कि सिद्धि करने के लिए ही सूत्र कि रचना इस प्रकार कि की। और सूत्रकार ने क्या कहा- योगियों का जो आंतरिक प्रत्यक्ष होता है, इसलिए परिभाषा में कोई दोष नहीं है। यहा योगियों का प्रत्यक्ष दिखलाना था जिससे ईश्वर की सिद्धि की जाएगी और सीधा सीधा सूक्ष्म संबंध होता है इस तरह से बताकर कहा कि परिभाषा में कोई दोष नहीं है, इसलिए 'यत्सम्बन्धसिद्धं' सामान्य लक्षण बताने वाला शब्द रखा । ताकि दोनों प्रकार का अर्थ हो आंतरिक प्रत्यक्ष भी और बाह्यप्रत्यक्ष पर भी। **यतः ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षेणेश्वरस्य सिद्धिर्न भवति** क्योंकि एन्द्रीयक प्रत्यक्ष से तो ईश्वर कि सिद्धि नहीं होती । परंतु ईश्वर कि सिद्धि तो करना ही है इसलिए उसको इस प्रकार से व्यवस्थित किया। **तत्रेश्वरासिद्धिप्रसक्तिर्न भवेदत एव योगिप्रत्यक्षेण तत्सिद्धिर्भवेदिति प्रत्यक्षस्य सामान्यं लक्षणं सूत्रे निर्दिष्टं यत्सम्बन्धसिद्धमिति।** वास्तविक बात तो ये है जो उनको समझ में नहीं आई कि सूत्रकार ने बहुत बुद्धिमत्ता से काम लिया ठीक ढंग से बात को व्यवस्थित किया कि एन्द्रीयक प्रत्यक्ष से तो ईश्वर कि सिद्धि हो नहीं पाएगी, कभी कोई ईश्वर को माने ही नहीं। कोई कहे कि 'ईश्वर का प्रत्यक्ष तो होता ही नहीं' ऐसी समस्या न हो इसलिए सामान्य शब्द रखा 'यत्सम्बन्धसिद्धं ' कि आंतरिक प्रत्यक्ष भी उसी परिभाषा से सिद्ध हो रहा है, बाकी भ्रांति निवारण के लिए दो सूत्र बनाए काही कोई ये न मान ले कि 'आंतरिक प्रत्यक्ष तो होता ही नहीं', इसलिए स्पष्टीकरण के लिए दो सूत्र बनाए। **आश्चय ५ ह्येतत् ''ईश्वरासिद्धेः''(९ २) सूत्रावतरणे विज्ञानभिक्षुरैन्द्रियिकप्रत्यक्षस्येश्वरसिद्धावव्याप्तिदोषं निराकरोतीश्वरनिषेधात् तस्येश्वरस्य ''सन्निकर्षाजन्यत्वात्'' इत्युक्त्वा परन्तु ''सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः''(१ ० ९) सूत्रे ''योगजधर्मस्य चोत्तेजकतया प्रकृतिपुरुषादीनां प्रत्यक्षप्रमा भवति''(विज्ञानभिक्षुः)** आश्चर्य की बात है की ''ईश्वरासिद्धेः'' ये जो सूत्र है, इस सूत्र के अवतरण=भूमिका में विज्ञान भिक्षु ने ये कहा कि इंद्रिय प्रत्यक्ष का ईश्वर सिद्धि में अव्याप्ति है, तो इस अव्याप्ति दोष का निराकरण करता है ईश्वर का निषेध करते हुए

निर्दिष्टं यत्सम्बन्धसिद्धमिति। आश्चर्यं ह्येतत् ''ईश्वरासिद्धेः'' (९ २) सूत्रावतरणे विज्ञानभिक्षुरैन्द्रियिकप्रत्यक्षस्येश्वरसिद्धावव्याप्तिदोषं निराकरोतीश्वरनिषेधात् तस्येश्वरस्य ''सन्निकर्षाजन्यत्वात्'' इत्युक्त्वा परन्तु ''सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः'' (१ ०९) सूत्रे ''योगजधर्मस्य चोत्तेजकतया प्रकृतिपुरुषादीनां प्रत्यक्षप्रमा भवति'' (विज्ञानभिक्षुः) यद्येवं तर्हीश्वरविषये प्रत्यक्षस्याव्याप्तिपरिहारो व्यर्थो यतस्तस्यापि योगजधर्मेण प्रत्यक्षता सम्भवति ।। ९ १ ।।

स एष योगिनामबाह्यप्रत्यक्षप्रकारोऽवश्यं स्वीकार्यो यतो बाह्यप्रत्यक्षेण -

ईश्वरासिद्धेः ।। ९ २ ।।

(ईश्वरासिद्धेः) ईश्वरस्यासिद्धिदोषप्रस ३ात्-ईश्वरस्य सिद्धिर्बाह्यप्रत्यक्षेणै-न्द्रियिकप्रत्यक्षेण न

विज्ञान भिक्षु ने कहा कि ईश्वर का सन्निकर्ष हो ही नहीं सकता। उसका ज्ञान सन्निकर्षजन्य नहीं है। ऐसा कहकर के ''सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः'' इस सूत्र कि व्याख्या में कहते हैं। जब योगज धर्म कि अधिकता होती है (व्यक्ति समाधि लगता है ध्यान लगता है मन को एकाग्र करता है तो इससे उसकी योग्यता बढ़ जाती है) उस योग्यता के बढ्ने से उसने प्रकृति पुरुष का आंतरिक प्रत्यक्ष स्वीकार कर लिया कि अंदर से उसको ज्ञान हो जाता है। (तो इस प्रकार से विरुद्ध बात करते हैं) **यद्येवं तर्हीश्वरविषये प्रत्यक्षस्याव्याप्तिपरिहारो व्यर्थो यतस्तस्यापि योगजधर्मेण प्रत्यक्षता सम्भवति** अगर दूसरे सूत्र की व्याख्या उनकी ठीक है (विज्ञानभिक्षु की) के योगज धर्म की अधिकता होने से मन की एकाग्रता अच्छी हो जाने से प्रकृति पुरुष का आंतरिक ज्ञान हो जाता है। यदि उनकी ये बात ठीक है तो पहले जो कहा था 'कि ईश्वर का सन्निकर्ष होता ही नहीं'। ईश्वर के विषय में जो प्रत्यक्ष में अव्याप्ति का परिहार्य किया कि ''**सन्निकर्षाजन्यत्वात्**'' ये समाधान व्यर्थ है। क्योंकि उसको भी योगज धर्म से प्रत्यक्ष का स्वीकार करते हैं । इस तरह से भाष्य उनका ठीक नहीं है। ये सारी टीका टिप्पणी पूरी हुई ।। ९ १ ।।

स एष योगिनामबाह्यप्रत्यक्षप्रकारोऽवश्यं स्वीकार्यो यतो बाह्यप्रत्यक्षेण - ये जो योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष की विधि है, वो अवश्य ही स्वीकार करनी चाहिए क्योंकि बाह्य प्रत्यक्ष से ईश्वर की असिद्धि हो जाने से

ईश्वरासिद्धेः ।। ९ २ ।।

सूत्रार्थ= क्योंकि बाह्य प्रत्यक्ष से ईश्वर की असिद्धि होती है, इस कारण से योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष अवश्य मानना चाहिए ।

भाष्य विस्तार = **ईश्वरस्यासिद्धिदोषप्रस ३ात्-ईश्वरस्य सिद्धिर्बाह्यप्रत्यक्षेणैन्द्रियिकप्रत्यक्षेण न भवति,** एक एक शब्द को खोला उन्होने **ईश्वरस्य असिद्धि दोष प्रसंगात** ईश्वर की असिद्धि का दोष प्रसंग आने से इसे और समझाते हैं **ईश्वरस्य सिद्धिः बाह्य प्रत्यक्षेण एंद्रियक प्रत्यक्षेण न भवति** ईश्वर की सिद्धि= ज्ञान है वह बाह्य प्रत्यक्ष से इंद्रियों के प्रत्यक्ष से संभव नहीं होता। **नहि बाह्यप्रत्यक्षस्य विषय ईश्वरः,** न ही बाह्य प्रत्यक्ष का विषय ईश्वर है। **श्रुतिश्च वदति हीश्वरस्य प्रत्यक्षत्वम्** श्रुति भी कहती है ईश्वर का प्रत्यक्ष होता है

भवति, नहि बाह्यप्रत्यक्षस्य विषय ईश्वरः, श्रुतिश्च वदति हीश्वरस्य प्रत्यक्षत्वम् ''त्वमेव प्रत्यक्षं बह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं बह्म वदिष्यामि'' (तै०उ० १.१.१) एवं योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमपेक्ष्यतेऽत एव सांख्ये प्रत्यक्षलक्षणं सामान्यं यद्योगिनां प्रत्यक्षेऽपि घटते, योगिनामबाह्यप्रत्यक्षेण भविष्यति हीश्वरसिद्धिः ।।९२।।

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमनपेक्ष्य साध्यते यदीश्वरस्तर्हि -

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः ।।९३।।

(मुक्तबद्धयोः-अन्यतराभावात्) तथाभूत ईश्वरो मुक्तबद्धयोरन्यतरस्माद् भिन्नो न भविष्यति स मुक्तो जीवन्मुक्तो बद्धो वा भविष्यति ताभ्यां भिन्नो न भविष्यति । एतेन (तत्सिद्धिः-न) योगिनामबाह्यप्रत्यक्षसाध्यस्येश्वरस्यसिद्धिर्न भविष्यति, अस्ति योगिनां प्रत्यक्षीभूत ईश्वरो यता च श्रुतिस्तस्य

''त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि'' हे ईश्वर आप ! प्रत्यक्ष ब्रह्म है, मै आपको प्रत्यक्ष करके आपकी व्याख्या करूंगा, आपके विषय में बताऊँगा। **एवं योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमपेक्ष्यतेऽत एव सांख्ये प्रत्यक्षलक्षणं सामान्यं यद्योगिनां प्रत्यक्षेऽपि घटते,** कह रहे हैं एवं योगिनां इस प्रकार से योगियों का अबाह्य प्रत्यक्षं अपेक्ष्यते अबाह्य प्रत्यक्ष आवश्यक है (तभी तो ईश्वर की सिद्धि हो पाएगी) **अत एव** इसीलिए **सांख्ये** सांख्य विद्या में **प्रत्यक्षलक्षणं सामान्यं** प्रत्यक्ष लक्षण सामान्य शब्दों में किया है **यद्योगिनां प्रत्यक्षेऽपि घटते** जो योगियों के प्रत्यक्ष में भी घटता है। **योगिनामबाह्यप्रत्यक्षेण भविष्यति हीश्वरसिद्धिः** योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष से ईश्वर की सिद्धि हो जाएगी ।।९२।।

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षमनपेक्ष्य साध्यते यदीश्वरस्तर्हि - योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष को स्वीकार किए बिना यदि ईश्वर की सिद्धि की जाएगी, तब क्या होगा -

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः ।।९३।।

सूत्रार्थ= यदि आँख से ईश्वर को देखेंगे तो, वह जीवन मुक्त अथवा बद्ध इन दो से अलग तीसरा न होने से वास्तविक ईश्वर की सिद्धि न हो पाएगी।

भाष्य विस्तार = तथाभूत ईश्वरो मुक्तबद्धयोरन्यतरस्माद् भिन्नो न भविष्यति कहते हैं **तथाभूत ईश्वरः** उस तरह का ईश्वर जिसे आप बाह्य प्रत्यक्ष से देखना चाहते हैं **मुक्तबद्धयोरन्यतरस्माद् भिन्नो न भविष्यति** (यहां मुक्त शब्द से जीवन मुक्त व्यक्ति लेना है, क्योंकि जो मुक्तात्मा है वह भी आँख से नहीं दिखती) या तो वह जीवन मुक्त व्यक्ति होगा अथवा बद्ध होगा इन दो में से कोई एक होगा, इन दो से अलग तीसरा कोई न होगा **स मुक्तो जीवन्मुक्तो बद्धो वा भविष्यति** वह जो आँख से दिखेगा वह या तो जीवन मुक्त होगा अथवा बद्ध होगा **ताभ्यां भिन्नो न भविष्यति** इन दो से भिन्न न होगा। **एतेन योगिनामबाह्यप्रत्यक्षसाध्यस्येश्वरस्यसिद्धिर्न भविष्यति,** यदि हम आँख से ईश्वर को देखेंगे तब योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष से जो ईश्वर सिद्ध होता है, उस वास्तविक ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकेगी **अस्ति योगिनां प्रत्यक्षीभूत ईश्वरो यता च श्रुतिस्तस्य प्रत्यक्षत्वं वदति** जबकि योगियों का प्रत्यक्षीभूत ईश्वर तो है और श्रुति

प्रत्यक्षत्वं वदति ।।९ ३।।

तत्र च -

उभयथाप्यसत्करत्वम् ।।९ ४।।

(उभयथा-अपि-असत्करत्वम्) उभयथा प्रकारेणापि मुक्तस्य बद्धस्य चेश्वरत्वेऽसत्करत्वमैश्वर्यायोग्यत्वं जगद्रचनादिव्यवहारेऽकिञ्चित्करत्वमस्ति मुक्तस्य प्रयोजनाभावादथ बद्धस्य च सामर्थ्याभावात् ।।९ ४।।

यदि लोके कश्चिदीश्वरः प्रत्यक्षं प्रसिध्येत् तर्हि -

मुक्तात्मनः प्रशंसोपासासिद्धस्य वा ।।९ ५।।

ईश्वर के प्रत्यक्ष को बतलाती है ।।९ ३।।

तत्र च - इस स्थिति मे-

उभयथाप्यसत्करत्वम् ।।९ ४।।

सूत्रार्थ= बद्ध या जीवन मुक्त व्यक्ति का ईश्वर मानने पर उन दोनों में ईश्वर की योग्यता सृष्टि रचना आदि सिद्ध नहीं हो पाएगी, दोनों में यह सामर्थ्य नहीं होने से ।

भाष्य विस्तार = भाष्यकार कहते हैं **उभयथा प्रकारेणापि** दोनों ही प्रकार से **मुक्तस्य बद्धस्य चेश्वरत्वे** जीवन मुक्त को अथवा बद्ध को ईश्वर मान लो तब **असत्करत्वं असत्करत्वं** ये दोष आएगा अर्थात **ऐश्वर्य अयोग्यत्वं** उसमें ईश्वर वाले गुण सिद्ध नहीं हो पाएंगे और **जगद्रचनादिव्यवहारे** जगत रचना आदि व्यवहार में **अकिञ्चित्करत्वमस्ति** वह सृष्टि रचना आदि कर ही न सकेगा (इसलिए शरीर धारी को ईश्वर मानना ठीक नहीं है) अब जो आँख से दिख रहे हैं 'जीवन मुक्त और बद्ध' उनके विषय में कह रहे हैं **मुक्तस्य प्रयोजनाभावाद** जो जीवन मुक्त है उसका सृष्टि बनाना तो प्रयोजन नहीं है **अथ बद्धस्य च सामर्थ्याभावात्** और जो बद्ध आत्मा है उसका सामर्थ्य नहीं है जगत रचना करने की (स्वामी विवेकानंद जी के मत में दोनों के लिए एक ही हेतु 'सामर्थ्याभावात्' लगाना चाहिए क्योंकि जीवन मुक्त भी सामर्थ्यवान नहीं जगत रचन में) ।। ९ ४।।

यदि लोके कश्चिदीश्वरः प्रत्यक्षं प्रसिध्येत् तर्हि - प्रश्न उठाया कि यदि संसार में कोई व्यक्ति ईश्वर नाम से प्रसिद्ध हो जाए तो। तब इसका उत्तर देते हैं-

मुक्तात्मनः प्रशंसोपासासिद्धस्य वा ।।९ ५।।

सूत्रार्थ= शरीर धारी किसी व्यक्ति को यदि ईश्वर मान लें तो वह उस जेवण मुक्त अथवा योगाभ्यास उपासना आदि से विशिष्ट योग्यता प्राप्त बद्ध व्यक्ति की प्रशंसा मात्र है, वह वास्तविक ईश्वर नहीं है ।

भाष्य विस्तार = **जीवन्मुक्तस्य चरमदेहस्य (उपासासिद्धस्य वा) अथवा ध्यानोपासनया सिद्धिः प्राप्तस्य बद्धस्य यथाऽद्यत्वे जैनतीर्थ १ रनाम्ना पौराणिकावतार-नाम्ना प्रसिद्धस्य-ब्रह्ममुनिः प्रशंसामात्रं न तु वस्तुत ईश्वरः स भवति।** कह रहे हैं **जीवन्मुक्तस्य चरमदेहस्य** जो जीवन मुक्त होगा चरम देह वाला

(मुक्तात्मनः) जीवन्मुक्तस्य चरमदेहस्य (उपासासिद्धस्य वा) अथवा ध्यानोपासनया सिद्धिः प्राप्तस्य बद्धस्य यथाऽद्यत्वे जैनतीर्थ १ रनाम्ना पौराणिकावतार-नाम्ना प्रसिद्धस्य-बह्यमुनिः प्रशंसामात्रं न तु वस्तुत ईश्वरः स भवति । तस्मादीश्वर- प्रत्यक्षार्थं योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षस्यावश्यकताऽस्तीति हेतोरत्र योगिनामयोगिनामुभयेषां प्रत्यक्षस्य सामान्यं लक्षणं कृतमतो नात्र प्रत्यक्षलक्षणे दोषः ।। ९ ५।।

अस्तु तर्हि योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षग्राह्यः पुरुषविशेष ईश्वरः ''क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'' (योग ० १ . २ ४) यः खलु वैदिकसिद्धान्ते स्वीक्रियते, परन्तु तस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वात् कथमीश्वरत्वमधिष्ठातृत्वं चेत्याकांक्षायामु%यते -

तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत् ।। ९ ६।।

अंतिम शरीर वाला होगा, अगला शरीर धारण नहीं करेगा जिसका मोक्ष होने वाला है जो या फिर **अथवा ध्यानोपासनया सिद्धिः प्राप्तस्य** ध्यान उपासना के द्वारा जिनहोने सिद्ध प्राप्त कर ली हो (अच्छी योग्यता बना ली, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि पर विजय प्राप्त कर ली, या मन इंद्रियों पर पूरा संयम है। इस प्रकार कि जिन्होने सिद्धि प्राप्त कर ली है) **बद्धस्य यथाऽद्यत्वे जैनतीर्थ १ रनाम्ना पौराणिकावतार-नाम्ना प्रसिद्धस्य-ब्रह्ममुनिः प्रशंसामात्रं** जैन तीर्थंकर, पौराणिक जिन्हे अवतार मानते हैं, स्वामी दयानन्द आदि ऐसे लोगों को यदि भगवान नाम से पुकारे अथवा कह देवे तो ये उनकी प्रशंसा मात्र है। वास्तव में वह ईश्वर नहीं हैं। **तस्मादीश्वर- प्रत्यक्षार्थं योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षस्यावश्यकताऽस्तीति हेतोरत्र योगिनामयोगिनामुभयेषां प्रत्यक्षस्य सामान्यं लक्षणं कृतमतो नात्र प्रत्यक्षलक्षणे दोषः।** आगे कहा **तस्मादीश्वर- प्रत्यक्षार्थ** ५ इसलिए ईश्वर का प्रत्यक्ष करने के लिए **योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षस्यावश्यकताऽस्तीति** योगियों के आन्तरिक प्रत्यक्ष की आवश्यकता होती है, क्योंकि उसके बिना ईश्वर की सिद्धि न हो पाएगी इति हेतो इसी कारण से अत्र यहाँ इस सूत्र में योगिनामयोगिनामुभयेषां योगी हो या अयोगी दोनों ही व्यक्तियों का **प्रत्यक्षस्य सामान्यं लक्षणं कृतं** दोनों का प्रत्यक्ष करने वाला सामान्य लक्षण बताया **अतो नात्र प्रत्यक्षलक्षणे दोषः** अतः यहाँ प्रत्यक्ष लक्षण में कोई दोष नहीं है ।। ९ ५।।

अस्तु तर्हि योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षग्राह्यः पुरुषविशेष ईश्वरः ''क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'' हमने मान लिया कि- योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष से ग्रहण करने योग्य एक पुरुष विशेष ईश्वर है । योगदर्शन के सूत्र के अनुसार क्लेश कर्म विपाक आदि से परे है, सब जीवो से भिन्न प्रकार का है **(योग ० १ . २ ४) यः खलु वैदिकसिद्धान्ते स्वीक्रियते** जो ईश्वर वैदिक सिद्धान्त में स्वीकार किया जाता है, वह हमने भी मान लिया, **परन्तु तस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वात् कथमीश्वरत्वमधिष्ठातृत्वं चेत्याकांक्षायामुच्यते** परंतु उसका नित्य शुद्ध बुध्द मुक्त स्वभाव होने से वह संसार का स्वामी कैसे हो गया और सब जगत का राजा कैसे हो गया? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं -

तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत् ।। ९ ६।।

सूत्रार्थ= प्रकृति की समीपता से ईश्वर प्रकृति का अधिष्ठाता वा स्वामी हो जाता है, जैसे लोहे की निकटता से चुंबक।

(तत्सन्निधानात्-अधिष्ठातृत्वं मणिवत्) 'तत्' शब्देन पुरुषविशेषाद् भिन्ना प्रकृतिर्गृह्यते । प्रकृतिसन्निधानात् पुरुषविशेषे तत्रेश्वरेऽधिष्ठातृत्वमीश्वरत्वं कर्तृत्वं च भवति मणिवत्, यथा लोहसन्निधानादयस्कान्तमणेराकर्षणकर्तृत्वं भवति तथैव प्रकृतिसन्निधानात्पुरुषविशेषस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वं जगत्कर्तृत्वं चास्ति ।। ९ ६।।

एवमेव -

विशेषकार्येष्वपि जीवानाम् ।। ९ ७।।

भाष्य विस्तार = **'तत्' शब्देन पुरुषविशेषाद् भिन्ना प्रकृतिर्गृह्यते।** सूत्र में जो 'तत' शब्द है जो पुरुष विशेष से भिन्न है प्रकृति अर्थ लिया जाएगा। **प्रकृतिसन्निधानात् पुरुषविशेषे तत्रेश्वरेऽधिष्ठातृत्वमीश्वरत्वं कर्तृत्वं च भवति मणिवत्,** प्रकृति के सन्निधान से निकटता से उस पुरुष विशेष ईश्वर में जगत का राजा संसार का स्वामी जगत का कर्ता बन गया, मणि के समान। **लोहसन्निधानादयस्कान्तमणेराकर्षणकर्तृत्वं भवति** जैसे लोहे की सन्निधि से जैसे चुंबक में आकर्षण कर्तित्व हो जाता है और बो चुंबक लोहे को खींच लेता है **तथैव प्रकृतिसन्निधानात्पुरुषविशेषस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वं जगत्कर्तृत्वं चास्ति** उसी प्रकार से चुंबक के समान ही प्रकृति की निकटता से पुरुष विशेष ईश्वर का आधिष्ठात्रित्व हो गया और जगत का कर्तित्व हो गया। (जैसे चुंबक बिना हाथ के अपनी शक्ति से लोहे को खींच लेता है वैसे ही ईश्वर बिना हाथ पाँव के अपनी शक्ति से प्रकृति को गतिशील बना देता है) **।।९६।।**

एवमेव -

विशेषकार्येष्वपि जीवानाम् ।। ९ ७।।

सूत्रार्थ= विशेष कार्यों में जीवों का भी अधिष्ठातृत्व होता है ।

भाष्य विस्तार = **अपि सम्भवार्थः सम्भवो युक्तता।** सूत्र में जो 'अपि' शब्द है वह संभव अर्थ में है (संभव के भी दो अर्थ है प्रचलित एक 'हो सकता है' और दूसरा 'निश्चित रूप से है ही') और संभव का यहा अर्थ लिया जाएगा 'निश्चित रूप से ऐसा ही है'। **रसरक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रादीनां रचनापरिपाकौ प्राणसञ्चारश्च इति नैसर्गिकं कार्यं विहाय विशेषेषु भिन्नेषु कार्येषु सन्निधानाज्जीवानामपि भवत्येवाधिष्ठातृत्वं** कहते है कुछ क्रियाएँ शरीर में नैसर्गिक चल रही है, अर्थात जो क्रियाएँ जीव नहीं कर रहा होता, ईश्वर की व्यवस्था से चल रही हैं । रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, शुक्र आदि की रचना और इनका परिपाक तथा प्राणों का जो संचार चल रहा है शरीर में इन नैसर्गिक कार्यो के अतिरिक्त **विशेषेषु भिन्नेषु कार्येषु विशेष भिन्न कार्यों में सन्निधानात किन्ही वस्तुओं की निकटता होने से जीवानाम अपि भवति अधिष्ठात्तृत्वम** जीवात्माओं का भी अधिष्ठातृत्व हो जाता है (किन्ही-किन्ही वस्तुओं के निकट होने से जीवात्मा भी उनका राजा बन जाता है) उदाहरण दे रहे हैं **तद्यथा मृत्तिकासन्निधानाद् घटनिर्मातृत्वम्,** जैसे कुम्हार मिट्टी के सन्निधान होने से घट का निर्माता बन जाता है, इसी तरह से **अन्नसन्निधानाद् भोजनपक्तृत्वम्,** किसी पाचक के निकट भोजन बनाने की सामाग्री (अन्न आदि) रखी हुई है उसने भोजन बना दिया, **कार्पाससन्निधानाद् वस्त्रवातृत्वम्,** जिस जुलाहे की पास कपास हो उस कपास की निकटता से वस्त्र बुनना आरंभ कर देता है वो उसका अधिष्ठाता बन जाता।

(विशेषकार्येषु-अपि जीवानाम्) अपि सम्भवार्थः सम्भवो युक्तता । रसरक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्रादीनां रचनापरिपाकौ प्रामसञ्चारश्च इति नैसर्गिकं कार्यं विहाय विशेषेषु भिन्नेषु कार्येषु सन्निधानाज्जीवानामपि भवत्येवाधिष्ठातृत्वं तद्यथा मृत्तिकासन्निधानाद् घटनिर्मातृत्वम्, अन्नसन्निधानाद् भोजनपक्तृत्वम्, कार्पाससन्नि- धानाद् वस्त्रवातृत्वम्, प्राणिमात्रस्य स्वस्वस्वाद्यान्वेषयितृत्वं यथानुकूलं यथासम्भवं स्वस्वनीडबिलादिनिर्मातृत्वं तत्तत्साधनवस्तुसन्निधानाद् भवति हि ।। ९७।।

भवतु प्रकृतिसन्निधानादीश्वरस्याधिष्ठातृत्वं प्रकृतिं जगद्रूपे परिणमयितुं परन्तु सर्गारम्भे जीवात्मनामन्तःकरणे वेदवाक्यार्थोपदेशस्तेभ्यः कर्मफलप्रदानं च कथं तेनेश्वरेण क्रियते-इत्याकांक्षायामुच्यते सूत्रद्वयेन -

सिद्धरूपबोद्धृत्वाद्वाक्यार्थोपदेशः। अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम्।। ९८-

---

है। **प्राणिमात्रस्य स्वस्वखाद्यान्वेषयितृत्वं यथानुकूलं यथासम्भवं स्वस्वनीडबिलादिनिर्मातृत्वं तत्तत्साधनवस्तुसन्निधानाद् भवति हि** समस्त प्राणी अपना-अपना भोजन ढूंढते रहते हैं और जिसको जितना अनुकूल होता है जितना शक्ति सामर्थ्य विज्ञान ईश्वर ने दिया है विल, घोसला, भवन आदि निर्माण कर लेते हैं वो सब उस उस वस्तु के सन्निधान से आसपास रहने निकट होने से उसके स्वामी बन जाते हैं ।।९७।।

भवतु प्रकृतिसन्निधानादीश्वरस्याधिष्ठातृत्वं प्रकृतिं जगद्रूपे परिणमयितुं परन्तु सर्गारम्भे जीवात्मनामन्तःकरणे वेदवाक्यार्थोपदेशस्तेभ्यः कर्मफलप्रदानं च कथं तेनेश्वरेण क्रियते भूमिका में कहते हैं भाष्यकार - कि प्रकृति की निकटता होने से ईश्वर उसका अधिष्ठाता हो जाता हो, प्रकृति को जगत रूप में परिणमित करने के लिए वो प्रकृति का अधिष्ठाता बन गया। परंतु सृष्टि के आरंभ में जीवात्माओं के अन्तःकरण में वेद के वाक्यों व उसके अथो ५ का उपदेश किया और जीवों को कर्मफल भी प्रदान किए। ये उसने कैसे किया?-इत्याकांक्षायामुच्यते सूत्रद्वयेन - इस प्रश्न के उपास्थित होने पर इन दो सूत्रों के माध्यम से उत्तर दिया जाता है

सिद्धरूपबोद्धृत्वाद्वाक्यार्थोपदेशः। अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम् ।।९८-९९।।

सूत्रार्थ= ईश्वर नित्य ज्ञान प्रदाता होने से सृष्टि के आरम्भ में जीवों के अन्तःकरण में वेद वाक्यार्थ का उपदेश करता है ।

और अन्तःकरण को ईश्वर द्वारा विकसित किए जाने से ईश्वर का जीवों पर अधिष्ठातृत्व या स्वामित्व होता है, जैसे लोहे में अग्नि का ।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति - इन दोनों सूत्रों में परस्पर संबंध है-

भाष्य विस्तार = अत्र सिद्धशब्दो नित्यार्थः। इस सूत्र में जो 'सिद्ध' शब्द आया है वह नित्य अर्थ में हैं। **नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः पुरुषः** तो पुरुष जो की ईश्वर है वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, स्वभाव वाला है। **तस्य नित्यबुद्धस्वरूपत्वात् स्वरूपतो बोधकत्वात्।** उसके नित्य ही बुद्ध स्वरूप होने से अर्थात स्वरूप से ही अनन्त ज्ञान वाला है। **वेदवाक्यार्थोपदेशः खलूपपद्यते जीवात्मनामन्तःकरणे** ईश्वर स्वरूप से ही बोध

९९ ।।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -

(सिद्धरूपबोद्धृत्वात्) अत्र सिद्धशब्दो नित्यार्थः। नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः पुरुषः, तस्य नित्यबुद्धस्वरूपत्वात् स्वरूपतो बोधकत्वात्। (वाक्यार्थोपदेशः) वेदवाक्यार्थोपदेशः खलूपपद्यते जीवात्मनामन्तःकरणे (अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वात्) जीवात्मनामन्तःकरणस्य तेन बोधकेनेश्वरेणोद्भासितत्वात् स्वकीयज्ञानेन विकासितत्वात् तत्र ज्ञानस्याविष्कृतत्वात् (लोहवदधिष्ठातृत्वम्)

कराने वाला है वह सबका गुरु शिक्षक है इसलिए वह वेद वाक्यों के अर्थों का उपदेश करता है जीवात्माओं के अन्तःकरणों में। इस प्रकार से वेद वाक्यों के उपदेश करता है, अब **जीवात्मनामन्तःकरणस्य तेन बोधकेनेश्वरेणोद्भासितत्वात् स्वकीयज्ञानेन विकासितत्वात् तत्र ज्ञानस्याविष्कृतत्वात्** जीवात्माओं के अन्तःकरण को **तेन बोधकेनेश्वरेणोद्भासितत्वात्** उद्भासित किया, प्रेरित किया **स्वकीयज्ञानेन विकासितत्वात्** अपने ज्ञान से उनके अन्तःकरण को विकसित किया **तत्र ज्ञानस्याविष्कृतत्वात्** उनके अन्तःकरण में ज्ञान स्थापित कर देने से उन चार ऋषियों को ज्ञान हो गया **अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वादेव तेभ्यो जीवात्मभ्यः कर्मफलप्रदानायापि तेषामन्तःकरणस्य तेनेश्वरेणोज्ज्वलितत्वात् तस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वमस्ति।** एक दृष्टांत के माध्यम से समझाते हैं **अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वादेव** अन्तःकरण को ईश्वर प्रेरित करता है जीवात्माओं को कर्मफल भुगवाने के लिए **तेभ्यो जीवात्मभ्यः कर्मफलप्रदानायापि** उन जीवात्माओं के लिए कर्मफल देने के लिए भी **तेषामन्तःकरणस्य तेनेश्वरेणोज्ज्वलितत्वात्** उनके अन्तःकरण को क्रियाशील करता है इस कारण से भी **तस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वमस्ति** उस ईश्वर का अधिष्ठातृत्व है । **उक्तं यथा "जीवेनात्मनाऽनु-प्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति"** जैसा कि छंदोग्यउपनिषद में कहा गया है कि जीवात्मा के साथ ईश्वर प्रविष्ट होकर के अर्थात जीवात्माओं के साथ रहता हुआ ईश्वर नामरूपे व्याकरवाणीति सृष्टि के पदाथो ५ के नाम और उनके रूप आकृतियाँ बनाता है। **तच्चाधिष्ठातृत्वं लोहवत्,** वह जो उसका अधिष्ठातृत्व है वह लोहे के समान है। **लोहे-इव लोहवत् "तत्र तस्येव" (अष्टा ०५.१.११६) तत्रैव वत् प्रत्ययः सप्तम्याम्।** अष्टाध्यायी का एक सूत्र है "तत्र तस्येव" इस में बताया कि वहाँ पर जो 'वत' प्रत्यय है वह सप्तमी है, प्रथमा में नहीं है। तो लोहवत का अर्थ हुआ 'जैसे लोहे में' **लोहे यथाऽग्निनोज्वलितेऽग्नेरधिष्ठातृत्वं भवति** जैसे लोहे में अग्नि के द्वारा उज्वलित करने पर (अग्नि के द्वारा लोहे को गरम करने पर) फिर अग्नि उसका अधिष्ठाता हो जाता है (लोहा होता है ठोस परंतु अग्नि में गरम करने से उसको जिधर चाहो मूड जाता है) **स लोहं प्रविश्य नमयति** लोहे में अग्नि प्रवेश करके उसे जिधर चाहे झुका देती है मोड देती है **तथैवेश्वरो जीवात्मनामन्तःकरणं कर्मफलाभिमुखं नयति** उसी प्रकार से ईश्वर उन जीवों के अन्तःकरणों में प्रविष्ट हो करके कर्मफल की ओर मोड देता है ।।९८- ९९।।

प्रत्यक्षप्रमाणस्य विषयः समाप्तः, प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय अब समाप्त हुआ। **योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वात्-लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाच्चेश्वरस्य योगिप्रत्यक्षविषयत्वं च साधितं** योगियों का अबाह्य प्रत्यक्ष होने से और सूक्ष्म वस्तुओं के साथ उनका सीधा संबंध होने से और ईश्वर योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष का विषय है, ये भी सिद्ध हुआ। **प्रकृतिजीवात्मसु च तस्याधिष्ठातृत्वमपि व्यवस्थापितम्,**

अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वादेव तेभ्यो जीवात्मभ्यः कर्मफलप्रदानायापि तेषामन्तःकरणस्य तेनेश्वरेणोज्ज्वलितत्वात् तस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वमस्ति। उक्तं यथा "जीवेनात्मनाऽनु- प्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति" (छान्दो ०६.३.२) तच्चाधिष्ठातृत्वं लोहवत्, लोहे-इव लोहवत् "तत्र तस्येव" (अष्टा ०५.१.११६) तत्रैव वत् प्रत्ययः सप्तम्याम् । लोहे यथाऽग्निनोज्ज्वलितेऽग्नेरधिष्ठातृत्वं भवति स लोहं प्रविश्य नमयति तथैवेश्वरो जीवात्मनामन्तःकरणं कर्मफलाभिमुखं नयति ।। ९८- ९९।।

प्रत्यक्षप्रमाणस्य विषयः समाप्तः, योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वात्-लीनवस्तुलब्धा-तिशयसम्बन्धाच्चेश्वरस्य योगिप्रत्यक्षविषयत्वं च साधितं प्रकृतिजीवात्मसु च तस्याधिष्ठातृत्वमपि

और प्रकृति एवं जीवात्मा पर उसका अधिष्ठातापन भी सिद्ध हो गया। **अधुना तदग्रेऽवशिष्टप्रमाणविषयः प्रस्तूयते।** अब उसके आगे प्रत्यक्ष प्रमाण को बताने के बाद बचे हुए प्रमाण का विषय प्रस्तुत किया जाता है ।

प्रतिबन्धदृशः प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम् ।।१००।।

सूत्रार्थ= नियम पूर्वक साथ साथ रहने वाली दो वस्तुओ को देखने वाले व्यक्ति का उन दोनों के सम्बंध का ज्ञान, इसको अनुमान प्रमाण कहते हैं ।

भाष्य विस्तार = बन्धं बन्धं प्रति-प्रतिबन्धोऽनिवार्यसम्बन्धोऽविनाभावसम्बन्धस्तं पश्यतीति प्रतिबन्धदृक् तस्य प्रतिबन्धदृशोऽनिवार्यसम्बन्धदृशो यद्वाऽविनाभाव-सम्बन्धद्रष्टुर्नियतसम्बन्धद्रष्टुः। प्रतिबंध को पहले बता रहे हैं बन्धं बन्धं प्रति एक-एक बन्ध के प्रति (बन्ध का अर्थ है बंधन, नियम पूर्वक साथ रहना) **प्रतिबन्धोऽनिवार्यसम्बन्धोऽविनाभावसम्बन्ध** प्रत्येक बंधन के प्रति अर्थात अनिवार्य संबंध (जो दो वस्तुएँ साथ-साथ रहती हैं सदा) उसी को अविनाभाव संबंध कहते हैं **तं पश्यति प्रतिबन्धदृक्** उस नियामक संबंध को देखने वाला तस्य प्रतिबन्धदृशः उस प्रतिबंध को देखने वाले व्यक्ति का **अनिवार्य संबंध दृशः अथवा अविनाभाव संबंध दृशः नियत सम्बंध दृशः** जो दो चीजों के नियत सम्बंध को देखने वाला व्यक्ति है, उस व्यक्ति का **प्रतिबद्धज्ञानम्= अनिवार्यसम्बन्धज्ञानमविनाभावसम्बन्ध - ज्ञानं नियतसम्बन्धज्ञानं तत्तस्थलेषु तत्तज्जातीयेषु तद्व्याप्तिज्ञानं तद्दर्शनं वानुमानं प्रमाणं भवति।** इस प्रकार से उस अनिवार्य सम्बंध का जो ज्ञान है (इस प्रकार से दो वस्तुओं के नित्य सम्बंध को जानने वाले व्यक्ति का जो ज्ञान है) **अविनाभाव सम्बंध ज्ञान** निश्चित साथ रहने के नियम का जो ज्ञान है **तत्तस्थलेषु तत्तज्जातीयेषु** उन-उन स्थलों पर उन-उन प्रकार की वस्तुओं में **तद्व्याप्तिज्ञानं** उसके व्याप्ति का ज्ञान **तद्दर्शनं वा** उसी ज्ञान को दर्शन भी कहते हैं, ये अनुमान प्रमाण होता है। **तन्त्रान्तरप्रसिद्धं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टं च" तन्त्रान्तरप्रसिद्धं** अन्य शास्त्र में जो प्रसिद्ध है वो अनुमान प्रमाण तीन प्रकार का है **पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टं च** पूर्ववत, शेषवत और सामान्यतोदृष्ट। **तथा "अनुमेयस्य तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्तः सम्बन्धो यस्तद्विषया सामामन्यावधारणप्रधाना वृत्तिरनुमानम्"** और योगदर्शन के व्यासभाष्य का वचन- **अनुमेयस्य** जो अनुमान करने योग्य पदार्थ है, जैसे- अग्नि। उस अनुमेय पदार्थ का **तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो समान** जाति के सब धुओं में वह साथ रहता है (अनुमेय पदार्थ=अग्नि, जहां-जहां धुआँ होगा वहाँ-वहाँ अग्नि अवश्य होगी) **भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्तः** भिन्न जाति वाला है, जैसे- जल। (जहां-जहां पानी होगा वहाँ-वहाँ अग्नि नहीं होगी) इस प्रकार से जो

व्यवस्थापितम्। अधुना तदग्रेऽवशिष्टप्रमाणविषयः प्रस्तूयते ।

प्रतिबन्धदृशः प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम् ।।१००।।

(प्रतिबन्धदृशः) बन्धं बन्धं प्रति-प्रतिबन्धोऽनिवार्यसम्बन्धोऽविनाभावसम्बन्धस्तं पश्यतीति प्रतिबन्धदृक् तस्य प्रतिबन्धदृशोऽनिवार्यसम्बन्धदृशो यद्वाऽविनाभावसम्बन्धद्रष्टुर्नियतसम्बन्धद्रष्टुः (प्रतिबद्धज्ञानम्) अनिवार्यसम्बन्धज्ञानमविनाभावसम्बन्धज्ञानं नियतसम्बन्धज्ञानं तत्तत्स्थलेषु तत्तज्जातीयेषु तद्व्याप्तिज्ञानं तद्दर्शनं वानुमानं प्रमाणं भवति। तत्रान्तरप्रसिद्धं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टं च'' (न्याय ०१.१.५) तथा ''अनुमेयस्य तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्तः सम्बन्धो यस्तद्विषया सामा मन्यावधारणप्रधाना वृत्तिरनुमानम्'' (योग ०१.७ व्यासः) उदाहरणं च पर्वतो वह्निमान् धूमात्, यथा

सम्बंध है अर्थात जो उससे सम्बंद्ध पदार्थ है-अग्नि। **तद्विषया** उस अग्नि के सम्बंध में **सामान्यावधारणप्रधाना वृत्ति अनुमानम** सामान्य ज्ञान कराने वाली वृत्ति उसका नाम अनुमान है। उदाहरण देते हैं- **उदाहरणं च पर्वतो वह्निमान् धूमात्,** जैसे कि कोई कहे कि ये पर्वत अग्नि वाला है, क्योंकि ऊपर धुआँ दिख रहा है **यथा महानसं** जैसे पाकशाला में (महानस कहते हैं पाकशाला को) **यत्र यत्र धूमस्तत्र वह्निस्तस्मात् पर्वतो वह्निमान्** जहां-जहां पर धुआँ दिखता है वहाँ-वहाँ पर आग दिखती है, इसलिए पर्वत भी अग्नि वाला है ।।१००।।

आप्तोपदेशः शब्दः ।।१०१।।

सूत्रार्थ= ईश्वर और ऋषियों का उपदेश शब्द प्रमाण है ।

भाष्य विस्तार = **आप्तस्य सर्वज्ञानमाप्तवतः सर्वज्ञस्येश्वरस्योपदेशः, आप्त का जो उपदेश है वो शब्द प्रमाण है आप्तस्य सर्वज्ञानमाप्तवतः** आप्त अर्थात सारे ज्ञान को प्राप्त करने वाले का ऐसे **सर्वज्ञस्येश्वरस्योपदेशः** सर्वज्ञ ईश्वर का उपदेश, शब्द प्रमाण है। **यद्वाऽऽप्तो महर्षीणामन्तरात्मन्याविष्टः सर्गारम्भे यः स वेदः,** अथवा ऐसे भी कह सकते हैं **महर्षीणामन्तरात्मन्याविष्टः** महिर्षियों के अंतरात्मा में जो प्रविष्ट है **सर्गारम्भे** सर्ग के आरम्भ में **यः** जो **स वेदः** वह वेद शब्द प्रमाण कहलाएगा। **तथाऽऽप्तस्य साक्षात्कृतधर्मणो विद्यानिष्णातस्योपदेशः शब्दप्रमाणम्** और आप्तस्य साक्षात्कृतधर्मणो जिसने वस्तुओं के धर्मों का साक्षात्कार किया हो वह **विद्यानिष्णातस्योपदेशः** विद्या में निष्णात है, कुशल है, जानकर है उसका उपदेश भी शब्द प्रमाण है ।।१०१।।

उभयसिद्धिः प्रमाणात् तदुपदेशः ।।१०२।।

सूत्रार्थ= तीनों प्रमाणों से प्रकृति और पुरुष दोनों की सिद्धि होती है, इसलिए इन प्रमाणों का उपदेश किया।

भाष्य विस्तार = **उभययोः प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धिर्भवति प्रमाणात् अतस्तस्य प्रमाणस्योपदेशः क्रियते।** तो कहते हैं **उभययोः** दोनों की अर्थात **प्रकृतिपुरुषयोः** प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा-परमात्मा) की सिद्धिर्भवति सिद्धि हो जाती है, **प्रमाणात्** प्रमाण से **अतस्तस्य प्रमाणस्योपदेशः क्रियते** इसलिए इस प्रमाण का उपदेश किया जाता है **उभयसिद्धिः प्रमाणत्रयात् कथमिति विव्रियते**- तीन प्रमाणों से दोनों की सिद्धि

महानसं यत्र यत्र धूमस्तत्र वह्निस्तस्मात् पर्वतो वह्निमान् ।।१००।।

आप्तोपदेशः शब्दः ।।१०१ ।।

(आप्तोपदेशः) आप्तस्य सर्वज्ञानमाप्तवतः सर्वज्ञस्येश्वरस्योपदेशः, यद्वाऽऽप्तो महर्षीणामन्तरात्मन्याविष्टः सर्गारम्भे यः स वेदः, तथाऽऽप्तस्य साक्षात्कृतधर्मणो विद्यानिष्णातस्योपदेशः (शब्दः) शब्दप्रमाणम् ।।१०१।।

उभयसिद्धिः प्रमाणात् तदुपदेशः ।।१०२।।

(उभयसिद्धिः प्रमाणात्) उभययोः प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धिर्भवति प्रमाणात् (तदुपदेशः)

कैसे होती है, इसका विवरण देते हैं। **प्रकृतिपुरुषयोः प्रत्यक्षं प्रमाणं तु योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वाद् तेषां लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाच्च भवतीत्युक्तं हि पूर्वम्,** इति उक्तम ही पूर्वम ऐसा पहले कह चुके हैं कि **प्रकृतिपुरुषयोः** प्रकृति पुरुष दोनों का **प्रत्यक्षं प्रमाणं तु** दोनों का प्रत्यक्ष प्रमाण तो **योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वाद्** योगियों के अबाह्य प्रत्यक्ष होने से **तेषां लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाच्च** और उनका सूक्ष्म पदार्थो के साथ सीधा साक्षात सम्बंध होने से उन दोनों का ज्ञान हो जाता है। **यतो हि प्रत्यक्षलक्षणके सूत्रे** क्योंकि प्रत्यक्ष लक्षण के सूत्र में ऐसा बताया था **''यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्''** जी सभी किसी वस्तु के सम्बंध से सिद्ध होने वाला उसके स्वरूप को बतलाने वाला जो ज्ञान है वो प्रत्यक्ष कहलाता है। **इति न्यायशास्त्रवत् 'इन्द्रियार्थस-न्निकर्षः' प्रत्यक्षस्य लक्षणं नोक्तं** यहाँ सा २य दर्शन में न्याय दर्शन के समान 'इन्द्रियार्थसन्निकर्षः तो प्रत्यक्ष का लक्षण नहीं कहा **अपितु 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' उक्तं** बल्कि 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' इन शब्दो से कहा **तच्चान्तःकरणसम्बन्धसिद्धमध्यात्मसम्बन्धसिद्धमपि योगिनां प्रत्यक्षं तत्प्रत्यक्षलक्षणेऽन्तर्भवति,** इस प्रकार से 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' शब्द कह कर के जो प्रत्यक्ष की परिभाषा की, इस परिभाषा में योगियों का जो आंतरिक प्रत्यक्ष होता है अन्तःकरण के सम्बंध से ईश्वर आत्मा आदि पदार्थों के साथ सम्बंध होने पर जो उनका सीधा सीधा साक्षात ज्ञान होता है उसको भी योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष में स्वीकार करके वह भी प्रत्यक्ष के लक्षणों में आजाता है **तस्मात् प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धौ प्रत्यक्षं प्रमाणमपिसाधकम्।** इसलिए ईश्वर-जीव-प्रकृति इन सूक्ष्म तत्वों का आंतरिक प्रत्यक्ष हो जाता है, इन तीनों की सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाण से हो जाती है । प्रत्यक्ष प्रमाण से इन तीनों की सिद्धि हो गयी है । अब

अनुमानम्-महत्तत्त्वादिकं कार्यम् महतत्व के बाद के जितने पदार्थ हैं वे सब कार्य हैं प्रकृति के (जो उत्पन्न हुआ वो कार्य है, जिससे उत्पन्न हुआ वो कारण है), **कार्यं चोपादाननिमित्ताभ्यां सम्भवति घटवत्** जो कार्य वस्तु है वह उपादान और निमित्त इन दो कारणों से उत्पन्न होते हैं, जैसे घड़ा उत्पन्न होता है, **यथा घटस्य मृत्तिकयोपादानकारणेन तथा कुम्भकारेण निमित्तकारणेन भवितव्यं** जैसे घड़े का एक उपादान कारण होना चाहिए मिट्टी और इसी प्रकार से कुंभकार निमित्त होना चाहिए तभी घड़ा बनेगा तद्वदत्रापि प्रकृत्योपादानकारणेन पुरुषेणेश्वरेण निमित्तकारणेन भवितव्यमेव जैसे कार्य वस्तु घड़ा मिट्टी और कुंभकार के बिना नहीं बन सकता, ऐसे ही जो जगत है ये प्रकृति के बिना नहीं बन सकेगा और ईश्वर के बिना जगत का निर्माण न हो सकेगा (जैसे

अतस्तस्य प्रमाणस्योपदेशः क्रियते । उभयसिद्धिः प्रमाणत्रयात् कथमिति विव्रियते-प्रकृतिपुरुषयोः प्रत्यक्षं प्रमाणं तु योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वाद् तेषां लीनवस्तु-लब्धातिशयसम्बन्धाच्च भवतीत्युक्तं हि पूर्वम्, यतो हि प्रत्यक्षलक्षणके सूत्रे ''यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्'' इति न्यायशास्त्रवत् 'इन्द्रियार्थस-न्निकर्षः' प्रत्यक्षस्य लक्षणं नोक्तमपितु 'यत्सम्बन्धसिद्धम्' उक्तं त%चान्तःकरणसम्बन्ध-सिद्धमध्यात्मसम्बन्धसिद्धमपि योगिनां प्रत्यक्षं तत्प्रत्यक्षलक्षणेऽन्तर्भवति, तस्मात् प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धौ प्रत्यक्षं प्रमाणमपिसाधकम् । अनुमानम्-महत्तत्त्वादिकं कार्यम्, कार्यं चोपादाननिमित्ताभ्यां सम्भवति घटवत्, यथा घटस्य मृत्तिकयोपादानकारणेन तथा कुम्भकारेण निमित्तकारणेन भवितव्यं तद्वदत्रापि प्रकृत्योपादानकारणेन पुरुषेणेश्वरेण निमित्तकारणेन भवितव्यमेव । अथ च ''कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः'' (वैशेषिक ०२.१.२४) कार्यं त्रिगुणात्मकं सत्त्वरजस्तमोमयं तथाभूतेन त्रिगुणात्मकेन सत्त्वरजस्तमोमयेन प्रकृत्याख्येनोपादानकारणेनापि भवितव्यम् । ''अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधः'' (सांख्य

मिट्टी घड़े का उपादान कारण है वैसे ही प्रकृति जगत का उपादान है जैसे कुम्हार घड़े का निमित्त कारण है वैसे ही ईश्वर जगत निर्माण में निमित्त कारण है) । **अथ च ''कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः''** एक और भी ये नियम है, वैशेषिक दर्शन में के सूत्र है ''कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः'' कार्य वस्तु में जो गुण देखे जाते हैं वे कारण गुण के अनुसार होते हैं **(वैशेषिक ०२. १.२४)** इसके आधार पर **कार्यं त्रिगुणात्मकं सत्त्वरजस्तमोमयं तथाभूतेन त्रिगुणात्मकेन सत्त्वरजस्तमोमयेन प्रकृत्याख्येनोपादानकारणेनापि भवितव्यम्** (जैसे रेशमी वस्त्र है तो उसका उपादान कारण भी रेशमी धागा ही होगा) जगत में तीन प्रकार का स्वभाव दिख रहा है, ये कार्य जगत तीन गुणों वाला है सत्व, रज और तम से युक्त है । इस कार्य को देखकर के इसका कारण भी त्रिगुणात्मक होना चाहिए वो भी सत्व रज और तम से युक्त होना चाहिए जिसको प्रकृति नाम से कहते हैं, ऐसा ही उपादान कारण होना चाहिए। ये अनुमान प्रमाण से प्रकृति की सिद्धि हो गयी है । **''अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधः''** जो वस्तुएँ आँख से नहीं दिखती उनका हम अनुमान से ज्ञान कर लेते हैं **(सांख्य ०१.६०) इति सूत्रतः प्रकृतिपुरुषयोर्बोधायानुमानं प्रक्रियते** इस सूत्र से प्रकृति और पुरुष का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनुमान का प्रसंग चला **पुनश्च** और फिर कहा **''संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य''** (जीवात्मा के अनुमान के लिए ये सूत्र है) संघात वस्तुएँ किसी दूसरे के लिए होती हैं, इससे ये अनुमान होता है की सघात से भी भिन्न कोई और होता है जो इसका प्रयोक्ता होता है, वह उपभोक्ता जीवात्मा है **(सांख्य ०१.६६) इति सूत्रेऽप्युपतिष्ठते** इस सूत्र में भी ये बात उठाई गई कि संघात वस्तुएँ किसी दूसरे के लिए होती हैं, **संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्यानुमानेन बोधो भवति** इस प्रकार से पुरुष का ज्ञान अनुमान से हो जाता है, सघात के पर के लिए होने से। **महदादिकं संहतं तच्च परार्थं घटशय्यादिवत्** महतत्व भी संघात है वह सत्व-रज-तम से मिलकर बना है वह दूसरे के लिए बना है घट , शय्या आदि के समान, **परश्च पुरुषः** वो जो पर है दूसरा जो इसका उपभोग करेगा वह जीवात्मा है, **एवमनुमानं प्रमाणसिद्धौ** इस प्रकार से ये अनुमान प्रमाण कि सिद्धि हो गई । प्रमाण से प्रकृति पुरुष कि सिद्धि करने में ये अनुमान प्रमाण हुआ ।

अब शब्द प्रमाण से सिद्ध करते हैं ईश्वर जीव प्रकृति को- **शब्दप्रमाणं च ''द्यावाभूमी जनयन् देव एकः** यजुर्वेद का ये शब्द प्रमाण है- एक ही देव ईश्वर ने भूमि अन्तरिक्ष पृथ्वी लोक को उत्पन्न किया **(यजु**

०१.६०) इति सूत्रतः प्रकृतिपुरुषयोर्बोधायानुमानं प्रक्रियते पुनश्च ''संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य'' (सांख्य ०१.६६) इति सूत्रेऽप्युपतिष्ठते, संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्यानुमानेन बोधो भवति । महदादिकं संहतं तच्च परार्थं घटशय्यादिवत्, परश्च पुरुषः, एवमनुमानं प्रमाणसिद्धौ । शब्दप्रमाणं च ''द्यावाभूमी जनयन् देव एकः (यजु ०१७.१९) इति पुरुषविशेष ईश्वरे शब्दप्रमाणम् । ''त्यक्तेन भुञ्जीथा'' (यजु ०४०.१) भोक्तृपुरुषे शब्दप्रमाणम् । ईश्वरजीवयाः शब्दप्रमाणम् ''बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते । ततः परिष्वजीयसी मम प्रिया देवता ।। इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे। यस्मै कृताशये स यश्चकार जजार सः।।'' (अथर्व ० १०.८.२५-२६) प्रकृतौ शब्दप्रमाणम् - ''तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तन्महिना जायतैकम्'' (ऋ ०१०.१२९.३) 'आभु' प्रकृत्याख्यं कारणवस्तु यतः ''इयं विसृष्टिर्यत आबभूव'' (ऋ ०१०.१२९.७) इति निर्देशः। ''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः''

---

० १७.१९) **इति पुरुषविशेष ईश्वरे शब्दप्रमाणम्** ये पुरुष विशेष ईश्वर के संबंध में शब्द प्रमाण हो गया। ''**त्यक्तेन भुञ्जीथा**'' वेद में प्रमाण दिया दूसरा- त्याग पूर्वक भोगो **(यजु ०४०.१) भोक्तृपुरुषे शब्दप्रमाणम्** ये भोक्ता पुरुष के संबंध में शब्द प्रमाण है। **ईश्वरजीवयाः शब्दप्रमाणम्** अब एक ऐसा मंत्र का प्रमाण दे रहे हैं जिसमें ईश्वर और जीव दोनों के विषय में शब्द प्रमाण है ''**बालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते** एक तो जीवात्मा ऐसा है जो बाल से भी छोटा है और जो दूसरा है ईश्वर वह तो और भी छोटा है उसकी तो कल्पना भी नहीं कर सकते। **ततः परिष्वजीयसी मम प्रिया देवता** इस प्रकार से जो मेरा प्रिय देवता है वह कल्याण करने वाला है ।। एक मात्र और दिया प्रमाण के लिए **इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे। यस्मै कृताशये स यश्चकार जजार सः ।।'' (अथर्व ० १०.८.२५-२६)** ये कल्याण करने वाली बूढ़ी न होने वाली और कभी मरती नहीं, इस मर्त्य=जीवात्मा (मरने का अर्थ है शरीर छोड़ते रहना) के गृह में रहती है। इस प्रकार से जीवात्मा जो कर्म करता है ईश्वर उसको कर्मफल देता रहता है **प्रकृतौ शब्दप्रमाणम्** अब प्रकृति के विषय में शब्द प्रमाण बताते हैं - ''**तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तन्महिना जायतैकम्**'' इस ऋग्वेद के मंत्र में बताया है- तुच्छ छोटी सी आभू=प्रकृति का जो प्रलय अवस्था में पढ़ी थी, उसको ईश्वर ने परमाणुओं का संयोग वियोग करके एक महतत्व के रूप में प्रकट किया। इस शब्द प्रमाण से पता चलता है कि मूल रूप से प्रकृति एक ही थी **(ऋ ०१०.१२९.३) 'आभु' प्रकृत्याख्यं कारणवस्तु यतः ''इयं विसृष्टिर्यत आबभूव'' (ऋ ०१०.१२९.७) इति निर्देशः** आभू=प्रकृति नाम की एक कारण वस्तु थी, जगत की उत्पत्ति से पूर्व । जिस कारण से ये विचित्र सृष्टि उत्पन्न हुई उसका नाम आभू=प्रकृति है । ''**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः**'' ये उपनिषद का प्रमाण दिया- जो जन्म नहीं लेती, एक है, और लाल सफ़ेद तथा काले रंग वाली है, वो बहुत प्रकार से समान रूप वाली प्रजा को बनाती है, उस प्रकृति का **(श्वेता ०४.५) अजन्मा सत्त्वरजस्तमोमयी प्रकृतिः संकेतिता** इस वचन में जो जन्म न लेनी वाली है अजन्मा है उस सत्व-रज-तम मयी प्रकृति का संकेत किया है । ''**एकं बीजं बहुधा व करोति'' (श्वेता ०६.२) इति बीजशब्देनाभिलक्षिता प्रकृतिः** इस वचन में कहा- जो ईश्वर एक बीज को बहुत रूप बना देता है, यहाँ एक बीज शब्द से प्रकृति की ओर संकेत है।

अब अगला शब्द प्रमाण ऐसा है जिसमें तीनों के विषय में बताया है -

(श्वेता ०४.५) अजन्मा सत्त्वरजस्तमोमयी प्रकृतिः संकेतिता ।''एकं बीजं बहुधा व करोति'' (श्वेता ०६.२) इति बीजशब्देनाभिलक्षिता प्रकृतिः। अथेश्वरजीवप्रकृतिरूपपदार्थत्रयस्य शब्दप्रमाणम् ''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति'' (ऋ ० १.१६४.२०) अत्र 'द्वा सुपर्णा' तथा 'अन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति'-अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति' कथनेनेश्वरजीवौ सूच्येते 'समानं वृक्षम्' कथनेन प्रकृत्याख्यं प्रधानं लक्ष्यते ।तस्मान् प्रत्यक्षानुमानशब्दाख्येन प्रमाणत्रयेण प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धिर्भवतीति कथनं सूत्रे साधुतरां युक्तम् ।। १०२।।

पुनश्च -

सामान्यतो दृष्टादुभयसिद्धिः ।।१०३।।

(सामान्यतः-दृष्टात्-उभयसिद्धिः) सामान्याद् दृष्टसम्बन्धात् ''संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य'' (सां

अथेश्वरजीवप्रकृतिरूपपदार्थत्रयस्य शब्दप्रमाणम् अब ईश्वर-जीव-प्रकृति तीनों का एक साथ शब्द प्रमाण देते हैं''**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति**''(ऋ०१.१६४.२०) **अत्र 'द्वा सुपर्णा' तथा 'अन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति'-अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति' कथनेनेश्वरजीवौ सूच्येते** इस मंत्र में 'द्वा सुपर्णा' दो सुंदर पंखों वाले पक्षी (यहाँ ईश्वर और जीव दोनों की चर्चा है) फिर कहते हैं **'अन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति'-अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति'** उन दो में से के तो फल खाता है, फल खाने वाला जीवात्मा है और जो दूसरा है ईश्वर। वह खाता नहीं है **'समानं वृक्षम्' कथनेन प्रकृत्याख्यं प्रधानं लक्ष्यते** और जो दोनों पक्षी एक ही वृक्ष पर बैठे हैं, वो जो वृक्ष था वह प्रकृति है। इस प्रकार से यहाँ पर 'समानं वृक्षम्' कथन से प्रकृति का कथन किया जाता है, जिसे प्रधान नाम से जाना जाता है। **तस्मान् प्रत्यक्षानुमानशब्दाख्येन प्रमाणत्रयेण प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धिर्भवतीति** इस प्रकार से प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द इन तीनों प्रमाणों से प्रकृति पुरुष (जीवात्मा और ईश्वर) इन तीनों की सिद्धि हो जाती है **कथनं सूत्रे साधुतरां युक्तम्** इस प्रकार से ये कथन सूत्र में बहुत अच्छी तरह से सिद्ध हो गया, ये कहना उचित है कि प्रमाणों के माध्यम से प्रकृति और पुरुष दोनों का ज्ञान हो जाता है ।इसलिए शास्त्रों में प्रमाणों का उपदेश किया गया है ।।१०२।।

पुनश्च -

सामान्यतो दृष्टादुभयसिद्धिः ।।१०३।।

सूत्रार्थ= सामान्य रूप से देखने पर भी एक पदार्थ भोक्ता और दूसरा भोग्य होता है, इसकी सिद्धि होती है।

भाष्य विस्तार = सामान्याद् दृष्टसम्बन्धात् ''संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य'' पूर्वोक्तात् खलूभयोर्भोक्तृत्वभोग्यत्वयोः सिद्धिर्भवति। इस सूत्र के भाष्य में कहते हैं सामान्याद् दृष्टसम्बन्धात् सूत्र में जो ''सामान्यतो दृष्ट'' शब्द है उसका अभिप्राय 'सामान्य दृष्टसम्बन्ध' से जैसा कि पहले कहा था संघात वस्तु दूसरे के लिए होती है, इससे पुरुष का अनुमान होता है। उस कथन से भोक्तृत्व और भोग्यत्व इन दो की सिद्धि होती है ।**महदादिकं भोग्यं संहतपरार्थत्वात्** महतत्व, अहंकार, बुद्धि, इंद्रियाँ आदि ये सब भोग्य पदार्थ संघात है और संघात पदार्थ दूसरे के लिए होता है **तच्च संहतं शय्यादिवत् परार्थं भोग्यं** जो ये परार्थ पदार्थ है वे शैय्या

०१.६६) पूर्वोक्तात् खलूभयोर्भोक्तृत्वभोग्यत्वयोः सिद्धिर्भवति। महदादिकं भोग्यं संहतपरार्थत्वात् तच्च संहतं शय्यादिवत् परार्थं भोग्यं परश्च पुरुषो यदर्थं तत्संहतं भोग्यं तस्मान्महदादिकं भोग्यं पुरुषो भोक्ता । अन्ये भाष्यकारा इमं सूत्रं प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धावनुमानप्रमाणस्यैकांशमुखेन व्याचक्षते तन्न युक्तम्, यदि स्यादेवं तर्हि त्वनुमानप्रमा- णलक्षणानन्तरमेव शब्दप्रमाणलक्षणात्पूर्वमस्य सूत्रस्य रचनया भाव्यं तथा च ''चिदवसानो भोगः'' (१०४) इत्येतेनाग्रिमानन्तरसूत्रेण भोगविषयकेण सहास्य संगतिरपि खल्वस्मदर्थविधाने भवति साऽपि किलास्मदर्थपोषिकाऽस्ति ।। १०३।।

आदि के समान दूसरे के लिए हैं परश्च पुरुषो और जो 'पर' है वह पुरुष है **यदर्थं तत्संहतं भोग्यं** जिसके लिए ये संघात वस्तुएँ हैं वो पुरुष=जीवात्मा उन सब का लाभ उठाता है **तस्मान्महदादिकं भोग्यं पुरुषो भोक्ता** इसलिए महतत्व से लेकर पंचमहाभूतों से निर्मित जितने भी पदार्थ हैं वे सब संघात है इनका भोक्ता पुरुष=जीवात्मा है। **अन्ये भाष्यकारा इमं सूत्रं प्रकृतिपुरुषयोः सिद्धावनुमानप्रमाणस्यैकांशमुखेन व्याचक्षते तन्न युक्तम्,** स्वामी ब्रह्म मुनि जी कहते हैं- अन्य भाष्यकारों ने इस सूत्र की व्याख्या अलग ढंग से की है वे प्रकृति पुरुष की सिद्धि में अनुमान प्रमाण के एक मुख के माध्यम से कहते हैं अर्थात इस सूत्र में प्रकृति पुरुष की सिद्धि की गई है अनुमान प्रमाण से ।'सामान्यतो दृष्ट से प्रकृति पुरुष की सिद्धि कहते हैं' ये ठीक नहीं है । यहाँ 'उभय' शब्द से प्रकृति पुरुष नहीं लेना है यहाँ तो भोक्ता और भोग्य अर्थ लेना है। **यदि स्यादेवं तर्हि त्वनुमानप्रमाणलक्षणानन्तरमेव शब्दप्रमाणलक्षणात्पूर्वमस्य सूत्रस्य रचनया भाव्यं** यदि ऐसी बात होती जैसी अन्य भाष्यकारों ने की । तो इस सूत्र की रचना अनुमान प्रमाण के लक्षण के पश्चात और शब्द प्रमाण के लक्षण से पहले, वहीं इस सूत्र की रचना होनी चाहिए थी । परंतु वहाँ हुई नहीं, इसका अर्थ ये है कि उस अनुमान प्रमाण कि चर्चा नहीं है, अनुमान की व्याख्या में ये सूत्र नहीं है । इसलिए उनकी व्याख्या ठीक नहीं है। **तथा च ''चिदवसानो भोगः''(१०४) इत्येतेनाग्रिमानन्तरसूत्रेण भोगविषयकेण सहास्य संगतिरपि खल्वस्मदर्थ-विधाने भवति साऽपि किलास्मदर्थपोषिकाऽस्ति** और जो आगे आने वाला सूत्र है ''चिदवसानो भोगः'' इस आगे आने वाले सूत्र के साथ जो कि भोग के संबंध में कह रहा है, हमने जो व्याख्या की वो इस सूत्र के साथ संगति करता है । वुद्धिमान लोग इसको देख सकते हैं । इसलिए जो संगति हमारे सूत्र के अर्थ से बैठती है वह भी हमारे अर्थ की पुष्टि करने वाली है **।। १०३।।**

स्याद् भोग्यं महदादिकं परन्तु पुरुषस्तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः सन् कथं हि स भोक्ता माना कि महद आदि पदार्थ भोग्य हैं, परंतु पुरुष तो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला है, फिर वह भोक्ता कैसे हुआ? उच्यते। यतः - क्योंकि

चिदवसानो भोगः ।। १०४।।

सूत्रार्थ= भोग अर्थात सुख दुःख की अनुभूति चेतन को प्राप्त होती है ।

भाष्य विस्तार = भोग कैसा है भोग को बता रहे है, भोग अर्थात अनुभूति। **चिति चेतने पुरुषेऽवसानमवस्थानं यस्य स तथाभूतो भोगो भवति। चिति चेतने पुरुषे** चेतन पुरुष=जीवात्मा में अवसान अर्थात अवस्थान प्राप्ति जिसकी होती है वह भोग ऐसा पदार्थ है जिसकी प्राप्ति चेतन को होती है **भोग्यं**

स्याद् भोग्यं महदादिकं परन्तु पुरुषस्तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः सन् कथं हि स भोक्ता ? उच्यते। यतः -

चिदवसानो भोगः ॥१ ०४॥

(चिदवसानःभोगः) चिति चेतने पुरुषेऽवसानमवस्थानं यस्य स तथाभूतो भोगो भवति । भोग्यं जडं भवति तस्य भोगो भवति चेतनाय चेतने हि भोगोऽवतिष्ठते चेतनश्च पुरुषस्तस्मात्पुरुषो भोक्ता ॥१०४॥

चेतनः पुरुषो भोक्ता भवेद् यदि स कर्ता स्यात्, यः कर्ता स भोक्तेति प्रसिद्धेः परन्तु पुरुषस्तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः कथं नाम तस्य कर्तृत्वं पुनः कथं हि कर्तृत्वमन्तरेण तस्य भोगापत्तिरित्यत्रोच्यते सूत्रद्वयेन -

---

जडं भवति तस्य भोगो भवति चेतनाय भोग्य वस्तुएँ जड़ होती हैं, इनका भोग होता है चेतन के लिए । इसलिए कहा **चेतने हि भोगोऽवतिष्ठते** भोग चेतन में ही ठहरता है **चेतनश्च पुरुषस्तस्मात्पुरुषो भोक्ता** चेतन पुरुष है इसलिए भोक्ता पुरुष हुआ ॥१०४॥

चेतनः पुरुषो भोक्ता भवेद् यदि स कर्ता स्यात् पूर्वपक्षी कहता है कि आप चेतन पुरुष को भोक्ता कह रहे हैं उसे भोक्ता तब तो माने जब वह कर्ता हो, **यः कर्ता स भोक्तेति प्रसिद्धेः** जो कर्ता है वो भोक्ता है ये प्रसिद्ध है **परन्तु पुरुषस्तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः कथं नाम तस्य** कर्तृत्वं परंतु पुरुष तो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, स्वभाव वाला है फिर कैसे वह कर्ता बनेगा क्योंकि पहले से ही वह सब से मुक्त है **पुनः कथं हि कर्तृत्वमन्तरेण तस्य भोगापत्तिरित्यत्रोच्यते सूत्रद्वयेन** जब वह कर्ता ही न बन पा रहा है फिर भोक्ता कैसे बनेगा, कर्ता बने बिना ही उसे भोग की प्राप्ति कैसे होगी? इस शंका को अगले दो सूत्रों से समाधान करते हैं -

अकर्तुरपि फलोपभोगोऽन्नाद्यवत् ॥१०५॥

सूत्रार्थ= बिना कर्म किए भी दूसरे के कर्म से उसका कर्म का परिणाम भोगना पड़ता है, पके हुए भोजन आदि के समान ।

अविवेकाद्वा तत्सिद्धेः कर्तुः फलावगमः ॥१०६॥

सूत्रार्थ= अथवा अविवेक के कारण जीवात्मा अपने आप को कर्ता मान लेता है, जब कर्ता मान लेता है फिर फल की प्राप्ति होनी चाहिए ।

सूत्रद्वयं सह व्याख्यायते - दोनों सूत्रों की एक साथ व्याख्या करते हैं-

भाष्य विस्तार = कहते हैं कहीं-कहीं संसार में ऐसा भी देखा जाता है कि **अक्रतुरपि भवति फलोपभोक्तृत्वम्** जो कर्ता नहीं उसको भी फल भोगते देखा जाता है। कैसे- **यथाऽन्नाद्यकर्त्रा भोजनपाककर्त्राऽन्नाद्यं पक्वं कृतं भोजनमुपभोगोऽकर्तुः स्वामिनो भवति तद्वत्सम्भवेदेव** जैसे अन्न आदि का बनाने वाला भोजन पकाने वाला उसके द्वारा पकाया गया अन्न उसके स्वामी सेठ के लिए होता है, उसी की

अकर्तुरपि फलोपभोगोऽन्नाद्यवत् ।।१०५।।

अविवेकाद्वा तत्सिद्धेः कर्तुः फलावगमः ।।१०६।।

सूत्रद्वयं सह व्याख्यायते –

(अकर्तुः-अपि फलोपभोगः) अक्रतुरपि भवति फलोपभोक्तृत्वम् (अन्नाद्यवत्) यथाऽन्नाद्यकर्त्री भोजनपाककर्त्रीऽन्नाद्यं पक्कं कृतं भोजनमुपभोगोऽकर्तुः स्वामिनो भवति तद्वत्सम्भवेदेव तस्यापि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य पुरुषस्य भोग्यं स च तस्य भोक्ता, उक्तं योगभाष्ये व्यासेनापि ''क्लेशकर्मादयः....मनसि वर्तमानाः पुरुषे व्यपदिश्यन्ते स हि तत्फलस्य भोक्तेति यथा जयः पराजयो वा योद्धृषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यते'' (योग ०१.२४ व्यासः) (वा) अथवा (अविवेकात् तत्सिद्धेः) अविवेकात् कर्तृत्वसिद्धिः पुरुषस्य, विवेकात् पूर्वं तु स कर्ताऽस्त्येव तस्मात् (कर्तुः

तरह से यहाँ भी संभव है। **तस्यापि नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य पुरुषस्य भोग्यं स च तस्य भोक्ता,** यद्यपि जीवात्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव वाला है, उसकी भी कोई दूसरी वस्तु भोग्य हो सकती है और वो उसका भोक्ता बन जाए। (यद्यपि जीवात्मा कर्म करता है परंतु वह सीधा सीधा नहीं करता, उसके नौकर इंद्रियाँ जो करण हैं साधन हैं वो करते हैं, इस दृष्टि से इस दृष्टांत को समझना चाहिए) **उक्तं योगभाष्ये व्यासेनापि** योगदर्शन के व्यास भाष्य में कहा है कि **''क्लेशकर्मादयः....मनसि वर्तमानाः पुरुषे व्यपदिश्यन्ते स हि तत्फलस्य भोक्तेति** क्लेश कर्म आदि ये रहती तो मन में हैं और कही जाती हैं पुरुष में **स हि तत्फलस्य भोक्तेति** क्योंकि वही इन सबका भोक्ता है । **यथा जयः पराजयो वा योद्धृषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यते''** दृष्टांत दिया- युद्ध होता है दो देशों में उनके सैनिकों के बीच और जय-पराजय कही जाती है राजाओं में देशों में। **अब दूसरे सूत्र का अर्थ करते हैं (वा) अथवा (अविवेकात् तत्सिद्धेः) अविवेकात् कर्तृत्वसिद्धिः पुरुषस्य** अविद्या के कारण पुरुष के कर्तृत्व कि सिद्धि हो जाती है, अविवेक के कारण जीवात्मा अपने आप को कर्ता मान लेता है, **विवेकात् पूर्वं तु स कर्ताऽस्त्येव** और जब तक उसे विवेक=तत्वज्ञान न हो जाए तब तक उसे अविवेक है, जिसके कारण वो स्वयं को कर्ता मान लेता है **तस्मात् (कर्तुः फलावगमः) कर्तुः पुरुषस्य फलप्राप्तिर्भोगप्राप्तिर्भवति** इसलिए उस कर्ता पुरुष को फल की प्राप्ति होना ठीक ही बात है (एक बड़े व्यापारी को व्यापार में हानि हो गई, जहाज से समान जा रहा था ५० लाख का, सामान का बीमा नहीं था। दुर्भाग्य से समुद्र में जहाज डूब गया। इस घटना की सूचना मिली कि ५० लाख का नुकसान हो गया, तो शोक मग्न हो गया हृदयघात हो गया। सामान डूबा, सेठ तो नहीं। क्यों शोक किया? अविद्या के कारण। क्या मान लिया कि- ५० लाख उसका ही हिस्सा था उसकी आत्मा का हिस्सा था। यदि तत्वज्ञान प्राप्त कर ले तो शोक नहीं होगा) **।।१०५-१०६।।**

पुनश्च –

नोभयं च तत्त्वाख्याने ।।१०७।।

सूत्रार्थ= तत्वज्ञान हो जाने पर जीवात्मा में सकाम कर्मों का कर्तव्य और लौकिक सुख- दुःख का भोक्तृत्व दोनों ही नहीं रहते ।

फलावगमः) कर्तुः पुरुषस्य फलप्राप्तिर्भोगप्राप्तिर्भवति ।। १०५-१०६।।

पुनश्च -

नोभयं च तत्त्वाख्याने ।। १०७।।

(तत्त्वाख्याने) विवेकात् सति तत्त्वसाक्षात्कारे यथार्थदर्शने (उभयं च न) उभयं कर्तृत्वं भोक्तृत्वं न भवतः, चकाराद् भोग्यं च नावतिष्ठते तत्सम्मुखम् ।। १०७।।

ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षेण प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धिः कथं न भवतीति प्रदर्शयितुं सर्वविषयकैन्द्रियिकप्रत्यक्षे बाधकानि परिगण्यन्ते -

विषयोऽविषयोऽप्यतिदूरादेर्हानोपादानाभ्यामिन्द्रियस्य ।।१०८।।

भाष्य विस्तार = विवेकात् सति तत्त्वसाक्षात्कारे यथार्थदर्शने (उभयं च न) उभयं कर्तृत्वं भोक्तृत्वं न भवतः, इस सूत्र में बताते हैं **विवेकात् सति** विवेक हो जाने पर तत्त्वसाक्षात्कारे तत्व का साक्षात्कार हो जाने पर **यथार्थदर्शने** यथार्थ ज्ञान हो जाने पर **उभयं** दोनों ही **कर्तृत्वं भोक्तृत्वं न भवतः,** कर्तापन और भोक्तापन दोनों में से कुछ भी नहीं रहता **चकाराद् भोग्यं च नावतिष्ठते तत्सम्मुखम्** जब उसको तत्वज्ञान हो गया कर्तापन और भोक्तापन भी खत्म हो गया, जब उसका मोक्ष हो गया तो उसका भोग ही समाप्त हो गया फिर ये भोग्य जगत उसके सामने नहीं रहेगा ।।१०७।।

ऐन्द्रियिकप्रत्यक्षेण प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धिः कथं न भवतीति प्रदर्शयितुं सर्वविषयकैन्द्रियिकप्रत्यक्षे बाधकानि परिगण्यन्ते - ये प्रकृति-जीवात्मा और ईश्वर आँखों से क्यों नहीं दिखाई देता ? इंद्रियों के प्रत्यक्ष से ईश्वर जीव की उपलब्धि क्यों नहीं होती? ऐसा दिखलाने के लिए, समझाने के लिए सब विषयों के जो इंद्रियों से प्रत्यक्ष हैं उनके बाधक गिनाए जाएंगे-

विषयोऽविषयोऽप्यतिदूरादेर्हानोपादानाभ्यामिन्द्रियस्य ।।१०८।।

सूत्रार्थ= विषय होते हुए भी अविषय हो जाता है, क्यों अति दूर होना, निकट होना, सूक्ष्म होना आदि-आदि कारणों से। और इंद्रियों के टूट फुट जाने से, अन्य विषयों का प्रभाव अधिक होने से वस्तु का ज्ञान नहीं हो पाता।

भाष्य विस्तार = विषयो भावात्मकः पदार्थः खल्वविषयोऽनिन्द्रियविषयोऽपि भवति कोई सतात्मक पदार्थ है (जैसे ताजमहल ।ताजमहल तो है लेकिन दिख नहीं रहा) होते हुए भी वह वस्तु इंद्रियों से नहीं जानी जा रही, क्यों अतिदूरत्वादेर्हेतोः अधिक दूर होने आदि के कारण ।(जिन कारणों से वस्तु होते हुए भी नहीं दिखाई देती है, उन कारणों को बता रहे हैं ।) **आदिनाऽतिसामीप्यात्** कोई वस्तु आँख के अधिक समीप हो तो दिखाई नहीं देगी, जैसे- आँखों में लगा हुआ काजल।, **व्यवधानात्** वस्तु और इंद्रिय के बीच व्यवधान होने से अर्थात कोई वस्तु पर्दे अथवा दीवार के पीछे हो तो आँखों से दिखाई नहीं देगी, **मनसोऽनवस्थानात्** मन के अस्थिर होने से (मन इंद्रिय के साथ जुड़ेगा तो ज्ञान होगा और नहीं जुड़ेगा तो ज्ञान नहीं होगा) जैसे कोई वक्ता प्रवचन कर रहा हो और श्रोता का मन कानों से न जुड़कर कहीं और लगा हो तो क्या वक्ता द्वारा प्रवचन

(विषयः-अविषयः-अपि) विषयो भावात्मकः पदार्थः खल्वविषयोऽनिन्द्रि-यविषयोऽपि भवति (अतिदूरादेः) अतिदूरत्वादेर्हेतोः। आदिनाऽतिसामीप्यात्, व्यवधानात्, मनसोऽनवस्थानात्, सौक्ष्म्यात्, अभिभवाच्च (इन्द्रियस्य हानोपादानाभ्याम्) इन्द्रियस्य हानाद् विकाराद्घातात् तथोपादानात् - उपरिष्ठादादानमुपादानमन्येन्द्रियप्रभावस्तस्माच्चापि विषयोऽविषयो भवति ।। १०८।।

प्रस्तुतेष्वेतेषु बाधकेषु किं बाधकमत्र प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धावित्युच्यते -

सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिः ।। १०९।।

(तदनुपलब्धिः सौक्ष्म्यात्) तयोः प्रकृतिपुरुषयोरैन्द्रियिकप्रत्यक्षेणानुपलब्धिः सौक्ष्म्यात् तयोः सूक्ष्मत्वाद्धेतोर्भवति । योगिनामध्यात्मप्रत्यक्षेण तु तयोरुपलब्धिर्भवत्येव तथा चोक्तं विज्ञानभिक्षुणाऽपि ''योगजधर्मस्य चोत्तेजकतया प्रकृतिपुरुषादीनां प्रत्यक्षप्रमा भवति'' ।। १०९।।

किया गया, उसका ज्ञान नहीं होगा, **सौक्ष्म्यात्** सूक्ष्म होने के कारण भी नहीं दिखाई देता, जैसे-आकर्षण बल, बैक्टीरिया, रेडिएशन आदि, **अभिभवाच्च** एक वस्तु का दूसरी वस्तु से दब जाना, जैसे रात्री में दीपक जलाने पर उसका उजाला दिखाई देता है किन्तु दिन में दोपहर के समय दीपक का प्रकाश दिखाई नहीं देता, क्योंकि उसका प्रकाश सूर्य के प्रकाश से दब गया। **इन्द्रियस्य हानाद्** इंद्रिय के टूट-फुट जाने से भी वस्तु नहीं दिखती, जैसे- अंधे को रूप रंग आदि नहीं दिखता **विकाराद्घातात्** इंद्रियों में विकार आने से, और चोट लग जाने से नहीं दिखता । जैसे कान की सुनने की शक्ति कम हो जाना, आँखों से कम दिखना अथवा धुंधला दिखना आदि **तथोपादानात्-उपरिष्ठादादानमुपादानमन्येन्द्रियप्रभाव**- एक इंद्रिय से किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करते समय दूसरी इंद्रिय का अधिक प्रभावी होने से पहले जिस इंद्रिय से ज्ञान प्राप्त कर रहे थे उसमें व्यवधान अर्थात उस ज्ञान को निरंतर नहीं कर पाते । जैसे कोई टीवी सीरियल देख रहा हो, इसी बीच बाहर ज़ोर से धमाके के स्वर से देखना बंद और उस तीव्र स्वर पर ध्यान केन्द्रित हो जाता है इस बीच जो टीवी सीरियल चल रहा था उसका ज्ञान छूट जाता है **स्तस्माच्चापि विषयोऽविषयो भवति** इन सब कारणों से भी वस्तु के होने पर भी उसका ज्ञान नहीं हो पाता है ।। १०८।।

प्रस्तुतेष्वेतेषु बाधकेषु किं बाधकमत्र प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धावित्यच्यते-उन प्रस्तुत किए गए बाधकों में से यहाँ प्रकृति और पुरुष का ज्ञान होने में कौन सा बाधक है-

सौक्ष्म्यात् तदनुपलब्धिः ।। १ ०९।।

सूत्रार्थ= सूक्ष्म होने से प्रकृति और पुरुष की अनुपलब्धि है ।

भाष्य विस्तार=तयोः प्रकृतिपुरुषयोरैन्द्रियिकप्रत्यक्षेणानुपलब्धिः सौक्ष्म्यात् तयोः सूक्ष्मत्वाद्धेतोर्भवति। कहते हैं-उन दोनों की प्रकृति-पुरुष की एन्द्रीयक प्रत्यक्ष से आँख आदि से जो ज्ञान नहीं हो रहा है, उसका कारण है सूक्ष्म होने से। **योगिनामध्यात्मप्रत्यक्षेण तु तयोरुपलब्धिर्भवत्येव** योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष से तो प्रकृति और पुरुष दोनों की उपलब्धि होती है **तथा चोक्तं विज्ञानभिक्षुणाऽपि** ऐसा विज्ञानभिक्षु ने भी स्वीकार किया था **''योगजधर्मस्य चोत्तेजकतया प्रकृतिपुरुषादीनां प्रत्यक्षप्रमा भवति''**

कथं कृत्वा प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धिः सौक्ष्म्यमनुसृत्य स्वीक्रियते तयोः सौक्ष्म्ये किं प्रमाणम्। अत्रोच्यते –

कार्यदर्शनात् तदुपलब्धिः ।।११०।।

(कार्यदर्शनात्) उपलभ्यमानं जगत् स्थूलं दृश्यते, तस्य कार्यभूतस्य स्थूलजगतो दर्शनादुपलम्भात् (तदुपलब्धिः) तयोः प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धिर्भवति, यतः स्थूलस्य पूर्वरूपं यद्वा स्थूलात् पूर्वसत्ताकं वस्तु भवति सूक्ष्मं तथा च स्थूलत्वविधायकं तद्भोक्तृ वा चेतनं वस्तु सूक्ष्ममेव, तस्मात् तयोः प्रकृतिपुरुषयोः सौक्ष्म्यं स्थूलजगतः कार्यरूपात् स्पष्टीभवति ।।११०।।

अत्र शंकते –

वादिविप्रतिपत्तेस्तदसिद्धिरिति चेत् ।।१११ ।।

योगज धर्म की तीव्रता से (साधक समाधि लगाएगा समाधि से जो उन्नति होगी उसके माध्यम से) प्रकृति पुरुष आदि सूक्ष्म पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है ।। १०९।।

कथं कृत्वा प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धिः सौक्ष्म्यमनुसृत्य स्वीक्रियते तयोः सौक्ष्म्ये किं प्रमाणम्। अत्रोच्यते – प्रकृति पुरुष का जो ज्ञान है सूक्ष्मता के कारण से क्यों आप ऐसा स्वीकार कर रहे हैं? कि प्रकृति पुरुष सूक्ष्म है इसलिए उनका ज्ञान आँख से नहीं हो रहा। उनके सूक्ष्म होने में क्या प्रमाण है? इस का उत्तर देते हैं–

कार्यदर्शनात् तदुपलब्धिः ।।११०।।

सूत्रार्थ= कार्य जगत को देखने से इस बात का ज्ञान होता है कि जगत का जो मूल कारण है प्रकृति वो सूक्ष्म है।

भाष्य विस्तार = **उपलभ्यमानं जगत् स्थूलं दृश्यते,** स्थूल जगत की वस्तुएँ जो आँखों से दिख रही हैं **तस्य कार्यभूतस्य स्थूलजगतो दर्शनादुपलम्भात्** स्थूल पदार्थों के कार्य वस्तुओं का आँख से दिखने के कारण **तयोः प्रकृतिपुरुषयोरुपलब्धिर्भवति,** ये हमको ज्ञान होता है कि प्रकृति पुरुष आँख से क्यों नहीं दिख रहे, क्योंकि वो इनसे सूक्ष्म हैं **यतः स्थूलस्य पूर्वरूपं यद्वा स्थूलात् पूर्वसत्ताकं वस्तु भवति सूक्ष्मं** क्योंकि जो कोई स्थूल वस्तु होती है वह स्थूल होने से पहले सूक्ष्म होती है– ये नियम है संसार का। **तथा च स्थूलत्वविधायकं तद्भोक्तृ वा चेतनं वस्तु सूक्ष्ममेव,** उस सूक्ष्म वस्तु को स्थूल बनाने वाला जो ईश्वर है वो अथवा स्थूल वस्तु का भोगने वाला ये जीवात्मा उस स्थूल जगत और प्रकृति से भी अधिक सूक्ष्म है और इसको भोगने वाला है। **तस्मात् तयोः प्रकृतिपुरुषयोः सौक्ष्म्यं स्थूलजगतः कार्यरूपात् स्पष्टीभवति** इस कारण से प्रकृति पुरुष की सूक्ष्मता इस कार्य रूपी स्थूल जगत से सपष्ट हो जाती है ।।११०।।

अत्र शंकते – अब एक शंका उठाते हैं–

वादिविप्रतिपत्तेस्तदसिद्धिरिति चेत् ।।१११ ।।

सूत्रार्थ= शून्यवादी=पूर्वपक्षी के आक्षेप से यदि कहा जाए कि जगत के नष्ट होने से शून्य ही बचेगा।

(वादिविप्रतिपत्तेः) कार्यदर्शनादित्युच्यते कथं हि कार्यदर्शनात् सूक्ष्मस्य कारणस्यानुमानं क्रियते कथं न शून्यस्यानुमानं क्रियेत "शून्यं तत्त्वं वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य" यद्यत्कार्यं वस्तु तत्तद् विनाशधर्मि, अतः कार्यदर्शनात्कारणं शून्यमिति वादिविप्रतिपत्तिस्तस्मात् (तदसिद्धिः) तयोः प्रकृतिपुरुषयोरसिद्धिः (इति चेत्) इतिचेदुच्यते तर्हि- ।। १११ ।।

समाधत्ते -

तथाप्येकतरदृष्ट्याऽन्यतरसिद्धेर्नापलापः ।। ११२ ।।

(तथा-अपि-एकतरदृष्ट्या) कार्यस्य वस्तुनो विनाशदृष्ट्या शून्यत्वसाधने (अन्यतरसिद्धेः-न-अपलापः) कार्यस्य वस्तुनः सूक्ष्मीभूतकारणसिद्धिर्भवतीति नापलापः, यथा हि कार्यस्य वस्तुनो विनाशो धर्मोऽस्तीत्येकतरदृष्टिस्तथा कार्यस्य वस्तुनः सूक्ष्मीभावप्राप्तिरपि धर्मोऽन्यतरदृष्टिः। वस्तुतस्तु

इसलिए प्रकृति और पुरुष की असिद्धि है, तो-

भाष्य विस्तार = कार्य को देखने से कारण सूक्ष्म सिद्ध होता है, ऐसा आपने कहा- **कथं हि कार्यदर्शनात् सूक्ष्मस्य कारणस्यानुमानं क्रियते** पूर्वपक्षी कहता है- कार्य को देखकर के कारण के सूक्ष्म होने का अनुमान कैसे आप लगा रहे हैं? **कथं न शून्यस्यानुमानं क्रियेत** जगत टूटते टूटते शून्य हो जाता हो ऐसा अनुमान क्यों नहीं करते। अपनी बात की पुष्टि हेतु पूर्वपक्षी कहता है **"शून्यं तत्त्वं वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य"** विनाश प्रत्येक वस्तु का धर्म होने से हर वस्तु अन्त में नष्ट हो जाएगी तो शून्य ही बचेगा। **यद्यत्कार्यं वस्तु तत्तद् विनाशधर्मि,** संसार में जो जो भी वस्तु बनी है वह सब विनाश धर्म वाली है **अतः कार्यदर्शनात्कारणं शून्यमिति वादिविप्रतिपत्तिः** इसलिए कार्य के देखने से कारण शून्य है बचेगा, इस तरह का विचार वादी का है, सिद्धांती के विरुद्ध वादी का विचार है। **तस्मात् तयोः प्रकृतिपुरुषयोरसिद्धिः इतिचेदुच्यते** जब शून्य ही बचेगा तो इस प्रकार से प्रकृति और पुरुष दोनों की असिद्धि हो जाएगी। तर्हि- ऐसा यदि पूर्वपक्षी कहे तो- ।। १११ ।।

समाधत्ते - अब समाधान करते हैं-

तथाप्येकतरदृष्ट्याऽन्यतरसिद्धेर्नापलापः ।। ११२ ।।

सूत्रार्थ= एक दृष्टि ये है कि स्थूल वस्तु का नाश होगा, फिर भी दूसरी दृष्टि ये है कि वो सूक्ष्म हो करके कारण के रूप में बचे। इसलिए जब सूक्ष्म रूप से कारण बचेगा तो हमारी बात का खंडन नहीं होगा ।

भाष्य विस्तार = **कार्यस्य वस्तुनो विनाशदृष्ट्या शून्यत्वसाधने** कार्यवस्तु का विनाश हो जाएगा, ऐसा आपने (पूर्वपक्षी ने) कहा । कार्यवस्तु का विनाश हो जाएगा, परंतु यह एक दृष्टि है, इस विनाश की दृष्टि से शून्यत्व को सिद्ध करने का प्रयास किया,इस आपके शून्यत्व की सिद्धि करने में **कार्यस्य वस्तुनः सूक्ष्मीभूतकारणसिद्धिर्भवतीति नापलापः** इस प्रक्रिया में कार्य वस्तु के सूक्ष्मिभूत होने की सिद्धि तो होती ही है, इसका खंडन नहीं हो सकता । अन्त में सूक्ष्म रूप से कारण तो बचेगा ही **यथा हि कार्यस्य वस्तुनो विनाशो धर्मोऽस्तीत्येकतरदृष्टिः** जैसे की कार्य वस्तु का विनाश धर्म है, वो नष्ट हो जाएगी ये एक पक्ष हुआ। **तथा**

वस्तुनां विनाशस्तस्य सूक्ष्मीभाव एव कणशो जायते न सर्वथा नाशः। अतः सूक्ष्मीभाव एव तस्य कारणस्वरूपम् ।। ११२।।

अपरञ्च -

त्रिविधविरोधापत्तेश्च ।। ११३।।

(त्रिविधविरोधापत्तेः-च) अथ च वादिपक्षे त्रिविधविरोधोऽप्यापद्यते यतो न हि केवलं विनाश एव कार्यधर्मः किन्तु तस्योत्पत्तिस्थितिविनाशास्त्रयो धर्माः सन्ति । त्रिविधधर्मविरोध आपद्यते यदि तस्य कारणं शून्यं स्वीक्रियेत कार्यस्य तु तथाभूतेन कारणेन भवितव्यं यतस्तस्योत्पत्तिस्थितिनाशास्त्रयो धर्मा नियम्येरन् तथाभूतं निमित्तकारणं तु पुरुषविशेष ईश्वरः, उक्तं हि ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन

कार्यस्य वस्तुनः सूक्ष्मीभावप्राप्तिरपि धर्मोऽन्यतरदृष्टिः वो कार्य वस्तु टूट फुट करके सूक्ष्म भाव को प्राप्त हो जाएगा, ये भी तो दूसरा पक्ष है। **वस्तुतस्तु वस्तुनां विनाशस्तस्य सूक्ष्मीभाव एव कणशो जायते न सर्वथा नाशः।** वास्तव में तो विनाश का अर्थ है वस्तु का सूक्ष्म रूप हो जाना, वह कणों के रूप में परिवर्तित हो जाती है, उसका सर्वथा अभाव नहीं हो जाता। स्थूल रूप से जगत नष्ट हो जाएगा और उसका सूक्ष्म भूत कारण बचेगा, उसी का नाम प्रकृति है। **अतः सूक्ष्मीभाव एव तस्य कारणस्वरूपम्** इसलिए जगत के कार्य पदार्थो का सूक्ष्म हो जाना ही कारण स्वरूप है ।।११२।।

अपरञ्च - यदि आप ऐसा मानते हैं तो आपकी मान्यता में तीन प्रकार का दोष आयेगा ।

त्रिविधविरोधापत्तेश्च ।। ११३।।

सूत्रार्थ= पूर्वपक्षी का सिद्धान्त पक्ष से तीन प्रकार का विरोध होने के कारण शून्यवाद अनुचित है।

भाष्य विस्तार = अथ च वादिपक्षे त्रिविधविरोधोऽप्यापद्यते इस वादी के पक्ष में तीन प्रकार का विरोध आएगा **यतो न हि केवलं विनाश एव कार्यधर्मः किन्तु तस्योत्पत्तिस्थितिविनाशास्त्रयो धर्माः सन्ति** क्योंकि यहाँ केवल एक का ही कार्यवस्तु का विनाश नहीं होगा, सिद्धांती कह रहा है वस्तु का नष्ट हो जाना क्योंकि विनाश वस्तु का धर्म है, ये तो स्वीकार्य है परंतु उसके तीन धर्म हैं -उत्पत्ति, स्थिति और विनाश। **त्रिविधधर्मविरोध आपद्यते यदि तस्य कारणं शून्यं स्वीक्रियेत** यदि स्थूल वस्तु का कारण शून्य बचेगा, ऐसा मान लिया जाए तो, जो वस्तु के तीन धर्म है उससे विरोध आएगा। **कार्यस्य तु तथाभूतेन कारणेन भवितव्यं यतस्तस्योत्पत्तिस्थितिनाशास्त्रयो धर्मा नियम्येरन्** किसी भी कार्य वस्तु का जो कारण होना चाहिए वह उस स्वरूप वाला होना चाहिए जिससे उस कार्य वस्तु का उत्पत्ति स्थिति और विनाश संभव हो, तीनों कायो ५ को जो कर सके ऐसा कारण होना चाहिए । तीनों धर्मों का नियंत्रण-पालन होना चाहिए । **तथाभूतं निमित्तकारणं तु पुरुषविशेष ईश्वरः** इस प्रकार का जो निमित्त कारण है वो पुरुष विशेष ईश्वर है जो सूक्ष्म कारण द्रव्यों से सृष्टि की उत्पत्ति भी कर लेता है, आगे ठीक ठीक पालन भी करता है और फिर अन्त में इसका विनाश भी कर देता है । तो ऐसे तीनों कार्यों को करने में समर्थ ईश्वर है, उक्तं हि शास्त्र में कहा भी है **''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म''** जिससे ये सारे पदार्थ उत्पन्न

जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म'' (तै ०उ०३.१) ''जन्माद्यस्य यतः'' (वेदान्त ०१.१.२) अथ च कार्ये सत्वरजस्तमांसि त्रयो धर्मा अवतिष्ठन्ते तदा तस्य तथाभूतेनोपादानकारणेन भाव्यं यस्मिन् सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो धर्मा विद्येरन्। तथाभूतं च कारणमुपादानं प्रकृतिः, उक्तं हि पूर्वम् ''सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः'' (सांख्य १.६१) श्रुतौ च ''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः'' (श्वेता ० ४.५) प्रकृतिर्हि सत्त्वरजस्तमोमयी, शून्यं तु सर्वधर्मशून्यं तस्मादपि विरोध आपद्यते। तस्मात्कार्यभूतस्य जगतः सत्तात्मकेन कारणेन भवितव्यं न शून्येनासद्भूतेन ।।११३।।

यतश्च -

नासदुत्पादो नृश्रृंगवत् ।।११४।।

(असदुत्पादः-न नृश्रृंगवत्) असत उत्पादो न भवति नृश्रृंगवत् किन्तु सत एवोत्पादः,

---

होते हैं, और उत्पन्न होकर जिसके कारण ये जीवित रहते हैं और अन्त में जिसके अंदर ये लीन हो जाएगा नष्ट हो जाएगा, तुम उसको जानो -वह ब्रह्म है। **''जन्माद्यस्य यतः''** जिस परमात्मा से इस जगत का जन्मादि हुआ। **अथ च कार्ये सत्वरजस्तमांसि त्रयो धर्मा** अवतिष्ठन्ते और इन सब कार्य वस्तुओं में सत्व-रज-तम ये तीन प्रकार के पदार्थ विद्यमान हैं **तदा तस्य तथाभूतेनोपादानकारणेन भाव्यं यस्मिन् सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो धर्मा विद्येरन्** उस जगत का जो कारण हो वह ऐसा होना चाहिए जिसमें सत्व, रज और तम विद्यमान हो (जैसा कार्य है कारण भी वैसा ही होना चाहिए)। **तथाभूतं च कारणमुपादानं प्रकृतिः** उस प्रकार का जो कारण है वह प्रकृति है, उक्तं हि पूर्वम् पहले कह ही चुके हैं **''सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः''** सत्व-रज-तम की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। **श्रुतौ च ''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः'' प्रकृतिर्हि सत्त्वरजस्तमोमयी** इसलिए इस वचन में भी कहा था कि प्रकृति लाल सफ़ेद काले रंग वाली अर्थात सत्व रज और तम से युक्त है, **शून्यं तु सर्वधर्मशून्यं** आपके पक्ष में जो शून्य है वह तो सभी धर्मों=पदार्थों को शून्य बताती है। **तस्मादपि विरोध आपद्यते** इस कारण से भी आपकी बात में विरोध आता है। **तस्मात्कार्यभूतस्य जगतः सत्तात्मकेन कारणेन भवितव्यं न शून्येनासद्भूतेन** इसलिए कार्य भूत जो जगत है, इस जगत का कारण सत्तात्मक होना चाहिए, शून्य नहीं होना चाहिए, शून्य से तो कोई वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती **।।११३।।**

यतश्च -

नासदुत्पादो नृश्रृंगवत् ।।११४।।

सूत्रार्थ= असत से अभाव से किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती, जैसे मनुष्य के सींग से कुछ भी नहीं होता।

भाष्य विस्तार = **असत उत्पादो न भवति नृश्रृंगवत्**। असत ये पंचमी एक वचन है, असत से अभाव से **उत्पादो** उत्पत्ति **न** नहीं **भवति** होती, दृष्टांत दिया- **नृशृङ्गवत्** मनुष्य के सींग के समान (जब मनुष्य का सींग ही नहीं होता तो उससे क्या बनेगा)। **किन्तु सत एवोत्पादः** किन्तु किसी सत्तात्मक वस्तु से ही बनेगा, **सदेवोत्पद्यते-उद्भवति-अभिव्यज्यतेऽभिव्यक्तिमाप्नोति नासत्,** (किसी सत्तात्मक वस्तु हो वही

सदेवोत्पद्यते-उद्भवति-अभिव्यज्यतेऽभिव्यक्तिमाप्नोति नासत्, तस्मात् सदात्मकतया स्वकारणेऽवतिष्ठते ।। ११४।।

हेतुं प्रयच्छति -

उपादाननियमात् ।। ११५।।

(उपादाननियमात्) उपादाननियमान्नासदुत्पादः। यद्यदुत्पद्यते तत्तदुपादान- नियमात्, यथाभूतं यस्योत्पद्यमानस्योपादानं तथाभूतं तदुत्पद्यते । मृत्तिकायां मृत्तिकातो वा घटः, तन्तुषु तन्तुभ्यो वा पटः, इत्युपादाननियमः ।। ११५।।

यतः -

सर्वत्र सर्वदा सर्वासम्भवात् ।। ११६।।

रूपांतरित होके किसी दूसरी वस्तु के रूप में उत्पन्न होगी) उसी सत्तात्मक से ही उत्पन्न हो सकता है, रूपांतरित होती है अभिव्यक्त होती है, असत से नहीं होती। **तस्मात् सदात्मकतया स्वकारणेऽवतिष्ठते** इसलिए वो जो कार्य हो रहा है वो सत्तात्मक रूप से अपने कारण में छुपा हुआ है, तभी वह कालांतर में प्रकट होता है **।। ११ ४।।**

हेतुं प्रयच्छति - और हेतु देते हैं-

उपादाननियमात् ।।११५।।

सूत्रार्थ= किसी भी कार्य वस्तु की उत्पत्ति उसके निर्धारित कारण वस्तु से होती है, इस नियम से ये सिद्ध होता है कि जगत शून्य से नहीं बना है ।

भाष्य विस्तार = शून्य से कुछ भी नहीं बनता इस बात की सिद्धि के लिए एक और नियम बताया **उपादाननियमान्नासदुत्पादः** उत्पत्ति का एक नियम है, असत से उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। **यद्यदुत्पद्यते तत्तदुपादान- नियमात्** जो-जो वस्तु उत्पन्न होती है वो उपादान के नियम से होती है, **यथाभूतं यस्योत्पद्यमानस्योपादानं तथाभूतं तदुत्पद्यते** उत्पन्न होने वाली वस्तु का जो उपादान कारण है, वह जैसा होगा वस्तु भी वैसी ही बनेगी । **मृत्तिकायां मृत्तिकातो वा घटः** मिट्टी से मिट्टी का घड़ा बनेगा, **तन्तुषु तन्तुभ्यो वा पटः**, जैसे तन्तु होंगे वैसा वस्त्र बनेगा **इत्युपादाननियमः** इस प्रकार से ये उपादान का नियम है ।। ११५।।

यतः -

सर्वत्र सर्वदा सर्वासम्भवात् ।। ११६।।

सूत्रार्थ= कहीं पर भी कभी भी कुछ भी उत्पन्न होना संभव न होने से शून्य से जगत नहीं बनता।

भाष्य विस्तार = **सर्वत्र सर्वदा सर्वस्यानुत्पादात्।** सब जगह सदैव सब वस्तुएँ उत्पन्न नहीं होती। **उपादानानियमें तु सर्वत्र सर्वदा सर्ववस्तूनामुत्पादो भवेत्** यदि आपकी (पूर्वपक्षी की) मान्यता को मान लें कि शून्य से ही सब कुछ बन जाता है, जब उपादान का कोई नियम ही न मानों तो फिर तो कहीं भी कोई भी वस्तु बन जानी चाहिए? पर ऐसा होता नहीं। जब तक उपादान कारण नहीं होगा तब तक कार्य वस्तु नहीं बनेगी, **न च तथा भवति तस्मादुपादाननियमान्नास- दुत्पादः** कहीं पर कुछ बनता नहीं, ऐसा नहीं होता इसलिए

(सर्वत्र सर्वदा सर्वाम्भवात्) सर्वत्र सर्वदा सर्वस्यानुत्पादात् । उपादानानियमे तु सर्वत्र सर्वदा सर्ववस्तूनामुत्पादो भवेत्, न च तथा भवति तस्मादुपादाननियमान्नास- दुत्पादः ।। ११६।।

पुनश्च -

शक्तस्य शक्यकरणात् ।। ११७।।

(शक्तस्य शक्यकरणात्) शक्तस्य शक्यकरणं यच्छक्यं कर्तुं तच्छक्यं शक्तस्यान्तरे पूर्वतो विद्यमानं हि सम्भवति पूर्वतो विद्यमानं शक्यमव्यक्तं सद् वर्तते, तदेवाभिव्यज्यते तस्मान्नासदुत्पादः ।।

उपादान का नियम होने से अभाव से कुछ भी उत्पन्न नहीं होता **।। ११६।।**

पुनश्च -

शक्तस्य शक्यकरणात् ।। ११७।।

सूत्रार्थ= जो कारण वस्तु है वो शक्त है, उसी से कार्य की उत्पत्ति संभव है ।

भाष्य विस्तार = **शक्तस्य शक्यकरणं यच्छक्यं कर्तुं तच्छक्यं शक्तस्यान्तरे पूर्वतो विद्यमानं हि सम्भवति पूर्वतो विद्यमानं शक्यमव्यक्तं सद् वर्तते** एक नियम है **शक्तस्य शक्यकरणं** जो वस्तु किसी दूसरी वस्तु को उत्पन्न करने में समर्थ है उसी से वो वस्तु बन सकती है (जैसे आटा रोटी को उत्पन्न करने में समर्थ है, आटा वस्त्र को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं है) **यच्छक्यं कर्तुं तच्छक्यं** जो किसी वस्तु को उत्पन्न कर सकता है वही कर सकता है उसको कोई और नहीं कर सकता (धागा रोटी नहीं बना सकता, लेकिन आटा बना सकता है) **शक्तस्यान्तरे** उस शक्त वस्तु में (आटे में, कारण द्रव्य में) **पूर्वतो विद्यमानं हि सम्भवति** जो पहले से विद्यमान है (आटे के अंदर रोटी छुपी हुई है) **पूर्वतो विद्यमानं शक्यमव्यक्तं सद् वर्तते** पहले से विद्यमान वो कार्य वस्तु (रोटी) छुप करके बैठी हुई है **तदेवाभिव्यज्यते** वही उस कारण द्रव्य से प्रकट हो जाती है तस्मान्नासदुत्पादः इसलिए असत अभाव से किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है **।। ११७।।**

नासदुत्पाद इत्यत्रापरो हेतुः - असत से अभाव से कुछ भी नहीं बनता इस विषय में एक और हेतु दे रहे हैं-

कारणभावाच्च ।। ११८।।

सूत्रार्थ= कार्य में कारण द्रव्य के उपलब्ध होने से अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती।

भाष्य विस्तार = **अथ च कार्ये कारणभावात् कारणस्योपलम्भात्,** और भी कहते हैं कि कार्य में कारण के होने से, कार्य में कारण के उपलब्ध होने से **उपलभ्यते हि कार्ये कारणम्,** कार्य वस्तु में कारण वस्तु स्पष्ट उपलब्ध है , जैसे कि उदाहरण देते हैं- **यथा घटे मृत्तिका पटे तन्तवः**। जैसे घड़े में मिट्टी दिखती है, वस्त्र में धागा दिखता है। **एवं घटस्य मृत्तिकातः पटस्य तन्तुभ्योऽभेदो विद्यते हि**। जब इस दृष्टि से हम देखते हैं कि घड़े में मिट्टी दिखती है और वस्त्र में तन्तु दिख रहा है तो फिर उन दोनों में अभेद दिखाई देता है। **एवं कार्ये कारणाभेदात् तथा च कारणे भावो यस्य तथाभूतात् कार्यात् कार्यस्य कारणे भावादव्यक्तरूपेण**

११७।।

नासदुत्पाद इत्यत्रापरो हेतुः -

कारणभावाच्च ।।११८।।

(कारणभावात्-च) अथ च कार्ये कारणभावात् कारणस्योपलम्भात्, उपलभ्यते हि कार्ये कारणम्, यथा घटे मृत्तिका पटे तन्तवः। एवं घटस्य मृत्तिकातः पटस्य तन्तुभ्योऽभेदो विद्यते हि। एवं कार्ये कारणाभेदात् तथा च कारणे भावो यस्य तथाभूतात् कार्यात् कार्यस्य कारणे भावादव्यक्तरूपेण विद्यमानत्वादपि नासदुत्पादः। उक्तं हि वेदे ''तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तन्महिना जायतैकम्'' (ऋ० १.१३९.२) ''तद्धेहं तर्ह्यव्याकृतमासीत्'' (बृह०१.४.७) ''सदेव सोम्येदमग्र आसीत्'' (छान्दो० ६.२.१) ''नासतो विद्यते भावो०'' (गीता २.१६) ।।११ ८।।

अत्र शंकते -

विद्यमानत्वादपि नासदुत्पादः। एवं इस प्रकार से **एवं कार्ये कारणाभेदात्** कार्य में कारण का अभेद होने से **तथा च** और **कारणे भावो यस्य** कारण में विद्यमान है **तथाभूतात् कार्यात्** जो उस तरह का ये कार्य **कार्यस्य कारणे भावः** कार्य कारण में पहले से विद्यमान है **अव्यक्तरूपेण विद्यमानत्वादपि** सूक्ष्म रूप से छुप करके बैठा हुआ होने से, **नासदुत्पादः** इस कारण से भी अभाव से कोई उत्पत्ति नहीं होती। **उक्तं हि वेदे** जैसा कि वेद में भी बताया है ''**तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तन्महिना जायतैकम्**'' तुच्छ रूप से छोटा सा वो आभू नाम प्रकृति अंधकार में ढकी हुई थी वह महतत्व के रूप में प्रकट हुई। यहाँ कारण से ही कार्य बना। ''**तद्धेहं तर्ह्यव्याकृतमासीत्**'' दूसरा प्रमाण दिया– तब प्रलय अवस्था में ये प्रकृति उस समय बनी हुई नहीं थी। ''**इदं**'' कहा कोई वस्तु होगी, तभी तो कहा, शून्य होती तो क्यों कहते? ''**सदेव सोम्येदमग्र आसीत्**'' हे सोम्य सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व सत्तात्मक कारण प्रकृति थी उसी से ये जगत बना ''**नासतो विद्यते भावो ०**'' शून्य से कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता ।इसलिए जो भी उत्पन्न होता है वह सत्तात्मक पदार्थों से ही उत्पन्न होता है ।। ११८।।

अत्र शंकते -

भावे भावयोगश्चेन्न वाच्यम् ।।११९।।

सूत्रार्थ= कारण द्रव्य में यदि कार्य द्रव्य पहले से विद्यमान है तो कार्य द्रव्य की उत्पत्ति व अनुत्पत्ति के संबंध में कुछ नहीं कहना चाहिए ।

भाष्य विस्तार = **कारणात्मके भावे भावयोगः कार्यात्मकस्य भावस्य योगो विद्यमानत्वं चेत्।** अभी पिछले प्रसंग में कहा था की कारण कार्य में छुप के बैठा है (जिससे बनेगी वो कारण जो बनेगी वो कार्य है)। इस पर पूर्वपक्षी शंका उठाता है जो **कारणात्मके भावे भावयोगः** कारण स्वरूप वाला पदार्थ है उसमें **कार्यात्मकस्य भावस्य योगो** जो कार्यात्मक वस्तु है रोटी ।उसका योग है **विद्यमानत्वं चेत्**। यदि रोटी आटे में पहले से विद्यमान है, तब प्रश्न उठता है **तदा कार्यस्योत्पादानुत्पादविषये न वक्तव्यं यद्वा कार्यमुत्पन्नं**

भावे भावयोगश्चेन्न वाच्यम् ।। ११९ ।।

(भावे भावयोगः-चेत्) कारणात्मके भावे भावयोगः कार्यात्मकस्य भावस्य योगो विद्यमानत्वं चेत्। तदा (न वाच्यम्) कार्यस्योत्पादानुत्पादविषये न वक्तव्यं यद्वा कार्यमुत्पन्नं नोत्पन्नं न वक्तव्यं स्यात् ।। ११९ ।।

समाधत्ते -

नाभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ ।। १२० ।।

(न) न युक्तमुक्तम् । यतः (अभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ) कार्यवस्तुनोऽभिव्यक्तिनिमित्तौ तस्योत्पादानुत्पादव्यवहारौ स्तः। गुप्तं सत् तिष्ठति कार्यं यदाऽभिव्यक्ततां

नोत्पन्नं न वक्तव्यं स्यात् यदि कार्य पहले से कारण में विद्यमान है तो फिर उस कार्य की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति के विषय में नहीं कहना चाहिए अथवा कार्य उत्पन्न हुआ नहीं उत्पन्न हुआ ये नहीं कहना चाहिए । इस प्रश्न के उठान पर सूत्र का अर्थ है ।। ११९ ।।

समाधत्ते - अब सिद्धांती समाधान करता है-

नाभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ ।। १२० ।।

सूत्रार्थ= कार्यद्रव्य की अभिव्यक्ति के आधार पर ही उसके प्रयोग का व्यवहार या अव्यवहार होता है, इसलिए पूर्वपक्षी का कथन ठीक नहीं हैं ।

भाष्य विस्तार = **न युक्तमुक्तम्** पूर्वपक्षी की युक्ति ठीक नहीं है, उसके विषय में कह रहे हैं - **यतः** क्योंकि **कार्यवस्तुनोऽभिव्यक्तिनिमित्तौ तस्योत्पादानुत्पादव्यवहारौ स्तः।** कार्य वस्तु की (रोटी घड़े जो कार्य वस्तु हैं उनकी) अभिव्यक्ति निमित्त वाले (अभिव्यक्ति वाले हैं) उसकी उत्पत्ति या अनुत्पत्ति के जो व्यवहार हैं वो अभिव्यक्ति के कारण से हैं **गुप्तं सत् तिष्ठति कार्यं यदाऽभिव्यक्ततां प्राप्नोति प्रकटीभवति तदा तस्योत्पाद इत्युच्यते, गुप्तं सत् तिष्ठति** कार्य वस्तु छुप करके रहता है **कार्यं यदाऽभिव्यक्ततां प्राप्नोति प्रकटीभवति** जब वह कार्य वस्तु अभिव्यक्त हो जाती है प्रकट हो जाती है **तदा तस्योत्पाद इत्युच्यते** तब उसकी उत्पत्ति कही जाती है। **यदा नाभिव्यक्ततामाप्नोति तदा तस्यानुत्पादः प्रोच्यते** जब वह अभिव्यक्त नहीं होती तो उस समय उसका अनुत्पाद (अनुत्पत्ति) कहा जाता है, **तिलेषु तैलं सत् पीडनेनाभिव्यज्यते यथा।** दृष्टांत दिया जैसे तिलों में तेल होता है (जब तक तेल नहीं निकला तो कहते हैं कितना तेन निकलोगे) जैसे तेल तिल में छिपा है तब तक उसकी उत्पत्ति नहीं कहते हैं और जब तेल को पिरोते हैं तब तेल निकाल आता है। **अभिव्यक्तिमाश्रित्य तस्य प्रयोगव्यवहाराव्यवहारौ च भवतः।** अभिव्यक्ति के आधार पर ही उस वस्तु का प्रयोग व्यवहार या अव्यव्हार दोनों होते हैं। **तस्मान्न दोषः कारणे कार्यस्य गुप्तरूपेण विद्यमानत्वे** इसलिए कारण वस्तु में (आटे में) कार्य वस्तु (रोटी) के गुप्त रूप से विद्यमान होने में कोई दोष नहीं है ।। १२० ।।

अथ च - अब नाश की परिभाषा बताते हैं, नाश क्या होता है?

नाशः कारणलयः ।। १२१ ।।

प्राप्नोति प्रकटीभवति तदा तस्योत्पाद इत्युच्यते, यदा नाभिव्यक्ततामाप्नोति तदा तस्यानुत्पादः प्रोच्यते, तिलेषु तैलं सत् पीडनेनाभिव्यज्यते यथा। अभिव्यक्तिमाश्रित्य तस्य प्रयोगव्यवहाराव्यवहारौ च भवतः। तस्मान्न दोषः कारणे कार्यस्य गुप्तरूपेण विद्यमानत्वे ।। १२० ।।

अथ च -

नाशः कारणलयः ।। १२१ ।।

(नाशः कारणलयः) य एष नाशो विनाशः ''शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य'' वचनाद् वादिनाऽवलम्बितः शून्यसाधनाय न स सर्वथा नाशोऽभावो वाऽपितु कारणलयः- कार्य-वस्तुनः कारणेऽन्तर्धानं कार्यस्य सूक्ष्मीभाव एव कारणभावः, अस्मात् पूर्वतः प्रकृतः शून्यवादो निरस्तो विज्ञेयः ।। १२१ ।।

सूत्रार्थ= व्यक्त हुए कार्य वस्तु का कारण में लीन हो जाना, नाश का अर्थ है।

भाष्यार्थ= **य एष नाशो विनाशः ''शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद् विनाशस्य'' वचनाद् वादिनाऽवलम्बितः शून्यसाधनाय न स सर्वथा नाशोऽभावो वाऽपितु कारणलयः** यह जो नाश है विनाश है जो पूर्वपक्षी ने कहा ''अन्त में शून्य ही बचेगा अर्थात वस्तु के धर्म ही विनाश होना है नष्ट होना है'' इस वचन से वादी ने नाश की बात का आधार लिया शून्य की सिद्धि के लिए। इस संबंध में सिद्धांती कहता है **न स सर्वथा नाशोऽभावो** किसी वस्तु का सर्वथा नाश=अभाव नहीं होता, **वाऽपितु कारणलयः** अपितु वह कारणलय हो जाता है। (जो वस्तु जिस कारण से बनी थी वह टूट-फुट कर उस वस्तु में जाकर मिल जाती है) **कार्य-वस्तुनः कारणेऽन्तर्धानं कार्यस्य सूक्ष्मीभाव एव कारणभावः**, नाश का अर्थ है कार्य वस्तु का कारण में अन्तर्धान=मिल जाना है कार्य का सूक्ष्मीभाव ही कारण भाव है, सूक्ष्म होकर कारण में लीन हो जाना ही उसका नाश है। **अस्मात् पूर्वतः प्रकृतः शून्यवादो निरस्तो विज्ञेयः** इस सूत्र से ये समझना चाहिए कि जो पूर्व में प्रकरण से चला आ रहा था शून्यवाद उसका खंडन हो गया ऐसा जानना चाहिए ।। १२१ ।।

यद्येवं नाशो न सर्वथा नाशोऽभावः किन्त्वभिव्यक्तिं प्राप्तस्य व्यक्तस्य वा कार्यवस्तुनः कारणलयः सूक्ष्मीभावोऽव्यक्तभावः पुनश्च तथैवाव्यक्तस्य वा कार्यवस्तुनः कारणलयः सूक्ष्मीभावोऽव्यक्तभावः पुनश्च तथैवाव्यक्तरूपस्य सूक्ष्मस्य कश्चित् पूर्वः पदार्थः स्यादभिव्यक्तिहेतुस्तस्य चाभिव्यक्तिहेतुरन्यः पर इत्यनवस्थादोषः प्रसच्येत । अत्रोच्यते -पूर्वपक्षी ने एक और प्रश्न उठाया- यदि नाश का अर्थ सर्वथा नाश=अभाव नहीं है, किन्तु जो कार्य वस्तु प्रकट हुई थी, अभिव्यक्ति को प्राप्त हुई थी उन कार्य वस्तुओं का कारण में लय हो जाना सूक्ष्मीभाव हो जाना, ये आपने विनाश का अर्थ बताया । फिर जो वस्तु टूट कर सूक्ष्म हो गयी उस अव्यक्त रूप सूक्ष्म का, उसकी अभिव्यक्ति करने वाला, उससे सूक्ष्म पदार्थ, उसके पीछे कोई और होगा ? (जैसे मकान टूटने से ईंट बचती है उनके टूटन से टुकड़े फिर टुकड़ों के टूटने से रेत बचती है) उसका अभिव्यक्ति करने वाला कोई और दूसरा फिर उसका कोई और दूसरा इस क्रम में अनवस्था दोष आता है । इसका उत्तर देते हैं-

पारम्पर्यतोऽन्वेषणा * बीजाङ्कुरवत् ।। १२२ ।।

सूत्रार्थ= कार्य कारण की परंपरा से कारण की खोज अंकुर और बीज के समान करनी चाहिए, तब

यद्येवं नाशो न सर्वथा नाशोऽभावः किन्त्वभिव्यक्तिं प्राप्तस्य व्यक्तस्य वा कार्यवस्तुनः कारणलयः सूक्ष्मीभावोऽव्यक्तभावः पुनश्च तथैवाव्यक्तस्य वा कार्यवस्तुनः कारणलयः सूक्ष्मीभावोऽव्यक्तभावः पुनश्च तथैवाव्यक्तरूपस्य सूक्ष्मस्य कश्चित् पूर्वः पदार्थः स्यादभिव्यक्तिहेतुस्तस्य चाभिव्यक्तिहेतुरन्यः पर इत्यनवस्थादोषः प्रसज्येत । अत्रोच्यते -

पारम्पर्यतोऽन्वेषणा * बीजाङ्कुरवत् ।। १२२।।

(पारम्पर्यतः-अन्वेषणा बीजाङ्कुरवत्) परमित्यवरादिदानीन्तनात्परं पुनः परात्परं परात्परमितीत्थं पारम्पर्यं तु प्रारम्भसर्गस्ततः पारम्पर्यतोऽन्वेषणा खलु बीजाङ्कुरवन्मन्तव्या। यथा बीजादङ्कुरोऽभिव्यज्यतेऽङ्कुराच्च पुनर्बीजाभिव्यक्तिरिति परम्परायामादिसर्गे वृक्षा यदा नासन् तदा तेषां बीजशक्त्या भाव्यमेव, यथा तदा बीजं पूर्वमथाङ्कुरः पश्चात् तथैव व्यक्तात् कार्यवस्तुनः

अनवस्था दोष नहीं आएगा ।

भाष्य विस्तार = परमित्यवरादिदानीन्तनात्परं पुनः परात्परं परात्परमितीत्थं पारम्पर्यं तु प्रारम्भसर्गः परम वह है जो इस समय है हमारे सामने है, उससे पूर्व वाला है उससे और पीछे वाली वस्तु, उससे और पीछे वाली वस्तु इस तरह से क्रम से चलते जाएंगे (सांख्य कि शैली में समझें तो- पंचमहाभूत से पीछे तन्मात्राएँ उससे पीछे अहंकार उससे पीछे महतत्व और उससे पीछे प्रकृति, ये अंतिम।) तो सृष्टि के आरंभ में पहुँच जाएंगे अर्थात प्रकृति तक। **ततः पारम्पर्यतोऽन्वेषणा खलु बीजाङ्कुरवन्मन्तव्या** तो जो प्रकृति अन्त में मिलेगी तो वहाँ से ये जो कारण कार्य की परंपरा है वह बीज और अंकुर के समान माननी चाहिए। **यथा बीजादङ्कुरोऽभिव्यज्यतेऽङ्कुराच्च पुनर्बीजाभिव्यक्तिरिति परम्परायामादिसर्गे वृक्षा यदा नासन् तदा तेषां बीजशक्त्या भाव्यमेव,** उदाहरण देते हैं- जब बीज से अंकुर के समान, जब बीज से अंकुर प्रकट होता है, तो अंकुर से फिर बीज की अभिव्यक्ति होती है इस प्रकार से परंपरा में जब आदि सर्ग में, सृष्टि के आरंभ में जब वृक्ष नहीं थे, तब उस समय उसकी बीज शक्ति होनी चाहिए। क्योंकि बीज पहले होना चाहिए, क्योंकि वह कारण है। **यथा** जैसे **तदा बीजं पूर्वमथाङ्कुरः पश्चात्** जब बीज पहले था अंकुर बाद में था **तथैव** उसी प्रकार से **व्यक्तात् कार्यवस्तुनः** ये जो व्यक्त कार्य वस्तु है **पूर्वमव्यक्तभावः** इससे पहले वो अव्यक्त होना ही चाहिए **पुनश्च बीजेऽङ्कुरो-ऽव्यक्तरूपेणोपलभ्यतेतद्वत्कार्यं** और जैसे बीज में अंकुर छुपा हुआ रहता ही है, **वस्तु खल्वप्यव्यक्तरूपेण कारणपदार्थे विद्यते हीति मन्तव्यम्** उसी के समान कार्य वस्तु भी अव्यक्त रूप से कारण पदार्थ में रहती ही है, ऐसा मानना चाहिए। यहाँ भाष्य पूरा हुआ, अब टीकाकारों का खंडन-मंडन-

अत्र सूत्रेऽनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चायौक्तिकमुक्तं इस सूत्र में अनिरुद्धवृत्ति और विज्ञानभिक्षु भाष्य में अर्थ ठीक नहीं किया **यत् ''कार्यस्याभि- व्यक्तेरभिव्यक्तिरन्या'' इति परम्पराऽनवस्थादोषोऽवतारितः** वे कहते हैं कि कार्य कि अभिव्यक्ति से अन्य कार्य की अभिव्यक्ति होती है, (ये भविष्य की ओर चल रहे हैं और ब्रह्म मुनि जी भूतकाल की बात कह रहे हैं) इस कार्य वस्तु में पीछे कारण फिर और कारण, कार्य की अभिव्यक्ति के पश्चात ये परंपरा अनवस्था दोष को उत्पन्न करती है **परन्तु न तथा परम्परा-ऽनवस्थाऽऽशंकाऽऽश्रिताऽत्र सूत्रे** परंतु उस प्रकार की परंपरा से अनवस्था दोष की आशंका इस सूत्र में नहीं है, **किन्त्वत्र सूत्रे तु ''नाशः कारणलयः'' (सां ०१.१२१) इति पूर्वसूत्रतः कारणपरम्पराऽ[illegible]**

पूर्वमव्यक्तभावः पुनश्च बीजेऽङ्कुरो-ऽव्यक्तरूपेणोपलभ्यतेतद्वत्कार्यं वस्तु खल्वप्यव्यक्तरूपेण कारणपदार्थे विद्यते हीति मन्तव्यम् ।

अत्र सूत्रेऽनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चायौक्तिकमुक्तं यत् ''कार्यस्याभि- व्यक्तेरभिव्यक्तिरन्या'' इति परम्पराऽनवस्थादोषोऽवतारितः परन्तु न तथा परम्परा- ऽनवस्थाऽऽशंकाऽऽश्रिताऽत्र सूत्रे, किन्त्वत्र सूत्रे तु ''नाशः कारणलयः'' (सां ०१.१२१) इति पूर्वसूत्रतः कारणपरम्पराऽऽशंकापेक्ष्यते यत् कार्याभिव्यक्तिः कारणाद् भवति पुनस्तत्कारणाभिव्यक्तिः कुत इति कारणपरम्पराऽऽशंकायां सूत्रतात्पर्यं तथैव बीजाङ्कुरवत् कारणपरम्परायामुदाहरणं दत्तम् ।।१२२।।

हेत्वन्तरमुच्यते -

उत्पत्तिवद्वाऽदोष ।।१२३।।

(वा-उत्पत्तिवत्-अदोषः) अथवा स्यादुत्पत्तिवददोषः। यथा चोत्पत्तिवादे कार्यस्योत्पत्तिः कारणाज्जायते कारणात्कार्यमुत्पद्यते तत्रोत्पत्तिकारणस्य पूर्वता सिध्यति तथैवात्राभिव्यक्तिवादेऽपि

ापेक्ष्यते किन्तु इस सूत्र में तो ''पिछले सूत्र में बताया- नाश का अर्थ है कारण में लय हो जाना'' कारण तो पीछे होता है, इसलिए पीछे की ओर चलना चाहिए, यहाँ जो परंपरा बताई वो पीछे की ओर संकेत कर रही है, न कि आगे एक कार्य से दूसरे कार्य की अभिव्यक्ति की। **यत् कार्याभिव्यक्तिः कारणाद् भवति** क्योंकि कार्य की अभिव्यक्ति कारण से होती है **पुनस्तत्कारणाभिव्यक्तिः कुत इति कारणपरम्पराऽऽशंकायां सूत्रतात्पर्यं** तो सूत्र का तात्पर्य यहाँ पर था की कार्य की अभिव्यक्ति कारण से होती है उस कारण की अभिव्यक्ति और कारण से होती है **तथैव बीजाङ्कुरवत् कारणपरम्परायामुदाहरणं दत्तम्** तो उसी प्रकार से बीज और अंकुर का उदाहरण यहाँ पर दिया जैसे बीज कारण है और अंकुर कार्य है, कारण परंपरा की ओर खोज करनी चाहिए न कि कार्य की ओर ।।१२२।।

हेत्वन्तरमुच्यते - और एक कारण बताते हैं-

उत्पत्तिवद्वाऽदोषः ।।१२३।।

सूत्रार्थ= कार्य की उत्पत्ति कारण से होती है, इसे उत्पत्तिवाद कहते हैं, इस प्रकार से कार्य कारण से अभिव्यक्त होता है, इसे अभिव्यक्तिवाद कहते हैं ।अभिव्यक्तिवाद उत्पत्तिवाद के समान दोष रहित है ।

भाष्य विस्तार = अथवा स्यादुत्पत्तिवददोषः अथवा इसको ऐसे भी कह सकते हैं कि 'उत्पत्ति के समान' इसमें कोई दोष नहीं है। **यथा चोत्पत्तिवादे कार्यस्योत्पत्तिः कारणाज्जायते** जैसे कहते हैं उत्पत्ति के सिद्धान्त में कार्य की उत्पत्ति कारण से होती है **कारणात्कार्यमुत्पद्यते तत्रोत्पत्तिकारणस्य पूर्वता सिध्यति** वहाँ पर भी उत्पत्ति कारण की पूर्वता सिद्ध होती है, कारण के बाद कार्य होता है **तथैवात्राभिव्यक्तिवादेऽपि कार्यस्याभिव्यक्तिः कारणाद् भवति** इसी प्रकार से अभिव्यक्ति के सिद्धान्त में भी कार्य की अभिव्यक्ति कारण से होती है, दोनों जगह नियम समान हैं। **यतस्तत्तानभिव्यक्तं सत् तद् वर्तते** क्योंकि कारण में छिपा हुआ रहता हुआ वह पहले से वर्तमान है **तदनभिव्यक्तस्वरूपवत् कारणं भवति** जो कार्य द्रव्य है वो

कार्यस्याभिव्यक्तिः कारणाद् भवति यतस्तत्तानभिव्यक्तं सत् तद् वर्तते तदनभिव्यक्तस्वरूपवत् कार्यं भवति। तस्मान्न दोषः ।। १२३।।

भवतु यदभिव्यक्तं तत्कार्यं यस्मादभिव्य%यते तत्कारणं तथापि कार्यस्य विशिष्टं स्वरूपं किं यतस्त%ज्ञानं सौगम्येन स्यादित्याकांक्षायामुच्यते -

हेतुमदनित्यं * सक्रियमनेकमाश्रितं लिंगम् ।। १२४।।

(लिंगम्) लिङ्ग्यतेऽनुमीयते कारणमनेनेति लिंगकार्यम् । तच्च (हेतुमत्-अनित्यं सक्रियम्, अनेकम्, आश्रितम्) हेतुमत् कारणवत् सहेतुकं कारणान्वयि तथा निमित्तवच्च कस्मै चिन्निमित्ताय कृतं भोगार्थमिति यावत्, अनित्यं नश्वरं सक्रियं क्रियया निष्पद्यमानं निमित्तकारणेन चेतनेन तत्कारणे जडे प्रसार्यमाणया क्रियया निष्पद्यमानमथ च विकाररूपया क्रियया सततं युक्तम्, अनेकं कालभेदाद्

अनभिव्यक्त स्वरूप वाला कारण में होता है। **तस्मान्न दोषः** इसलिए कोई दोष नहीं है ।। १२३।।

भवतु यदभिव्यक्तं तत्कार्यं यस्मादभिव्यज्यते तत्कारणं तथापि कार्यस्य विशिष्टं स्वरूपं किं यतस्तज्ज्ञानं सौगम्येन स्यादित्याकांक्षायामुच्यते - जो अभिव्यक्त होता है प्रकट होता है वह कार्य वस्तु है। जिससे वह प्रकट हुआ वह कारण है, प्रश्न यह है कि- कार्य का विशेष स्वरूप क्या है? जिससे कि उस कार्य का ज्ञान सरलता से हो सके? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं-

हेतुमदनित्यं * सक्रियमनेकमाश्रितं लिंगम् ।। १२४।।

सूत्रार्थ= कार्य किसी कारण से पैदा होता है और किसी प्रयोजन की सिद्धि करता है, वह सदा नहीं रहेगा नष्ट हो जाएगा, वह क्रिया से पैदा होगा और विकार रूप क्रिया सतत चलती रहेगी, संख्या में अनेक होगा, और अपने कारण द्रव्य के आधार पर कार्य टिकेगा। इतनी सारी विशेषताएँ जिसमें हों वो कार्य है ।

भाष्य विस्तार = **लिङ्ग्यतेऽनुमीयते कारणमनेनेति लिंगं कार्यम्** लिंग को कारण क्यों कहते हैं- इसके द्वारा कारण अनुमानित किया जाता है, इसलिए इसे लिंग कहा । तत च बो जो लिंग=कार्य है वह कैसा-कैसा है **हेतुमत् कारणवत् सहेतुकं कारणान्वयि तथा निमित्तवच्च कस्मै चिन्निमित्ताय कृतं भोगार्थमिति यावत्,** 'हेतुमत' की व्याख्या कर रहे हैं- किसी कारण से पैदा हुआ (कार्य किसी कारण से उत्पन्न हुआ) वह कारण सहित होना चाहिए, कारण उसके साथ होना चाहिए और वह किसी निमित्त वाला है वह जो कार्य वस्तु है वह किसी प्रयोजन के लिए निमित्त के लिए बनाई जाती है। सूत्र में कार्य की दूसरी विशेषता बताई **अनित्यं नश्वरं** कार्य हमेशा अनित्य ही होगा क्योंकि वह उत्पन्न हुआ है और जो उत्पन्न होता है वह नष्ट होता है **सक्रियं क्रियया निष्पद्यमानं निमित्तकारणेन चेतनेन तत्कारणे जडे प्रसार्यमाणया क्रियया निष्पद्यमानम** ये 'सक्रियं' की व्याख्या चल रही है, सक्रियं का अर्थ है क्रियाशील होना। किसी क्रिया के करने पर ही पैदा होने वाला (कारण वस्तु में जब तक क्रिया नहीं की जाएगी, तब तक कार्य उत्पन्न नहीं होगा) जो निमित्त कारण है 'पाचक' उस निमित्त कारण (पाचक) के द्वारा, चेतन के द्वारा उसका कारण जो 'आटा' है जड़ वस्तु में उत्पन्न की जाती हुई क्रिया से जो उत्पन्न होता है, वह कार्य है **अथ च विकाररूपया क्रियया सततं युक्तम्,** और उसमें विकार रूपी क्रिया सदैव=सतत रूप से चलती रहेगी **अनेकं कालभेदाद्**

देशभेदादाश्रयभेदादनेकमनेकसंख्यायुक्तं बहुरूपं वा, आश्रितं स्वकारणेऽवधृतम् ।। १२४।।

लिंगस्य कार्यस्य स्वरूपमुक्तमधुना यस्य कारणस्य कार्यं लिंगतस्माल्लिंगात्तत्कारणं लिङ्ग्यतेऽनुमीयते-इति प्रदर्श्यते -

आञ्जस्यादभेदतो वा गुणसामान्यादेस्तत्सिद्धिः प्रधानव्यपदेशाद्वा ।।१२५।।

(आञ्जस्यात् तत्सिद्धिः) अनायासेन व्यक्तत्वात् स्पष्टत्वात् प्रकटत्वात्, यत् खलु कार्यं वस्तु भवति तत्स्वत एव निजकारणं प्रदर्शयति, यतः कारणवस्तुनः क्रमविशेषे संस्थितिरेव कार्यम् यता वस्त्रे तन्तवः कारणपदार्थास्तानवितानक्रमेणावस्थिता उपलभ्यन्ते तन्तुषु च कार्पासांशवः संग्रथिता उपलभ्यन्ते, घटे मृदंशाश्च स्पष्टाः सन्ति हि। तथैव कार्यरूपाज्जगतोऽप्याञ्जस्यात् कारणभूतायाः प्रकृतेः सिद्धिर्भवति (वा गुणसामान्यादेः-अभेदतः) यद्वा गुणसामान्यादेरभेदतः कार्यकारणसिद्धिर्भवति। यतः

देशभेदादाश्रयभेदादनेकमनेकसंख्यायुक्तं बहुरूपं वा जो कार्य वस्तु है वो अनेक होती है देश भेद से आश्रय भेद से अनेक असंख्य बहुत संख्या वाले बहुत रूप से होती है, अंतिम विशेषता है **आश्रितं स्वकारणेऽवधृतम्** कार्य अकेला नहीं टिक सकता उसको कारणद्रव्य का आश्रय चाहिए ।। १२४।।

लिंगस्य कार्यस्य स्वरूपमुक्तमधुना यस्य कारणस्य कार्यं लिंगं तस्माल्लिंगरत्तत्कारणं लिङ्ग्यतेऽनुमीयते-इति प्रदर्श्यते - पिछले सूत्र में लिंग का अर्थात कार्य का स्वरूप बतलाया अब जिस कारण का कार्य वो लिंग कहलाता है उस लिंग से उसका कारण जाना जाता है, अब इस को बताएँगे कि कार्य से कारण को कैसे पहचाना जाता है-

आञ्जस्यादभेदतो वा गुणसामान्यादेस्तत्सिद्धिः प्रधानव्यपदेशाद्वा ।।१२५।।

सूत्रार्थ= कार्य को देखकर कार्य कारण का ज्ञान हो जाता है, गुणों की समानता अभेद होने से कार्य कारण का ज्ञान होता है, और शास्त्रों में उसका नाम प्रधान है अच्छी प्रकार से जगत को धारण करती है इसलिए प्रकृति कारण द्रव्य का हमको ज्ञान हो जाता है ।

भाष्य विस्तार = **अनायासेन व्यक्तत्वात् स्पष्टत्वात् प्रकटत्वात्** जो अनायास व्यक्त हो जाता है स्पष्ट हो जाता है प्रकट हो जाता है, **यत् खलु कार्यं वस्तु भवति तत्स्वत एव निजकारणं प्रदर्शयति** जो कार्य वस्तु होती है वह स्वतः ही अपने कारण को प्रदर्शित कर देती है, **यतः कारणवस्तुनः क्रमविशेषे संस्थितिरेव कार्यम्** क्योंकि कारण वस्तु का क्रम विशेष में स्थापित कर देना ही कार्य है **यता वस्त्रे तन्तवः कारणपदार्थास्तानवितानक्रमेणावस्थिता उपलभ्यन्ते** तो जैसे वस्त्र में जो धागे=तन्तु हैं वे तान-वितान (ताने वाने) के क्रम से व्यवस्थित होते हैं **तन्तुषु च कार्पासांशवः संग्रथिता उपलभ्यन्ते** तन्तु में धागे में कपास के अंश गूँथे हुए होते हैं (कार्य में कारण गूँथा हुआ रहता है), **घटे मृदंशाश्च स्पष्टाः सन्ति हि** और घड़े में मिट्टी के अंश स्पष्ट दिखते ही हैं। **तथैव कार्यरूपाज्जगतोऽप्याञ्जस्यात् कारणभूतायाः प्रकृतेः सिद्धिर्भवति** उसी प्रकार कार्य रूप जगत को देखकर के प्रकृति का ज्ञान हो जाता है, इस सूत्र में तीन पद्धतियाँ बताई कार्य से कारण को जानने की। उसमें से एक पद्धति पूरी हुई **(वा गुणसामान्यादेः-अभेदतः) यद्वा गुणसामान्यादेरभेदतः**

''कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः'' (वैशेषिक ०२.१.२४) इति न्यायात्, कार्यस्य विशिष्टा अपि गुणा भवन्ति ते तु पूर्वसूत्रे प्रदर्शिताः कार्यस्वरूपप्रसंगे, परन्तु केचन गुणाः कार्ये कारणेन समाना भवन्ति तथाभूतेभ्यः समानगुणेभ्योऽपि कारणमनुमीयते यतः कार्यकारणयोस्तेषां समाना स्थितिः, तथाभूतगुणसामान्यात् कारणानुमानं भवति यथा रक्ततन्तूनां वस्त्रं रक्तं जायते मिष्टस्य रसस्यापि पाको मिष्टो भवति। एवमत्रापि विज्ञेयम्, ते च समानगुणादयो महत्तत्त्वादिकार्यभूते जगति प्रकृतौ चातोऽग्रिमे सूत्रे प्रतिपाद्यन्ते हि ''त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः'' १२६ (प्रधानव्यपदेशात्-वा) वा चार्थे । अथ च प्रधानव्यवपदेशादपि प्रकृतिसिद्धिः। प्रधानमिति प्रधीयते प्राध्रियते प्रारभ्यते व्यक्तिरूपं यस्मात् तत्प्रधानमिति नामव्यपदेशाच्छास्त्रेषु तस्मात् प्रकृतिसिद्धिः, तथा कार्यस्य वस्तुनो भवति प्रकृष्टं धानमाधानमाश्रयो यस्मिन् तत्प्रधानमिति गुणयोगात् प्रकृतिसिद्धिर्भवति ।। १२५।।

कार्यकारणसिद्धिर्भवति अथवा दूसरी पद्धति ये है कि कार्य और कारण के गुण समान होते हैं, अभेद होने से कार्य कारण की सिद्धि हो जाती है, जैसे सोना और अंगूठी सोना है कारण और अंगूठी है कार्य। **यतः ''कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः'' इति न्यायात्** ये न्याय है सिद्धान्त है कि कारण के गुण कार्य में होंगे ही, **कार्यस्य विशिष्टा अपि गुणा भवन्ति** कार्य के कुछ अपने भी विशेष गुण होते हैं **ते तु पूर्वसूत्रे प्रदर्शिताः कार्यस्वरूपप्रसंगे** वे पिछले सूत्र में कार्य रूप के प्रसंग में प्रदर्शित किए जा चुके हैं, **परन्तु केचन गुणाः कार्ये कारणेन समाना भवन्ति** परंतु कुछ गुण कार्यो में कारण के समान होते हैं **तथाभूतेभ्यः समानगुणेभ्योऽपि कारणमनुमीयते** उस प्रकार के जो समान गुण हैं कार्य कारण में उनसे भी अनुमान हो जाता है **यतः कार्यकारणयोस्तेषां समाना स्थितिः** क्योंकि कार्य और कारण में गुणों की समान स्थिति होती है, **तथाभूतगुणसामान्यात् कारणानुमानं भवति** तो इस प्रकार से गुणों की समानता के बजह से कारण का अनुमान हो जाता है **यथा रक्ततन्तूनां वस्त्रं रक्तं जायते** जैसे लाल रंग के धागों से लाल कपड़ा बनता है **मिष्टस्य रसस्यापि पाको मिष्टो भवति** जैसे मीठे रसीले पदार्थ से मिष्ठान बनता है। **एवमत्रापि विज्ञेयम्** इस प्रकार से जानना चाहिए, **ते च समानगुणादयो महत्तत्त्वादिकार्यभूते जगति प्रकृतौ चातोऽग्रिमें सूत्रे प्रतिपाद्यन्ते हि** वे जो समान गुण आदि है (कारण और कार्य के) ऐसे ही मूल प्रकृति और जगत के क्या क्या गुण समान हैं ये आगे सूत्र में बताएँगे **''त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः'' १२६** इस सूत्र में गुणों में क्या समानता है ये बताएगे **(प्रधानव्यपदेशात्-वा)** अब कारण से कार्य के पहचान की तीसरी पद्धति बताएंगे वा चार्थे यहाँ सूत्र में जो 'वा' शब्द है वह 'च' अर्थ में है। **अथ च प्रधानव्यवपदेशादपि प्रकृतिसिद्धिः** जो मूल प्रकृति है उसका एक नाम है प्रधान। **प्रधानमिति प्रधीयते प्राध्रियते प्रारभ्यते व्यक्तिरूपं यस्मात् तत्प्रधानमिति प्रधान** इसलिए कहते हैं जो किसी अभिव्यक्त वाले पदार्थ को धारण करता है, जिससे प्रकटरूप आरंभ होता है इसलिए वह प्रधान है **नामव्यपदेशाच्छास्त्रेषु तस्मात् प्रकृतिसिद्धिः** इस प्रकार से शास्त्रों में प्रधान नाम से कथन होने से प्रकृति की सिद्धि होती है क्योंकि वह मूल कारण है, **तथा कार्यस्य वस्तुनो भवति प्रकृष्टं धानमाधानमाश्रयो यस्मिन् तत्प्रधानमिति गुणयोगात् प्रकृतिसिद्धिर्भवति** इसी प्रकार से कार्य वस्तुओ का होता है **प्रकृष्टं धानमाधानमाश्रयो यस्मिन्** प्रकृष्ट रूप से धान अर्थात आश्रय होता है जिसमें (कार्य वस्तु का अच्छी प्रकार से आश्रित होती है जिसमें वह प्रधान है) इस धारण करने के **गुणयोगात् प्रकृतिसिद्धिर्भवति** गुण के योग से उस

पूर्वोक्तयोः प्रकृतिकार्ययोः -

त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः ।। १२६ ।।

(त्रिगुणाचेतनत्वादि) त्रिगुणत्वं सत्त्वरजस्तमोमयत्वम्, अचेतनत्वं जडत्वम्, आदिशब्देन परार्थत्वं पुरुषार्थत्वं पुरुषप्रयोजनार्थत्वं परिणम्यमानत्वं च (द्वयोः) तयोः प्रकृतिकार्ययोः ।। १२६ ।।

तत्र त्रिगुणत्वविषयेः -

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ।। १२७ ।।

लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम् ।। १२८ ।।

अत्र विवेचनम् -

प्रकृति की सिद्धि होती है ।। १२५ ।।

पूर्वोक्तयोः प्रकृतिकार्ययोः - पहले जो बताए गए प्रकृति कार्य में क्या समानता है, ये बताते हैं-

त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः ।। १२६ ।।

सूत्रार्थ= मूल प्रकृति और उससे बने पदार्थ कार्य द्रव्यों में दोनों में समानता है कि ये तीन गुण वाले हैं और अचेतन हैं जड़ हैं तथा पुरुष का प्रयोजन सिद्ध करने वाले हैं ।

भाष्य विस्तार = मूल प्रकृति और उसके कार्य महतत्व से लेकर पंचमहाभूत तक कुछ समानताएं हैं **त्रिगुणत्वं** तीन गुणों वाला होना **सत्त्वरजस्तमोमयत्वम्** सत्व रज और तम मय होना, **अचेतनत्वं जडत्वम्** मूल प्रकृति और कार्य पदार्थ दोनों ही अचेतन जड़ हैं, फिर सूत्र में 'आदि' शब्द है उससे क्या क्या अर्थ है **आदिशब्देन** आदि शब्द से **परार्थत्वं** परार्थ होना **पुरुषार्थत्वं** पुरुष के लिए होना **पुरुषप्रयोजनार्थत्वं** पुरुष के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए होना **परिणम्यमानत्वं च** और इनमें परिणाम होते रहना परिवर्तन होते रहना , ये दोनों में समान हैं। **तयोः प्रकृतिकार्ययोः** उन दोनों प्रकृति और कार्य में ये समानताएँ हैं ।। १२६ ।।

तत्र त्रिगुणत्वविषयेः - अब जो तीन गुण है सत्व-रज-तम इनके विषय में बताएँगे-

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ।। १२७ ।।

लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम् ।। १ २८ ।।

अत्र विवेचनम् - इन सूत्रों की व्याख्या से पूर्व स्वामी ब्रह्म मुनि जी कुछ विवेचना कर रहे हैं-

(उभयत्र सूत्रयोः ''वैधर्म्यम्'' पदं दृष्ट्वा विज्ञानभिक्षुरुत्तरस्मिन् सूत्रे कथयति ''अत्र वैधर्म्यं चेति पाठः प्रामादिक एव'' इन दोनों सूत्रों में''वैधर्म्यम्'' शब्द को देखकर विज्ञान भिक्षु ने कहा, इस १२८सूत्र में जो ''वैधर्म्यम्'' पाठ है, ये प्रमाद वश है **स्वामी तुलसीरामस्तूभयत्र सूत्रयोः 'गुणानाम्' पदं दृष्ट्वा लिखति यदुत्तरस्मिन् सूत्रे ''गुणानाम् पाठो व्यर्थः** स्वामी तुलसीराम जी तो दोनों सूत्रों में 'गुणानाम्' शब्द को देखकर लिखते हैं कि ये 'गुणानाम्' शब्द व्यर्थ है , **उभययोः पाठयोः पुनरुक्तिदोषप्रस ङ्गात्** इनका हेतु ये हैं कि दोनों पाठों में पुनरुक्ति दोष प्रसंग है ।'' **परन्तूत्तरसूत्रस्थस्य ''लघ्वादिधर्मैः'' इति भेदविषये न**

(उभयत्र सूत्रयोः ''वैधर्म्यम्'' पदं दृष्ट्वा विज्ञानभिक्षुरुत्तरस्मिन् सूत्रे कथयति ''अत्र वैधर्म्यं चेति पाठः प्रामादिक एव'' स्वामी तुलसीरामस्तूभयत्र सूत्रयोः 'गुणानाम्' पदं दृष्ट्वा लिखति यदुत्तरस्मिन् सूत्रे ''गुणानाम् पाठो व्यर्थः, उभययोः पाठयोः पुनरुक्तिदोषप्रसंगात् ।'' परन्तूत्तरसूत्रस्थस्य ''लघ्वादिधर्मैः'' इति भेदविषये न केनापि किञ्चिदुक्तम्। अहं तु कथयामि पूर्वस्मिन् सूत्रे ''प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैः'' परीक्षणीयं परन्तूत्तरस्मिन् सूत्रे ''लघ्वादिधर्मैः'' निरीक्षणीयं किमपि रहस्यमत्र विद्यते, तत्किमित्युच्यते-आभ्यां सूत्राभ्यां पूर्वं सूत्रमस्ति ''त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः'' अत्र द्वयोः पाठात् कारणं कार्यं च प्रस्तूयेते तस्मात् सूत्रादत्रोभयत्रसूत्रयोस्त्रिगुणत्वविषये विवेचना क्रियते यत् कारणकार्ययोः क्रमस्य प्रस्तुतत्वाद् गुणानां विषये विशिष्टवर्णनाय कारणकार्ययोः क्रमदृष्ट्या द्वे एते सूत्रे विज्ञेये। उभययोः

केनापि किञ्चिदुक्तम् परंतु १२८ वे सूत्र में जो विध्यमान''लघ्वादिधर्मैः'' जो शब्द है इसको देखकर के भेद के विषय में किसी ने कुछ नहीं कहा। **अहं तु कथयामि** ब्रह्ममुनि जी कहते हैं मै तो ऐसा कहता हूँ **पूर्वस्मिन् सूत्रे ''प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैः'' परीक्षणीयं परन्तूत्तरस्मिन् सूत्रे ''लघ्वादिधर्मैः'' निरीक्षणीयं किमपि रहस्यमत्र विद्यते** पूर्व सूत्र में ''प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैः'' इन शब्दों के द्वारा कुछ परीक्षा करनी चाहिए, सत्व रज तम की परीक्षा प्रीति अप्रीति और आविषाद इन शब्दों से करनी चाहिए परंतु अगले सूत्र १२८ वें में लघु आदि धर्मों के द्वारा परीक्षण निरीक्षण करना चाहिए, कहीं उनमें साधर्म्य हैं कहीं वैधर्म्य है, ऐसा दो बार दिया सूत्र में तो इसमें कुछ न कुछ रहस्य है **तत्किमित्युच्यते** वो रहस्य क्या है? इसे बताते हैं -**आभ्यां सूत्राभ्यां पूर्वं सूत्रमस्ति ''त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः'' अत्र द्वयोः पाठात् कारणं कार्यं च प्रस्तूयेते** इन दोनों सूत्रों से पिछला सूत्र १२६ है इस सूत्र में द्वयों ''पाठ से कार्य और कारण का प्रस्तुति करण है **तस्मात् सूत्रादत्रोभयत्रसूत्रयोस्त्रिगुणत्वविषये विवेचना क्रियते** पिछले सूत्रों को ध्यान में रख कर के इन दो सूत्रों में तीनों गुणों के विषय में विवेचना की जाती है **यत् कारणकार्ययोः क्रमस्य प्रस्तुतत्वाद् गुणानां विषये विशिष्टवर्णनाय कारणकार्ययोः क्रमदृष्ट्या द्वे एते सूत्रे विज्ञेये** कार्य और कारण के क्रम के प्रस्तुत होने से गुणों के विषय में विशेष वर्णन करने के लिए कारण और कार्य के के क्रम की दृष्टि से ये दो सूत्र विद्यमान हैं, ऐसा जानना चाहिए। **उभययोः सूत्रयोर्भिन्नभिन्नविषयप्रतिपादनाद् यद्वा पृथकपृथगधिकरणत्वान्नात्र पुनरुक्तिशोत्थापनीया** इनके द्वारा पुनरुक्ति दोष की शंका नहीं उठानी चाहिए क्योंकि दोनों के विषय में भिन्न भिन्न विषय का प्रतिपादन किया गया है, अथवा अलग-अलग अधिकरण=विषय होने से इसलिए गुणों के दोषों की शंका नहीं उठानी चाहिए। **पूर्वस्मिन् सूत्रे कारणगुणाः प्रदर्श्यन्ते प्रीत्यादयोऽथोत्तरस्मिन् सूत्रे कार्यगुणा विवेच्यन्ते लघ्वादयः** पहले सूत्र में तो कारण के गुणों को जैसे सत्व प्रीति वाला है, रज अप्रीति वाला है और तम विषाद वाला है, को प्रदर्शित किया और अगले सूत्र में कार्य के लघु आदि गुण बतलाए जा रहे हैं । **अत्रोत्तरसूत्रे 'गुणानाम्' पाठस्य स्थाने 'गुणवताम्' पाठः स्यात्** ब्रह्म मुनि जी कहते हैं जो अगला सूत्र है उसमें जो 'गुणानाम्' पाठ है उसके स्थान पर 'गुणवताम्' पाठ होना चाहिए, तो अर्थ की संगति बहुत अच्छी बनेगी। **कार्यैस्तु गुणवद्भिर्भवितव्यम्** जो कार्य पदार्थ हैं वे तो गुणों वाले होने चाहिए, **प्रकृतिर्न गुणवती किन्तु गुणमयी** और मूल प्रकृति गुण वाली नहीं अपितु गुण ही है, **उक्तं हि ''सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात्'' (सांख्य ६.३९)** सांख्य के ६ अध्याय के सूत्र को यहाँ प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है कि सत्व रज तम का नाम ही प्रकृति है, इस बात को इस सूत्र में कहा। **'गुणानाम्' पाठस्तु लिपिप्रमादतो भवेत्** ये जो १२८ वे सूत्र में 'गुणानाम्' शब्द है वो

सूत्रयोर्भिन्नभिन्नविषयप्रतिपादनाद् यद्वा पृथकपृथगधिकरणत्वान्नात्र पुनरुक्तिशंकोत्थापनीया। पूर्वस्मिन् सूत्रे कारणगुणाः प्रदर्श्यन्ते प्रतीत्यादयोऽथोत्तरस्मिन् सूत्रे कार्यगुणा विवेच्यन्ते लघ्वादयः। अत्रोत्तरसूत्रे 'गुणानाम्' पाठस्य स्थाने 'गुणवताम्' पाठः स्यात्। कार्यैस्तु गुणवद्भिर्भवितव्यम्, प्रकृतिर्न गुणवती किन्तु गुणमयी, उक्तं हि ''सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात्'' (सांख्य ६.३९)। 'गुणानाम्' पाठस्तु लिपिप्रमादतो भवेत्। तस्माददोषोऽस्त्युत्तरसूत्रे कार्यगुणविचारप्रसंगात्। अधुना सूत्रार्थ उपस्थाप्यते।

तत्र प्रथमं सूत्रं कारणगुणविषयकम् -

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ।।१२७।।

(गुणानां प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैः) सत्त्वरजस्तमसां गुणानां कारणरूपाणां गुणानां केवलगुणानां प्रीतिः प्रसन्नताऽप्रीतिरप्रसन्नता विषादो मोहः, आदिशब्देन लघुत्वचलत्व- गुरुत्वानि लक्ष्यन्ते। मनुस्मृतौ यथा -

---

लेखक के प्रमाद से ऐसा हो गया। **तस्माददोषोऽस्त्युत्तरसूत्रे कार्यगुणविचारप्रस ङ्गात्** इसलिए उत्तर सूत्र में कोई दोष नहीं है, कार्य वस्तुओं का विचार बताया गया होने से। अधुना सूत्रार्थ उपस्थाप्यते अब सूत्र की व्याख्या करते हैं।

तत्र प्रथमं सूत्रं कारणगुणविषयकम् - यहाँ जो पहला सूत्र है वो कारण के गुणों के विषय में है-

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ।।१२७।।

सूत्रार्थ= प्रीति अप्रीति विषाद आदि विशेषताओं के माध्यम से सत्व रज तम इन गुणों में एक दूसरे की अपेक्षा से भिन्नता है। और आदि शब्द से लघुता, चंचलता और भारी होना, इस प्रकार से इनमें भिन्नता पाई जाती है।

भाष्य विस्तार = सत्त्वरजस्तमसां गुणानां कारणरूपाणां गुणानां केवलगुणानां प्रीतिः प्रसन्नताऽप्रीतिरप्रसन्नता विषादो मोहः सत्व रज तम की आपस में विशेषताएँ क्या है तीनों में अन्योन्य वैधर्म्य है=आपस में विरुद्धता है, सत्व रज तम तीनों गुणों के जो कि कारण गुण हैं, केवल मूल रूप से गुण हैं ।सत्व में है प्रीति अर्थात प्रसन्नता ।सुख देता है, खुशी, आनद देता है ।दूसरा है रजोगुण ।वह अप्रसन्नता दु:ख, क्रोध, चंचलता, स्वार्थ कि भावना, पर द्रव्य के लेने के विचार आते हैं, और तीसरा है विषाद ।वह पागल पन, मूर्खता, नशा, आलस्य, प्रमाद, अति स्वार्थ वाला होता है, **आदिशब्देन लघुत्वचलत्व- गुरुत्वानि लक्ष्यन्ते** सूत्र में जो 'आदि' शब्द है उससे लघुत्व= छोटा सूक्ष्म , चलत्व=चंचलता और गुरुत्त्व=भारीपन ये समझना चाहिए। **मनुस्मृतौ यथा** - जैसा मनुस्मृति में भी प्रमाण देते हैं-

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत्। जब मन-आत्मा में प्रीति से संयुक्त अनुभूतियाँ हों

प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत्।। सुख शांति का अनुभव हो अच्छा लगे, शुद्धता रहे तो उसको सत्व का लक्षण समझना चाहिए ।

यत्तु दु:खसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः। और जब दु:ख की अनुभूति हो परेशानी, कष्ट, अच्छा न लगे

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत्।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत्।।
यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः।
तद्रजोऽप्रतिमं विद्यात्सततं हारि देहिनाम्।।
यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत्।। (मनु ०१२.२७-२९)

एतैः प्रीत्यादिभिर्धर्मैः (अन्योऽन्यं वैधर्म्यम्) अन्योन्यं परस्परं वैधर्म्यं भिन्नत्वमस्ति कारणगुणेषु केवलगुणेषु साधर्म्यं नावतिष्ठते यतः सति साधर्म्ये न गुणाभिव्यक्तिः किन्तु प्रकृतिरेव ''सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः''(सां ०१.६१) गुणानां वैधर्म्यमेव सृष्टिकारणम् ''साम्यवैधर्म्याभ्यां कार्यद्वयम्'' (सांख्य ०६.४२) । प्रकृतौ तु गुणा अनुद्भूताः, महत्तत्त्वे गुणा उद्भवन्ति सत्त्वमुखेन, अअहंकारे

तयत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः।

तद्रजोऽप्रतिमं विद्यात्सततं हारि देहिनाम्।। जो पसंद न हो जिसमें हमें रुचि न हो, शरीर प्राण धारियों को जो निरंतर परेशान करने वाला हो, चित्त का हरण करने वाला हो तब रजोगुण का प्रभाव समझना चाहिए ॥

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्। जब मोह से संयुक्त हों, अज्ञानता से, निर्णय न कर पा रहे हों, खोया-खोया सा, छुपा-छुपा सा, स्तब्ध हो, भोगों से, विषयों में रुचि हो, बुरा करने के विचार हों।

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत्।। जब तर्क समझमें न आए, कुछ समझ न पाएँ तो तम का उभार समझना चाहिए॥ (मनु ०१२.२७- २९)

एतैः प्रीत्यादिभिर्धर्मैः अन्योन्यं परस्परं वैधर्म्यं भिन्नत्वमस्ति तो इस प्रकार से प्रीति अप्रीति धर्मों के द्वारा इन तीनों गुणों का परस्पर वैधर्म्य अर्थात भिन्नत्व है, ऐसा समझना चाहिए **कारणगुणेषु केवलगुणेषु साधर्म्यं नावतिष्ठते इन तीनों गुणों में कोई साधर्म्य नहीं है यतः सति साधर्म्ये न गुणाभिव्यक्तिः** क्योंकि यदि इनमें साधर्म्य होता तो गुणों की अभिव्यक्ति न हो सकेगी, इसलिए भिन्नता रहती है **किन्तु प्रकृतिरेव ''सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः''** किन्तु जब गुणों की भिन्नता नहीं होती समानता होती है प्रकृति रूप तभी होती है **गुणानां वैधर्म्यमेव सृष्टिकारणम्** गुणों का जो वैधर्म्य वही सृष्टि का कारण है, गुणों की न्यूनाधिकता से ही सृष्टि बनती है **''साम्यवैषाम्भ्यां कार्यद्वयम्''** समता और विषमता के कारण दो कार्य होते हैं, जब गुणों में समता होती है तो प्रलय हो जाती है और जब गुणों में विषमता होती है तो सृष्टि बन जाती है। **प्रकृतौ तु गुणा अनुद्भूताः जब प्रकृति अवस्था होती है तब गुण अनुभूत रहते हैं प्रकट नहीं होते, महत्तत्त्वे गुणा उद्भवन्ति सत्त्वमुखेन** जब प्रकृति से महतत्व बनता है तब गुण सत्व प्रधानता से प्रकट होते हैं, **अअहंकारे स्फुरन्ति रजोमाध्यमेन** अहंकार में रजोगुण की प्रधानता से प्रकट होते हैं (स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक को ये बात सांख्य सूत्र से संगत नहीं है, इसका तालमेल नहीं बैठा, उनको ये अभीष्ट है की महतत्व, अहंकार तनमातराएँ आदि सत्व गुण प्रधान हैं), तमोभूमिकया पञ्चतन्मात्रेषु पंच्च तनमात्राओं के गुण तमोगुण से प्रकट होते हैं **तथेन्द्रियशक्तिषु संगच्छन्ते संसृष्टा भवन्ति नैते गुणाः कारणगुणा भवन्ति** तथा इंद्रिय

स्फुरन्ति रजोमाध्यमेन, तमोभूमिकया पञ्चतन्मात्रेषु तथेन्द्रियशक्तिषु संगच्छन्ते संसृष्टा भवन्ति नैते गुणाः कारणगुणा भवन्ति ।।१२७।।

अथ कार्यगुणविषयकं सूत्रम् -

लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणवताम् (गुणानाम्?) ।।१२८।।

(गुणवतां लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च) गुणवतां सत्त्वरजस्तमस्वतां भूतात्मकानामिन्द्रियात्मकानां कार्याणाम्। उक्तं हि तेषां गुणवत्त्वम् ''प्रकाशक्रियास्थिति शीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्'' (योग ०२.१८) तत्रस्थगुणानां वा लघुत्वचलत्वगुरुत्वधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च भवति तत्र सत्त्ववतां परस्परं गुरुत्वधर्मेण साधर्म्यं भवति, पुनः सत्त्ववतां रजस्वद्भिस्तमस्वद्भिश्च सह चलत्वगुरुत्वधर्माभ्यां तथा रजस्वतां सत्त्ववद्भिस्तमस्वद्भिश्च सह लघुत्वचलत्वधर्माभ्यां वैधर्म्यं भवति।

शक्तियों में भी वो गुण संगठित रहते हैं, ये सारे के सारे कारण के गुण नहीं होते, बल्कि ये कार्य द्रव्यों में कहलाते हैं ।।१२७।।

अथ कार्यगुणविषयकं सूत्रम् - अब कार्य गुण को बताने वाला सूत्र है-

लघ्वादिधर्मैः साधर्म्य वैधर्म्य च गुणवताम् (गुणानाम्?) ।।१२८।।

सूत्रार्थ= सत्व रज तम इन तीन गुणों से जो पदार्थ उत्पन्न हुए, उन गुणों वाले पदार्थों में कहीं साधर्म्य है कहीं वैधर्म्य है।

भाष्य विस्तार = **गुणवतां सत्त्वरजस्तमस्वतां भूतात्मकानामिन्द्रियात्मकानां कार्याणाम्।** गुणवतां का अर्थ हुआ गुणों वाले, जो गुणों से उत्पन्न हुए पदार्थ हैं, जो भूत और इंद्रिय स्वरूप वाले कार्य द्रव्य हैं उन सबका। **उक्तं हि तेषां गुणवत्त्वम्** जैसे कि कहा ही है (ये २३ पदार्थ गुणों वाले हैं) **''प्रकाशक्रियास्थिति शीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्''(योग ० २.१ ८) तत्रस्थगुणानां वा लघुत्वचलत्वगुरुत्वधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च भवति** इन-इन पदार्थों में जो गुण विद्यमान हैं, उन गुणों का लघुत्व, चलत्व और गुरुत्व इन धर्मों के माध्यम से इन पदार्थों में कहीं साधर्म्य होता है तो कहीं वैधर्म्य। **तत्र सत्त्ववतां परस्परं लघुत्वधर्मेण साधर्म्यं भवति** जो सत्व प्रधान हैं उनमें परस्पर लघुत्व धर्म के द्वारा साधर्म्य होता है, जो रजोगुण प्रधान धर्म होंगे उनमें चलत्व धर्म के माध्यम से समानता होगी और जो तमोगुण प्रधान वाले पदार्थ हैं वो नशा भारीपन वाले होते हैं, **पुनः सत्त्ववतां रजस्वद्भिस्तमस्वद्भिश्च सह चलत्वगुरुत्वधर्माभ्यां** जो सत्व प्रधान पदार्थ है उनका रज और तम वाले पदार्थों के साथ विरोध होगा, इस प्रकार से सत्व का चलत्व और गुरुत्व के माध्यम से विरोध होगा **तथा रजस्वतां सत्त्ववद्भिस्तमस्वद्भिश्च सह लघुत्वगुरुत्वधर्माभ्यां वैधर्म्यं भवति** इसी प्रकार से रजोगुण वाले पदाथो ५ का लघुत्व और गुरुत्व के माध्यम से सत्व और तमोंगुण वाले पदार्थों के साथ वैधर्म्य होगा। **एकैकगुणस्य प्राधान्येन पदार्थास्तद्वन्तः प्रसिध्यन्ति** यद्यपि प्रत्येक वस्तु में सत्व रज और तम तीनों विद्यमान हैं, एक अकेले से कोई वस्तु बनती नहीं है, फिर जिस पदार्थ में तीनों होते हुए जो गुण अधिक हो उसी नाम से प्रसिद्ध हो जाएगा। **उक्तं हि व्यासेन ''एवमेते गुणा इतरेतराश्रयेणोपार्जितसुखदुःखमोहप्रत्ययाः**

एकैकगुणस्य प्राधान्येन पदार्थास्तद्वन्तः प्रसिध्यन्ति। उक्तं हि व्यासेन ''एवमेते गुणा इतरेतराश्रयेणोपार्जितसुखदुःखमोहप्रत्ययाः सर्वे सर्वरूपा भवन्तीति गुणप्रधानभावकृतस्तेषां विशेष इति'' (योग ०२.१५ व्यासः) तथैव गीतायामपि ''रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत। रजः सत्त्वं तमश्चैके तमः सत्त्वं रजस्तथा'' (गीता २४.१०) सुश्रुते खल्वपि ''सत्त्वबहुलमाकाशं रजोबहुलो वायुः सत्त्वरजोबहुलोऽग्निः सत्त्वतमोबहुला आपस्तमोबहुला पृथिवी।।'' (सुश्रुत ० शरीरस्थानम् । २.२०) अत्र सांख्येऽपि ''ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला। तमोविशाला मूलतः। मध्ये रजो विशाला'' (सांख्य ०३.४८-५०) ''ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्येतिष्ठन्ति राजसाः । जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।।'' (गीता १४.१८) अन्यच्च मनुस्मृतावपि ''स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः। पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः।।'' (मनु ०१२.४२) तथा ''आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः'' (गीता १७.७) त्रिविधः सत्त्वरजस्तमोधर्मवत्तया। अन्यच्च ''आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।। कट्वम्ललवणात्युष्ण-तीक्ष्णरुक्षविदाहिनः

सर्वे सर्वरूपा भवन्तीति गुणप्रधानभावकृतस्तेषां विशेष इति'' जैसे की व्यास जी ने कहा है योगदर्शन में ''इस प्रकार से ये गुण एक दूसरे की सहायता से सुख= दुःख और मोह इन तीन अनुभूतियों को कराने वाले सभी पदार्थ सभी रूप वाले होते हैं (क्योंकि सभी में सत्व रज तम हैं सभी सुख दुःख मोह देंगे) फिर भी सब प्रकार की अनुभूतियाँ कराने वाले होते हुए भी उनमें फिर क्या भिन्नता है ? **गुणप्रधानभावकृतस्तेषां विशेष इति** गौडता और मुख्यता के भाव से उनमें विशेषता रहेगी **(योग ०२.१५ व्यासः) तथैव गीतायामपि ''रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत। रजः सत्त्वं तमश्चैके तमः सत्त्वं रजस्तथा''** गीता में भी कहा कि एक गुण प्रधान होने से दो गौड़ हो जाते हैं। हे भारत! रज तम को दवाकरके सत्व उभर जाता है, और रज सत्व को दवा करके तम उभर जाता है, जो उभर जाता है उसी के नाम से व्यवहार चल पड़ता है **(गीता २४.१०) सुश्रुते खल्वपि सुश्रुत ने भी कहा ''सत्त्वबहुलमाकाशं** आकाश में सत्व गुण की बहुलता है **रजोबहुलो वायुः** रजोगुण की बहुलता वायु में है क्योंकि वह चंचल है **सत्त्वरजोबहुलोऽग्निः** अग्नि में सत्व और रज दोनों की प्रधानता है **सत्त्वतमोबहुला आपः** सत्व और तम की बहुलता जल में है **तमोबहुला पृथिवी** तमो प्रधान पृथ्वी है इसलिए वह भारी है ।।'' **(सुश्रुत ० शरीरस्थानम्। २.२०) अत्र सांख्येऽपि** सांख्य में भी कहा है **''ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला** सत्व प्रधान जो सृष्टि है वह ऊंचे स्तर की है। **तमोविशाला मूलतः** जो तमो प्रधान की सृष्टि है वह नीचले स्तर की है। **मध्ये रजो विशाला''** रजो गुण प्रधान सृष्टि मध्यम स्तर की है **(सांख्य ०३.४८- ५०) ''ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्येतिष्ठन्ति राजसाः। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः** सत्व में स्थित रहने वाले लोग उन्नति करते हैं, शांत सुखी औरो को भी सुख देने वाले होते हैं, राजसिक व्यक्ति मध्यम स्तर का होता है और जघन्य अपराधों में लिप्त मनुष्य वो तामसिक प्रधान है वे नीच गति को जाते हैं ।।'' **(गीता १४.१८) अन्यच्च मनुस्मृतावपि** और फिर मनुस्मृति में भी इसके संदर्भ में कहा है **''स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः। पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः** जो नीच कर्म करते है जो तामसिक वृत्ती के होते हैं वे स्थावर पेड़-पौधे, कीड़े-मकोड़े, मछली, सर्प, कछुआ, गाय, घोड़े, पशु, पक्षी बनते हैं ।।'' **(मनु ० १२.४२) तथा ''आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः''** और कहते हैं मनुष्यो को आहार=भोजन भी तीन प्रकार का प्रिय होता है (गीता १७.७) **त्रिविधः**

।आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।। यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् । उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्'' (गीता १ ७. ८- १ ०) अथान्यो विचारः - पूर्वसूत्रे वर्णिताः ''प्रीतिः, अप्रीतिः, विषादः'' इत्येते त्रयो धर्मा उत्तरस्मिन् सूत्रे साधर्म्यप्रस ङ्गे परित्यक्ताः, कुतः । यतो ह्येषां साधर्म्यप्रस ङ्गे मनोविहाय कस्मिंश्चिद्गुणवति पदार्थे भूतात्मके यद्वेन्द्रियात्मके न सम्भवति मनस्येव प्रीतिरप्रीतिर्विषादश्च त्रयोऽपि धर्मा भवन्ति तत्र मनसि तेषां वैधर्म्याद् व्यवहारो जायते तेषां साधर्म्याभाव एव मनसि, तेषां साधर्म्ये तु मनोनिरोधो भवति मनसोऽन्यत्र वस्तुनि प्रीत्यप्रीतिविषादा नोद्भवन्ति तस्मादुत्तरसूत्रे प्रीत्यादीन् धर्मान् विहाय लघुप्रभृतयो धर्मा एव साधर्म्ये स्थापिता वैधर्म्य तु मनसि तेषां प्रवर्तनात् पूर्वसूत्रेऽन्तर्भूतमेव । अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च सूत्रमिदमन्यथार्थापितं विज्ञानभिक्षुभाष्ये तु सत्त्वादीनां गुणानां व्यक्तयः कल्पितास्तत्कल्पनमयुक्तं न सत्त्वादीनां व्यक्तयः स्वतन्त्रावस्थानकाः, आश्रयमाश्रित्यैवा- वतिष्ठन्ते यतः ।। १ २ ८।।

सत्त्वरजस्तमोधर्मवत्तया यहाँ त्रिविध से अर्थ है सात्विक, राजसिक और तामसिक आहार से है । **अन्यच्च ''आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविर्वि-वर्धनाः ।रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः** सात्विक लोगों को कैसे आहार पसंद होते हैं- जो आयु को बढ़ाने वाले, सत्व की मात्रा को बढ़ाने वाले, सुख, आरोग्य, बल, प्रीति बढ़ाने वाले हैं । रसीले पदार्थ, चिकनाई वाले, हृदय को बल देने वाले जो आहार हैं वे सात्विक मनुष्य करते हैं ।। **कट्वम्ललवणात्युष्ण-तीक्ष्णरुक्षविदाहिनः। आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः** कडवे, खट्टे, नमकीन, ज्यादा गरम, रुखा, जलन पैदा करने वाले ये विशेषताएँ रजोगुण वाले भोजन है जो दुःख शोक और रोग को बढ़ाने वाले हैं ।। **यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्''** जो तामसिक लोग होते हैं उनको एक याम बीत जाने वाले अर्थात वासा भोजन (भोजन बनने के ३- ४ घंटे बाद का खाना पसंद होना) जिसका स्वाद परिवर्तित हो चुका है, गल-सड़ चुका हो, वासी इस तरह का जो हो और दूसरे का झूठा हो, अपवित्र हो इस प्रकार के भोजन तामसिक लोगों को प्रिय होते हैं **(गीता १ ७.८-१०) अथान्यो विचारः** अब और विचार कहते हैं - **पूर्वसूत्रे वर्णिताः ''प्रीतिः, अप्रीतिः, विषादः'' इत्येते त्रयो धर्मा उत्तरस्मिन् सूत्रे साधर्म्यप्रसंगे परित्यक्ताः, कुतः** प्रीति, अप्रीति और विषाद ये जो तीन धर्म पहले सूत्र में बताए थे, जिनके मध्यम से सत्व रज तम की भिन्नता दिखलाई थी। प्रीति अप्रीति और विषाद ये तीन धर्म अगले सूत्र में साधर्म्य के प्रसंग में छोड़ दिए, क्यों?। **यतो ह्येषां साधर्म्यप्रस ङ्गे मनोविहाय कस्मिंश्चिद्गुणवति पदार्थे भूतात्मके यद्वेन्द्रियात्मके न सम्भवति मनस्येव प्रीतिरप्रीतिर्विषादश्च त्रयोऽपि धर्मा भवन्ति** क्योंकि इनका साधर्म्य प्रसंग मन को छोड़कर और किसी भी गुण वाले पदार्थ में भूतात्मक हो या इंद्रिय स्वरूप वाला हो उसमें संभव नहीं होता। तीनों का साधर्म्य=समानता= समरसता=अच्छा नियंत्रण नहीं होती। केवल मन ही एक ऐसा पदार्थ है जहां तीनों का तालमेल बैठता है **तत्र मनसि तेषां वैधर्म्याद् व्यवहारो जायते** वहाँ मन के वैधर्म्य से व्यवहार चलता रहता है **तेषां साधर्म्याभाव एव मनसि साधर्म्य तो केवल मन में ही हो पाता है, तेषां साधर्म्ये तु मनोनिरोधो भवति** जब इन तीनों का साधर्म्य हो जाता है तो मन का निरोध हो जाता है, और व्यक्ति समाधि को प्राप्त कर लेता है **मनसोऽन्यत्र वस्तुनि प्रीत्यप्रीतिविषादा नोद्भवन्ति** मन से अन्यत्र भिन्न वस्तु में प्रीति अप्रीति और विषाद ये उत्पन्न नहीं होते (सुख-

कारणकार्यप्रसंगतः कारणगुणानां कार्यगुणानां च साधर्म्यवैधर्म्ये प्रदर्श्य पुनः कार्यकारणविषयो विशेषसम्बन्धज्ञापनायोपस्थाप्यते -

उभयान्यत्वात् कार्यत्वं महदादेर्घटादिवत् ।।१२९।।

(महदादेः कार्यत्वम्) महत्तत्त्वादिकस्य भूतेन्द्रियपर्यन्तस्य वस्तुजातस्य कार्यत्वं विज्ञेयम् (उभयान्यत्वात्) उभयाभ्यां प्रकृतिपुरुषाभ्यामन्यत्वाद्भिन्नत्वात्, (घटादिवत्) यथा घटादयः पदार्थाः कार्यरूपा भोग्या नश्वराश्च सन्ति तद्वत्, पुरुषो भोक्ता पुरुषविशेषश्च परमात्मा कर्ता प्रकृतिश्च नित्या किन्तु तद्भिन्नानि महत्तत्त्वादीनि तस्मात् तानि कार्याणि सन्ति ।।१२९।।

हेत्वन्तराणि -

परिमाणात्, समन्वयात्, शक्तितश्चेति ।।१ ३०-१३२।।

(परिमाणात्) परिमीयते सङ्कुच्यते यत् तत्परिमाणं सङ्कोचधर्मि तस्मात्

दु:ख-मोह की अनुभूति मन के अतिरिक्त नहीं होती) **तस्मादुत्तरसूत्रे प्रीत्यादीन् धर्मान् विहाय लघुप्रभृतयो धर्मा एव साधर्म्ये स्थापिता** इसलिए १२८ वे सूत्र में प्रीति अप्रीति को छोड़ दिया और लघुता जड़त्व और गुरुत्व इन धर्मों का साधर्म्य में स्थित किया **वैधर्म्य तु मनसि तेषां प्रवर्तनात् पूर्वसूत्रेऽन्तर्भूतमेव** और जब इनमें वैधर्म्य होता है तो मन में इनकी प्रवृत्ति हो जाने से, पूर्व सूत्र में बताया ही गया था। **अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च सूत्रमिदमन्यथार्थापितं** विज्ञान भिक्षु भाष्य में और अनिरुद्ध वृत्ति में इस सूत्र की व्याख्या अलग ढंग से की गई **विज्ञानभिक्षुभाष्ये तु सत्त्वादीनां गुणानां व्यक्तयः कल्पितास्तत्कल्पनमयुक्तं** विज्ञान भिक्षु भाष्य में तो सत्व आदि गुणों की वृत्तिया=अभिव्यक्तियाँ कल्पित की गई **न सत्त्वादीनां व्यक्तयः स्वतन्त्रावस्थानकाः** सत्व आदि की कोई अलग अलग वस्तुएँ बनती हों ऐसा दिखता नहीं है, **आश्रयमाश्रित्यैवा-वतिष्ठन्ते यतः** क्योंकि जो भी कार्य वस्तु बनती है वह अपने आश्रय के आधार पर ही रहती हैं, स्वतंत्र नहीं रहती ।।१२८।।

कारणकार्यप्रसंगतः कारणगुणानां कार्यगुणानां च साधर्म्यवैधर्म्ये प्रदर्श्य पुनः कार्यकारणविषयो विशेषसम्बन्धज्ञापनायोपस्थाप्यते - कारण कार्य के प्रसंग से कारण गुणों का और कार्य द्रव्य के गुणों का साधर्म्य और वैधर्म्य दिखलाकर फिर से कार्य और कारण का विषय उपस्थित किया जाता है, विशेष संबंध बताने के लिए-

उभयान्यत्वात् कार्यत्वं महदादेर्घटादिवत् ।।१२९।।

सूत्रार्थ= महतत्व आदि जितने भी पदार्थ हैं वे सब कार्य हैं क्योंकि ये पूर्वोक्त दो पदार्थों से भिन्न हैं, घटादि के समान।

भाष्य विस्तार = महत्तत्त्वादिकस्य भूतेन्द्रियपर्यन्तस्य वस्तुजातस्य कार्यत्वं विज्ञेयम् महतत्व से लेकर भूत इंद्रियों तक जितने भी पदार्थ हैं इन सबका कार्यपन जानना चाहिए **(उभयान्यत्वात्) उभयाभ्यां प्रकृतिपुरुषाभ्यामन्यत्वाद्भिन्नत्वात्** क्योंकि ये दोनों प्रकृति और पुरुष (आत्मा और परमात्मा) से भिन्न वस्तु

सङ्कोचधर्मित्वात्परिमितत्वात् परिमितियोगत्वात् (समन्वयात्) कारणानुसारेण स्वरूपवत्त्वात् (शक्तितः-च-इति) कारणे निमित्तकारणे या शक्तिः कार्योत्पादनशक्ति- स्तया किलोत्पद्यमानत्वाच्च महत्तत्त्वादेः कार्यत्वं सिध्यति-इति कार्यहेतुतायाः कार्यप्रसंगस्य च समाप्तिः ।। १३०-१३२।।

महत्तत्त्वादेः कार्यत्वमन्तरेण -

तद्धाने प्रकृतिः पुरुषो वा ।। १३३।।

(तद्धाने) महत्तत्त्वादेः कार्यत्वविनाशे सति (प्रकृतिः पुरुषः-वा) प्रकृतिपुरुषा- ववतिष्ठेते । यद्वा (तद्धाने) महत्तत्त्वादेः कार्यत्वास्वीकारे (प्रकृतिः पुरुषः-वा) महत्तत्त्वादिकं प्रकृतिः पुरुषः वा स्यात् तस्य प्रकृतित्वं पुरुषत्वमापद्यते ।। १३२।।

पुनः -

है, कार्य वस्तु हैं और अनित्य हैं, **यथा घटादयः पदार्थाः कार्यरूपा भोग्या नश्वराश्च सन्ति तद्वत्** जैसे घट आदि पदार्थ कार्य रूप हैं भोग्य हैं और नश्वर हैं। उसी के समान, **पुरुषो भोक्ता पुरुषविशेषश्च परमात्मा कर्ता प्रकृतिश्च नित्या** पुरुष= जीवात्मा और पुरुष विशेष= ईश्वर जो सब जगत का कर्ता है और तीसरी वस्तु प्रकृति ये तीनों नित्य हैं **किन्तु तद्भिन्नानि महत्तत्त्वादीनि तस्मात् तानि कार्याणि सन्ति** किन्तु महतत्व आदि जितने भी पदार्थ है वे सब (ईश्वर -जीव -प्रकृति) इनसे भिन्न हैं, वे कार्य कहलाते हैं उत्पन्न किए गए है ।।१२९।।

हेत्वन्तराणि - इस विषय में और भी हेतु देते हैं-

परिमाणात्, समन्वयात्, शक्तितश्चेति ।। १३०-१३२।।

सूत्रार्थ= परिमाण वाला होने से फैलने-सिकुड़ने वाला होने से, कार्य का स्वरूप कार्य के अनुरूप होने से और ईश्वर की शक्ति से उत्पन्न होने से । इन तीन हेतुओं से ये कार्य द्रव्य हैं।

भाष्य विस्तार = परिमीयते सङ्कुच्यते यत् तत्परिमाणं सङ्कोचधर्मि तस्मात् सङ्कोचधर्मित्वात्परिमितत्वात् परिमितियोगत्वात् ये सब कार्य पदार्थ है क्यों है? इसमें हेतु दिया **परिमाणात्= परिमीयते सङ्कुच्यते यत् तत्परिमाणं** परिमाण उसको कहते हैं जिसका नाप-तौल-माप (लम्बाई चौड़ाई गोलाई) हो जाती है, तो वह परिमाण धर्म वाला होने से अर्थात **सङ्कोचधर्मि** फेलने-सिकुड़ने वाला होने से वो वस्तु कार्य द्रव्य है **तस्मात्** इसलिए **सङ्कोचधर्मित्वात्परिमितत्वात्** फेलने-सिकुड़ने के योग से **परिमितियोगत्वात्** वो परिमाण वाला कार्य द्रव्य है। **समन्वयात्=कारणानुसारेण स्वरूपवत्त्वात्** महत्त्व से लेकर जितने भी पदार्थ है ये समन्वय वाले है, उनका स्वरूप कारण के अनुसार हैं **शक्तितश्चेति**= शक्ति से ये उत्पन्न होते हैं **कारणे निमित्तकारणे या शक्तिः कार्योत्पादनशक्ति- स्तया किलोत्पद्यमानत्वाच्च महत्तत्त्वादेः कार्यत्वं सिध्यति** निमित्त कारण में जो कारण को उत्पन्न करने की शक्ति है उस शक्ति से (ईश्वर की शक्ति से) ये उत्पन्न होते हैं इसलिए भी महतत्व आदि कार्य रूप पदार्थ हैं। **इति कार्यहेतुतायाः कार्यप्रसंगस्य च समाप्तिः** सूत्र में जो इति शब्द आया है ये इस बात का सूचक है कि यहाँ पर कार्य के हेतु और कार्य के प्रसंग कि चर्चा

तयोरन्यत्वे तुच्छत्वम् ।।१३४।।

(तयोः-अन्यत्वे तुच्छत्वम्) यदि महत्तत्त्वादिकं न विनश्येद् यद्वा न कार्यं स्यात् किन्तु ताभ्यां प्रकृतिपुरुषाभ्यामन्यद् वस्तु भवेत्, तदा तथाभूतस्य वस्तुनस्तुच्छत्वमभावः प्रसज्येत यतो न हि प्रकृतिपुरुषाभ्यामन्यन्नित्यमनश्वरं वस्तु भवितुमर्हति ।।१३४।।

वस्तुतस्तु महत्तत्त्वादिकार्यं प्रकृतिश्च कारणं यतः -

कार्यात् कारणानुमानं तत्साहित्यात् ।।१३५।।

(कार्यात् कारणानुमानम्) कार्यात् कारणस्यानुमानं जायते। कथम् (तत्साहित्यात्) कार्यात् कारणसाहित्यात् कार्यसत्ता भवति, कार्ये खलु कारणं सूक्ष्मं सत् परिपूर्णं तिष्ठति। घटे मृत्तिका पटे तन्तवस्तन्तुषु कार्पासांशवो यथा ।तस्मात् कारणसाहित्यात् कार्यं महत्तत्त्वादिकम् ।।१३५।।

समाप्त होती है ।।१३०-१३२।।-

महत्तत्त्वादेः कार्यत्वमन्तरेण -महतत्व आदि को कार्य स्वीकार किए बिना क्या होगा? ये बताते हैं-

तद्धाने प्रकृतिः पुरुषो वा ।।१३३।।

सूत्रार्थ= महत्व आदि जितने भी पदार्थ है जब ये नष्ट हो जाएगे तब दो ही पदार्थ बचेंगे, प्रकृति और पुरुष।

भाष्य विस्तार = **महत्तत्त्वादेः कार्यत्वविनाशे सति प्रकृतिपुरुषा- ववतिष्ठेते** महतत्व आदि के कार्यत्व का नाश हो जाने पर अथवा इनको कार्य न मानने पर फिर दो पदार्थ प्रकृति और पुरुष ही बचेगा। **यद्वा महत्तत्त्वादेः कार्यत्वास्वीकारे महत्तत्त्वादिकं प्रकृतिः पुरुषः वा स्यात् तस्य प्रकृतित्वं पुरुषत्वमापद्यते** अथवा विकल्प से कहते हैं कि ये भी अर्थ हो सकता है, यदि आप महतत्व को कार्य रूप नहीं स्वीकारते,तब महतत्व आदि जो पदार्थ हैं वो या तो प्रकृति माने जाएंगे या पुरुष ।जो कि ये किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होते ।सूत्र का सार ये है महतत्व से लेकर पंचमहाभूत तक न तो प्रकृति है और न ही पुरुष ।इसलिए महत्व आदि को ही कार्य मानना होगा **।।१३३।।**

पुनः -

तयोरन्यत्वे तुच्छत्वम् ।।१ ३४।।

सूत्रार्थ= यदि महतत्व आदि पदार्थों को कार्य भी न माने और उन दो से अलग भी न मानें तो, तो फिर इनका अभाव ही मानना पड़ेगा। जो कि प्रमाणों से विरुद्ध है। इसलिए कार्य ही मानना चाहिए।

भाष्य विस्तार = **यदि महत्तत्त्वादिकं न विनश्येद् यद्वा न कार्यं स्यात्** यदि महतत्व आदि का नाश न हो अथवा उसका कार्य न माना जाए **किन्तु ताभ्यां प्रकृतिपुरुषाभ्यामन्यद् वस्तु भवेत्,** किन्तु प्रकृति पुरुष से भिन्न अलग वस्तु को मान लिया जाए और उसको कार्य न माना जाए, तब क्या होगा **तदा तथाभूतस्य वस्तुनस्तुच्छत्वम- भावः प्रसज्येत** तब ऐसे वस्तु का तो अभाव ही मानना होगा **यतो न हि**

तच्च कारणं प्रकृत्याख्यम् -

अव्यक्तं त्रिगुणाल्लिंगात् ।। १३६ ।।

(त्रिगुणात्-लिंगात्-अव्यक्तम्) त्रिगुणवतो महत्तत्त्वादेरव्यक्तं सूक्ष्मं सत् तदन्तरे परिपूर्णमनुमातव्यम् ।। १३६ ।।

तस्मात् -

तत्कार्यतस्तत्सिद्धेर्नापलापः ।। १३७ ।।

(तत्कार्यतः) अव्यक्तकार्यतः प्रकृतिकार्यतो महत्त्वादेः (तत्सिद्धेः) अव्यक्त-सिद्धेः प्रकृतिसिद्धेः (न-अपलापः) न ह्यपलपनमन्यथाकथनमस्ति ।। १३७ ।।

अथ पुरुषसिद्धौ -

प्रकृतिपुरुषाभ्यामन्यन्नित्यमनश्वरं वस्तु भवितुमर्हति क्योंकि प्रकृति और पुरुष इन दो से भिन्न वस्तु जो नित्य हो, अनश्वर हो, ऐसी तो कोई है नहीं। कोई प्रमाणों से सिद्ध नहीं हो रही। और ये उन दोनों में से है नहीं महत्व आदि पदार्थ । फिर या तो अभाव मानो या कार्य वस्तु मानों, अभाव मानने से व्यवहार नहीं चलेगा, फिर कार्य वस्तु ही मानना पड़ेगा ।। १३४ ।।

वस्तुतस्तु महत्तत्त्वादिकार्यं प्रकृतिश्च कारणं यतः - वास्तव में तो महतत्व आदि जो कार्य हैं और प्रकृति है कारण, क्योंकि-

कार्यात् कारणानुमानं तत्साहित्यात् ।। १३५ ।।

सूत्रार्थ= कार्य से कारण का अनुमान होता है, क्योंकि कारण कार्य के साथ ही रहता है।

भाष्य विस्तार = **कार्यात् कारणस्यानुमानं जायते** ये नियम है कि कार्य से कारण का अनुमान होता है। **कथम्** कैसे **कार्यात् कारणसाहित्यात् कार्यसत्ता भवति** कारण सहित होने से कार्य की सत्ता होती है, **कार्ये खलु कारणं सूक्ष्मं सत् परिपूर्णं तिष्ठति** कार्य वस्तु में जो कारण है वह सूक्ष्म होकर परिपूर्ण रहता है। **घटे मृत्तिका पटे तन्तवस्तुन्तुषु कार्पासांशवो यथा** जैसे घड़े में मिट्टी और वस्त्र में तन्तु कपास के अंश साथ-साथ ही रहते हैं। **तस्मात् कारणसाहित्यात् कार्यं महत्तत्त्वादिकम्** ऐसे ही महतत्व आदि में सत्व रज तम सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहते हैं, इसीलिए कार्य से कारण का अनुमान हो जाता है ।। १३५ ।।

तच्च कारणं प्रकृत्याख्यम् - वो जो कारण है वह प्रकृति नाम वाला है -

अव्यक्तं त्रिगुणाल्लिंगात् ।। १३६ ।।

सूत्रार्थ= महतत्व आदि में तीन गुणों की विद्यमानता होने से उसका कोई अव्यक्त कारण है, यह अनुमान होता है।

(त्रिगुणात्-लिंगात्-अव्यक्तम्) त्रिगुणवतो महत्तत्त्वादेरव्यक्तं सूक्ष्मं सत् तदन्तरे

सामान्येन विवादाभावाद् धर्मवन्न साधनम् ।। १३८ ।।

(सामान्येन विवादाभावात्-धर्मवत्) अग्रिमसूत्रस्थं 'पुमान्' पदमत्र पुरस्तादुत्कृष्यते सप्तम्यां विपरिणम्य। पुंसि पुरुषे सामान्येन विवादाभावाद् धर्मवद्, यथा धर्मे सामान्येन विवादो न विद्यते सर्वे हि दार्शनिकास्तात्त्विका धर्मं मानवधर्मं मन्यन्ते यदाश्रितं मानवजीवनसाफल्यं भवति, तथैव पुमांसं पुरुषमपि मन्यन्ते, पुरुषमान्यतायां तु सर्वेषां दार्शनिकानामपि मान्यता समाना तथाविधे पुरुषे (साधनं न) साधनं नापेक्ष्यते। परन्तु विशेषमान्यतायां साधनमपेक्ष्यते हि यतः केचन शरीरमेव पुरुषं मन्यन्ते केचिदन्तःकरणमित्यादिविशिष्टमान्यताऽस्ति ।। १३८ ।।

तत्र पुरुषविषयेऽभीष्टा मान्यता -

शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान् ।। १३९ ।।

(शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान्) शरीरादिभ्यः शरीरेन्द्रियान्तःकरणेभ्यो भूतात्मकेभ्यः

परिपूर्णमनुमातव्यम् ।। १३६ ।।

भाष्य विस्तार = **त्रिगुणवतो** तीन गुणों वाले **महत्तत्त्वादेरव्यक्तं** महतत्व आदि में अव्यक्त **सूक्ष्मं** सूक्ष्म होती हुई **सत् तदन्तरे** उनके भीतर **परिपूर्णमनुमातव्यम्** परिपूर्ण है प्रकृति, इस तरह से अनुमान करना चाहिए। ।।१३६।।

तस्मात् -इसलिए

तत्कार्यतस्तत्सिद्धेर्नापलापः ।। १३७ ।।

सूत्रार्थ= महतत्व आदि प्रकृति का कार्य होने से प्रकृति की सिद्धि होती है, इसका खंडन नहीं कर सकते।

भाष्य विस्तार = **अव्यक्तकार्यतः** अव्यक्त का जो कार्य है अर्थात **प्रकृतिकार्यतो** प्रकृति का जो कार्य है **महतत्त्वादेः** महतत्व आदि है उससे **अव्यक्त-सिद्धेः** अव्यक्त की सिद्धि अर्थात **प्रकृतिसिद्धेः** प्रकृति की सिद्धि होती है **न ह्यपलपनमन्यथाकथनमस्ति** इसलिए इसका खंडन नहीं हो सकता अन्यथा कथन नहीं हो सकता ।। १३७ ।।

अथ पुरुषसिद्धौ - अब पुरुष की सिद्धि के विषय में कहते हैं-

सामान्येन विवादाभावाद् धर्मवन्न साधनम् ।। १३८ ।।

सूत्रार्थ= पुरुष की सत्ता के संबंध में मतभेद न होने से पुरुष की सत्ता सिद्ध करने हेतु किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, धर्म के समान।

भाष्य विस्तार = **अग्रिमसूत्रस्थं 'पुमान्' पदमत्र पुरस्तादुत्कृष्यते सप्तम्यां विपरिणम्य** अगले सूत्र १३९ वे में जो पुमान शब्द है, उसका यहाँ उत्कर्ष कर लेते हैं (अनुवृत्ति का अर्थ पिछले सूत्र से अगले सूत्र में लाना और उत्कर्ष का अर्थ है अगले सूत्र से पिछले सूत्र में लाना) और विभक्ति को बदलकर उसका यहाँ

प्रकृतिपर्यन्तेभ्यश्च भिन्नः पुरुषोऽस्ति। तत्र सामष्टिकः पुरुषविशेष ईश्वरः शरीराभ्यन्तरश्च जीवात्मा पुरुषोऽपि भिन्नः ।। १३९।।

तत्र हेतवः प्रदीयन्ते -

संहतपरार्थत्वात् ।। १४०।।

(संहतपरार्थत्वात्) शरीरादयः संहताः सन्ति, संहताश्च न स्वार्थाय भवन्ति तेषां जडत्वाच्छय्यादिवत् किन्तु परार्था एव, तस्माद् यदर्थाः सन्ति शरीरादयः स परस्तेभ्यः शरीरादिभ्यो भिन्न इति प्रथमो हेतुः ।। १४०।।

अथापरो हेतुः -

त्रिगुणादिविपर्ययात् ।। १४१ ।।

सप्तमी में उत्कर्ष करेंगे। **पुंसि पुरुषे सामान्येन विवादाभावाद् धर्मवद्** पूंसि अर्थात पुरुष के संबंध में जीवात्मा की सत्ता के संबंध में सामान्य रूप से कोई विवाद नहीं है, जैसे धर्म की सत्ता में कोई झगड़ा विवाद नहीं, धर्म का अस्तित्व है ये सभी मानते हैं, **यथा धर्मे सामान्येन विवादो न विद्यते** जैसे धर्म के विषय में सामान्य रूप से कोई झगड़ा विवाद नहीं है **सर्वे हि दार्शनिकास्तात्त्विका धर्मं मानवधर्मं मन्यन्ते** सभी के सभी दार्शनिक तत्वज्ञानी धर्म को अर्थात मानव धर्म को मानते हैं **यदाश्रितं मानवजीवनसाफल्यं भवति** जिस धर्म के आश्रय से मनुष्य जीवन सफल होता है उस धर्म को सभी मानते हैं, **तथैव पुमांसं पुरुषमपि मन्यन्ते** ऐसे ही सभी दार्शनिक जन पुरुष को भी मानते हैं, **पुरुषमान्यतायां तु सर्वेषां दार्शनिकानामपि मान्यता समाना तथाविधे पुरुषे साधनं नापेक्ष्यते** पुरुष की मान्यता में तो सभी दार्शनिकों की मान्यता एक समान है, ऐसे स्वरूप वाले पुरुष की सिद्धि में कोई साधन=प्रमाण की सिद्धि की अपेक्षा नहीं है। **परन्तु विशेषमान्यतायां साधनमपेक्ष्यते हि** परंतु विशेष मान्यता में साधन की अपेक्षा ही है। **यतः केचन शरीरमेव पुरुषं मन्यन्ते** जैसे कुछ लोग तो शरीर को ही पुरुष मानते हैं **केचिदन्तःकरणमित्यादिविशिष्टमान्यताऽस्ति** और कुछ लोग अन्तःकरण को ही पुरुष मानते हैं। इत्यादि विशिष्टि मान्यताएँ हैं ।। १३८।।

तत्र पुरुषविषयेऽभीष्टा मान्यता - जो पुरुष के विषय में अभीष्ट सिद्धान्त है सत्य सिद्धान्त है वह यह है-

शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान् ।। १३९।।

सूत्रार्थ= पुरुष शरीर, मन, इंद्रियों से भिन्न सत्ता वाला है।

भाष्यार्थ= शरीरादिभ्यः शरीरेन्द्रियान्तःकरणेभ्यो भूतात्मकेभ्यः प्रकृतिपर्यन्तेभ्यश्च भिन्नः पुरुषोऽस्ति वैदिक सिद्धान्त यह है कि शरीर आदि इंद्रियों और अन्तःकरण से लेकर पंचमहाभूत और प्रकृति पर्यंत जितने भी पदार्थ हैं उन सबसे भिन्न पुरुष है। **तत्र सामष्टिकः पुरुषविशेष ईश्वरः शरीराभ्यन्तरश्च जीवात्मा पुरुषोऽपि भिन्नः** पुरुष में भी दो भेद है एक सामष्टिक पुरुष विशेष है वह ईश्वर है और दूसरा शरीर के अंदर रहने वाला जीवात्मा नाम का पुरुष है वह उस पुरुष विशेष से भिन्न है ।। १३९।।

(त्रिगुणादिविपर्ययात्) सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो गुणाः, आदिशब्देन जडत्वं पुरुषाधीनत्वं च गृह्येते, एतेषां विपर्ययात् तत्र पुरुषे निर्दिष्टधर्माणां विपरीतत्वमभावोऽथ भिन्नधर्माणां चेतनत्वादीनां भावो विद्यते, तस्मात् पुरुषः शरीरादिभ्यो भिन्नः ।। १४१ ।।

अधिष्ठानाच्चेति ।। १४२ ।।

(अधिष्ठानात्-च) पुरुषो हि शरीरादिकस्याधिष्ठानमधिष्ठाता तथाऽधिष्ठेयं शरीरादिकं तस्मादपि पुरुषः शरीरादिभ्यो भिन्नः (इति) इत्थं कथनमीश्वरजीवात्मनोर्द्वयोः समानधर्मत्वकथनसमाप्तिः। तत्रेश्वरस्याधिष्ठातृत्वं सृष्टिकर्तृत्वाज्जीवात्मनस्तु देहव्यवहारप्रवर्तयितृत्वादधिष्ठातृत्वमस्ति ।

तथा -

भोक्तृभावात् ।। १४३ ।।

(भोक्तृभावात्) भोक्तृभावो हि पुरुषे विद्यते भोग्यं हि शरीरादिकं तस्मात् स ततो भिन्नः। उक्तं

तत्र हेतवः प्रदीयन्ते - पुरुष शरीर आदि पदार्थों से भिन्न है, इस विषय में हेतु दिये जाएंगे-

संहतपरार्थत्वात् ।। १४० ।।

सूत्रार्थ= संघात पदार्थ के परार्थ होने से जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न है।

भाष्य विस्तार = शरीरादयः संहताः सन्ति शरीर आदि जितने भी पदार्थ है वे सब संघात है, **संहताश्च न स्वार्थाय भवन्ति तेषां जडत्वाच्छय्यादिवत् किन्तु परार्था एव** जितने भी संघात पदार्थ होते हैं वे स्वयं के लिए नहीं होते, क्योंकि ये सब जड़ हैं शैय्या आदि के समान, किन्तु ये किसी और के लिए हैं, **तस्माद् यदर्थाः सन्ति शरीरादयः स परस्तेभ्यः शरीरादिभ्यो भिन्न इति प्रथमो हेतुः** तो जिसके लिए ये शरीर आदि है वह इन सबसे पर है, ये पहला हेतु हुआ कि वह शरीर आदि सबसे भिन्न है ।। १४० ।।

अथापरो हेतुः- इसी विषय में दूसरा हेतु देते हैं-

त्रिगुणादिविपर्ययात् ।। १४१ ।।

सूत्रार्थ= तीन गुणों से भिन्न होने से, और जड़ता, पराधीनता आदि गुणों से रहित होने के कारण पुरुष शरीर से भिन्न है।

भाष्य विस्तार = सत्त्वरजस्तमांसि त्रयो गुणाः सत्व रज तम तीनों गुण हैं, **आदिशब्देन जडत्वं पुरुषाधीनत्वं च गृह्येते** और आदि शब्द से जड़ता और पुरुष के आधीन होना ग्रहण कर लेते हैं, **एतेषां विपर्ययात्** इन गुणों से विपरीत होने से **तत्र पुरुषे निर्दिष्टधर्माणां विपरीतत्वमभावोऽथ** वो जो गुण बतलाए गए है वह पुरुष में निर्दिष्ट धर्म से विपरीत हैं (गुण है जड़ पुरुष है चेतन, गुण पुरुष के अधीन हैं और पुरुष स्वतंत्र है) **भिन्नधर्माणां चेतनत्वादीनां भावो विद्यते** चेतनत्व आदि धर्म हैं उनका अस्तित्व है पुरुष में और जड़त्व आदि जिनका धर्म है उनका अस्तित्व है जड़ पदार्थों में, **तस्मात् पुरुषः शरीरादिभ्यो भिन्नः** इसलिए पुरुष शरीर आदि पदार्थों से भिन्न है ।। १४१ ।।

अधिष्ठानाच्चेति ।। १४२ ।।

हि पूर्वम् ''चिदवसानो भोगः'' (सांख्य ०१.१०४) ।। १४३।।

कैवल्यार्थं प्रवृतेश्च ।। १४ ४।।

(कैवल्यार्थं प्रवृत्तेः-च) पुरुषश्चात्मस्वरूपार्थं मोक्षार्थं प्रवर्ततेऽतः स शरीरादिभ्यो भिन्नः। यदि शरीरादिभ्योभिन्नो न भवेत् कैवल्यार्थं कः प्रवर्तेत स एतादृशप्रवृत्तिमान् नित्यश्चेतनः पुरुष एव ।। १४४।।

कथं कैवल्यार्थं पुरुषस्य प्रवृत्तिरित्यत्रोच्यते -

जडप्रकाशायोगात् प्रकाशः ।। १४५।।

(जडप्रकाशायोगात्) जडे स्वात्मप्रकाशस्य युक्तिः - सम्भवो नास्ति तस्मात् तस्य कैवल्यार्थप्रवृत्तेरनुपपन्नत्वात् (प्रकाशः) पुरुषो हि प्रकाशस्वरूपश्चेतनः स्वात्मप्रकाशनार्थं कैवल्यार्थं

सूत्रार्थ= पुरुष (जीव और ईश्वर) शरीर और प्रकृति का अधिष्ठाता होन से भी शरीर आदि जड़ वस्तुओं से भिन्न है।

भाष्य विस्तार = **पुरुषो हि शरीरादिकस्याधिष्ठानमधिष्ठाता तथाऽधिष्ठेयं शरीरादिकं तस्मादपि पुरुषः शरीरादिभ्यो भिन्नः** पुरुष तो शरीर आदि का अधिष्ठान है यहाँ अधिष्ठान का अर्थ किया है अधिष्ठाता। और शरीर आदि उसके अधीन हैं तो इस प्रकार से पुरुष शरीर आदि से भिन्न हुआ **इत्थं कथनमीश्वरजीवात्मनोर्द्वयोः समानधर्मत्वकथनसमाप्तिः** इस सूत्र में जो 'इति' शब्द आया है ये इस बात की सूचना दे रहा है कि अभी तक तीन हेतुओं में जो बात कही गयी वो ईश्वर और जीव दोनों पर लागू हुयी दोनों के लिए समान हेतु समाप्त हुए। **तत्रेश्वरस्याधिष्ठातृत्वं सृष्टिकर्तृत्वाज्जीवात्मनस्तु देहव्यवहारप्रवर्तयितृत्वादधिष्ठातृत्वमस्ति।** ईश्वर जो अधिष्ठाता है वह इसलिए क्योंकि वह पूरी सृष्टि का कर्ता है और शरीर आदि जड़ पदार्थों से अलग है। जीवात्मा जिस रूप में अधिष्ठाता है वो देह को अपने कार्य व्यवहार में लगाता है।

तथा - (अब जो सूत्र चलेंगे वे जीवात्मा के लिए है)

भोक्तृभावात् ।। १४३।।

सूत्रार्थ= भोक्ता होने से जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न है ।

भाष्य विस्तार = **भोक्तृभावो हि पुरुषे विद्यते** शरीर आदि भोग्य है पुरुष में भोक्ता का भाव है **भोग्यं हि शरीरादिकं तस्मात् स ततो भिन्नः** इसलिए वह शरीर आदि से भिन्न है। **उक्तं हि पूर्वम्** जैसे कि पहले ही कहा था ''**चिदवसानो भोगः**'' भोग चेतन के लिए है **(सांख्य ० १.१०४) ।। १४३।।**

कैवल्यार्थं प्रवृतेश्च ।। १४४।।

सूत्रार्थ= मोक्ष प्राप्ति के लिए भी प्रयत्नशील होने से जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न है ।

(कैवल्यार्थं प्रवृत्तेः-च) पुरुषश्चात्मस्वरूपार्थं मोक्षार्थं प्रवर्ततेऽतः स शरीरादिभ्यो भिन्नः। यदि

प्रवर्तते शरीरादिभ्यो भिन्नः सन् ।। १४५।।

भूमिका - एवं तु पुरुषश्चेतनावान् चेतन्धर्मवान् प्रकाशधर्मवान् दीप इव धर्मी सिद्धयेत्, धर्मादगुणात्कथं विमोक्षः स्यात् । अत्रोच्यते -

निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा ।। १४६।।

(निर्गुणत्वात्-न चिद्धर्मा) पुरुषो निर्गुणत्वात् खलु चेतनधर्मा चेतनधर्मेण धर्मी नास्ति किन्तु केवलः प्रकाशात्मको ज्ञानस्वरूपोऽस्ति ।। १४६।।

निर्गुणत्वे हेतुः -

श्रुत्या सिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात् ।। १४७।।

(श्रुत्या सिद्धस्य न-अपलापः) श्रुत्या खलु तस्य निर्गुणत्वसिद्धस्यापलापो न भवति ''असङ्गो ह्ययं पुरुषः'' (बृह ०४.३.१५) (तत्प्रत्यक्षबाधात्) तत्र निर्गुणत्वस्य प्रत्यक्षबाधदोषः प्रसज्यते ।

शरीरादिभ्योभिन्नो न भवेत् कैवल्यार्थं कः प्रवर्तेत स एतादृशप्रवृत्तिमान् नित्यश्चेतनः पुरुष एव ।। १४४।।

भाष्य विस्तार = **पुरुषश्चात्मस्वरूपार्थं** पुरुष अपने शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति के लिए अर्थात **मोक्षार्थं** मोक्ष की प्राप्ति के लिए **प्रवर्ततेऽतः** पुरुषार्थ करता है **स शरीरादिभ्यो भिन्नः** इससे यह सिद्ध होता है कि जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न हैं। **यदि शरीरादिभ्योभिन्नो न भवेत् कैवल्यार्थं कः प्रवर्तेत** यदि जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न न होता तो मोक्ष के लिए पुरुषार्थ कौन करता? **स एतादृशप्रवृत्तिमान् नित्यश्चेतनः पुरुष एव** वह इस प्रकार की प्रवृत्ति का वह नित्य, चेतन, पुरुष है ।। १४४।।

कथं कैवल्यार्थं पुरुषस्य प्रवृत्तिरित्यत्रोच्यते - मोक्ष प्राप्ति के लिए पुरुष की प्रवृत्ति कैसे होती है? उसके विषय में कहते हैं

जडप्रकाशायोगात् प्रकाशः ।। १४५।।

सूत्रार्थ= जड़ वस्तु में ज्ञान का अभाव होने से और पुरुष ज्ञानवान होने से मोक्ष के लिए प्रयत्न करता है।

भाष्य विस्तार = **जडे स्वात्मप्रकाशस्य युक्तिः - सम्भवो नास्ति** जड़ पदार्थों में स्वयं प्रकाश=चेतन होने की योग्यता संभव नहीं है **तस्मात् तस्य कैवल्यार्थप्रवृत्तेरनुपपन्नत्वात्** इसलिए उसकी कैवल्य के लिए प्रवृत्ति असिद्ध है **(प्रकाशः) पुरुषो हि प्रकाशस्वरूपश्चेतनः स्वात्मप्रकाशनार्थं कैवल्यार्थं प्रवर्तते** इससे यह सिद्ध हुआ कि पुरुष प्रकाश स्वरूप=चेतन है ज्ञानवान है स्व प्रकाश के लिए, अपने चेतनत्व को प्राप्त करने के लिए अर्थात सुख प्राप्ति के लिए दु:ख से छूटने के लिए वह मोक्ष के लिए प्रवृत्त होता है पुरुषार्थ करता है **शरीरादिभ्यो भिन्नः सन्** शरीर आदि पदार्थों से वह अलग होता है, इसलिए पुरुषार्थ करता है ।। १४५।।

भूमिका - एवं तु पुरुषश्चेतनावान् चेतन्धर्मवान् प्रकाशधर्मवान् दीप इव धर्मी सिद्धयेत्, धर्मादगुणात्कथं विमोक्षः स्यात् ऐसे तो पुरुष चेतनवान हो गया, चेतन धर्म वाला हो गया, प्रकाश धर्म वाला

अतः स प्रकाशस्वरूपश्चेतन आत्मा शरीरादिभ्यो भिन्नः ।। १४७।।

तस्मादेव -

सुषुप्त्याद्यसाक्षित्वम् ।। १४८।।

(सुषुप्त्याद्यसाक्षित्वम्) सुषुप्त्याद्यस्य स पुरुषः साक्षी सन् शरीरादिभ्यो भिन्नः स्यात् । अन्यथा गाढं मूढोऽहमस्वाप्सं सुखमहमस्वाप्समितिप्रतिभानं न स्यात् । तस्मात् पुरुषः शरीरादिभ्यो भिन्नश्चेतनः प्रकाशस्वरूपो ज्ञानस्वरूपः ।। १४८।।

शरीरादिभ्य पुरुषस्य भिन्नत्वे निर्णीते सति पुनस्तस्य संख्याविषये विचार्यते, पूर्वं सिद्धान्तः स्थाप्यते -

जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् ।। १४९।।

(जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्) जन्ममरणजीवनव्यवस्थातः कश्चिज्जायते कश्चन म्रियते

हो गया, दीपक के समान धर्मी सिद्ध हो गया । उस चेतन धर्म से उस गुण का छुटकारा कैस होगा। अत्रोच्यते - इसका उत्तर देते हैं-

निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा ।। १४६।।

सूत्रार्थ= चेतनता जीव का नैमित्तिक गुण नहीं है, इसलिए जीव नैमित्तिक चेतनत्व धर्मवाला नहीं है, बल्कि चेतनता उसका स्वरूप है।

(निर्गुणत्वात्-न चिद्धर्मा) पुरुषो निर्गुणत्वात् खलु चेतनधर्मा चेतनधर्मेण धर्मी नास्ति किन्तु केवलः प्रकाशात्मको ज्ञानस्वरूपोऽस्ति ।। १४६।।

भाष्य विस्तार = **पुरुषो निर्गुणत्वात् खलु चेतनधर्मा चेतनधर्मेण धर्मी नास्ति किन्तु केवलः प्रकाशात्मको ज्ञानस्वरूपोऽस्ति** सिद्धांती पूर्वपक्षी की बात का उत्तर देता है -पुरुष तो निर्गुण है वह दीपक के समान नहीं कि चेतना धर्म बाहर से आकर वह चेतन धर्मी हो गया हो, वह ऐसा नहीं है किन्तु वह तो स्वरूप से ही ज्ञानवान है **।। १४६।।**

निर्गुणत्वे हेतुः - ज्ञान जीवात्मा में नेमित्तिक नहीं है

श्रुत्या सिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात् ।। १४७।।

सूत्रार्थ= श्रुति से जो बात सिद्ध है उसका खंडन नहीं हो सकता, जब समाधि में जीवात्मा का प्रत्यक्ष करेंगे तो उस प्रत्यक्ष से भी आपकी बात का खंडन होगा।

भाष्य विस्तार = **श्रुत्या खलु तस्य निर्गुणत्वसिद्धस्यापलापो न भवति** श्रुति से जीवात्मा के निर्गुणत्व सिद्ध स्वरूप का खंडन नहीं होता **''असंगो ह्ययं पुरुषः'' पुरुष असंग है। तत्र निर्गुणत्वस्य प्रत्यक्षबाधदोषः प्रसज्यते** यदि ज्ञान उसमें आरोपित कर दिया गया ऐसा मानें तो उसके निर्गुणत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण से खंडन आएगा (जब व्यक्ति समाधि लगाएगा और जीवात्मा के स्वरूप का प्रत्यक्ष करेगा तो उसे वही प्रत्यक्ष होगा जो श्रुति में कहा गया है)। **अतः स प्रकाशस्वरूपश्चेतन आत्मा शरीरादिभ्यो भिन्नः** इसलिए वह प्रकाश स्वरूप अर्थात ज्ञान स्वरूप चेतन आत्मा शरीर आदि से भिन्न है ।। १४७।।

कश्चिच्च जीवतीति विविधा अवस्थाः पुरुषबहुत्वे हि सम्भवन्ति ।शास्त्रेऽपि पुण्येन पुण्ये लोके जायते पापेन पापे। तथा चादिशब्देन मुक्तत्वबद्धत्वेऽपि गृह्येते ते अपि पुरुषबहुत्वे सति हि सम्भवतः ।। १४९।।

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

उपाधिभेदेऽप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः ।।१५०।।

(उपाधिभेदे-अपि-एकस्य नानायोगः) उपाधिभेदे-उपाधानभेदे-आश्रयभेदेऽपि स्यादेकस्य पुरुषस्य नानायोजना बहुत्वमितियावत् (आकाशस्य इव घटादिभिः) यथा घटादिभिरुपाधिभिर्घटगर्तगृहैरुपाधानैराश्रयैराकाशस्य नानायोजना बहुत्वमुपचर्यते ।।१५०।।

समाधत्ते -

उपाधिर्भिद्यते न तु तद्वान् ।।१५१।।

तस्मादेव -

सुषुप्त्याद्यसाक्षित्वम् ।।१४८।।

सूत्रार्थ= सुषुप्ति आदि का साक्षी होने से जीवात्मा शरीर आदि पदार्थों से भिन्न है ।

भाष्य विस्तार = **सुषुप्त्याद्यस्य स पुरुषः साक्षी सन् शरीरादिभ्यो भिन्नः स्यात्।** जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न है क्योंकि जो सुषुप्त आदि अवस्थाएँ हैं उनका वह साक्षी होता हुआ वह शरीर आदि से भिन्न है। **अन्यथा गाढं मूढोऽहमस्वाप्सं सुखमहमस्वाप्समितिप्रतिभानं न स्यात्।** यदि जीवात्मा इन सुषुप्ति आदि का साक्षी न होता तो वह इस प्रकार की अनुभूति न करता, मै आज थका हुआ था वहुत गहरी नींद सोया, या सुख पूर्वक सोया, इस तरह की अनुभूति उसे न होवे। **तस्मात् पुरुषः शरीरादिभ्यो भिन्नश्चेतनः प्रकाशस्वरूपो ज्ञानस्वरूपः** इसलिए पुरुष जो जीवात्मा है वह शरीर आदि से भिन्न है चेतन स्वरूप है प्रकाश स्वरूप है अर्थात ज्ञानस्वरूप है ।।१४८।।

शरीरादिभ्य पुरुषस्य भिन्नत्वे निर्णीते सति पुनस्तस्य संख्याविषये विचार्यते, पूर्वं सिद्धान्तः स्थाप्यते- पुरुष जीवात्मा शरीर आदि से भिन्न है, इतना निर्णय हो जाने पर अब उसकी संख्या के विषय में विचार किया जाता है कि पुरुष एक है या बहुत । चर्चा को आरंभ करते हुए पहले सिद्धान्त पक्ष को स्थापित करते हैं-

जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् ।।१४९।।

सूत्रार्थ= जन्म मरण आदि व्यवस्थाओं से ये सिद्ध होता है कि जीवात्माएँ अनेक हैं।

भाष्य विस्तार = **जन्ममरणजीवनव्यवस्थातः** जन्मादि शब्द से लिया जीना-मरना, जीवित रहना इन सारी व्यवस्थाओं से **कश्चिज्जायते कश्चन म्रियते कश्चिच्च जीवतीति विविधा अवस्थाः पुरुषबहुत्वे हि सम्भवन्ति।** कोई व्यक्ति तो जन्म ले रहा है कोई मर रहा है कोई जी रहा है विविध अवस्था आयु वाला है इस प्रकार से विविध अवस्थाएँ पुरुष बहुतत्व होने पर ही संभव हैं **शास्त्रेऽपि पुण्येन पुण्ये लोके जायते पापेन**

(उपाधिः-भिद्यते न तु तद्वान्) भवतूपाधिभेदः, तेन किम् । उपाधिरेव भिद्यते न ह्युपाधिमान् भिद्यते, एवमुपाधिभेदे सत्यपि पुरुषस्य भेदेन न भवितव्यम् । तस्मान्नोपाधिभेदात् पुरुषबहुत्वं युक्तं किन्तु वास्तविकं पुरुषबहुत्वं यथोक्तं पूर्वम् ।। १५१ ।।

पुनश्चायमपि दोषः पुरुषैकत्वे प्रसज्यते -

एवमेकत्वेन परिवर्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यासः ।। १५२ ।।

(एवम्-एकत्वेन परिवर्तमानस्य) एवं हि खल्वेकत्वेनैकरूपतया परितो वर्तमानस्य सर्वतो वर्तमानस्य सर्वत्र व्याप्तस्य पुरुषस्य (विरुद्धधर्माध्यासः-न) विरुद्धधर्माणां सुख्यहं दुःख्यहं तथा स जातः स मृतः, अहं रुग्णोऽहं स्वस्थ इत्यनुभवः सम्बन्धो वा न स्यात् ।। १५२ ।।

पापे। शास्त्र में भी अलग अलग व्यवस्था बताई है कि पुण्य करेगा तो पुण्य लोक में जाएगा और पाप करेगा तो पाप लोक में जाएगा **तथा चादिशब्देन मुक्तत्वबद्धत्वेऽपि गृह्येते ते अपि पुरुषबहुत्वे सति हि सम्भवतः** और आदि शब्द से मुक्त होना और बद्ध होना भी ग्रहण कर लेना चाहिए, मुक्ति होना बंधन होना ये तभी संभव है जब पुरुष बहुत्व हो **।।१४९।।**

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

उपाधिभेदेऽप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः ।।१५०।।

सूत्रार्थ= उपाधि भिन्न भिन्न होने पर भी एक ही वस्तु का अनेक वस्तुओं से संयोग हो सकता है, जैसे आकाश का घट आदि अनेक वस्तुओं से संयोग हो जाता है ।

भाष्य विस्तार = उपाधिभेदे-उपाधानभेदे-आश्रयभेदेऽपि स्यादेकस्य पुरुषस्य नानायोजना बहुत्वमितियावत् पूर्वपक्षी कहता है कि उपाधिभेद होने से अर्थात उपाधान भेद होने से आश्रय भेद होने पर भी एक आत्मा मानने पर भी (अनेक शरीर होने पर कोई शरीर जन्म रहा है कोई मर रहा है कोई जी रहा है कोई मोक्ष को प्राप्त कर रहा है) बहुत संख्या होना सिद्ध हो जाएगा, इसलिए अनेक आत्मा क्यों मानें? एक ही से सब कार्य सिद्ध हो जाएगा, यह पूर्वपक्ष है। **यथा घटादिभिरुपाधिभिर्घटगर्तगृहैरुपाधानैराश्रयैराकाशस्य नानायोजना बहुत्वमुपचर्यते** अपने पक्ष में दृष्टांत देता है, देखो- आकाश एक ही है वह घड़े में भी है, भवन में भी है, गढ़े में भी है, अलग अलग वस्तुओं के साथ आकाश का संयोग होने से वह अनेक प्रकार का आकाश कह दिया जाता है (घटाकाश, मठाकाश, पटाकाश, गर्ताकाश) एक ही आत्मा का भिन्न भिन्न शरीरों के साथ संबंध मान लो **।। १५० ।।**

समाधत्ते - अब सिद्धांती इसका उत्तर देता है-

उपाधिर्भिद्यते न तु तद्वान् ।। १५१ ।।

सूत्रार्थ= आपके कथन से उपाधियाँ भिन्न-भिन्न सिद्ध होती हैं, किन्तु उपाधिवाला (आत्मा) नहीं ।

भाष्य विस्तार = भवतूपाधिभेदः उपाधियाँ भिन्न-भिन्न है ये तो सिद्ध है, तेन किम् परंतु इससे क्या सिद्ध होगा। उपाधिरेव भिद्यते न ह्युपाधिमान् भिद्यते आपके दिए हुए दृष्टांत से तो केवल उपाधियों

उपाधेर्विरुद्धधर्माश्चेत् -

अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात् तत्सिद्धिरेकत्वात् ।। १५३ ।।

(अन्यधर्मत्वे) उपाधिधर्मत्वे ते विरुद्धधर्माः सुखित्वदुःखित्वस्वस्थत्वरुग्ण- त्वानि स्युरुपाधेरिति तदा (आरोपात्-अपि) तेषामुपाधिधर्माणामारोपादपि (न तत्सिद्धिः-एकत्वात्) पुरुषे न विरुद्धधर्मत्वसिद्धिर्यत आरोपयितुः पुरुषस्यैकत्वात् स एकः सन् तथाभूतान् विरुद्धधर्मान् स्वस्मिन् कथमारोपयेत्। संसारे खल्वेकस्मिन् काले केषाञ्चिद् भवति जन्म केषाञ्चिच्च मरणं तथैवेकस्मिन् काले केचन सुखिनः केचन दुःखिनः केचित्स्वस्थाः केचिच्च रुग्णा दृश्यन्ते। तस्मात्पुरुषबहुत्वमेव युक्तम् ।। १५३ ।।

यदि पुरुषानेकत्वमस्ति तथा ''असंगो ह्ययं पुरुषः'' (बृह ०४.३.१५-१६) कथं पुरुष एकोऽत्र

का भेद सिद्ध हो रहा है, उपाधि वाले की भिन्नता सिद्ध नहीं हो रही, **एवमुपाधिभेदे सत्यपि पुरुषस्य भेदेन न भवितव्यम्** इस प्रकार से उपाधि की भिन्नता सिद्ध होने पर भी पुरुष की भिन्नता सिद्ध नहीं हो रही। **तस्मान्नोपाधिभेदात् पुरुषबहुत्वं युक्तं किन्तु वास्तविकं पुरुषबहुत्वं यथोक्तं पूर्वम्** इसलिए आप जो उपाधि भेद से पुरुष बहुत्व को सिद्ध कर रहे थे, वह सिद्ध नहीं हुआ। जैसा हमने कहा था वास्तव में पुरुष अनेक हैं यह सिद्ध हो रहा है ।।१५१।।

पुनश्चायमपि दोषः पुरुषैकत्वे प्रसज्यते - पुरुष को एक मानने में ये भी तो दोष आयेगा-

एवमेकत्वेन परिवर्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यासः ।। १ ५२ ।।

सूत्रार्थ= एक ही आत्मा सर्वव्यापक मानने पर उसमें परस्पर विरोधी धर्मों की अनुभूति संभव नहीं होगी।

भाष्य विस्तार = पूर्वपक्षी से कह रहा है सिद्धांती - आपके मतानुसार आत्मा एक है, जैसे आकाश एक है। **एवं हि खल्वेकत्वेनैकरूपतया परितो वर्तमानस्य** यदि आकाश के समान एक ही पुरुष मान लिया जाए, और वह सब जगह व्यापक है, ऐसा मानने पर **सर्वतो वर्तमानस्य** सब जगह विद्यमान का **सर्वत्र व्याप्तस्य पुरुषस्य सर्वत्र व्याप्त पुरुष का विरुद्धधर्माणां** विरुद्ध धर्मों की अनुभूति उसे नहीं होनी चाहिए, जैसे कि **सुख्यहं** मैं सुखी हूँ **दुःख्यहं** कोई कह रहा है मै बहुत दुःखी हूँ **तथा** और **स** वह **जातः** जन्म गया **स** वह **मृतः** मर गया, **अहं** मै **रुग्णोऽहं** रोगी हूँ मैं **स्वस्थ** स्वस्थ हूँ **इत्यनुभवः सम्बन्धो वा न स्यात्** इस प्रकार का अनुभव नहीं होना चाहिए, शाब्दिक संबंध नहीं होना चाहिए, इससे सिद्ध हो रहा है अनुभूतियाँ अलग अलग हैं शब्द भी अलग अलग कहे जा रहे हैं ।। १५२ ।।

उपाधेर्विरुद्धधर्माश्चेत् - पूर्वपक्षी कहता है उपाधि के विरुद्ध धर्म मान लिए जाएँ तो-

अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात् तत्सिद्धिरेकत्वात् ।। १५३ ।।

सूत्रार्थ= सुखी- दुःखी होना उपाधियों का धर्म मानने पर भी और उसे आत्मा में आरोपित करने पर

वर्णितः। एवं त्वद्वैतश्रुतिविरोध आपतति ।

अत्र प्रतिविधीयते -

नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात् ।। १५४।।

(अद्वैतश्रुतिविरोधः-न) अद्वैतश्रुतितो विरोधो न जायते; यतः (जातिपरत्वात्) तत्र श्रुतावेकत्ववर्णनं जातिपरमस्ति, जातिरेका भवति व्यक्तयस्त्वनेकाः । अन्यत्र श्रुतौ पुरुषबहुत्वं प्रतिपाद्यतेऽपि ''ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति, अथेतरे दुःखमेवापियन्ति'' (बृह ०४.४.१ ४) ।। १५४।।

ननु ''असंगो ह्ययं पुरुषः'' (बृह ०४.३.१५) इति वचने पुरुषशब्दश्चेजातिपरस्तर्हि, 'असंगः' विशेषणं तु बहुषु व्यक्तिषु तद्रूपेण न संगच्छते यतो व्यक्तिभेदस्तु संगेनैवोपपद्यते, असंगस्तु संगवर्जितः केवल एक एव पुनः कथं व्यक्तिषु स्यादसंगत्वमित्याकांक्षायामुयते -

---

भी विरोधी धर्मों की सिद्धि नहीं हो पाएगी, आरोपित करने वाले पूर्वपक्षी के मत में आत्मा के एक होने से ।

भाष्य विस्तार = **उपाधिधर्मत्वे ते विरुद्धधर्माः** उपाधि धर्म मानने पर जो विरुद्ध धर्म हैं **सुखित्वदुःखित्वस्वस्थत्वरुग्णत्वानि** सुखी होना, दुःखी होना, स्वस्थ होना, रोगी होना आदि **स्युरुपाधेरिति** उपाधि मान लिए जाएँ **तदा तब तेषामुपाधिधर्माणामारोपादपि** सिद्धांती कह रहा है उन सब में उपाधि धर्म सुखी-दुःखी-रोगी-स्वस्थ आदि आरोपित करने पर भी **पुरुषे न विरुद्धधर्मत्वसिद्धिः** पुरुष में विरुद्ध धर्मो की सिद्धि फिर भी न हो सकेगी **यतः** क्योंकि **आरोपयितुः** आरोप करने वाला **पुरुषस्यैकत्वात्** पुरुष तो एक ही है (वही एक आत्मा एक समय में अलग-अलग शरीरों में कहीं पर सुख कहीं, दुःखी कहीं रोगी, कहीं स्वस्थ आदि अनुभव तो कर नहीं सकता) **स एकः सन् तथाभूतान् विरुद्धधर्मान् स्वस्मिन् कथमारोपयेत्।** आरोपित करने वाला पुरुष यदि एक संख्या में हो तो इतने सारे विरुद्ध धर्मों में कैसे कथन करेगा। **संसारे** संसार में **खल्वेकस्मिन् काले केषाञ्चिद् भवति** जन्म एक ही समय में कुछ लोगों का जन्म होता है **केषाञ्चिच्च मरणं तथैवेकस्मिन् काले** कुछ लोगों की उसी समय में मृत्यु भी हो रही है **केचन सुखिनः केचन दुःखिनः केचित्स्वस्थाः केचिच्च रुग्णा दृश्यन्ते** उसी काल में उसी क्षण में कुछ लोग सुखी दिखते हैं कुछ लोग दुःखी दिखते हैं तो कुछ लोग स्वस्थ तो कुछ लोग रोगी दिखते हैं। **तस्मात्पुरुषबहुत्वमेव युक्तम्** इसलिए अलग अलग पुरुष होना ही उचित है ।। १५३।।

यदि पुरुषानेकत्वमस्ति तथा ''असंगो ह्ययं पुरुषः'' (बृह ०४.३.१५-१६) कथं पुरुष एकोऽत्र वर्णितः पूर्वपक्षी प्रश्न उठाता है- यदि पुरुष का बहुत्व है फिर श्रुति में तो कहा है की पुरुष तो असंग है यहाँ तो एक वचन है। फिर कैसे एक पुरुष कहा जब अनेक है तो अनेक का ही कथन होना चाहिए। **एवं त्वद्वैतश्रुतिविरोध आपतति** आपकी बात माने तो अद्वैत श्रुति से विरोध आएगा।

अत्र प्रतिविधीयते - अब इस बात का खंडन किया जाता है-

नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात् ।। १५४।।

विदितबन्धकारणस्य दृष्ट्या तद्रूपम् ।। १५५ ।।

(विदितबन्धकारणस्य दृष्ट्या) विदितं ज्ञातं बन्धकारणमविवेको येन तस्य प्राप्तविवेकस्य विवेकान्निवृत्तबन्धस्य पुरुषस्य दृष्ट्या (तद्रूपम्) खल्वसंगरूपमसंगत्वमुक्तम् । अतः पुरुषबहुत्वे न दोषप्रसक्तिः ।। १५५ ।।

विदितबन्धकारणस्यासंगत्वदृष्टिरुक्ताऽन्यस्य कथं न स्यात्तथारूपत्वानुभूतिस्तद्रूपस्य सर्वपुरुषधर्मत्वात्। अत्रोच्यते -

नान्धादृष्ट्या चक्षुष्मतामनुपलम्भः ।। १५६ ।।

(अन्धादृष्ट्या-अनुपलम्भः) अन्धस्यादृष्ट्या भवत्यनुपलम्भो रूपादर्शनम् (चक्षुष्मतां न) नेत्रवतां न भवति । तस्माद् विवेकनेत्रवतां लब्धविवेकानां भवत्यस ऽत्वानुभूतिर्न तद्रहितानाम् । अतः पुरुष बहुत्वं निरवद्यम् । पूर्वं चेदं च सूत्रं विज्ञानभिक्षुभाष्येऽन्यथा व्याख्यातम् ।। १५६ ।।

सूत्रार्थ= एक पुरुष का प्रतिपादन करने वाली श्रुति से अनेक पुरुष होने का विरोध नहीं है, क्योंकि वह श्रुति जातिपरक है।

भाष्य विस्तार = **अद्वैतश्रुतितो विरोधो न जायते;** सिद्धांती कहता है अद्वैत श्रुति से विरोध नहीं आएगा **यतः** क्योंकि **तत्र श्रुतावेकत्ववर्णनं जातिपरमस्ति** (एक नियम है व्याकरण का जब जाति का कथन हो तो एक वचन भी कह सकते हैं और बहुवचन भी) वहां श्रुति में जो एकत्व का वर्णन है वह जातिपरक है, **जातिरेका भवति व्यक्तयस्त्वनेकाः** जाति एक होती है व्यक्ति बहुत सारे होते हैं। **अन्यत्र श्रुतौ पुरुषबहुत्वं प्रतिपाद्यतेऽपि** सिद्धांती कहता है अन्यत्र श्रुतियों में भी पुरुष के बहुत का प्रतिपादन किया गया है **''ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति, अथेतरे दुःखमेवापियन्ति''** जो योगी लोग परमात्मा को जान लेते हैं वे अमृत हो जाते हैं मोक्ष में चले जाते हैं, और जिन्होने ईश्वर को नहीं जाना वे बार-बार दुःख भोगते रहते हैं ।। १५४।।

ननु ''असंगो ह्ययं पुरुषः'' (बृह ०४.३.१५) इति वचने पुरुषशब्दश्चेज्जाति- परस्तर्हि, 'असंगः' विशेषणं तु बहुषु व्यक्तिषु तद्रूपेण न संगच्छते यतो व्यक्तिभेदस्तु संगेनैवोपपद्यते पूर्वपक्षी प्रश्न करता है कि पुरुष तो असंग है, इस वचन में पुरुष जाति के संबंध में है तो ये जो 'असंग' विशेषण है बहुत सारे व्यक्तियों में तो उस रूप में लागू नहीं होगा क्योंकि सब के सब एक जैसे विद्वान तो हैं नहीं। क्योंकि व्यक्ति का जो भेद है वह तो शरीर के संग से ही सिद्ध हो पाएगी, **असंगस्तु संगवर्जितः केवल एक एव पुनः कथं व्यक्तिषु स्यादसंगत्वमित्याकांक्षायामुच्यते** असंग का अर्थ है संग से रहित, फिर वह तो एक ही हो पाएगा जिसको तत्वज्ञान होगा वही कहेगा मै तो एक हूँ, सब व्यक्तियों में सब जीवात्माओं में असंगत्व लागू नहीं हो पाएगा-

विदितबन्धकारणस्य दृष्ट्या तद्रूपम् ११ ।। १५५ ।।

सूत्रार्थ= श्रुति में जो कहा है ''अस ऽो ह्ययं पुरुषः'' यह विवेक प्राप्त तत्वज्ञानी व्यक्ति की दृष्टि से कहा है।

भाष्य विस्तार = **विदितं** अर्थात **ज्ञातं** जिसने जान लिया **बन्धकारणमविवेको** कि बंधन का कारण

अन्यच्च -

वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम् ।। १५७।।

(वामदेवादिः-मुक्तः) वामदेवः शुको भरतश्च मुक्तः (अद्वैतं न) न ह्यद्वैतम् । मुक्तानामनेकत्वादपि पुरुषैकत्वं न ।। १५७।।

अथ चेन्न मन्येत कश्चिन्मुक्तस्तर्हि -

अनादावद्ययावदभावाद्भविष्यदप्येवम् ।। १ ५८।।

(अनादौ-अद्ययावत्-अभावात्) अनादौ कालेऽथचाद्यपर्यन्तं यदि मुक्तेरभावो न कश्चिन्मुक्तस्तर्हि (भविष्यत्-अपि-एवम्) भविष्यत् कालोऽपि तथैवानुमेयो मुक्तिरहितः पुनर्मोक्षोपदेशो निरर्थकः स्यात् ।। १५८।।

है अविवेक **येन तस्य** उस व्यक्ति का **प्राप्तविवेकस्य** जिसको विवेक प्राप्त हो गया **विवेकान्निवृत्तबन्धस्य पुरुषस्य** तत्वज्ञान से जिस पुरुष का बंधन ज्ञान नष्ट हो गया **दृष्ट्या** उस दृष्टि से **(तद्रूपम्) खल्वसंगरूपमसंगत्वमुक्तम्** असंग कहा है (असंग वो है जिसने जान लिया अविद्या मुझसे अलग और मै अविद्या से अलग हूँ)। **अतः** इसलिए **पुरुषबहुत्वे** बहुत पुरुष होने में **न दोषप्रसक्तिः** कोई दोष नहीं है।। १५५।।

विदितबन्धकारणस्यास इत्वदृष्टिरुक्ताऽन्यस्य कथं न स्यात्तथारूपत्वानुभूति- स्तद्रूपस्य सर्वपुरुषधर्मत्वात् पूर्वपक्षी कह रहा है – जिसको तत्वज्ञान हो गया वह ये कह रहा है 'मै असंग हूँ' जबकि असंग तो सारी जीवात्माएँ हैं, फिर सभी क्यों नहीं बोल रहे कि 'हम असंग हैं' असंग तो सभी आत्माओं का धर्म है। बंधन के कारण से वह असंग है, ये बात अन्य जीवात्माओं पर भी लागू हो, इस तरह की अनुभूति औरों को क्यों नहीं हो रही? जबकि असंग रूप तो सभी पुरुषों का धर्म है। **अत्रोच्यते** – इस पर कहते हैं-

नान्धादृष्ट्या चक्षुष्मतामनुपलम्भः ।। १ ५६।।

सूत्रार्थ= अन्धे व्यक्ति की दृष्टि ठीक न होने के कारण रूप दर्शन नहीं होता, किन्तु नेत्र वालों को तो दर्शन होता है।

भाष्य विस्तार = **अन्धस्यादृष्ट्या भवत्यनुपलम्भो रूपादर्शनम्** जो अन्धा है उसकी दृष्टि ठीक नहीं है इसलिए उसको रूप का दर्शन नहीं होता जबकि **(चक्षुष्मतां न) नेत्रवतां न भवति** जिसकी आँखें ठीक हैं उसे सब कुछ दिखता है। **तस्माद् विवेकनेत्रवतां लब्धविवेकानां भवत्यस इत्वानुभूतिर्न तद्रहितानाम्** इसलिए जिनके विवेक के नेत्र खुल गए हैं तत्वज्ञान की आँखें खुल गई, वह अनुभव करता है कि 'मैं असंग हूँ' जिनको ये तत्वज्ञान नहीं होता वे अनुभव नहीं कर पाते। **अतः पुरुष बहुत्वं निरवद्यम्** इसलिए पुरुष बहुत मानना ये निर्दोष है। **पूर्वं चेदं च सूत्रं विज्ञानभिक्षुभाष्येऽन्यथा व्याख्यातम्** यह सूत्र और इससे पिछला सूत्र में विज्ञानभिक्षु ने गलत व्याख्या की है ।। १५६।।

अन्यच्च -

वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम् ।। १५७।।

ननु पुरुषबहुत्वस्वीकारेऽपि मुक्तबहुत्वात्स्यात्संसारस्योच्छेदः, आदिसर्गतोऽद्ययावत् क्रमेण सर्वेषां मुक्तत्वात् । अत्रोच्यते –

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ।। १५९ ।।

(इदानीम्-इव-सर्वत्र-अत्यन्तोच्छेदः-न) साम्प्रतिके काले सर्गे-इव सर्वत्र काले सर्वेषु सर्गेषु च संसारस्यात्यन्तोच्छेदो न भविष्यति कस्यापि पुरुषस्य परममोक्षा ब्रह्मणि लयो न भवति यदि हि स्यात् तर्हीदं जगन्न वर्तेत नोपलभ्येत, वर्ततेऽथोपलभ्यते जगत् तस्मान्न परममोक्षः पुरुषस्य । उक्तं विज्ञानभिक्षुभाष्येऽपीत्थमेव ''सर्वत्र काले बन्धस्यात्यन्तोच्छेदः कस्यापि पुंसो नास्ति वर्तमानकालवदित्यनुमानं सम्भवेदित्यर्थः'' (विज्ञानभिक्षुभाष्यम्) ।। १५९ ।।

पुरुषस्यात्यन्तबन्धोच्छेदाभावे यद्वा परममोक्षाभावे हेतुरुच्यतेव्यावृत्तोभयरूपः ।। १६० ।।

(व्यावृत्तोभयरूपः) यतः पुरुषः खलूभयरूपाभ्यां मुक्तत्वबद्धत्वाभ्यां व्यावृत्तः पृथग्भूतोऽस्ति, अविवेकाद् बद्धो भवति विवेकात् खलु मुक्तो भवति वक्ष्यति ह्यग्रे ''नैकान्ततो बन्धमोक्षौ

सूत्रार्थ= वामदेव आदि अनेक ऋषियों की मुक्ति हो गई, इसलिए भी आत्मा एक नहीं है, बल्कि अनेक आत्माएँ हैं।

भाष्य विस्तार = **वामदेवः शुको भरतश्च मुक्तः** वामदेव, शुकदेव, भरत मुनि आदि मुक्त हो गए **न ह्यद्वैतम्** इसलिए एक आत्मा नहीं है। **मुक्तानामनेकत्वादपि पुरुषैकत्वं न मुक्त** अनेक हुए हैं केवल एक ही मुक्त नहीं हुआ, इसलिए एक आत्मा नहीं है ।। १५७ ।।

अथ चेन्न मन्येत कश्चिन्मुक्तस्तर्हि – पूर्वपक्षी कहता है कोई ये कहे कि आजतक एक भी मुक्त नहीं हुआ तो–

अनादावद्ययावदभावाद्भविष्यदप्येवम् ।। १५८ ।।

सूत्रार्थ= यदि अनादिकाल से लेकर आजतक किसी की भी मुक्ति नहीं हुई तो भविष्यत काल में भी किसी की मुक्ति नहीं हो पाएगी, तब तो मोक्ष का वेदोक्त उपदेश भी व्यर्थ हो जाएगा।

भाष्य विस्तार = सिद्धांती कहता है **अनादौ कालेऽथचाद्यपर्यन्तं** अनादि काल से आजतक यदि **मुक्तेरभावो** यदि ऐसा मान लिया जाए कि मुक्ति का अभाव है, एक भी व्यक्ति आजतक मुक्त नहीं हुआ **न कश्चिन्मुक्तस्तर्हि भविष्यत् कालोऽपि तथैवानुमेयो मुक्तिरहितः** तो फिर भविष्य काल का भी कोई मुक्त नहीं होगा ऐसे ही अनुमान करना पड़ेगा **पुनर्मोक्षोपदेशो निरर्थकः स्यात्** फिर मोक्ष का उपदेश निरर्थक हो जाएगा ।। १५८ ।।

ननु पुरुषबहुत्वस्वीकारेऽपि मुक्तबहुत्वात्स्यात्संसारस्योच्छेदः पूर्वपक्षी कहता है कि पुरुष बहुत्व है और मुक्ति में भी बहुत चले गए, ऐसे एक एक करके सब मुक्ति में चले गए तो संसार तो खत्म हो जाएगा, **आदिसर्गतोऽद्ययावत् क्रमेण सर्वेषां मुक्तत्वात्** आदि सर्ग से लेकर क्रम से सब मुक्ति में चले जाएँ और आगे

पुरुषस्याविवेकादृते'' (सांख्य ०३.७१) अतस्तस्य न परममोक्षस्त- स्मादेव सर्वेषां पुरुषाणां क्रमेण मुक्तत्वात् संसारोच्छेदो न भवति स एष सिद्धान्तः सांख्ये सूत्रद्वयवर्णितो दयानन्दर्षिणाऽभिमतोऽस्ति ।। १६० ।।

अथ य खलु पुरुषविशेष ईश्वरः ''क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'' (योग ०१.२४) यस्य विषये श्रुतावुच्यते ''जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि'' (छान्दो ०६.३.२) ''य आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम्'' (बृह ०३.७.२२) तथा यं परं पुरुषमेष शारीरः प्राप्य मुक्तो

भी अगले अगले जन्मों में लोग मुक्त होते चले जाएंगे, फिर संसार तो खत्म हो जाएगा। **अत्रोच्यते** - इस पर कहते हैं-

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ।। १५९ ।।

सूत्रार्थ= जैसे इस समय संसार चल रहा है ऐसे ही सदा संसार चलता रहेगा, इसका अत्यंत विनाश कभी नहीं होगा।

भाष्य विस्तार = **साम्प्रतिके काले सर्गे-इव** जैसे वर्तमान में इस सृष्टि में **सर्वत्र काले सर्वेषु सर्गेषु च** वैसे ही सभी कालों में सभी सृष्टियों में **संसारस्यात्यन्तोच्छेदो न भविष्यति** संसार पूरी तरह से कभी नष्ट नहीं होगा **कस्यापि पुरुषस्य परममोक्षा ब्रह्मणि लयो न भवति** क्योंकि किसी भी जीवात्मा का ब्रह्म में लय नहीं होता **यदि हि स्यात् तर्हीदं जगन्न वर्तेत नोपलभ्येत** यदि ऐसा होता एक एक आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाता और वापिस लौट के न आता, तव तो संसार खत्म हो जाता, **वर्ततेऽथोपलभ्यते जगत् तस्मान्न परममोक्षः पुरुषस्य** क्योंकि जगत तो दिख रहा है उपलब्ध हो रहा है इससे सिद्ध हुआ कि किसी भी जीवात्मा का परम मोक्ष नहीं होता, मुक्ति का समय निश्चित है। **उक्तं विज्ञानभिक्षुभाष्येऽपीत्थमेव ''सर्वत्र काले बन्धस्यात्यन्तोच्छेदः कस्यापि पुंसो नास्ति** विज्ञानभिक्षु भाष्य में भी ऐसा ही स्वीकार किया गया 'सभी कालों में सभी सृष्टियों में बंधन का पूरी तरह से विनाश किसी भी पुरुष का नहीं होता' **वर्तमानकालवदित्यनुमानं सम्भवेदित्यर्थः''** वर्तमान काल के समान ही सभी कालों में समझना चाहिए **(विज्ञानभिक्षुभाष्यम्)।। १५९ ।।**

पुरुषस्यात्यन्तबन्धोच्छेदाभावे यद्वा परममोक्षाभावे हेतुरुच्यते-पुरुष के अत्यंत बन्ध के विनाश के अभाव अर्थात सदा के लिए उसके बंधन का विनाश हो जाए अथवा अनन्त काल के लिए उसका मोक्ष कभी नहीं होगा, इसमें कारण बताते हैं-

पुरुषस्यात्यन्तबन्धोच्छेदाभावे यद्वा परममोक्षाभावे हेतुरुच्यतेव्यावृत्तोभयरूपः ।। १६० ।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा न तो स्वभाव से बंधन में और न मुक्ति में रहता है, अपितु स्वभाव से इन दोनों से पृथक रहता है।

भाष्य विस्तार = **यतः** क्योंकि **पुरुषः** जीवात्मा **खलूभयरूपाभ्यां** इन दोनों रूपों से **मुक्तत्वबद्धत्वाभ्यां व्यावृत्तः पृथग्भूतोऽस्ति** स्वभाव से न बद्ध है और न ही स्वभाव से मुक्त है, किसी कारण से बंधन में आता है

भवति ''परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्'' (मुण्ड ०३.२.८) तस्य परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्यानेन शारीरेण पुरुषेण सह तुलनया किं स्वरूपमिति प्रसंगतः सूत्रत्रयेण वर्ण्यते –

साक्षात् सम्बन्धात् साक्षित्वम्।

नित्यमुक्तत्वम्।

औदासीन्यं चेति ।। १६१ –१६३।।

किसी कारण से मुक्ति में। जीवात्मा के दो रुप है एक है बंधत्व का दूसरा मुक्ति (कभी बंधन में आता है तो कभी मुक्ति में चला जाता है), **अविवेकाद् बद्धो भवति विवेकात् खलु मुक्तो भवति** अविवेक के कारण बंधन में आता है और विवेक के कारण मुक्ति में जाता है **वक्ष्यति ह्यग्रे ''नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते''** ''बंधन और मुक्ति दोनों स्वभाव से नहीं है, अविवेक के बिना बंधन नहीं होता और विवेक के बिना मुक्ति नहीं होती'' **(सांख्य ०३.७१) अतस्तस्य न परममोक्षः** इसलिए पुरुष का सदा के लिए मोक्ष नहीं होता **तस्मादेव सर्वेषां पुरुषाणां क्रमेण मुक्तत्वात् संसारोच्छेदो न भवति** इसलिए सभी पुरुषों के क्रम से मुक्त हो जाने पर संसार समाप्त हो जाए, ऐसा नहीं हो सकता **स एष सिद्धान्तः सांख्ये सूत्रद्वयवर्णितो दयानन्दर्षिणाऽभिमतोऽस्ति** सांख्य के इन दो सूत्रों में बताया गया ये सिद्धान्त ऋषि दयानन्द जी ने भी स्वीकार किया है ।। १६० ।।

अथ य खलु पुरुषविशेष ईश्वरः ''क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'' (योग ० १.२४) यस्य विषये श्रुतावुच्यते ''जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि'' (छान्दो ०६. ३.२) ''य आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम्'' (बृह ०३.७.२२) तथा यं परं पुरुषमेष शारीरः प्राप्य मुक्तो भवति ''परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्'' ये जो पुरुष विशेष ईश्वर है सब जीवात्माओं से भिन्न प्रकार का, जिसके विषय में कहा गया है कि जीवात्मा के साथ रहता हुआ वह जगत के नाम और रूप की रचना करता है,जो आत्मा में रहता हुआ आत्मा से अलग है और आत्मा जिसका शरीर=निवास स्थान है तथा जिस परम पुरुष को प्राप्त होके ये शरीर धारी जीवात्मा मुक्त हो जाता है, जिस ईश्वर के विषय में इतनी उच्च स्तर की चर्चा है अव उस ईश्वर के विषय में कहते हैं **(मुण्ड ०३.२.८) तस्य परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्यानेन शारीरेण पुरुषेण सह तुलनया किं स्वरूपमिति प्रसंगतः सूत्रत्रयेण वर्ण्यते** उस परम पुरुष पुरुष विशेष ईश्वर का इस शरीर धारी पुरुष=जीवात्मा के साथ तुलना करके उस ईश्वर का क्या स्वरूप है ? इस बात को प्रसंग से तीन सूत्रों से बताया जाता है –

साक्षात् सम्बन्धात् साक्षित्वम् ।

सूत्रार्थ= ब्रह्म का जीव के साथ साक्षात संबंध होने से वह जीव के कर्म का साक्षी है

नित्यमुक्तत्वम् ।

सूत्रार्थ= ईश्वर नित्य मुक्त है

औदासीन्यं चेति ।। १६१-१६३।।

इमानि त्रीणि सूत्राण्येकत्रार्थाप्यन्ते -

(साक्षात् सम्बन्धात् साक्षित्वम्) शारीरे पुरुष जीवात्मनि साक्षात्सम्बन्धादन्तर्या- मित्वसम्बन्धात् तस्य परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य साक्षित्वमन्तर्यामित्वमस्ति तत्कृतसर्वव्यापारस्य द्रष्टृत्वं ज्ञातृत्वं तस्मै भोगापवर्गौ प्रदातुं नियन्तृत्वमास्ति । उक्तं यथा श्रुतौ तस्य साक्षित्वम् ''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।'' (ऋ० १ .१६४.२०) 'अभिचाकशीति' श्रुत्या तस्य साक्षित्वं स्पष्टं दर्शितम् ।

पुनश्च (नित्यमुक्तत्वम्) शारीरः पुरुषस्तु कदाचिद् बद्धो भवत्यविवेकात् कदाचि%च मुक्तो भवति विवेकात् स न नित्यबद्धो न नित्यमुक्तः विवेकाविवेकनिमित्ते तस्य मुक्तत्वबद्धत्वे पर्यावर्तेते परन्तु परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य नित्यमुक्तत्वं सदामुक्तत्वमस्ति स तु सदैव मुक्तः।

अथ च (औदासीन्यं च-इति) तस्य शारीरस्य पुरुषस्य जीवात्मनोऽन्तरे स्थितस्य सतोऽपीश्वरस्य

सूत्रार्थ= और प्राकृतिक सुख- दु:ख के प्रति उदासीन है ।

इमानि त्रीणि सूत्राण्येकत्रार्थाप्यन्ते - इन तीनों सूत्रों की एक साथ व्याख्या की जाती है

भाष्य विस्तार = शारीरे पुरुष जीवात्मनि साक्षात्सम्बन्धादन्तर्यामित्वसम्बन्धात् तस्य परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य साक्षित्वमन्तर्यामित्वमस्ति जो शरीर धारी पुरुष जीवात्मा है उसको शारीर पुरुष कहते हैं, उस शरीर में ईश्वर का जीवात्मा के साथ साक्षात संबंध है, उस परमपुरुष पुरुष विशेष ईश्वर के साथ अंतर्यामी संबंध है **तत्कृतसर्वव्यापारस्य द्रष्टृत्वं ज्ञातृत्वं तस्मै भोगापवर्गौ प्रदातुं नियन्तृत्वमास्ति** उस जीवात्मा के द्वारा की गयी सारी क्रियाओं को देखता और जानता रहता है, जीवात्मा को भोग और अपवर्ग देने में उस ईश्वर का नियंत्रण हैं । **उक्तं यथा श्रुतौ तस्य साक्षित्वम्** जैसे कि श्रुति में वेदवचन में ईश्वर को साक्षी कहा ही है ''**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते** दो सुंदर पंखों वाले पक्षी हैं मित्र के समान दोनों एक वृक्ष पर रहते हैं। **तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति** उन दोनों में से एक अपने कर्मों के फलों को भोगता है, और जो दूसरा है=ईश्वर, वह खाता नहीं, बल्कि देखता रहता है ।।'' **(ऋ ०१. १६४.२०) 'अभिचाकशीति' श्रुत्या तस्य साक्षित्वं स्पष्टं दर्शितम्** श्रुति में जो अभिचाकशीति शब्द है उससे ईश्वर का साक्षी होना दर्शाया जा रहा है ।

पुनश्च (नित्यमुक्तत्वम्) शारीरः पुरुषस्तु कदाचिद् बद्धो भवत्यविवेकात् कदाचिच्च मुक्तो भवति विवेकात् जो शरीर धारी पुरुष है जीवात्मा। कभी तो वह अविवेक के कारण बंधन में आ जाता है और कभी वह मुक्त हो जाता है विवेक के कारण **स न नित्यबद्धो न नित्यमुक्तः** वह जीवात्मा न तो नित्य बद्ध है और न ही नित्य मुक्त है **विवेकाविवेकनिमित्ते तस्य मुक्तत्वबद्धत्वे पर्यावर्तेते** विवेक और अविवेक के कारण से उस जीवात्मा का मुक्ति और बंधन बारी बारी से आते रहते हैं **परन्तु परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य नित्यमुक्तत्वं सदामुक्तत्वमस्ति स तु सदैव मुक्तः** परंतु जो परम पुरुष है पुरुष विशेष ईश्वर है उसका तो सदा ही नित्य मुक्तत्व है अर्थात वह सदा ही मुक्त रहता है ।

तत्कर्मफलभोगं प्रति सम्पर्कराहित्यमकामत्वमपि विद्यते। उक्तं तथैव श्रुतौ ''अकामो धीरः'' (अथर्व ० १०.८.४४) ''न लिप्यते लोकदुःखेन'' (कठो ०२.२.१) इति शब्दः शारीरपुरुषेण सह तुलनासमाप्तिसूचकः ।। १६१ -१६३।।

अथेदानीं तथाभूतस्य परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य प्रकृत्याख्येन प्रधानेन सह सम्बन्धः प्रदर्श्यते -

उपरागात् कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् चित्सान्निध्यात् ।। १६४।।

(उपरागात्) प्रकृतेरुपाश्रयात् तस्यास्तदधीने वर्तमानत्वात् पुरुषविशेषस्येश्व- रस्य (कर्तृत्वं) सृष्टिकर्तृत्वं भवति। यथोक्तम् ''एकं रूपं बहुधा यः करोति'' (श्वेता ०६.१२) तथा च (चित्सान्निध्यात्) चितश्चेतनस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य सन्निधानसम्बन्धात् संसर्गात् समावेशसम्बन्धाद् भवति कर्तृत्वं प्रधानस्य प्रकृत्याख्यस्या-व्यक्तस्येत्युत्तरसूत्रेणाग्रिमाध्यायस्थेन सहाभिसम्बध्यते ततः सूत्रात् 'प्रधानस्य' पदं

अथ च (औदासीन्यं च-इति) तस्य उस **शारीरस्य** शरीरधारी **पुरुषस्य** पुरुष के **जीवात्मनोऽन्तरे स्थितस्य** जीवात्मा के अंदर स्थित **सतोऽपीश्वरस्य तत्कर्मफलभोगं** जीव के कर्म के फल को भोगने के **प्रति** प्रति **सम्पर्कराहित्यमकामत्वमपि विद्यते** उसकी संपर्क रहितता है, उसमें कोई कामना नहीं है। **उक्तं तथैव श्रुतौ ''अकामो धीरः''** ऐसे ही बात श्रुति में काही गयी है 'वह अकाम है' उसका अपने लिए कोई काम नहीं **(अथर्व ० १०.८.४४) ''न लिप्यते लोकदुःखेन''** ब्रह्म लौकिक दुःख से लिप्त नहीं होता **(कठो ०२. २.११) इति शब्दः शारीरपुरुषेण सह तुलनासमाप्तिसूचकः** इति शब्द जीव और ब्रह्म कि तुलना सूचक प्रकरण कि समाप्ती बता रहा है **।। १६१ - १६३।।**

अथेदानीं तथाभूतस्य परमपुरुषस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य प्रकृत्याख्येन प्रधानेन सह सम्बन्धः प्रदर्श्यते - अब जीव और ब्रह्म की तुलना के पश्चात जैसा ईश्वर बताया था कि वह जीव के कर्मों का साक्षी है, सदा मुक्त है आदि-आदि उस परम पुरुष पुरुष विशेष ईश्वर का प्रकृति नामक प्रधान के साथ अब संबंध दिखलाते हैं-

उपरागात् कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् चित्सान्निध्यात् ।। १६४।।

सूत्रार्थ= प्रकृति की समीपता से ईश्वर में सृष्टि का कर्तापन है, और चेतन परमात्मा की सन्निधि से प्रकृति में भी गौड़ रूप से सृष्टि कर्तित्व है।

भाष्य विस्तार = प्रकृतेरुपाश्रयात् तस्यास्तदधीने वर्तमानत्वात् पुरुषविशेषस्येश्वरस्य सृष्टिकर्तृत्वं भवति प्रकृति के आश्रय से अर्थात प्रकृति परमात्मा के वर्तमान अधीन होने से पुरुष विशेष ईश्वर का सृष्टि कर्तृत्व है। **यथोक्तम् ''एकं रूपं बहुधा यः करोति''** जैसा कि शास्त्र में बताया ही है एक रूप प्रकृति को जो बहुत रूप करता है **तथा च चितश्चेतनस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य सन्निधानसम्बन्धात् संसर्गात् समावेशसम्बन्धाद् भवति कर्तृत्वं प्रधानस्य प्रकृत्याख्यस्याव्यक्तस्येत्युत्तरसूत्रेणाग्रिमाध्यायस्थेन सहाभिसम्बध्यते** और चेतन पुरुष विशेष ईश्वर का निकट के संबंध से पास में होने से संसर्ग से समावेश संबंध होने से आसपास व्याप्त होने से कर्तित्त्व है। यहाँ गौड़ कथन है - प्रकृति जगत को बनाती है चेतन की सन्निधि

पुरस्तादुत्कृष्यते। प्रकृतेः कर्तृत्वमपि श्रुतौ वर्ण्यते ''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः'' (श्वेता ०४.५) 'चित्सान्निध्यात्' इति द्विरुक्तिरध्याय- समाप्तिसूचिका ।। १६४।।

समाप्तः सांख्यदर्शने प्रथमोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्योपेतः ।

से, स्वयं नहीं। **ततः सूत्रात् 'प्रधानस्य' पदं पुरस्तादुत्कृष्यते** पहले अध्याय के पहले सूत्र से 'प्रधानस्य' शब्द का उत्कर्ष कर लेते हैं। **प्रकृतेः कर्तृत्वमपि श्रुतौ वर्ण्यते** प्रकृति जगत को बनाती है रचती है ऐसा श्रुति में भी वर्णन आया है ''**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः**'' जो जन्म नहीं लेती जो काले सफ़ेद और लाल रंग वाली प्रकृति है अपने जैसी प्रजा को सृजन करती है'' **(श्वेता ०४.५) 'चित्सान्निध्यात्' इति द्विरुक्तिरध्याय- समाप्तिसूचिका** इस सूत्र में 'चित्सान्निध्यात्' ये शब्द दो बार आया है जो दूसरी बार कथन हुआ वह अध्याय की समाप्ती की सूचना के लिए है ।। १६४।।

समाप्तः सांख्यदर्शने प्रथमोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्योपेतः ।

।।ओ३म्।।

सांख्यदर्शनम्

ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्

तत्र

द्वितीयोऽध्यायः

भाष्य विस्तार - पूज्य स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक

(निदेशक- दर्शन योग महाविद्यालय)

-

द्वितीयोऽध्यायः

विमुक्तमोक्षार्थं स्वार्थं वा प्रधानस्य ।। १ ।।

(प्रधानस्य) पूर्वाध्यायस्यान्तिमसूत्रात् कर्तृत्वमनुवर्तते। प्रधानस्य प्रकृत्याख्यस्याव्यक्तस्य कर्तृत्वं खलु (विमुक्तमोक्षार्थम्) विमुक्तशब्दोऽत्र विरक्तार्थः, यद्वा सूत्रपाठो विरक्त एव स्यादुत्तरसूत्रे विरक्तशब्दमादाय विचारप्रसंगात् तथा विरक्तव्यवहारप्रदर्शनात् - ''विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् (सांख्य०४.२३) विरक्तस्य मोक्षार्थं प्रधानस्य कर्तृत्वं यतः प्रधानाद् विरक्तस्य हि मोक्षो भवति, विवेकज्ञानेन प्रधानस्य दोषान् निरीक्ष्य प्रवर्तते मोक्षे (वा) समुच्चयार्थे, अथ च (स्वार्थम्) अविमुक्तमविरक्तं स्वीकर्तुं स्वम्प्रत्याकर्षितुं भोगायेति कर्तृत्वम्। प्रकृतेः परार्थत्वात् ततो मोक्षो भोगश्चोभौ पुरुषस्य सिध्यतः, तथा चात्रोच्यते ''ततः प्रकृतेः-संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य'' (सांख्य ०१.६५,६६)

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

विमुक्तमोक्षार्थं स्वार्थं वा प्रधानस्य ।।१ ।।

सूत्रार्थ= प्रकृति का कर्तृत्व विरक्त आत्मा को मोक्ष देने और अविरक्त आत्मा को भोग प्रदान करने के लिए है।

[**(प्रधानस्य) पूर्वाध्यायस्यान्तिमसूत्रात् कर्तृत्वमनुवर्तते**] पूर्वाध्याय के अंतिम सूत्र से कर्तृत्व शब्द की अनुवृत्ति आती है। [**प्रधानस्य प्रकृत्याख्यस्याव्यक्तस्य कर्तृत्वं खलु**] प्रधान का अर्थात प्रकृति (सत्व रज तम) नामक अव्यक्त पदार्थ का कर्तृत्व है, वो सृष्टि को बनाने वाली है (किसलिए बना रही है क्यों बना रही है वह प्रयोजन है) [**(विमुक्तमोक्षार्थम्) विमुक्तशब्दोऽत्र विरक्तार्थः**] भाष्यकार कहते हैं यहाँ जो विमुक्त शब्द है वह विरक्त अर्थ में है, शब्द तो है विमुक्त किन्तु वह विरक्त अर्थ में है जिनको वैराग्य प्राप्त हो गया है (स्वामी दयानन्द हैं कपिल हैं जैमिनी हैं, उनको वैराग्य प्राप्त हो गया, ऐसे लोगों के लिए जो वैराग्य को प्राप्त हो चुके हैं उनको मोक्ष देने के लिए यह प्रकृति का कर्तृत्व है) **(यद्वा सूत्रपाठो विरक्त एव)** यहाँ हो सकता है सूत्र पाठ में विरक्त शब्द हो **(स्यादुत्तरसूत्रे विरक्तशब्दमादाय विचारप्रसंगात्)** अगले सूत्र में विरक्त शब्द को लेकर विचार किया गया है **(तथा विरक्तव्यवहारिंप्रदर्शनात्)** विरक्त व्यक्ति का व्यवहार दिखाने के लिए - **(''विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत्) (सांख्य० ४.२३)** विरक्त व्यक्ति का इतना सामर्थ्य होता है की वह छोड़ने योग्य वस्तु को छोड़ देता है गृहण करने योग्य वस्तु को ग्रहण कर लेता है, हंस के समान [**विरक्तस्य मोक्षार्थं प्रधानस्य कर्तृत्वं**] विरक्त को मोक्ष देने के लिए प्रधान का कर्तृत्व है **(यतः प्रधानाद् विरक्तस्य हि मोक्षो भवति,)** क्योंकि जो विरक्त व्यक्ति है उसका प्रधान से मोक्ष हो जाता है **(विवेकज्ञानेन प्रधानस्य दोषान् निरीक्ष्य प्रवर्तते मोक्षे)** वह विवेक ज्ञान के द्वारा तत्व ज्ञान के द्वारा प्रधान के दोषों का निरीक्षण करके मोक्ष की ओर प्रवृत्त हो जाता है [**(वा) समुच्चयार्थे, सूत्र में जो वा शब्द है वह समुच्य अर्थ में हैं अथ च (स्वार्थम्) अविमुक्तमविरक्तं स्वीकर्तुं स्वम्प्रत्याकर्षितुं भोगायेति कर्तृत्वम्**] और जो अविमुक्त है अविरक्त है अविद्या में ग्रस्त है उसको अपनी ओर खींचने के लिए जगत बनाया और जो विरक्त है उसे मोक्ष देने के लिए बनाया। **(प्रकृतेः परार्थत्वात् ततो मोक्षो भोगश्चोभौ**

प्रकृतिः संहता त्रिगुणत्वात् सा च परार्था पुरुषार्था, पुरुषस्यार्थौ भोगापवर्गौ तयोर्भोगापवर्गयोः साधनाय हि प्रकृतिः, उक्तं च "प्रकाशक्रियास्थितिशीलं...भोगापवर्गार्थं दृश्यम्" (योग ०२.१८) ।। १ ।।

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

विरक्तस्य तत्सिद्धेः ।। २ ।।

(विरक्तस्य तत्सिद्धेः) विरक्तस्य मोक्षसिद्धेः, यो हि विरक्तस्तस्य मोक्षस्तु स्वतः सेत्स्यति कथमुच्यते विरक्तस्य मोक्षार्थं प्रधानस्य कर्तृत्वम् । भवतु खल्वविरक्तस्य भोगार्थं प्रधानस्य कर्तृत्वं न तु विरक्तस्य मोक्षार्थम् ।। २ ।।

समाधत्ते -

न श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिरनादिवासनाया बलवत्त्वात् ।। ३ ।।

(श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिः-न) प्रकृतेर्दोषश्रवणमात्रादेव मोक्षसिद्धिर्विरक्तत्वसिद्धिर्न भवति।

पुरुषस्य सिध्यतः,) प्रकृति के परार्थ होने से पुरुष के भोग और मोक्ष ये दोनों कार्य सिद्ध होते हैं **(तथा चात्रोच्यते "ततः प्रकृतेः-संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य")** उस प्रकृति से-महतत्व से प्रकृति का अनुमान होता है और प्रकृति से पुरुष का (संहत के परार्थ होने से पुरुष का अनुमान होता है) **[(सांख्य० १.६५,६६) प्रकृतिः संहता त्रिगुणत्वात]** प्रकृति संहात है तीन गुणों वाली होने से **(सा च परार्था पुरुषार्था,)** वह पर के लिए है दूसरे के लिए है पुरुष के लिए है **(पुरुषस्यार्थौ भोगापवर्गौ)** पुरुष के दो प्रयोजन हैं भोग और अपवर्ग **(तयोर्भोगापवर्गयः साधनाय हि प्रकृतिः)** जीव के दोनों प्रयोजनों भोग और अपवर्ग को सिद्ध करने के लिए प्रकृति है, **(उक्तं च "प्रकाशक्रियास्थितिशीलं... भोगापवर्गार्थं दृश्यम्" (योग० २.१८))** योगदर्शन में कहा ही है- प्रकाश क्रिया और स्थिति यह सत्व-रज-तम के स्वभाव हैं, तथा भोग और अपवर्ग के लिए यह जगत है।।१ ।।

पूर्वपक्षी का आक्षेप है -

विरक्तस्य तत्सिद्धेः ।।२ ।।

सूत्रार्थ = जो विरक्त व्यक्ति है उसका तो मोक्ष हो ही जाएगा

[(विरक्तस्य तत्सिद्धेः) विरक्तस्य मोक्षसिद्धेः] विरक्त व्यक्ति का मोक्ष सिद्ध है, **यो हि विरक्तस्तस्य मोक्षस्तु स्वतः सेत्स्यति कथमुच्यते विरक्तस्य मोक्षार्थं प्रधानस्य कर्तृत्वम्** जो विरक्त व्यक्ति है उसको मोक्ष तो अपने आप ही हो जाएगा, फिर ऐसा क्यों कहा कि प्रकृति ने मोक्ष देने के लिए जगत बनाया। **[भवतु खल्वविरक्तस्य भोगार्थं प्रधानस्य कर्तृत्वं न तु विरक्तस्य मोक्षार्थम्]** आपकी दो मैं से एक बात स्वीकार कर सकते हैं कि प्रकृति ने जगत की रचना अविद्वान को अपनी ओर खींचने के लिए की लेकिन विरक्त को मोक्ष देने के लिए प्रकृति का कोई कर्तृत्व नहीं है।।२ ।।

यतः (अनादिवासनायाः-बलवत्त्वात्) भोगविषयिकाया अनादिवासनायाः प्रबलत्वात् । यावता तद्भोगदोषाः साक्षादनुभूता न स्युर्यद्वा मननिदिध्यासने न भवेतां तावदनादिवासनानिवृत्तिर्न भवति, तन्निवृत्तिमन्तरेण कुतो विरक्तत्वं मोक्षो वा सम्भवेत्, तदेतत्कृत्यं विवेकतः प्रधानमवगाह्य हि भवितुमर्हति तस्माद् विरक्तस्य मोक्षार्थमपि प्रधानस्य कर्तृत्वम् ।। ३ ।।

तथा च प्रकृतेरेतत्कृत्यम् -

बहुभृत्यवद्वा प्रत्येकम् ।। ४ ।।

(बहुभृत्यवत्-वा प्रत्येकम्) वाकारः समुच्चयार्थः। बहुभृत्यवच्चप्रधानस्य कर्तृत्वं प्रत्येकं विरक्तमविरक्तमभिसम्बध्नाति। यथा कश्चिद् बहुभृत्यवान् स्वामी भवति स सेवायां प्रवृत्तान् कांश्चिद् वेतनेन बिभर्ति कांश्चिच्च समाप्तसेवाकालान् कृतार्थान् सेवाकार्याद् विरक्तानपि पुरस्कारेण सत्करोति, सेवाकार्याद्

सिद्धांती समाधान करता है

न श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिरनादिवासनाया बलवत्त्वात् ।।३।।

सूत्रार्थ =केवल उपदेश सुन लेने मात्र से विरक्त की सिद्धि नहीं होती, अनादि काल से चले आ रहे संस्कारों के बलवान होने से।

[(श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिः-न) प्रकृतेर्दोषश्रवणमात्रादेव मोक्षसिद्धिर्विरक्तत्वसिद्धिर्न भवति] प्रकृति के दोष सुनने मात्र से मोक्ष की सिद्धि विरक्त अथवा वैराग्य की प्राप्ति संभव नहीं है। **यतः** क्योंकि **[(अनादिवासनायाः-बलवत्त्वात्) भोगविषयिकाया अनादिवासनायाः प्रबलत्वात्]** भोग के संबंध में जो अनादिकाल से वासनाएं व भोग के संस्कार चले आ रहे हैं वह बहुत प्रबल हैं। **[यावता तद्भोगदोषाः साक्षादनुभूता न स्युर्यद्वा मननिदिध्यासने न भवेतां तावदनादिवासनानिवृत्तिर्न भवति]** जब तक प्रकृति के भोगों के दोषों को साक्षात् अनुभव न करले तब तक समझ नहीं आता अथवा मनन-निदिध्यासन अच्छी प्रकार न करले तब तक अनादि काल के संस्कारों वासनाओं से निवृत्ति नहीं होती, **(तन्निवृत्तिमन्तरेण कुतो विरिंक्तत्वं मोक्षो वा सम्भवेत्)** जब तक अविद्या के अविवेक के वासनाओं के संस्कार नहीं हटेंगे तब तक मोक्ष कैसे संभव है, **(तदेतत्कृत्यं विवेकतः प्रधानमवगाह्य हि भवितुमर्हति तस्माद् विरक्तस्य मोक्षार्थमपि प्रधानस्य कर्तृत्वम्)** यह सम्पूर्ण कार्य विवेक ज्ञान से तत्वज्ञान से प्रकृति की खोज करके प्रकृति का सार जानकार ही हो सकता है इसीलिए जैसा आपने कहा कि विरक्त व्यक्ति को मोक्ष देने के लिए प्रकृति का कर्तृत्व नहीं है, ऐसा नहीं है।।३।।

प्रकृति का जो यह कार्य है वह कैसा है?

बहुभृत्यवद्वा प्रत्येकम् ।।४।।

सूत्रार्थ= बहुत से सेवकों वाली सरकार के समान प्रकृति का प्रत्येक विरक्त व अविरक्त के प्रति भोग और मोक्ष प्रदान करने का कर्तृत्व है।

विरक्ताविरक्तौ प्रति तस्य पुरस्कारवेतनप्रदानाभ्यां सत्करणभरणकर्तृत्वं भवति तथैव विरक्ताविरक्तौ प्रति प्रधानस्य मोक्षभोगप्रदानाभ्यां कर्तृत्वमस्ति। तस्माद् विरक्तस्य मोक्षार्थमपि प्रधानस्य कर्तृत्वं नायुक्तम् ।।४।।

अत्र पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्याध्याससिद्धिः ।।५।।

(प्रकृतिवास्तवे च) विरक्तस्य मोक्षार्थमविरक्तस्य भोगार्थं कर्तृत्वं प्रकृतेश्चेदेवं तु प्रकृतेः कर्तृत्वं वास्तविकं स्यात् पुनः प्रकृतेर्वास्तविके कर्तृत्वे सति तु (पुरुषस्य-अध्याससिद्धिः) प्रकृतस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य कर्तृत्वाध्याससिद्धिः स्यात् तस्य कर्तृत्वमारोपमात्रमेव भवेत् ।।५।।

समाधत्ते -

कार्यतस्तत्सिद्धिः * ।।६।।

[(बहुभृत्यवत्-वा प्रत्येकम्) वाकारिंः समुच्चयार्थः] सूत्र में जो वा है वह समुच्चय अर्थ में है। **(बहुभृत्यवच्चप्रधानस्य कर्तृत्वं प्रत्येकं विरक्तमविरक्तमभिसम्बध्नाति)** बहुत सारे नौकरों वाली सरकार के समान, प्रधान का जो कर्तृत्व है वह प्रत्येक के प्रति चाहे वह विरक्त हो या अविरक्त। **[यथा कश्चिद् बहुभृत्यवान् स्वामी भवति स सेवायां प्रवृत्तान् कांश्चिद् वेतनेन बिभर्ति कांश्चिच्च समाप्तसेवाकालान् कृतार्थान् सेवाकार्याद् विरक्तानपि पुरस्कारेण सत्करोति]** जैसे कोई बहुत सारे नौकर रखता हो और वह उनका मालिक हो उन नौकरों में जो नौकरी कर रहे हैं उनको वेतन देकर उनका भरण पोषण कर रहा होता है और जिनका सेवा काल समाप्त हो गया है उनको धन देकर पुरस्कृत करता है (पेंशन देता है), **[सेवाकार्याद् विरक्ताविरक्तौ प्रति तस्य पुरिंस्कारवेतनप्रदानाभ्यां सत्करणभरणकर्तृत्वं भवति तथैव वरक्ताविरक्तौ प्रति प्रधानस्य मोक्षभोगप्रदानाभ्यां कर्तृत्वमस्ति]** जैसे उस सेठ का मालिक का दोनों के प्रति कर्तृत्व है सेवा करने वालों को वेतन देना और जिनका सेवाकाल समाप्त हो गया है उनको पुरस्कृत करना सम्मान करना वैसे ही जिसको थोड़ा वैराग्य हो गया शाब्दिक ज्ञान हो गया उसको भी प्रकृति भोग देती है और जो अविरक्त है वह तो भोग भोग ही रहा है। **[तस्माद् विरक्तस्य मोक्षार्थमपि प्रधानस्य कर्तृत्वं नायुक्तम्]** इसलिए प्रकृति के विषय में यहां कहा जाए कि वह विरक्त को सुख भोग दे रही है तो कोई गलत बात नहीं है।।४।।

अब पूर्वपक्षी कहता है-

प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्याध्याससिद्धिः।।५।।

सूत्रार्थ= प्रकृति का कर्तृत्व वास्तविक मानने पर ईश्वर का कर्तृत्व कथन मात्र रह जाएगा।

[(प्रकृतिवास्तवे च) विरक्तस्य मोक्षार्थमविरिंक्तस्य भोगार्थं कर्तृत्वं प्रकृतेश्चेदेवं तु प्रकृतेः कर्तृत्वं वास्तविकं स्यात्] विरक्त को मोक्ष अविरक्त को भोग दे रही है जब दोनों को ही प्रकृति दे रही है तो इस प्रकार से तो प्रकृति का ही वास्तविक कर्तृत्व हुआ फिर ईश्वर का क्या कार्य है **[पुनः प्रकृतेर्वास्तविके**

(कार्यतः-तत्सिद्धिः) कार्यनिर्माणतो यत्प्रकृतिं जगद्रूपे कार्ये परिणमयतीति तस्मात् तस्य पुरुषस्य कर्तृत्वसिद्धिः। अतो नाध्यासमात्रं पुरुषस्य कर्तृत्वम्। उक्तं ह्यत्र ''स हि सर्ववित् सर्वकर्ता'' (सांख्य०३.५६) ।। ६।।

प्रकृतेः कर्तृत्वे तु -

चेतनोद्देशान्नियमः कण्टकमोक्षवत् ।।७।।

(चेतनोद्देशात्-नियमः) विरक्तस्य मोक्षार्थेऽविरक्तस्य भोगार्थे प्रकृतेः कर्तृत्वे चेतनोद्देशात् पुरुषविशेषस्येश्वरस्य प्रेरणात् खलु नियमोऽस्ति तत्रापि प्रकृतेर्न स्वतन्त्रं कर्तृत्वमस्ति तस्या जडत्वाद् पारवश्याच्च परवशा प्रकृतिरत्र सांख्ये स्वीकृता हि ''अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात्'' (सांख्य०३.५५) यस्य वशे प्रकृतिः सोऽपि तत्रोक्तः ''स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता'' (सांख्य०३.५६) (कण्टकमोक्षवत्) यथा कण्टकाद्-दण्डशूलात् कश्चिन्मोच्यते कश्चिन्नेति राजप्रेरणं तत्र नियमः ।।७।।

कर्तृत्वे सति तु] ऐसी स्थिति में तो प्रकृति का ही वास्तव में कर्तृत्व हुआ [**(पुरुषस्य-अध्याससिद्धिः) प्रकृतस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य कर्तृत्वाध्याससिद्धिः स्यात् तस्य कर्तृत्वमारोपमात्रमेव भवेत्]** ईश्वर मोक्ष देता है यह तो गौण कथन हुआ, फिर तो प्रकृति मुख्य हो जाएगी और ईश्वर गौंण हो जाएगा।।५।।

सिद्धांती समाधान करते हैं-

कार्यतस्तत्सिद्धिः* ।।६।।

सूत्रार्थ= जगतरूप कार्य को बनाने से ईश्वर के वास्तविक कर्तृत्व की सिद्धि होती है, ईश्वर का कर्तृत्व अध्यास या गौण नहीं है।

[**(कार्यतः-तत्सिद्धिः) कार्यनिर्माणतो यत्प्रकृतिं जगद्रूपे कार्ये परिणमयतीति तस्मात् तस्य पुरुषस्य कर्तृत्वसिद्धिः]** कार्य निर्माण अर्थात प्रकृति को प्रलय अवस्था से जगतरूप में परिणित करता है इसलिए मुख्य कर्तृत्व तो ईश्वर का ही है। [**अतो नाध्यासमात्रं पुरुषस्य कर्तृत्वम्]** अतः प्रकृति से बद्ध को भोग दिलाने व मुक्त को मोक्ष दिलाने में ईश्वर का ही मुख्य कर्तृत्व है। [**उक्तं ह्यत्र ''स हि सर्ववित् सर्वकर्ता'' (सांख्य०३.५६) क्योंकि सांख्य में ही कहा है-** वह ही सारे कार्य करने वाला है।।६।।

चेतनोद्देशान्नियमः कण्टकमोक्षवत्।।७।।

सूत्रार्थ= चेतन ईश्वर की प्रेरणा से प्रकृति के द्वारा किसी विरक्त को मोक्ष देने का और अविरक्त को भोग देने का नियम है, जैसे=राजा के आदेश से किसी अपराधी को फांसी देने और किसी निर्दोष को छोड़ देने का नियम है।

[**(चेतनाद्धेशात्-नियमः) विरक्तस्य मोक्षार्थेऽविरक्तस्य भोगार्थे प्रकृतेः कर्तृत्वे चेतनोद्देशात् पुरुषविशेषस्येश्वरस्य प्रेरणात् खलु नियमोऽस्ति]** विरक्त को मोक्ष देने के लिए और अविरक्त को भोग देने के लिए प्रकृति का कर्तृत्व स्वीकार कर लेने पर चेतन (पुरुष) के कहने पर, ईश्वर की प्रेरणा से यह नियम

अन्यच्च -

अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धिर्नाञ्जस्येनायोदाहवत् ।।८।।

(अन्ययोगे-अपि तत्सिद्धिः) चेतनात् पुरुषादन्यत्प्रधानं प्रकृत्याख्यमव्यक्तम्। पूर्वोक्ते प्रधानस्य कर्तृत्वयोगेऽपि तत्सिद्धिस्तस्य पुरुषस्य कर्तृत्वसिद्धिर्भवति।(न-आञ्जस्येन) यतो नान्यस्याव्यक्तस्याञ्जस्येन स्वतः कर्तृत्वं पुरुषमन्तरेण सिध्यति (अयोदाहवत्) यथाऽयसो लोहस्य दाहो न स्वतः किन्तु दाहस्वरूपस्य प्रकाशस्वरूपस्याग्नेः संसर्गाद्भवति तथैवात्रापि पुरुषविशेषसंसर्गाद् विरक्तमोक्षार्थमविरक्तभोगार्थं कर्तृत्वं प्रधानस्य भवति। उक्तं हि पूर्वम् ''कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् प्रधानस्य'' (सांख्य- १.१६४,२.१) ।।८।।

यद्विषये पुरुषविशेस्येश्वरस्य प्रधानस्य च कर्तृत्वमुक्तं सा पुनः सृष्टिः कीदृशीत्युच्यते -

रागविरागयोर्योगः सृष्टिः ।।९।।

है [**तत्रापि प्रकृतेर्न स्वतन्त्रं कर्तृत्वमस्ति**] इस सम्पूर्ण व्यवस्था में प्रकृति स्वतंत्र कर्ता नहीं है [**तस्या जडत्वाद्**] क्योंकि वह जड़ है [**पारवश्याच्च परवशा प्रकृतिरत्र सांख्ये स्वीकृता हि**] पराधीन है परवश है ईश्वर के वश में रहकर वह किसी को भोग दे रही है और किसी को मोक्ष, सांख्य दर्शन में इस बात को स्वीकार किया है कि वह परवश है [**''अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात्''(सांख्य०३.५५)**] मूल प्रकृति कार्य नहीं है कारण है फिर भी वह जगत निर्माण में ईश्वर के द्वारा संलग्न हो जाती है [**यस्य वशे प्रकृतिः सोऽपि तत्रोक्तः**] जिसके अधीन प्रकृति है उसका नाम है [**''स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता''(सांख्य०३.५६)**] वह सर्वशक्तिमान सर्व कर्ता ईश्वर है [**(कण्टकमोक्षवत्) यथा कण्टकाद्-दण्डशूलात् कश्चिन्मोच्यते कश्चिन्नेति राजप्रेरिणं तत्र नियमः**] जैसे जल्लाद किसी को फांसी पर लटका देता है किसी को दंड दे देता है किसी को छोड़ देता है यह कार्य जल्लाद करता तो है परंतु राजा के अधीन, उसके आदेश के अनुसार ही करता है।।७।।

अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धिर्नाञ्जस्येनायोदाहवत् ।।८।।

सूत्रार्थ= प्रकृति का कर्तृत्व स्वीकार करने पर भी ईश्वर के कर्तृत्व की सिद्धि हो जाएगी जैसे लोहा अपने आप नहीं मुड़ता अग्नि के सहयोग से होता है, ऐसे ही प्रकृति सारा भोग और मोक्ष नहीं दे पाएगी ईश्वर के सहयोग से ही दे पाएगी।

[**(अन्ययोगे-अपि तत्सिद्धिः) चेतनात् पुरुषादन्यत्प्रधानं प्रकृत्याख्यमव्यक्तम्**] चेतन पुरुष से जो भिन्न है जिसका प्रकृति नाम अव्यक्त है। [**पूर्वोक्ते प्रधानस्य कर्तृत्वयोगेऽपि तत्सिद्धिस्तस्य पुरुषस्य कर्तृत्वसिद्धिर्भवति**] जैसा पहले कहा कि प्रकृति जगत को बना रही है उसका कर्तृत्व सिद्ध होने पर भी, परमात्मा के कर्तृत्व की मुख्य सिद्धि हो जाती है। [**(न-आञ्जस्येन) यतो नान्यस्याव्यक्तस्याञ्जस्येन स्वतः कर्तृत्वं पुरुषमन्तरेण**] क्योंकि जो परमात्मा से भिन्न है प्रकृति है उसका स्वयं कर्तृत्व बिना पुरुष (परमात्मा) के सिद्ध नहीं होगा [**(अयोदाहवत्) यथाऽयसो लोहस्य दाहो न स्वतः किन्तु दाहस्वरूपस्य प्रकाशस्वरूप-स्याग्नेः संसर्गाद्भवति**] जैसे लोहे का मुड़ना जुलना अपने आप नहीं होता किन्तु जो जलाने वाली है नरम

(रागविरागयो:-योग:) रागस्य प्रतिपक्षी विरागस्तस्मादत्र स विरागो द्वेषार्थ:। रागद्वेषयोर्योग:-रागद्वेषयो: प्रवर्तनम्। एकस्मिन् रागस्तर्ह्यन्यस्माद् द्वेष:, एकस्माद् द्वेषस्तदाऽपरस्मिन् राग:। इत्थं रागद्वेषभूमि: (सृष्टि:) सृष्टिरस्तीति पुरुषभावनामपेक्ष्य सृष्टिलक्षणम् ।।९।।

सा च सृष्टि: -

महदादिक्रमेण पञ्चभूतानाम् ।।१०।।

(महदादिक्रमेण) प्रकृतितो महान् महत्तत्त्वं पुनश्च ततोऽहंकार:, अहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि तथा चोभयमिन्द्रियम्। इत्थं क्रमेण पश्चात् (पञ्चभूतानाम्) तन्मात्रेभ्य: पञ्चस्थूलभूतानां पञ्चस्थूलभूतपर्यन्तानां सृष्टिर्भवति ।।१०।।

तत्र च -

आत्मार्थत्वात् सृष्टेर्नैषामात्मार्थ आरम्भ: ।।११।।

(आत्मार्थत्वात् सृष्टे:) महदादिक्रमोऽनुवर्तते । महदादिक्रमेण पञ्चभूतेभ्य: पूर्वा या

करने वाली अग्नि है उसके संसर्ग से जलना मुड़ना होता है [**तथैवात्रापि पुरुषविशेषसंसर्गाद् विरक्तमोक्षार्थमविरक्तभोगार्थं कर्तृत्वं प्रधानस्य भवति**] इसी प्रकार यहाँ पर भी पुरुष विशेष परमात्मा के संसर्ग से विरक्त को मोक्ष देने के लिए तथा अविरक्त को भोग देने के लिए प्रकृति का कर्तृत्व होता है। [**उक्तं हि पूर्वम् ''कर्तृत्वं प्रधानस्य भवति। उक्तं हि पूर्वम् ''कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् प्रधानस्य'' (सांख्य० १.१६४,२.१)**] जैसा पहले ही कहा था प्रधान का कर्तृत्व चेतन के सानिध्य से है।।८।।

जिसके विषय में पुरुष विशेष ईश्वर का मुख्य कर्तृत्व है और प्रकृति का गौण कर्तृत्व है वह सृष्टि कैसी है?

रागविरागयोर्योग: सृष्टि: ।।९।।

सूत्रार्थ= जहां राग-द्वेष की प्रवृति चलती रहती है वही सृष्टि है ।

[**(रागविरागयो:-योग:) रागस्य प्रतिपक्षी विरागस्तस्मादत्र स विरागो द्वेषार्थ:**] राग का प्रतिपक्षी विराग है इसलिए यहाँ पर विराग का अर्थ करेंगे द्वेष। [**रागद्वेषयोर्योग:-रागद्वेषयो: प्रवर्तनम्**] राग और द्वेष जहां पर निरंतर है उसका नाम सृष्टि है। [**एकस्मिन् रागस्तर्ह्यन्यस्माद् द्वेष:**] एक वस्तु में राग है क्योंकि उसमें सुख है एक वस्तु में द्वेष है क्योंकि उसमें दु:ख है, [**एकस्माद् द्वेषस्तदाऽपरस्मिन् राग:**] किसी एक में द्वेष होगा तो दुसरे में राग हो जाएगा। [**इत्थं रागद्वेषभूमि: (सृष्टि:)**] सृष्टि वह भूमि है जहां निरंतर राग द्वेष चलता रहता है **सृष्टिरस्तीति पुरुषभावनामपेक्ष्य सृष्टिलक्षणम्** जीवात्मा की भावना के आधार पर यह सृष्टि का लक्षण किया।।९।।

सा च सृष्टि :- और यह सृष्टि कैसी है?

महदादिक्रमेण पञ्चभूतानाम् ।। १०।।

सृष्टिरुभयेन्द्रियपर्यन्ता तस्याः सृष्टेरात्मार्थत्वमात्मोपकरणसम्पादनार्थत्वं बुद्ध्यहंकारमनोज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियसाधनार्थत्वमस्ति । वक्ष्यति ह्यग्रेऽपि ''पुरुषार्थं करणोद्भवः...'' (सांख्य०२.३६) तथा ''पुरुषार्थं संसृतिर्लिंगानां...'' (सांख्य ०३.१६) तस्मात् तदग्रे (एषाम्-आरम्भः-आत्मार्थः-न) एषां पूर्वसूत्रे साक्षात्पठितानां पञ्चभूतानां विशेषणम् । एषां पञ्चस्थूलभूतानां पृथिव्यादीनां व्यक्तिसमारम्भ आत्मार्थ आत्मोपकरणसम्पादनार्थो न, आत्मोपकरणानि न भौतिकानि वक्ष्यति ह्यग्रे । किन्तु भौतिकवस्तुसम्पादरनार्थः । एवं सृष्टेर्विभागद्वयं प्रदर्शितं तत्रैको भागस्तु खल्विन्द्रियात्मको द्वितीयश्च भौतिकः । तथैव योगदर्शनेऽपि प्रतिपादितं विभागद्वयम् '...भूतेनद्रियात्मकं दृश्यम्'' (योग ०२.१८) अस्य सूत्रस्यानिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चायुक्तोऽर्थः कृतः । तत्र 'महदादीनां सृष्टिः पुरुषमोक्षार्था, न स्वमोक्षार्था प्रकृतेरेव सृष्टिः स्वमोक्षार्था महदादयस्तु प्रकृतौ लीयन्ते तेषामनित्यत्वात् तत्र न स्वार्थमोक्षप्रयोजनं

सूत्रार्थ= महतत्व आदि की उत्पत्ति के क्रम से पाँच महाभूतों तक वस्तुओं का समुदाय सृष्टि **कहलाता है।**

[(महदादिक्रमेण) प्रकृतितो महान् महत्तत्त्वं पुनश्च ततोऽहंकारः, अहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि तथा चोभयमिन्द्रियम्] प्रकृति से महतत्व बना महतत्व से अहंकार, अहंकार से पाँच तन्मात्राएं एसे ही दोनों प्रकार की इंद्रियाँ ।**[इत्थं क्रमेण पश्चात् (पञ्चभूतानाम्) तन्मात्रेभ्यः पञ्चस्थूलभूतानां पञ्चस्थूलभूतपर्यन्तानां सृष्टिर्भवति]** इस क्रम के पश्चात तन्मात्राओं से पाँच स्थूलभूत, पाँच स्थूल भूतों तक यह सृष्टि है।। १०।।

तत्र च -

आत्मार्थत्वात् सृष्टेर्नैषामात्मार्थ आरम्भः ।।११।।

सूत्रार्थ= महतत्व से लेकर इंद्रियों तक कि उत्पत्ति के उपकरणों के लिए है, और पाँच महाभूतों कि उत्पत्ति आत्मा के उपकरण बनाने के लिए नहीं है ।

[(आत्मार्थत्वात् सृष्टेः) महदादिक्रमोऽनुवर्तते] महदादि क्रम की अनुवृति आ रही है। **[महदादिक्रमेण पञ्चभूतेभ्यः पूर्वा या सृष्टिरुभयेन्द्रियपर्यन्ता तस्याः सृष्टेरात्मार्थत्वमात्मोपकरणसम्पादनार्थत्वं बुद्ध्यहंकारमनोज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियसाधनार्थत्वमस्ति]** महदादि क्रम से जो सृष्टि बनी पाँच सूक्ष्म एवं स्थूल भूतों से पहले तक व उभय इंद्रिय तक जो सृष्टि बनी, वह सृष्टि आत्मा के लिए बनाई गयी अर्थात् आत्मा के लिए उपकरण बनाने के लिए बनाई गई थी उसमें क्या था? बुद्धि, अहंकार, मन फिर ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय इस प्रकार से यह १३ साधन बनाए गए।**[वक्ष्यति ह्यग्रेऽपि ''पुरुषार्थं करणोद्भवः...'']** आगे सूत्रकार स्वयं कहेंगे 'ये १३ करण पुरुष के लिए बनाए गए' **[(सांख्य ०२.३६) तथा ''पुरुषार्थं संसृतिर्लिंगानां...'']** और सूक्ष्म शरीर जीवात्मा के अगले जन्म में साथ जाता है **[(सांख्य ०३.१६) तस्मात् तदग्रे (एषाम्-आरम्भः-आत्मार्थः-न) एषां पूर्वसूत्रे साक्षात्पठितानां पञ्चभूतानां विशेषणम्]** यह पाँच स्थूल भूत उपकरण के लिए नहीं बनाए गए बल्कि उससे पहले के १३ पदार्थ आत्मा के उपकरण के रूप में बनाए गए। **[एषां पञ्चस्थूलभूतानां पृथिव्यादीनां व्यक्तिसमारम्भ आत्मार्थ आत्मोपकरणसम्पादनार्थो]** न इन पाँच स्थूल भूतों पृथ्वी आदि का निर्माण किया गया इनका व्यक्तित्व

घटते; इति तयोराशयः । प्रकृतेरेवसृष्टिः स्वमोक्षोर्था न महदादीनां स्वमोक्षार्था, यदुच्यते किं महदादीनां या सृष्टिः सा प्रकृतेः सृष्टिर्न किञ्च महदादिभ्यो भिन्नाऽपि काचित्प्रकृतेः सृष्टिरस्ति यदर्थमुच्यते प्रकृतेः सृष्टिः स्वमोक्षार्था । सर्वा हि सृष्टिः प्रकृतेः सृष्टिः, इत्थमनर्गलकथनेन किम् । सांख्यसिद्धान्तविरुद्धं च कथनमिदम् ।। ११ ।।

दिक्कालावाकाशादिभ्यः ।। १२ ।।

(दिक्कालौ-आकाशादिभ्यः) यौ दिक्कालौ व्यवह्रियेते तौ खल्वाकाशादिभ्य एव निर्धारणीयौ यतो हि तावेतावपेक्षयैव व्यवह्रियेते, पृथिवीमपेक्ष्याकाशविशेषो दिग्भवति तथा वाय्वादीनां स्वरूपोपादानहानव्यवहारावधिः कालः । तस्मादत्र पृथङ्न सूत्रयितव्यौ किन्त्वाकाशाद्यन्तर्भूतावेव ।। १२ ।।

अथ या सृष्टिर्महदादिक्रमेणात्मार्थे पुरुषोपकरणार्थे दशमैकादशयोः सूत्रयोः सूचिता सा विव्रियते

बनाया गया ये आत्मा के उपकरण बनाने के लिए नहीं किया, [**आत्मोपकरणानि न भौतिकानि वक्ष्यति ह्यग्रे**] आगे सूत्रकार स्वयं कहेंगे ये जो आत्मा के उपकरण है वह भौतिक नहीं है अहंकारिक है। [**किन्तु भौतिकवस्तुसम्पादरनार्थः**] पाँच महाभूतों की रचना भौतिक वस्तुओं के निर्माण हेतु की गयी। [**एवं सृष्टेर्विभागद्वयं प्रदर्शितं तत्रैको भागस्तु खल्विन्द्रियात्मको द्वितीयश्च भौतिकः**] इस प्रकार से सृष्टि के दो विभाग दिखाये गए उसमें एक भाग इंद्रिय स्वरूप है और दूसरा भौतिक है। [**तथैव योगदर्शनेऽपि प्रतिपादितं विभागद्वयम् '...भूतेनद्रियात्मकं दृश्यम्''(योग ०२.१८)**] ऐसे ही योगदर्शन में दो विभाग बताए =जो जगत है वह भूत और इंद्रिय दो स्वरूप वाला है [**अस्य सूत्रस्यानिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चायुक्तोऽर्थः**] कृतः इस सूत्र का विज्ञान भिक्षु भाष्य में अनिरुद्ध वृति में अयुक्त अर्थ किया है। [**तत्र 'महदादीनां सृष्टिः पुरुषमोक्षार्था, न स्वमोक्षार्था प्रकृतेरेव सृष्टिः स्वमोक्षार्था महदायस्तु प्रकृतौ लीयन्ते तेषामनित्यत्वात् तत्र न स्वार्थमोक्षप्रयोजनं घटते; इति तयोराशयः**] उनके भाष्य का सार यह है कि =महदादि कि जो सृष्टि कि गयी वह तो जीवात्मा के मोक्ष के लिए, बो अपने मोक्ष के लिए नहीं है, प्रकृति कि जो सृष्टि है वह अपने मोक्ष के लिए है, महदादि जो पदार्थ है वह तो प्रकृति में विलीन हो जाएंगे वो अनित्य हैं इन दोनों का अभिप्राय इस प्रकार से है महदादि तो टूट फुट कर प्रकृति में विलीन हो जाएंगे बो तो अनित्य है उनका तो मोक्ष होगा नहीं, जीवात्मा का मोक्ष होगा महादादि में स्वार्थ प्रयोजन घटता नहीं है। [**प्रकृतेरेवसृष्टिः स्वमोक्षोर्था न महदादीनां स्वमोक्षार्था**] प्रकृति कि ही सृष्टि अपने मोक्ष के लिए है ,महदादि कि जो सृष्टि है वह अपने मोक्ष के लिए नहीं है [**यदुच्यते किं महदादीनां या सृष्टिः सा प्रकृतेः सृष्टिर्न**] आप जो महदादि कि सृष्टि कह रहे है क्या वह प्रकृति कि सृष्टि नहीं है[**किञ्च महदादिभ्यो भिन्नाऽपि काचित्प्रकृतेः सृष्टिरस्ति यदर्थमुच्यते प्रकृतेः सृष्टिः स्वमोक्षार्था**] क्या महदादि से भिन्न प्रकृति कि कोई अलग सृष्टि है क्या जिसके लिए उन्होंने कहा कि प्रकृति कि जो सृष्टि है वह स्व मोक्ष के लिए है। [**सर्वा हि सृष्टिः प्रकृतेः सृष्टिः**] जितनी भी जो रचना है वह प्रकृति कि ही रचना है उसी का ही रूपांतर है, [**इत्थमनर्गलकथनेन किम्**] ऐसा अनर्गल (व्यर्थ कथन) कहने से क्या लाभ जब प्रकृति से भिन्न कोई सृष्टि है ही नहीं। [**सांख्यसिद्धान्तविरुद्धं च कथनमिदम्**] इन दोनों का यह कथन सांख्य सिद्धान्त के विरुद्ध है ।। ११ ।।

-

अध्यवसायो बुद्धिः ।।१३।।

(अध्यवसायः-बुद्धिः) पुरुषशरीरेऽध्यवसायो निश्चयो यतो भवति तद्धर्मकमुकपरणं बुद्धिरुच्यते सामष्टिकं महत्तत्त्वम्, अध्यवसायस्तु सत्त्वस्वरूपवत्त्वात् ।।१३।।

तत्कार्यं धर्मादिः ।।१४।।

(तत्कार्यं धर्मादिः) तस्या बुद्धेरन्तःकरणस्य कार्यं धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यप्रवृत्तिश्च रजोयोगात् ।।१४।।

महदुपरागाद् विपरीतम् ।।१५।।

दिक्कालावाकाशादिभ्यः ।।१२।।

सूत्रार्थ= दिशा और काल का निर्णय आकाश आदि पदार्थो के माध्यम से करना चाहिए।

[(दिक्कालौ-आकाशादिभ्यः) यौ दिक्कालौ व्यवह्रियेते तौ खल्वाकाशादिभ्य एव निर्धारणीयौ यतो हि तावेतावपेक्ष्यैव व्यवह्रियेते] ये जो दिशा और काल व्यवहार में आते हैं इन दोनों का निर्धारण आकाश आदि पदार्थो के माध्यम से कर लेना चाहिए क्योंकि ये दोनों आकाश आदि पदार्थो कि अपेक्षा से व्यवहार में आते हैं , **[पृथिवीमपेक्ष्याकाशविशेषो दिग्भवति]** पृथ्वी के अपेक्षा से आधार से आकाश का एक भाग हिस्सा दिशा कहलाती है **[तथा वाय्वादीनां स्वरूपोपादानहानव्यवहारावधिः कालः]** और वायु आदि जो पदार्थ है जिनका स्वरूप है अर्थात निर्माण हुआ फिर कुछ समय पश्चात उसका हान विनाश क्षय हो गया इस अवधि को काल कहते हैं। **[तस्मादत्र पृथङ्‌ न सूत्रयितव्यौ किन्त्वाकाशाद्यन्तर्भूतावेव]** किन्तु इनके कोई परमाणु नहीं होते परंतु व्यवहार में आते हैं आकाश आदि अन्तर्भूत इसलिए इनकी चर्चा की।।१२।।

जो सृष्टि महदादि क्रम से बनाई गयी थी और आत्मा के उपकरण के रूप में बनाई गयी थी दशवें और ग्यारहवें सूत्र में जिसकी चर्चा की गयी थी अब उसका विवरण आगे बताते हैं।

अध्यवसायो बुद्धिः ।।१३।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा निर्णय निश्चय जिस साधन से करता है उसका नाम बुद्धि है ।

[(अध्यवसायः-बुद्धिः) पुरुषशरीरेऽध्यवसायो निश्चयो यतो भवति तद्धर्मकमुकपरणं बुद्धिरुच्यते सामष्टिकं महत्तत्त्वम्, अध्यवसायस्तु सत्त्वस्वरूपवत्त्वात्] पुरुष शरीर में एक कार्य होता है अध्यवसाय अर्थात् निश्चय किया जाता है वह जिस उपकरण से होता है उस धर्म वाले उपकरण को बुद्धि कहते हैं, बुद्धि सबके लिए समान बनाई जाती है, बुद्धि निश्चय करने में सहायता करता है क्योंकि इसका निर्माण सत्व

(महत्-उपरागात् विपरीतम्) महत्तत्त्वं शरीरे बुद्धिरूपं तत्खलूपरागात् तमसा सह वर्तमानं विपरीतंधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्ययोपगं भवति ।।१५।।

अथाहंकारः -

अभिमानोऽहंकारः ।।१६।।

(अभिमानः-अहंकारः) पुरुषशरीरेऽभिमानो भवति यतः सोऽहंकारः ।।१६।।

एकादश पञ्चतन्मात्रं तत्कार्यम् ।।१७।।

(एकादश पञ्चतन्मात्रम्) समनस्कानि ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणि (तत्कार्यम्) अहंकारस्य कार्यम् ।।१७।।

प्रधान है।।१३।।

तत्कार्य धर्मादिः ।।१४।।

सूत्रार्थ= उसका कार्य धर्मादि में रुचि उत्पन्न करना है।

[(तत्कार्य धर्मादिः) तस्या बुद्धेरन्तःकरणस्य कार्यं धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यप्रवृत्तिश्च रजोयोगात्] उस बुद्धि का जो अंतकरण है उसका कार्य धर्म ज्ञान वैराग्य और एश्वर्य की प्रवृति हो जाती है रजोगुण की प्रबलता से ।।१४।।

महदुपरागाद् विपरीतम् ।।१५।।

सूत्रार्थ= तमोगुण के प्रधान प्रभाव से बुद्धि उल्टे कार्यों का अधर्म अज्ञान आदि का निर्णय करने लगती है।

[(महत्-उपरागात् विपरीतम्) महत्तत्त्वं शरीरे बुद्धिरूपं तत्खलूपरागात् तमसा सह वर्तमानं विपरीतधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्ययोपगं भवति] जो बुद्धि रूप तत्व है हमारे शरीर में है जब तमोगुण के साथ सम्बंध होता (तमोगुण उभरता) है तब अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनेश्वर्य को प्राप्त हो जाती है।। १५।।

अभिमानोऽहंकारः ।।१६।।

सूत्रार्थ= जो जीवात्मा को ''मैं'' की अनुभूति कराता है वह अहंकार है।

[(अभिमानः-अहंकारः) पुरुषशरीरेऽभिमानो भवति यतः सोऽहंकारः] पुरुष शरीर में अभिमान होता है जिस पदार्थ से वह अहंकार है।। १६।।

एकादश पञ्चतन्मात्रं तत्कार्यम् ।।१७।।

सूत्रार्थ= मन सहित ग्यारह इंद्रिय और तन्मात्राएं ये अहंकार के कार्य हैं।

[(एकादश पञ्चतन्मात्रम्) समनस्कानि ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणि (तत्कार्यम्)

सात्त्किमेकादशकं प्रवर्तते वैकृतादहंकारात् ।। १८ ।।

(वैकृतात्-अहंकारात्) संशुद्धात् सत्त्वभूमिवतोऽहंकारात् (सात्त्विकम्-एकादशकं प्रवर्तते) इन्द्रियाणामेकादशसंख्याकं मनः सात्त्विकं सत्त्वभूमिमदभिव्यक्तं भवति। यथोक्तमग्रेऽपि ''गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत्'' (सांख्य ०२.२७) राजसादहंकाराद् राजसं तामसात् तामसमित्यपि योजनीयम्। एवं मनसस्त्रिगुणत्वेन प्रवर्तनं भवति ।। १७।।

किं तदेकादशकमित्युच्यते -

कर्मेनद्रियबुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकम् ।। १९ ।।

(कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियैः-आन्तरम्) कर्मेन्द्रियैर्ज्ञानेन्द्रियैर्दशभिः सह यदान्तरमान्तरिकमिन्द्रियं मनस्तत्

अहंकारस्य कार्यम्] मन सहित ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और पाँच तन्मात्राऐं ये पाँच अहंकार के कार्य हैं।। १ ७।।

सात्त्विकमेकादशकं प्रवर्तते वैकृतादहंकारात् ।। १८ ।।

सूत्रार्थ= ग्यारह संख्या वाला सात्विक मन भी सत्व प्रधान अहंकार से उत्पन्न होता है।

[**(वैकृतात्-अहंकारात्) संशुद्धात् सत्त्वभूमिवतोऽहंकारात्**] शुद्ध सत्वप्रधान अहंकार से इंद्रियों में [**(सात्त्विकम्-एकादशकं प्रवर्तते) इन्द्रियाणामेकादशसंख्याकं मनः सात्त्विकं सत्त्वभूमिमदभिव्यक्तं भवति**] जो ग्यारहवी संख्या वाला मन है सत्व भूमि वाला अभिव्यक्त होता है। [**यथोक्तमग्रेऽपि ''गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत्''(सांख्य ०२.२७)**] जैसा की आगे भी बताया गया है, गुणों के परिणाम में भेद होने से भिन्न-भिन्न अवस्थाएं होती हैं, शरीर की अवस्था के समान [**राजसादहंकाराद् राजसं तामसात् तामसमित्यपि योजनीयम्**] राजसिक अहंकार से राजसिक मन बनता है, तामसिक अहंकार से तामसिक मन बनता है (अब ये भाष्य की पंक्ति ठीक नहीं=न तो अहंकार तीन प्रकार का है न मन, तीन अहंकार और तीन मन मानना शास्त्र के विरुद्ध है)। [**एवं मनसस्त्रिगुणत्वेन प्रवर्तनं भवति**] इस प्रकार से मन त्रिगुणात्मक होने से गुणों में परिवर्तन होता रहता है ।। १८ ।।

वह ग्यारह समुदाय का पदार्थ क्या है?

कर्मेनद्रियबुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकम् ।। १९ ।।

सूत्रार्थ=कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय के साथ रहने वाला और शरीर के अंदर कार्य करने वाला जो साधन है वह मन है।

[**(कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियैः-आन्तरम्) कर्मेन्द्रियैर्ज्ञानेन्द्रियैर्दशभिः**] **सह यदान्तरमान्त-रिकमिन्द्रियं मनस्तत् (एकादकम्) एकादशसंख्याकम्** कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियों इस प्रकार से दश इंद्रियों के साथ जो आंतरिक इंद्रिय मन है वह ग्यारह संख्या वाला है। [**यथा मनावपि ''एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्'' (मनु ०२.९२)**] जैसे मनुस्मृति में भी बताया है- ग्यारहवें मन को समझना

(एकादकम्) एकादशसंख्याकम्। यथा मनावपि ''एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्'' (मनु० २.९२) ।। १९।।

तानि खल्विन्द्रियाणि -

आहंकारिकत्वश्रुतेर्न भौतिकानि ।। २०।।

(भौतिकानि न) भूतोपादानकानि न सन्ति (आहंकारिकत्वश्रुतेः) तेषामहंकार-कार्यत्वश्रवणात्। ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च'' (मुण्ड ०२.१.३) ।। २०।।

इन्द्रियाणि न भौतिकानीत्युच्यते, पुनः ''पुरुषस्य मृतस्याग्निं वाग्प्येति वातं प्राणश्चक्षुरादित्यं मनश्चन्द्रमसं दिशः श्रोत्रम्'' (बृह ०३.२.१३) कथं तेषां लयो भूतेषु प्रतिपाद्यते । अत्रोच्यते -

---

चाहिए, मन अपने गुणों से उभयात्मक कहलाता है (मन ज्ञानेन्द्रियों के साथ जुड़कर ज्ञान प्राप्त कराता है कर्मेन्द्रियों के साथ जुड़कर कर्म कराता है)।। १९।।

अब उन इंद्रियों के विषय में कहते हैं-

आहंकारिकत्वश्रुतेर्न भौतिकानि ।। २०।।

सूत्रार्थ= इंद्रियों की उत्पत्ति श्रुति में अहंकार से बतलायी गयी है, इसलिए इंद्रियां पाँच भूतों से नहीं बनी हैं।

[**(भौतिकानि न) भूतोपादानकानि न सन्ति**] इंद्रियाँ भूत उपदान वाली नहीं है (इंद्रियों का उपदान कारण पाँच महाभूत नहीं हैं) [**(आहंकारिकत्वश्रुतेः) तेषामहंकार-कार्यत्वश्रवणात्**] इंद्रियाँ अहंकार के कार्य है शास्त्रों से ऐसा सुना गया है ।[**''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च''** ('ईश्वर रूपी निमित्त कारण से' प्रसंग यहाँ ईश्वर का था अहंकार या प्रकृति का नहीं, यहाँ अन्य उदाहरण देते तो ज्यादा अच्छा था)] इसी से उत्पन्न होता है प्राण-मन और सारी इंद्रियाँ **(मुण्ड ०२.१.३) ।। २०।।**

इंद्रियाँ भौतिक नहीं है ऐसा आपने कहा- फिर शास्त्र में ऐसा क्यों कहा-जो जीवात्मा शरीर छोड़के चला जाता है उसकी वाक् इंद्रिय अग्नि में चली जाती है, प्राण वायु में चला जाता है जो उसका चक्षु है वह सूर्य में चला जाता है मन चंद्रमा में और श्रोत्र इंद्रिय दिशाओं में चली जाती है, फिर इंद्रियों का लय भूतों में क्यों प्रतिपादित कर रहे हैं इससे तो ऐसा संकेत जाता है। क्योंकि ये भूतों में जा रहे है तो भूतों से ही बने होंगे ऐसी शंका होने पर इसका उत्तर देते हैं-

देवतालयश्रुतिर्नारम्भकस्य ।। २१।।

देवतालयश्रुतिर्नारम्भकस्य ।। २१ ।।

(देवतालयश्रुतिः-आरम्भकस्य न) अग्न्यादिदेवतासु खल्विन्द्रियाणां लयप्रदर्शिका श्रुतिरेषा न ह्यारम्भकत्वस्य। नोत्पादकत्वं भूतानामत्र लक्ष्यते, स्पष्टं ह्यत्र चन्द्रदिङ्नामतो देवतात्वमेषां लयस्थानानां नहि चन्द्रो दिग्वा पञ्चभूतेषु स्तः ।। २१ ।।

यदीन्द्रियाणि न भौतिकानि भूतेभ्यो नोत्पन्नानि तदा तानि नित्यानि मन्येरन् कुतो ह्यनित्यानि तानीत्याकांक्षायामुच्यते -

तदुत्पत्तिश्रुतेर्विनाशदर्शनाच्च* ।। २२ ।।

(तदुत्पत्तिश्रुतेः) तेषामिन्द्रियाणामुत्पत्तिविषयिकायाः श्रुतेः। ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च'' (मुण्ड ०२.१.३) (च) अथ च (विनाशदर्शनात्) तेषामिन्द्रियाणां विनाशोऽपि

सूत्रार्थ=दिव्य गुणों वाले अग्नि आदि जड़ देवताओं में इंद्रियों का लय बताने वाली श्रुति उनके उत्पादक कारण का निर्देश नहीं करती है।

[**(देवतालयश्रुतिः-आरम्भकस्य न) अग्न्यादिदेवतासु खल्विन्द्रियाणां लयप्रदर्शिका श्रुतिरेषा न ह्यारम्भकत्वस्य**] सिद्धांती कहते है- ये जो श्रुति आपने बतलाई यह तो देवताओं में इंद्रियों का लय दिखाने वाली श्रुति है (''देवताओं से इंद्रियाँ उत्पन्न हुई'' ऐसा नहीं बताया)। [**नोत्पादकत्वं भूतानामत्र लक्ष्यते**] इस श्रुति में ऐसा नहीं बताना चाहते कि भूत जो है वह इंद्रियों के उत्पादक हैं, [**स्पष्टं ह्यत्र चन्द्रदिङ्नामतो देवतात्वमेषां लयस्थानानां नहि चन्द्रो दिग्वा पञ्चभूतेषु स्तः**] श्रुति में ये स्पष्ट है चन्द्र और दिशा इन दो पदार्थ का लय स्थान ही स्पष्ट है श्रोत्र तो दिशाओं में चली गयी, मन चंद्रमा में चला गया ''अब दिशा और चन्द्रमा ये पाँच महाभूतों में तो है नहीं'' उसमें तो पृथ्वी-जल-वायु आदि आते हैं, जबकि इस प्रस्तुत कि गयी उक्ति में दिशाओं का भी नाम है, चंद्रमा का भी नाम है तो इससे पता चलता है कि ये तो देवताओं के अंदर लय बताया जा रहा है, अब देवता लय से क्या तात्पर्य है? वर्णोचरण शिक्षा में के वचन आता है- ''आत्मा बुद्धि से विचार करके बोलने कि इच्छा से मन को प्रेरित करता है मन जठराग्नि को धक्का मारता है'' तो यहा बोलने में अग्नि का सहयोग लेना पड़ता है जब बोलने वाला आत्मा शरीर से चला गया, तो बोलने के लिए जिस अग्नि का सहयोग ले रहा था वह सहयोग बंद हो गया वापिस चला गया'' इस अभिप्राय से वाणी को अग्नि में लय बता दिया ।। २१ ।।

पूर्वपक्षी एक शंका और उठाते हैं = यदि इंद्रियाँ भौतिक नहीं हैं, भूतों से उत्पन्न नहीं हुई तब फिर तो वह नित्य मानी जानी चाहिए, उनको अनित्य क्यों मानते हैं। इस आकाक्षा पर उत्तर देते हैं ।

तदुत्पत्तिश्रुतेर्विनाशदर्शनाच्च* ।। २२ ।।

सूत्रार्थ= इंद्रियों की उत्पत्ति सुनाई देने से और उनका विनाश भी देखे जाने से इंद्रियाँ अनित्य हैं।

[**(तदुत्पत्तिश्रुतेः) तेषामिन्द्रियाणामुत्पत्तिविषयिकायाः श्रुतेः**] उन इंद्रियों कि उत्पत्ति के विषय

दृश्यते तस्मादिन्द्रियाणि सन्त्यनित्यानि ।। २२।।

अतीन्द्रियमिन्द्रियं भ्रान्तानामधिष्ठाने ।। २३।।

(इन्द्रियम्-अतीन्द्रियम्) चक्षुरादीन्द्रियं खल्वतीन्द्रियं तद्भिन्नेन केनचिदपीन्द्रियेण नोपलभ्यम् (अधिष्ठाने भ्रान्तानाम्) गोलके गोलकात्मना खल्विन्द्रियमन्तव्यं भ्रान्तानां न तु वस्तुतः ।। २३।।

यदि गोलकं नेन्द्रियं तद्भिन्नमतीन्द्रियं तर्हि त्वेकमेवेन्द्रियं स्याद्भिन्नभिन्नबाह्याकाराभावात् । अत्रोच्यते -

शक्तिभेदेऽपि भेदसिद्धौ नैकम् ।। २४।।

(अपि शक्तिभेदे-भेदसिद्धौ-एकं न) अपितु शक्तिभेदे सति-गन्धग्रहणशक्तिः, रसग्रहणशक्तिः,

---

में एक श्रुति है, उस श्रुति से ये बात जानी जाती है। [**"एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च"**] इसी से उत्पन्न होता है प्राण-मन और सारी इंद्रियाँ [**(मुण्ड ०२.१.३) (च) अथ च (विनाशदर्शनात्) तेषामिन्द्रिया विनाशोऽपि दृश्यते तस्मादिन्द्रियाणि सन्त्यनित्यानि**] और उन इंद्रियों का विनाश भी दिखता है, वह भी शास्त्र में देखा जाता है इसलिए भी इंद्रियाँ अनित्य हैं।। २२।।

अतीन्द्रियमिन्द्रियं भ्रान्तानामधिष्ठाने ।। २३।।

सूत्रार्थ= नेत्र आदि इंद्रियाँ किसी भी इंद्रिय से देखि या जानी नहीं जा सकती, किन्तु इंद्रियों के गोलकों को इंद्रिय मानना भ्रांत व्यक्तियों की मान्यता है।

[**(इन्द्रियम्-अतीन्द्रियम्) चक्षुरादीन्द्रियं खल्वतीन्द्रियं तद्भिन्नेन केनचिदपीन्द्रियेण नोपलभ्यम्**] चक्षु आदि जो इंद्रिय हैं वो अतींद्रिय हैं उस इंद्रिय से भिन्न किसी भी इंद्रिय से न देखी जाती (अर्थात जो आँख इंद्रिय है उससे आप श्रोत्र इंद्रिय को नहीं देख सकते, श्रोत्र इंद्रिय से आँख को नहीं सुन सकते समझ सकते=इसलिए अतींद्रिय कहा) [**(अधिष्ठाने भ्रान्तानाम्) गोलके गोलकात्मना खल्विन्द्रियमन्तव्यं भ्रान्तानां न तु वस्तुतः**] ये जो आँख दिख रही है ये तो गोलक है इसके अंदर एक और शक्ति है जो इंद्रिय है, गोलक आदि को ही जो इंद्रिय मान लेता है ये तो भ्रांत इंद्रियों की मान्यता है (क्योंकि मरने के बाद ये १८ पदार्थ आत्मा के साथ चले जाएंगे जबकि गोलक तो नष्ट हो जाएंगे)।। २३।।

यदि ये गोलक इंद्रिय नहीं है और उससे भिन्न इंद्रिय हैं अतीन्द्रिय हैं दिखती भी नहीं है, तब तो फिर एक ही इंद्रिय होनी चाहिए बाह्य आकार तो उसका है नहीं? ऐसा तर्क उठाने पर सिद्धांती उत्तर देते हैं-

शक्तिभेदेऽपि भेदसिद्धौ नैकम् ।। २४।।

सूत्रार्थ= जब शक्तियाँ अलग अलग हैं तो इंद्रियों में भेद सिद्ध हो जाता है, जब इंद्रियों में अनेकता सिद्ध हो जाती है फिर एक इंद्रिय नहीं मान सकते, भले ही बाह्य आकार अलग-अलग दिखाई दे।

रूपग्रहणशक्तिः, स्पर्शग्रहणशक्तिः, शब्दग्रहणशक्तिः, संकल्पधारणशक्तिरित्येवं शक्तिभेदे सति तेषामिन्द्रियाणां भेदसिद्धौ सत्यामिन्द्रियमेकं नास्ति ।। २४।।

पुनश्च -

न कल्पनाविरोधः प्रमाणदृष्टस्य ।। २५।।

(प्रमाणदृष्टस्य कल्पनाविरोधः-न) स्वस्वविषयग्रहणात्मकेन प्रत्यक्षेण प्रमाणेन दृष्टस्य भेदस्येन्द्रियानेकत्वस्य कल्पनया कृतो विरोधो न युक्तः । तस्मान्नैकमिन्द्रियं किन्तु यथोक्तान्येकादश सन्ति ।। २५।।

तेषु -

[(अपि शक्तिभेदे-भेदसिद्धौ-एकं न) अपितु शक्तिभेदे सति-गन्धग्रहणशक्तिः, रसग्रहणशक्तिः, रूपग्रहणशक्तिः, स्पर्शग्रहणशक्तिः, शब्दग्रहणशक्तिः, संकल्पधारणशक्तिरित्येवं शक्तिभेदे सति तेषामिन्द्रियाणां भेदसिद्धौ सत्यामिन्द्रियमेकं नास्ति] सिद्धांती कहते हैं आपके कहे अनुसार एक ही इंद्रिय होनी चाहिए, एक ही क्यों हो जब शक्तियाँ अलग-अलग हैं, गंध ग्रहण करने की शक्ति अलग है (सुगंध-दुर्गंध), फिर रस ग्रहण शक्ति (खट्टा-मीठा-तीखा ६ प्रकार के रस हैं), रूप ग्रहण शक्ति, स्पर्श करने की शक्ति, शब्द की शक्ति ये तो पाँच शक्तियाँ अलग है फिर मन की संकल्प धारण शक्ति अलग-अलग हैं, इस प्रकार से शक्ति का भेद सिद्ध होने से इंद्रियों का भेद सिद्ध हो जाता है, इसलिए एक इंद्रिय नहीं मान सकते।। २४।।

पुनश्च -

न कल्पनाविरोधः प्रमाणदृष्टस्य ।। २५।।

सूत्रार्थ= प्रत्यक्ष प्रमाणों से अनेक इंद्रियों के सिद्ध होने का कल्पना से विरोध करना उचित नहीं है।

[(प्रमाणदृष्टस्य कल्पनाविरोधः-न) स्वस्वविषयग्रहणात्मकेन प्रत्यक्षेण प्रमाणेन दृष्टस्य भेदस्येन्द्रियानेकत्वस्य कल्पनया कृतो विरोधो न युक्तः] अपने-अपने विषयों को ग्रहण करवाने वाले प्रत्यक्ष प्रमाण के माध्यम से जो भेद इंद्रियों का दिख रहा है, इस प्रकार से इंद्रियों के अनेक होने का कल्पना से विरोध करना ये ठीक नहीं है। **[तस्मान्नैकमिन्द्रियं किन्तु यथोक्तान्येकादश सन्ति]** इसलिए सार यह हुआ एक इंद्रिय नहीं है ११ इंद्रिय ही हैं और उन सबकी शक्तियाँ अलग-अलग है ।। २५।।

तेषु -

उभयात्मकञ्च मनः ।। २६।।

सूत्रार्थ= मन उभयात्मक है दोनों इंद्रियों के साथ मिलकर के कार्य करता है।

[(उभयात्मकं च मनः) मनस्तूभयात्मकं कर्मेन्द्रियज्ञानेन्द्रियानुगतमुभयत्रप्रवृत्तिम-दुभयप्रवृत्तिनिमित्तं स्वगुणेन वर्तमानं च] मन दोनों प्रकार का है उभयात्मक है ये कर्मेन्द्रियों के साथ तथा ज्ञानेन्द्रियों के साथ भी जुड़ता है दोनों के साथ क्रिया करता है (दोनों की क्रिया को प्रेरित करने वाला है) और इसका अपना गुण भी है विशेष संकल्प करना, विचार करना, स्मृतियों का संग्रह करना। **[उक्तं यथा**

उभयात्मकञ्च मनः ।। २६ ।।

(उभयात्मकं च मनः) मनस्तूभयात्मकं कर्मेन्द्रियज्ञानेन्द्रियानुगतमुभयत्रप्रवृत्तिम-दुभयप्रवृत्तिनिमित्तं स्वगुणेन वर्तमानं च । उक्तं यथा ''एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्'' (मनु ०२.९२) ।। २६ ।।

तस्य स्वगुणेन वर्तमानत्वं विव्रियते -

गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत् ।। २७ ।।

(गुणपरिणामभेदात्-नानात्वम्-अवस्थावत्) सत्त्वरजस्तमसां गुणानां परिणामभेदात् खलु मनसो नानात्वं भवति-सात्त्विकं मनः, राजसं मनः, तामसं मनः। उक्तं च पूर्वमपि ''सात्त्विकमेकादशकं

''एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्'' (मनु ०२.९२)] जैसा मनुस्मृति में कहा है- ग्यारहवां पदार्थ मन को जानना चाहिए जो अपने गुण से विद्यमान है और उभयात्मक है ।। २६ ।।

मन जो अपने गुण से वर्तमान रहता है, उसका जो विशिष्ट गुण है। उसका विवरण देते हैं-

गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत् ।। २७ ।।

सूत्रार्थ= मन में सत्व आदि गुणों कि प्रधानता से तीन स्थितियाँ बदलती रहती हैं, जैसे शरीर में बाल्य यौवन आदि अवस्थाएं बदलती रहती हैं।

[(गुणपरिणामभेदात्-नानात्वम्-अवस्थावत्) सत्त्वरजस्तमसां गुणानां परिणामभेदात् खलु मनसो नानात्वं भवति-सात्त्विकं मनः, राजसं मनः, तामसं मनः] क्योंकि मन तीन गुणों से मिलकर बना है इसके उपदान कारण ये तीन है सत्व, रज और तम। इसीलिए परिणामों में भेद होने से मन अलग-अलग प्रकार का बन जाता है जिससे मन कभी सात्विक कभी राजसिक तो कभी तामसिक हो जाता है (मन के परिणामों में भेद होने से ऊंची नीची स्थिति होती रहती है, मन में सत्वगुण की प्रधान से सेवा, परोपकार, दया, दान की भावना सहयोग की भावना जब मन रजोगुण से युक्त होगा तो स्वार्थ की भावना आएगी चंचलता आएगी राग द्वेष की भावना आएगी, तमोगुण के उभरने पर निम्न स्तर के विचार आएंगे)। **[उक्तं च पूर्वमपि ''सात्त्विकमेकादशकं प्रवर्तते वैकृतादहंकारात्'']** जैसा की पहले भी कहा था - कि सत्व प्रधान अहंकार से सत्व प्रधान मन कि उत्पत्ति होती है (मन का निर्माण एक बार ही होता है और वह सत्व प्रधान होता है) **[(सांख्य ०२.१८) तच्च मनसो नानात्वं भवति यथा देहस्य बाल्ययौवनजरारूपमवस्थात्रयम्]** मन कि स्थितियाँ कैसी होती है उसको उदाहरण से समझा रहे हैं जैसे एक ही शरीर में तीन अवस्थाएं बदलती हैं, पहले बाल्य, यौवन फिर वृद्धावस्था उसी प्रकार से एक ही मन में कभी सात्विक, कभी राजसिक तो कभी तामसिक अवस्था होती रहती है। **[विज्ञानभिक्षुभाष्ये सूत्रमिदमन्यथार्थापितं मनोविषयकाष्टादशतमात् सूत्राद् विरुद्धं च]** विज्ञानभिक्षु भाष्य में इस सूत्र का अर्थ अलग ढँग से किया गया है और मन विषयक जो १८वा सूत्र था उससे भी विरुद्ध अर्थ किया गया है, यतस्तत्र मनसि गुणत्रयस्य स्वीकारः कृतस्तेनापि क्योंकि

प्रवर्तते वैकृतादहंकारात्'' (सांख्य ०२.१८) तच्च मनसो नानात्वं भवति यथा देहस्य बाल्ययौवनजरारूपमवस्थात्रयम्। विज्ञानभिक्षुभाष्ये सूत्रमिदमन्यथार्थापितं मनोविषयकाष्टादशतमात् सूत्राद् विरुद्धं च, यतस्तत्र मनसि गुणत्रयस्य स्वीकारः कृतस्तेनापि, तेषामेव गुणानां परिणामादत्रापि मनसस्त्रैविध्यमनुसन्धेयम्। मनःसृष्टिप्रकरणादेवात्र तत्कथनम् ।। २७।।

मनसो धर्मवर्णनान्तरमिन्द्रियाणां धर्माः प्रदर्श्यन्ते -

रूपादिरसमलान्त उभयोः ।।२८।।

(उभयोः-रूपादिरसमलान्तः) ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रिययोः खलु रूपमादौ रसमलोऽन्ते यस्य स

अठारहवे सूत्र में मन के तीन गुण स्वीकार किए गए हैं, **[तेषामेव गुणानां परिणामादत्रापि मनसस्त्रैविध्यमनुसन्धेयम्]** तो जब तीन गुणों को वहाँ स्वीकार किया गया है मन में तो फिर उसी आधार पर यहां मन में भिन्नता स्वीकार करनी चाहिए कि एक ही मन में गुणों का परिणाम बदलने से स्थितियाँ बदलती रहती हैं। **[मनःसृष्टिप्रकरणादेवात्र तत्कथनम्]** मन कि रचना प्रकरण से भी यहाँ पर उस प्रकार का कथन किया गया है।। २७।।

मन के धर्मों का वर्णन करने के पश्चात् इंद्रियों के धर्म दिखलाए जाते हैं -

रूपादिरसमलान्त उभयोः ।।२८।।

सूत्रार्थ= रूप ग्रहण से लेकर के मल विसर्जन पर्यंत दोनों प्रकार के कार्य इंद्रियों के हैं।

[(उभयोः-रूपादिरसमलान्तः) ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रिययोः खलु रूपमादौ रसमलोऽन्ते यस्य स रूपादिरसमलान्तो गुणगणः] ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्दियों के समुदाय में रूप आदि में है और रस का मल अंत में हैं एसे गुणों का जो समुदाय है उसको कहेंगे रूपादिरसमलान्त। **[रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाश्चक्षुरादीनां ज्ञानेन्द्रियाणां भाषणादानगमनानन्दपुरीषाणि कर्मेन्द्रियाणाम्]** रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गन्ध ये चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों के कार्य और बोलना, देना, जाना, आनन्द (मूत्रेन्द्रिय) पुरीष (मलेन्द्रिय) ये पाँच कर्मेन्द्रियों के कार्य है। **[रसमलोऽत्र भोजनरसस्य मलः पुरीषमित्यर्थः]** सूत्र में जो रस मल शब्द आया है वह भोजन से जो रस रक्त आदि धातुए बनती हैं तो वहाँ जो रस से मल बनता है उससे तात्पर्य है ।। २८।।

जिसकी ये इंद्रियाँ हैं (जो इनका प्रयोग करने वाला है) उस जीवात्मा के प्रति इन इंद्रियों का सम्बंध है और उन इंद्रियों के प्रति उस प्रयोक्ता (जीवात्मा का) क्या प्रयोजन है (इंद्रियों का और आत्मा का आपस में क्या संबंध है ये बताया जाएगा)-

द्रष्टत्वादिरात्मनः करणत्वमिन्द्रियाणाम् ।। २९।।

रूपादिरसमलान्तो गुणगणः । रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाश्चक्षुरादीनां ज्ञानेन्द्रियाणां भाषणादानगमनानन्दपुरीषाणि कर्मेन्द्रियाणाम् । रसमलोऽत्र भोजनरसस्य मलः पुरीषमित्यर्थः ।। २८।।

यस्य खल्विन्द्रियाणि तं प्रति तेषां तथा तानि प्रति च तस्य रूपादिग्रहणे परस्परसम्बन्धः प्रदर्श्यते -

द्रष्टृत्वादिरात्मनः करणत्वमिन्द्रियाणाम् ।। २९।।

(आत्मनः-द्रष्टृत्वादिः) रूपादिविषयग्रहणे किलेन्द्रियाणि प्रति द्रष्टृत्वादिः सम्बन्ध आत्मनोऽस्ति (इन्द्रियाणां करणत्वम्) आत्मानं प्रति रूपादिग्रहणे करणत्वमिन्द्रियाणां सम्बन्धोऽस्ति । तत्र रूपग्रहणे द्रष्टाऽऽत्मा दर्शनकरणं चक्षुः, रसग्रहणे रसयिताऽऽत्मा रसनकरणं जिह्वा, गन्धग्रहणे घ्राताऽऽत्मा घ्राणकरणं

सूत्रार्थ= आत्मा का जो सम्बंध है वह है दृष्टा, श्रोता, घ्राता, वक्ता आदि और जो इंद्रियाँ है वो करण (साधन) हैं।

[**(आत्मनः-द्रष्टृत्वादिः) रूपादिविषयग्रहणे किलेन्द्रियाणि प्रति द्रष्टृत्वादिः सम्बन्ध आत्मनोऽस्ति**] जब जीवात्मा रूपादि विषयों का ग्रहण करेगा इस व्यवहार में इंद्रियों के प्रति (साथ) आत्मा का जो संबंध है वह दृष्टा का है [**(इन्द्रियाणां करणत्वम्) आत्मानं प्रति रूपादिग्रहणे करणत्वमिन्द्रियाणां सम्बन्धोऽस्ति**] इंद्रियों का जो सम्बंध है आत्मा के साथ वह करण (साधन) का है । [**तत्र रूपग्रहणे द्रष्टाऽऽत्मा दर्शनकरणं चक्षुः**] रूप का ग्रहण करना होगा तब आत्मा होगा दृष्टा और देखने का रूप ग्रहण करने का साधन होगा नेत्र, [**रसग्रहणे रसयिताऽऽत्मा रसनकरणं जिह्वा**] रस ग्रहण करने में आत्मा होगा रसयिता और रस को ग्रहण करने में जो साधन होगा वह होगा रसना, [**गन्धग्रहणे घ्राताऽऽत्मा घ्राणकरणं नासिका**] सूंघने वाला आत्मा है और सूंघने का साधन नासिका है, [**स्पर्शग्रहणे स्प्रस्ष्टाऽऽत्मा स्पर्शकरणं त्वक्**] स्पर्श ग्रहण करने में छूने वाला आत्मा है और छूने का साधन त्वक् इंद्रिय है, [**शब्दग्रहणे श्रोताऽऽत्मा शब्दकरणं श्रोत्रम्**] शब्द सुनने में श्रोता आत्मा है और सुनने का साधन कान हैं। [**भाषणे वक्ताऽऽत्माभाषणकरणं वाक्**] बोलने में बोलने वाला आत्मा है और बोलने का साधन वाक् है, [**आदाने आदाताऽऽत्माऽऽदानकरणं हस्तः**] लेन-देन करने में लेन-देन करने वाला आत्मा है और लेन-देन करने का साधन हाथ है, [**गमने गन्ताऽऽत्मा गमनकरणं पाद इत्यादि योजनीयम्**] एसे ही आने-जाने में गमन करने वाला आत्मा है और गमन करने का साधन पाद (पैर) हैं इस प्रकार से सब जगह समझ लेना चाहिए ।। २९।।

करणों के प्रकरण में आगे है-

त्रयाणां स्वालक्षण्यम् ।। ३०।।

सूत्रार्थ= तीन अंत:करणों का अपने-अपने लक्षणों से ही कर्णत्व समझ लेना चाहिए।

[**(त्रयाणां स्वालक्षण्यम्) करणत्वमनुवर्तते**] ये सब करण है ये अनुव्रत्ति है। [**त्रयाणां पूर्वोक्तानां**

नासिका, स्पर्शग्रहणे स्प्रस्ष्टाऽऽत्मा स्पर्शकरणं त्वक् , शब्दग्रहणे श्रोताऽऽत्मा शब्दकरणं श्रोत्रम्। भाषणे, वक्ताऽऽत्माभाषणकरणं वाक्, आदाने आदाताऽऽत्माऽऽदानकरणं हस्तः, गमने गन्ताऽऽत्मा गमनकरणं पाद इत्यादि योजनीयम् ।। २९।।

अपरञ्च करणप्रकरणे -

त्रयाणां स्वालक्षण्यम् ।। ३०।।

(त्रयाणां स्वालक्षण्यम्) करणत्वमनुवर्तते। त्रयाणां पूर्वोक्तानां बुद्ध्यहंकारमनसां स्वालक्षण्यं बुद्ध्यहंकारमनसां स्वालक्षण्यं स्वालक्षणिकं करणत्वं स्वस्वलक्षणेन निर्वृत्तं करणत्वं विज्ञेयम्] तीन जो पूर्वोक्त अंतकरण बताए थे बुद्धि अहंकार और मन इन तीनों का लक्षण जानना चाहिए अपने अपने लक्षण से उत्पन्न कर्णत्व, इनका जो संस्कृत व्याकरण से लक्षण सिद्ध होता है उसी से इनका कार्य व्यवसाय भी समझ लेना। **[निर्वृत्तार्थस्तद्धितः ष्यञ् प्रत्यय आर्षः]** अब इसमें ष्यन् प्रत्यय का प्रयोग है ये आर्ष प्रयोग है उत्पत्ति अर्थ में। यद्वा स्वालक्षण्यं स्वस्वलक्षणं करणत्वेनास्ति अथवा स्वाल्क्षण्यम् को हम इस तरह से भी कह सकते हैं उनके करणपन से (इंद्रियत्व से) ही उनमें अपने-अपने लक्षण सिद्ध होता है (बुद्धि, अहंकार और मन उनके करण होने से उनमे अपना लक्षण सिद्ध हो जाता है), **[ष्यञ् स्वार्थे]** यहाँ स्वार्थ में ष्यन् प्रत्यय है। **[तेषां बुद्ध्यहंकारमनसां स्वस्वलक्षणम्-अध्यवसायोऽहङ्कृतिः संकल्पः करणत्वेन पृथक्-पृथगस्ति]** इन तीनों करणों का बुद्धि अहंकार और मन का अपना अपना लक्षण ये है, जिससे निश्चय होता है वह बुद्धि है अहं मै की अनुभूति कराता है और मन संकल्प कराता है करण के रूप में जो इनके कार्य है बो पृथक्-पृथक् हैं। **[अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च सूत्रमिदमन्यथाव्याख्यातं तत्रोभयत्र वैधर्म्यप्रदर्शनपरं सूत्रं योजितं न हि वैधर्म्यस्य प्रकरणं किन्तु प्रकरणं तु करणत्वस्य तथैवार्थेन भवितव्यम्]** अनिरुद्ध वृत्ति में और विज्ञान भिक्षु भाष्य में इस सूत्र की व्याख्या अलग ढँग से की गयी है जो ठीक नहीं है, वहाँ उन दोनों की व्याख्या में इस सूत्र की जो योजना की गयी है विरोध दिखलाते हुए उन्होंने सूत्र की व्याख्या की है जो गले है क्योंकि यहाँ वैधर्म्य दिखलाने का प्रकरण नहीं चल रहा (कि इनमे विरोध क्या है) प्रसंग तो यह है कि ये करण (साधन) है जैसा प्रसंग था वैसा ही अर्थ करना चाहिए था ।। ३०।।

सामान्या करणवृत्तिः प्राणाख्याः प्राणाद्याः वायवः पञ्च ।। ३१।।

सूत्रार्थ= शरीर में पाँच प्रकार की वायु प्राण-अपान आदि नाम से हैं, इन पांचों प्राणों का सहयोग समान रूप से सभी तेरह कारणों को मिलता है।

[(सामान्या करणवृत्तिः) करणानामुपर्युक्तसूत्रद्वये कथितानां ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रिय-बुद्ध्यहंकारमनसां त्रयोदशानां * करणानां वृत्तिः सामान्या करणत्वव्यापारनिमित्तं सामान्यम्] तेरह करणों में एक समानता है कि वह सब करण (साधन) है , इन तेरह करणों कि जो वृत्ति है वो सामान्य (समान) है ज्ञानेंद्रिय-कर्मेन्द्रियों बुद्धि आदि तेरह करण जीवात्मा के साधन बन कर कार्य करते हैं **[(प्राणाख्याः पञ्च वायवः) ये खलु प्राणनामकाः प्राणापानव्यानसमानोदानाः पञ्च वायवः शरीरे वर्तमानाः सन्ति तैर्वायुभृतैः**

स्वालक्षणिकं करणत्वं स्वस्वलक्षणेन निर्वृत्तं करणत्वं विज्ञेयम्। निर्वृत्तार्थस्तद्धितः ष्यञ् प्रत्यय आर्षः। यद्वा स्वालक्षण्यं स्वस्वलक्षणं करणत्वेनास्ति, ष्यञ् स्वार्थे। तेषां बुद्ध्यहंकारमनसां स्वस्वलक्षणम्-अध्यवसायोऽहङ्कृतिः संकल्पः करणत्वेन पृथक्-पृथगस्ति। अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च सूत्रमिदमन्यथाव्याख्यातं तत्रोभयत्र वैधर्म्यप्रदर्शनपरं सूत्रं योजितं न हि वैधर्म्यस्य प्रकरणं किन्तु प्रकरणं तु करणत्वस्य तथैवार्थेन भवितव्यम् ।। ३०।।

अथ च -

सामान्या करणवृत्तिः प्राणाख्याः प्राणाद्याः वायवः पञ्च ।। ३१।।

(सामान्या करणवृत्तिः) करणानामुपर्युक्तसूत्रद्वये कथितानां ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रिय बुद्ध्यहंकारमनसां त्रयोदशानां* करणानां वृत्तिः सामान्या करणत्वव्यापारनिमित्तं सामान्यम् (प्राणाख्याः पञ्च वायवः) ये खलु प्राणनामकाः प्राणापानव्यानसमानोदानाः पञ्च वायवः शरीरे वर्तमानाः सन्ति तैर्वायुभूतैः पञ्चभिः प्राणैस्तेषां सर्वेषां ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियबुद्ध्यहंकारमनसां करणानां वृत्तिः प्रभवति, उक्तं हि प्रश्नोपनिषदः

पञ्चभिः प्राणैस्तेषां सर्वेषां ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियबुद्ध्यहंकारमनसां करणानां वृत्तिः प्रभवति] ये जो प्राण नामक पाँच वायु हैं शरीर में उनके नाम बताए प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इस प्रकार से पाँच वायु शरीर में जो वर्तमान हैं उन वायु भूत पाँच प्राणों के माध्यम से इन सब ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, बुद्धि, अहंकार और मन जो करण हैं इनकि वृत्ति उत्पन्न होती है (अर्थात इनका जो कार्य है वह प्रभावित होता है), [**उक्तं हि प्रश्नोपनिषदः प्राणेन्द्रियमनसामहंश्यसि विवादप्रकरणे प्राणाधारकत्वं करणानाम्]** इस बात कि पुष्टि के लिए प्रमाण प्रस्तुत करते है कि प्रश्नोपनिषद् में एक बार चर्चा आई प्राण और इंद्रियों का विवाद हो गया (इंद्रिय में एक-एक कहने लगे हम श्रेष्ठ हैं, निष्कर्ष ये निकला यदि एक इंद्रिय कि कमी शरीर में हो भी जाए तो जीवन चल सकता है किन्तु प्राण निकाल गए तो सबके लिए मुश्किल हो जाएगी) उस प्रकरण में ये सिद्ध हुआ कि प्राण सबसे श्रेष्ठ मूल्यवान है।[**''या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि। या च मनसि* संतता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः''**](कथा में इस प्रकार से था कि आँख एक वर्ष के लिए चली गई देखते हैं मेरे वगैर कैसे जीते हैं, जब आँख लौट के आई तो देखा सब कम ठीक चल रहा है तो अन्य इंद्रियों से पूछने लगे मेरे वगैर कैसे जीवित हो तो उन्होने कहाँ जैसे अंधे लोग जीते हैं वैसे हमने भी जी लिया, तो नेत्र इंद्रिय को समझ में आ गया मेरी कितनी कीमत है। एसे ही कान चला गया जब वह लौट के आया तो पूछा मेरे बिना तुम्हारा कैसे काम चला,अन्य बोले जैसे बहरे का चलता है हमारा भी चल गया, एसे बारी-बारी से सब इंद्रियाँ चली गयी और बाद में लौटी तो सबके बिना भी काम चल रहा था, अब जब आखिर में प्राण का नंबर आया उसने चलने कि तैयारी की तो सब इंद्रियाँ कहने लगी रुको आप ही श्रेष्ठ हो) हे प्राण जो तुम्हारा स्वरूप वाणी में, श्रोत्र में, चक्षु में, मन में स्थित है, उसको शांत करो बाहर मत निकलो, इसी तरह से सब इंद्रियों ने कहा आप बाहर मत निकलिए [**(प्रश्नो ०२.१२) इन्द्रियमनोभ्यः प्रागुत्पत्तिश्च प्राणस्य दर्श्यते ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः+ सर्वेन्द्रियाणि च''**] और मन इंद्रियों से पहले प्राण कि उत्पत्ति दिखलाई गयी है (इस श्लोक कि संगति ठीक नहीं है इसे छोड़ देते हैं) [**(मुण्डको ०२.१.३) अतः प्राणानां करणवृत्तित्वं सामान्यम्**] इसलिए प्राणों का जो सहयोग है वो सब इंद्रियों के लिए समान है ।[**अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च प्राणानां करणत्वप्रदर्शनप्रकरणाद् विरुद्धं व्याख्यातं सूत्रमिदम्**] अनिरुद्ध वृत्ति में और

प्राणेन्द्रियमनसामहंश्यसि विवादप्रकरणे प्राणाधारकत्वं करणानाम् । ''या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि । या च मनसि * संतता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः'' (प्रश्नो ०२.१२) इन्द्रियमनोभ्यः प्रागुत्पत्तिश्च प्राणस्य दर्श्यते ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः+ सर्वेन्द्रियाणि च'' (मुण्डको ०२.१.३) अतः प्राणानां करणवृत्तित्वं सामान्यम् । अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च प्राणानां करणत्वप्रदर्शनप्रकरणाद् विरुद्धं व्याख्यातं सूत्रमिदम् ।। ३१ ।।

तत्र करणेषु -

क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः ।। ३२ ।।

(इन्द्रियवृत्तिः) पूर्वोक्तानां मनःसहितैकादशेन्द्रियाणां वृत्तिः (क्रमशः-अक्रमशः-च) क्रमश एकैकेन्द्रियस्यैककविषये तथाऽक्रमशश्च सकृतनेकेन्द्रियद्वारानेकविषयेऽपि भवति यथावसरं

विज्ञान भिक्षु भाष्य में प्राणों का कर्णत्व प्रदर्शन से इस सूत्र कि व्याख्या विरुद्ध की है।। ३१ ।।

क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः ।। ३२ ।।

सूत्रार्थ=जो इंद्रियों के व्यवहार होते है कहीं धीमे क्रम से होते हैं कहीं तेज क्रम से होते हैं।

[(इन्द्रियवृत्तिः) पूर्वोक्तानां मनःसहितैकादशेन्द्रियाणां वृत्तिः] पहले जो मन सहित ग्यारह इंद्रियाँ बतलाई उनके कार्य को कहते हैं **[(क्रमशः-अक्रमशः-च) क्रमश एकैकेन्द्रियस्यैककविषये तथाऽक्रमशश्च सकृतनेकेन्द्रियद्वारानेकविषयेऽपि भवति यथावसरं शैघ्र्याद् भयादभ्यासाद्वा]** (इनका कार्य धीमे क्रम से भी होता है और तेज क्रम से भी) एक-एक इंद्रिय का एक-एक विषय में ज्ञान होता है क्रिया होती है और बिना क्रम से अर्थात् एक साथ अनेक इंद्रियों द्वारा अनेक विषयों में उनका व्यापार हो जाता है चाहे वह अवसर के अनुसार शीघ्रता से, कहीं भय से, कहीं अभ्यास से जो कार्य होता है वह क्रम से ही होता है ।। ३२ ।।

अब वृत्तियों के भेद कहे जाते हैं-

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाश्च ।। ३३ ।।

सूत्रार्थ=वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं, क्लिष्ट और अक्लिष्ट भेद से।

[(वृत्तयः पञ्चतय्यः) ता वृत्तयः पञ्चस्तरकाः पञ्चविधाः सन्ति] वे वृत्तियाँ पाँच स्तर की हैं पाँच प्रकार की है, **[(क्लिष्टाः-अक्लिष्टाः-च) अथ ता एव पञ्चविधा वृत्तयः क्लिष्टाश्चाक्लिष्टाश्चापि भवन्ति]** वे ही पाँच प्रकार की वृत्तियाँ क्लिष्ट और अक्लिष्ट दोनों प्रकार की होती हैं। **[वृत्तीनां पञ्चविधत्वं योगसूत्राद् विज्ञेयं तत्र ''प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः'']** वृत्तियाँ जो पाँच प्रकार की हैं वो योगदर्शन के सूत्र से जान लेनी चाहिए, वहाँ प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच वृत्तियाँ बतलाई गयी हैं, **[(योग ० १.६) क्लेशमूलाः क्लिष्टाः संसाराभिमुखास्तद्भिन्ना ख्यातिविषया विवेकाभिमुखा अक्लिष्टा]** क्लेश है मूल जिनका (क्लेशों के कारण जो उत्पन्न होती है) वे क्लिष्ट वृत्तियाँ हैं ये संसार की ओर ले जाने वाली है

शैर्घ्याद्भयादभ्यासाद्वा ।। ३२।।

वृत्तिभेदा उच्यन्ते -

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाश्च ।। ३३।।

(वृत्तयः पञ्चतय्यः) ता वृत्तयः पञ्चस्तरकाः पञ्चविधाः सन्ति (क्लिष्टाः-अक्लिष्टाः-च) अथ ता एव पञ्चविधा वृत्तयः क्लिष्टाश्चाक्लिष्टाश्चापि भवन्ति। वृत्तीनां पञ्चविधत्वं योगसूत्राद् विज्ञेयं तत्र ''प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः'' (योग ०१.६) क्लेशमूलाः क्लिष्टाः संसाराभिमुखास्तद्भिन्ना ख्यातिविषया विवेकाभिमुखा अक्लिष्टा ।। ३३।।

पुनः -

तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थः ।। ३४।।

(तन्निवृत्तौ) वृत्तिनिवृत्तौ सत्याम् (उपशान्तोपरागः) उपशान्त उपरागोऽभिसम्बन्धो यस्य तथाविधः

(बंधन राग-द्वेष की ओर प्रवृत्त करने वाली है) उनसे भिन्न ख्याति विषय वाली (तत्वज्ञान विषय वाली) वृत्तियाँ विवेक-वैराग्य की ओर ले जाती हैं, वो अक्लिष्टा वृत्तियाँ है।। ३३।।

तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थः ।। ३४।।

सूत्रार्थ= वृत्तियों के रुक जाने पर भौतिक वस्तुओं से संबंध टूट जाता है, और जीवात्मा अपने का (स्वयं) अनुभव करने लगता है।

[(तन्निवृत्तौ) वृत्तिनिवृत्तौ सत्याम् (उपशान्तोपरागः) उपशान्त उपरागोऽभिसम्बन्धो यस्य तथाविधः पुरुषः (स्वस्थः) स्वस्मिन् स्थितः स्वरूपतः शुद्धो भवति] उन पाँच वृत्तियों के निवृत्त हो जाने पर सांसारिक वस्तुओं से हमारा संबंध शांत (नष्ट) हो जाएगा, इस तरह का जीवात्मा हो जाएगा जिसका सांसारिक वस्तुओं से संबंध टूट जाएगा केवल ईश्वर से संबंध जुड़ा रहेगा, फिर वह स्वस्थ स्वयं में स्थित स्वरूप से शुद्ध हो जाएगा (अर्थात जीवात्मा अपने को ठीक-ठीक जान लेगा)।। ३४।।

कुसुमवच्च मणिः ।। ३५।।

सूत्रार्थ=फूल के आश्रय में स्फटिक मणि के समान जीवात्मा वृत्तियों से सम्बद्ध हो जाने पर वृत्तियों जैसा तथा वृत्तियों से रहित होने पर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।

[(कुसुमवत्-च मणिः) कुसुमवत्-चकारादकुसुमवदपि] कुसुम के समान और बिना कुसुम के समान। **[अत्र वत्प्रत्ययेन]** सप्तम्यामुपमा तो यहाँ वत प्रत्यय में सप्तमी विभक्ति में उपमा का प्रयोग किया गया है। **[यथा जपाकुसुमे जपाकुसुमाश्रये मणिस्तदुपरागवान् भवति पुनश्चाकुसुमवत्-जपाकुसुमाश्रयापगतः स्फटिको मणिः स्वरूपतः शुद्धोऽवतिष्ठते तथा पुरुषोऽपि वृत्तेरुपरागादृक्तस्तन्निवृत्तौ शुद्धः स्वस्थो भवति]** जैसे जपा कुसुम में अर्थात् जपा कुसुम के आश्रय में (जपा कुसुम (गुड़हल) एक फूल होता है) एक मणि रख दी जाए लाल (कोई चमकीली वस्तु) वो उससे सम्बद्ध होकर वैसी ही दिखाई देती है (उसी रंग

पुरुषः (स्वस्थः) स्वस्मिन् स्थितः स्वरूपतः शुद्धो भवति ।। ३४।।

स च –

कुसुमवच्च मणिः ।। ३५।।

(कुसुमवत्-च मणिः) कुसुमवत्-चकारादकुसुमवदपि। अत्र वत्प्रत्ययेन सप्तम्यामुपमा । यथा जपाकुसुमे जपाकुसुमाश्रये मणिस्तदुपरागवान् भवति पुनश्चाकुसुमवत्-जपाकुसुमाश्रयापगतः स्फटिको मणिः स्वरूपतः शुद्धोऽवतिष्ठते तथा पुरुषोऽपि वृत्तेरुपरागाद्रक्तस्तन्निवृत्तौ शुद्धः स्वस्थो भवति ।।३५।।

करणानां वृत्तिसम्बन्धः कथं पुरुषेण सह प्रवृत्त इत्यत्रोच्यते –

पुरुषार्थं करणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात् ।। ३६।।

(करणोद्भवः पुरुषार्थम्) करणोद्भवः खलु पुरुषार्थः पुरुषप्रयोजनाय (अपि-अदृष्टोल्लासात्)

वाली प्रतीत होती है जिस रंग का फूल था) जब उस फूल के आश्रय से स्फटिक मणि को हटा दिया जाता है तो पुनः अपने स्वरूप से शुद्ध जो जाती है, तो उस चमकीली वस्तु के समान ही जीवात्मा (मणि) वृत्ति (जपाकुसुम) के समान स्वयं को समझने लगता है, और जब वृत्तियाँ समाप्त हो जाती है तो वह अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है (शुद्ध हो जाता है)।। ३५।।

करणों का जो व्यवहार करने का संबंध है, पुरुष के साथ वह कैसे आता है? इस विषय में कहते हैं-

पुरुषार्थं करणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात् ।। ३६।।

सूत्रार्थ= तेरह करण नेत्रादि की उत्पत्ति जीवात्मा के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए हुई हैं, संचित कर्मों के फल देने के लिए तैयार हो जाने से।

[(करणोद्भवः पुरुषार्थम्) करणोद्भवः खलु पुरुषार्थः पुरुषप्रयोजनाय (अपि-अदृष्टोल्लासात्) अदृष्टस्य भोगोन्मुखत्वात् सम्भवति] करणों की जो उत्पत्ति हुई वह पुरुष के प्रयोजन (भोग और अपवर्ग) को सिद्ध करने के लिए है, अदृष्ट (पूर्वकृत कर्म वह सकाम भी हो सकते हैं निष्काम भी) कर्म भोग कराने के लिए (कर्मों के फल प्रदान करने के लिए) करण तैयार करके दिये ईश्वर ने।। ३६।।

यथा –

धेनुवद् वत्साय ।। ३७।।

सूत्रार्थ= जैसे गायें बछड़े को दूध पिलाती है वैसे ही इंद्रियाँ जीवात्मा को कर्म फल भोगवाने के लिए तैयार रहती है।

[(वत्साय धेनुवत्) वत्साय यथा धेनुः प्रवर्तते दुग्धं स्रावयितुं तथैव करमं प्रवर्तते पुरुषायादृष्टभोगं प्रदातुम्] जैसे गाय अपने बछड़े को दूध पिलाती है एसे ही ये जो करण इंद्रियाँ है ये गाय के समान है और जीवात्मा बछड़ों के समान है वैसे ही ये इंद्रियाँ जीवात्मा का कर्मफल भुगाती हैं ।। ३७।।

अदृष्टस्य भोगोन्मुखत्वात् सम्भवति ।। ३६ ।।

यथा -

धेनुवद् वत्साय ।। ३७।।

(वत्साय धेनुवत्) वत्साय यथा धेनुः प्रवर्तते दुग्धं स्त्रावयितुं तथैव करणंप्रवर्तते पुरुषायादृष्टभोगं प्रदातुम् ।। ३७।।

तच्च -

करणं त्रयोदशविधमवरान्तरभेदात् ।। ३८ ।।

(करणं त्रयोदशविधम्) करणं खलु यस्योद्भवः पुरुषार्थस्तत् त्रयोदशविधं त्रयोदशप्रकारकमस्ति। कुतः (अवरान्तरभेदात्) बहिरन्तरभेदाद् बाह्याभ्यन्तरभेदात्। तत्र बुद्ध्यहंकारमनांसि त्वभ्यन्तराणि त्रीणि

करणं त्रयोदशविधमवरान्तरभेदात् ।। ३८ ।।

सूत्रार्थ= करण तेरह प्रकार के है अवरांतर भेद से, दश बाहरी एवं तीन आंतरिक होने से।

[(करणं त्रयोदशविधम्) करणं खलु यस्योद्भवः पुरुषार्थस्तत् त्रयोदशविधं त्रयोदशप्रकारकमस्ति] करण जिसकी उत्पत्ति पुरुष के प्रयोजन के लिए हुई है वे कुल तेरह प्रकार के हैं। **[कुतः (अवरान्तरभेदात्) बहिरन्तरभेदाद् बाह्याभ्यन्तरभेदात्]** (तेरह करण है उनके दो भेद कर दिये) कुछ बाह्य करण है कुछ आंतरिक करण हैं। **[तत्र बुद्ध्यहंकारमनांसि त्वभ्यन्तराणि त्रीणि करणानि किलान्तःकरणानि]** तेरह में से बुद्धि, अहंकार, मन ये तीन आभ्यंतर करण हैं, इनको निश्चय से अंतःकरण कहा जाता है, **[चक्षुर्वागादीनितु दशेन्द्रियाणि करणानि बहिष्करणानि खलूच्यन्ते]** चक्षु आदि पाँच ज्ञानेन्द्रिय और वाक् आदि पाँच कर्मेन्द्रिय कुल मिलकर दश इंद्रियाँ है ये बाहर कार्य करती हैं। **[इत्थं सर्वाणि करणानि पुरुषार्थानि त्रयोदश]** इस प्रकार से सारे के सारे करण पुरुष के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए हैं ।**[अवान्तरपाठे तु (अवान्तरभेदात्) मनसोऽवान्तरभेदाद् रूपान्तरभेदात्]** (सूत्र में कहीं -कहीं पाठ भेद है), **[त्रैविध्यं बुद्ध्यहंकारमनोरूपमन्तःकरणं तस्मात्]** अवांतर पाठ भेद होगा तो इस प्रकार से अर्थ करेंगे- मन के अवांतर भेद होने से अर्थात रूपांतर भेद होने से वो तीन प्रकार का है बुद्धि अहंकार और मनरूपी अन्तःकरण , **[यद्वाऽत्र, अवान्तरशब्दो नानार्थः]** अथवा यहाँ अवांतर का अर्थ कर लेंगे अनेक (अवांतर शब्द अनेक अर्थ को बताने वाला है), **[करणानां नानाभेदात्]** करण भिन्न-भिन्न प्रकार के है इसलिए तेरह प्रकार के करण हुए ।। ३८।।

इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात्* कुठारवत् ।। ३९ ।।

सूत्रार्थ= इंद्रियों में साधकतम इस गुण का योग होने से इंद्रियाँ करण कहलाती है, कुल्हाड़े के समान।

[(इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात्) इन्द्रियेषु साधकतमत्वसंसर्गात् तानि करणानि (कुठारवत्)

करणानि किलान्तःकरणानि, चक्षुर्वागादीनि तु दशेन्द्रियाणि करणानि बहिष्करणानि खलूच्यन्ते। इत्थं सर्वाणि करणानि पुरुषार्थानि त्रयोदश । अवान्तरपाठे तु (अवान्तरभेदात्) मनसोऽवान्तरभेदाद् रूपान्तरभेदात्, त्रैविध्यं बुद्ध्यहंकारमनोरूपमन्तःकरणं तस्मात्, यद्वाऽत्र, अवान्तरशब्दो नानार्थः, करणानां नानाभेदात् ।। ३८ ।।

परन्तु -

इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात्* कुठारवत् ।। ३९ ।।

(इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात्) इन्द्रियेषु साधकतमत्वसंसर्गात् तानि करणानि (कुठारवत्) यथा छिदायां प्रहरतो हस्तस्य संसर्गात् प्रहरन् सन् कुठारः करणत्वभाग भवति ।। ३९ ।।

पुनश्च -

यथा छिदायां प्रहरतो हस्तस्य संसर्गात् प्रहरन् सन् कुठारः करणत्वभाग भवति] इंद्रिय में एक गुण है वो साधकतम (किसी कार्य की संपन्नता में कोई महत्वपूर्ण वस्तु हो जिसके बगैर काम ही न चले वह साधकतम है) ''जैसे सब्जी काटने में निकटतम वस्तु चाकू है, वह होगा तो सब्जी कटेगी'' उसका नाम करण है , जैसे लकड़ी काटने में प्रहार करते हुए हाथ का संसर्ग होने से प्रहार करता हुआ जो कुलाहड़ा है वो कर्णत्व का भागी होता है ।। ३९ ।।

अब मन और इंद्रियों की तुलना कर रहे हैं-

द्वयोः प्रधानं मनो लोकवद् भृत्यवर्गेषु ।। ४० ।।

सूत्रार्थ= दोनों प्रकार की इंद्रियों में मन प्रमुख है, जैसे संसार में श्रमिकों का नेता प्रमुख होता है।

[(द्वयोः) बाह्याभ्यन्तरयोरिन्द्रिययोः (प्रधानं मनः) प्रधानं करणमेकादशमुभयात्मकं मनः] बाह्य और आभ्यांतर दोनों प्रकार की इंद्रियों में (दश बाह्य इंद्रियाँ एवं एक मन आभ्यांतर) इनमें ग्यारहवि (मन) इंद्रिय मुख्य है **[(लोकवत्-भृत्यवर्गेषु) यथा लोके भृत्यवर्गेषु स्वामी प्रधानो भवति]** जैसे लोक (समाज) में भृत्य (नौकर) वर्ग में प्रबन्धक (नेता) मुख्य होता है, **[अत्रापि मनसः स्वामिभूतस्य भृत्यवर्गौ द्वौ ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रयाख्यौ]** यहाँ पर भी जो मन है उसके भी दो भृत्य वर्ग हैं ज्ञानेद्रिय और कर्मेन्द्रिय इन सबका वह प्रबन्धक नेता है इसलिए वह मुख्य है।। ४० ।।

मन और इंद्रियों में मन क्यों प्रधान है? इस विषय में कारण बताते हैं-

अव्यभिचारात् ।। ४१ ।।

सूत्रार्थ= मन के बिना किसी भी इंद्रिय का कार्य सम्पन्न नहीं होता इसलिए मन प्रधान है, मन का इंद्रियों के साथ नियत संबंध होने से मन प्रधान है।

द्वयोः प्रधानं मनो लोकवद् भृत्यवर्गेषु ।।४०।।

(द्वयोः) बाह्याभ्यन्तरयोरिन्द्रिययोः (प्रधानं मनः) प्रधानं करणमेकादशमुभयात्मकं मनः (लोकवत्-भृत्यवर्गेषु) यथा लोके भृत्यवर्गेषु स्वामी प्रधानो भवति, अत्रापि मनसः स्वामिभूतस्य भृत्यवर्गौ द्वौ ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रयाख्यौ ।।४०।।

कुतो मनसः प्रधानत्वमित्यत्र हेतुरुच्यते -

अव्यभिचारात् ।।४१।।

(अव्यभिचारात्) मनसोऽव्यभिचारात्-तस्योभयात्मकत्वात् सर्वेन्द्रियवृत्तिषु व्याप्तत्वात् तदन्तरेण तेषां व्यापारभावात्। नहि किञ्चनेन्द्रियं तद् व्यभिचरति तस्मात् ।।४१।।

अन्यो हेतुः -

तथाऽशेषसंस्कारधारत्वात् ।। ४२।।

[**(अव्यभिचारात्) मनसोऽव्यभिचारात्-तस्योभयात्मकत्वात् सर्वेन्द्रियवृत्तिषु व्याप्तत्वात् तदन्तरेण तेषां व्यापारभावात्**] मन को छोड़ ही नहीं सकते (मन के विना इंद्रियों का कार्य नहीं हो सकता) मन के उभयात्मक होने से सभी इंद्रियों में इसका कार्य होने से मन के बिना इंद्रियों का व्यापार हो ही नहीं सकता। [**नहि किञ्चनेन्द्रियं तद् व्यभिचरति तस्मात्**] कोई भी इंद्रिय उसको छोडती नहीं इसलिए वह मुख्य है ।।४१।।

तथाऽशेषसंस्कारधारत्वात् ।।४२।।

सूत्रार्थ=सभी संस्कारों का आधार होने से मन इंद्रियों में प्रमुख है।

[**(तथा) तथा (अशेषसंस्कारधारत्वात्) मनसोऽशेषसंस्काराधारत्वात्**] तथा मन सभी संस्कारों का आधार होने से वह मुख्य हैं।[**मनो हि समस्तसंस्कारणामाधारोऽस्ति**] मन ही सभी संस्कारों का आधार है उस,[**यद्यत्खलु केनचिदिन्द्रियेण कर्म क्रियते तद्विषयकाः सर्वे संस्कारास्तत्र मनसि ह्याधीयन्ते तस्मान्मनः प्रधानं करणम्**] जिस-जिस इंद्रिय से जो भी कर्म किया जाता है उससे संबन्धित जितने भी संस्कार होते हैं वह सारे मन में जमा हो जाते है ।।४२।।

मन सभी संस्कारों का आधार है, इस आकांक्षा के विषय में कहते हैं-

स्मृत्याऽनुमानाच्च ।।४३।।

सूत्रार्थ= स्मृति और अनुमान से पता चलता है की मन इंद्रियों में प्रधान है।

[**(स्मृत्या) स्मृतिर्भवति, न च संस्कारमन्तरेण सा सम्भाव्यते**] जो स्मृति उत्पन्न होती है, वह

(तथा) तथा (अशेषसंस्कारधारत्वात्) मनसोऽशेषसंस्काराधारत्वात्। मनो हि समस्तसंस्कारणामाधारोऽस्ति, यद्यत्खलु केनचिदिन्द्रियेण कर्म क्रियते तद्विषयकाः सर्वे संस्कारास्तत्र मनसि ह्याधीयन्ते तस्मान्मनः प्रधानं करणम् ।।४२।।

कथं हि मनसः संस्काराधारत्वमित्याकांक्षायामुच्यते -

स्मृत्याऽनुमानाच्च ।।४३।।

(स्मृत्या) स्मृतिर्भवति, न च संस्कारमन्तरेण सा सम्भाव्यते । उक्तं हि ''आत्ममनसोः

संस्कार के बिना नहीं हो सकती। [**उक्तं हि ''आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्वप्नः, तथा स्मृतिः''**] आत्मा और मन का विशेष संयोग होना चाहिए और संस्कार भी होना चाहिए मन में तब स्वप्न होगा [**(वैशे ०९.२.६) संस्कारश्च पूर्वदृष्टविषयस्यावतिष्ठते**] संस्कार पूर्व विषय का रहता है (जो आपने पहले देखा, सुना, सोचा है उसका संस्कार बनाता है) [**(अनुमानात्-च) सति तदिन्द्रियविघातेऽपि तद्द्वारा पूर्वदृष्टविषयस्य संस्कारेण स्मृतिर्भवति**] इंद्रिय विघात (गोलक के नष्ट) होने पर भी पूर्व में देखे गए विषय के संस्कार से स्मृति तो फिर भी हो सकती है (इसलिए संस्कार मुख्य है) हि तेनानुमीयते संस्काराधारो मनो बाह्येन्द्रियेभ्यो भिन्नमिति इंद्रिय (गोलक) के नष्ट हो जाने पर भी संस्कारों और स्मृति में कोई बाधा नहीं आती क्योंकि संस्कारों का आधार इंद्रिय नहीं मन है, यदि इंद्रिय संस्कार का आधार होता तो गोलक तो नष्ट हो गया उसके नष्ट होंने पर संस्कार भी नष्ट हो जाना चाहिए और संस्कार के नष्ट होने पर स्मृति भी नष्ट हो जानी चाहिए् जबकि स्मृति तो आ रही है । इससे सिद्ध हुआ संस्कार गोलक (इंद्रिय) में नहीं मन में स्थिर होता है ।।४३।।

सम्भवेन्न स्वतः ।। ४४।।

सूत्रार्थ= स्मृति संस्कार के बिना स्वयं नहीं हो सकती।

[**(स्वतः-न सम्भवेत्) स्मृतिः खलु स्वत एव संस्कारमन्तरेण न सम्भवेत् संस्कारश्च मनसा विना न सम्भवेत्**] स्मृति स्वतः ही बिना संस्कार के नहीं हो सकती वह संभव नहीं, और संस्कार मन के बिना नहीं हो सकता।[**बाह्येन्द्रियाणां कार्यं तु विषयप्रत्यक्षीकरणमेव तस्मात्तेभ्यो भिन्नमान्तरं यद्वाऽभ्यरं करणं मनः प्रधानमिति निष्कर्षः**] बाह्य इंद्रियों का कार्य विषयों का प्रत्यक्ष करना है (फिर संस्कार कहाँ जाएगें) इसलिए इनसे भिन्न कोई दूसरा आंतरिक अथवा आभ्यांतर करण मन नामक मानना होगा ।।४४।।

आपेक्षिको गुणप्रधानभावः क्रियाविशेषात् ।। ४५।।

सूत्रार्थ= करणों (साधनों) में प्रमुख होना और गौण होना यह स्थिति उनके तुलनात्मक मूल्य के आधार पर है, अपना-अपना कार्य प्रत्येक का होने से करण तो सभी है।

संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्वप्नः, तथा स्मृतिः" (वैशे ०९.२.६) संस्कारश्च पूर्वदृष्टविषयस्यावतिष्ठते (अनुमानात्-च) सति तदिन्द्रियविघातेऽपि तद्द्वारा पूर्वदृष्टविषयस्य संस्कारेण स्मृतिर्भवति हि तेनानुमीयते संस्काराधारो मनो बाह्येन्द्रियेभ्यो भिन्नमिति ।।४३।।

स्मृतिश्च -

सम्भवेन्न स्वतः ।। ४४।।

(स्वतः-न सम्भवेत्) स्मृतिः खलु स्वत एव संस्कारमन्तरेण न सम्भवेत् संस्कारश्च मनसा विना न सम्भवेत्। बाह्येन्द्रियाणां कार्यं तु विषयप्रत्यक्षीकरणमेव तस्मात्तेभ्यो भिन्नमान्तरं यद्वाऽभ्यरं करणं मनः प्रधानमिति निष्कर्षः ।। ४४।।

अथ -

आपेक्षिको गुणप्रधानभावः क्रियाविशेषात् ।। ४५ ।।

(गुणप्रधानभावः) स एष गुणप्रधानभावः-गौणप्रधानभावः (आपेक्षिकः) अपेक्षाकृतोऽस्ति,

---

[(गुणप्रधानभावः) स एष गुणप्रधानभावः- गौणप्रधानभावः (आपेक्षिकः) अपेक्षाकृतोऽस्ति] ये जो गौण प्रधान भाव है (ग्यारह इंद्रियों में दश को गौण बताया और मन को प्रधान बताया) वह अपेक्षित हैं, करणत्वं सर्वत्र समानम् कर्णत्व सभी में समान हैं **[(क्रियाविशेषात्) तत्तद्व्यापारविशेषाद् विशिष्टव्यापारात्]** गौड़ता और मुख्यता वस्तु के कार्य के आधार पर है ।। ४५ ।।

तत्कर्मार्जितत्वात् तदर्थमभिचेष्टा लोकवत् ।। ४६ ।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा द्वारा कर्म किए जाने पर उनके फल के रूप में करण जीवात्मा को मिले हैं इसलिए वे करण जीवात्मा के लिए कार्य करते हैं, कार (वाहन) खरीदने के समान।

[(तत्कर्मार्जितत्वात्) पुरुषकर्मार्जितत्वात् करणस्य पुरुषकर्मानुसारतः सम्पद्यमानत्वात् (तदर्थम्-अभिचेष्टा) पुरुषार्थसाधनाय करणाभिचेष्टाकरणव्यापारो भवति] पुरुष ने कर्म किए थे उन कर्मों का ये फल है की उसे मन-इंद्रिय दिये गए, पुरुष कर्म के अनुसार ही उसे ये प्राप्त हुए हैं इसलिए पुरुष का प्रयोजन (भोग और अपवर्ग) सिद्ध करने के लिए इंद्रियों का व्यापार होता है **[(लोकवत्) यता लोके येन पुरुषेण ऋयं प्रदाय यानादिकं करणं गृहीतं तस्य पुरुषस्यार्थसाधनाय हि तद् भवति]** जैसे संसार में जिस पुरुष के द्वारा पैसा देकर के वाहन खरीद लिया वह साधन (वाहन) उसका प्रयोजन सिद्ध करने के लिए होता है।।४६ ।।

समानकर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवत्-लोकवत् ।। ४७।।

सूत्रार्थ= सभी तेरह करणों में कर्णत्व समान होने पर भी बुद्धि की प्रधानता है, जैसे संसार में मुख्यमंत्री की प्रधानता है।

करणत्वं सर्वत्र समानम् (क्रियाविशेषात्) तत्तद्व्यापारविशेषाद् विशिष्टव्यापारात् ।। ४५ ।।

तत्कर्मार्जितत्वात् तदर्थमभिचेष्टा लोकवत् ।। ४६ ।।

(तत्कर्मार्जितत्वात्) पुरुषकर्मार्जितत्वात् करणस्य पुरुषकर्मानुसारतः सम्पद्यमानत्वात् (तदर्थम्-अभिचेष्टा) पुरुषार्थसाधनाय करणाभिचेष्टाकरणव्यापारो भवति (लोकवत्) यता लोके येन पुरुषेण क्रयं प्रदाय यानादिकं करणं गृहीतं तस्य पुरुषस्यार्थसाधनाय हि तद् भवति ।। ४६ ।।

पुनश्च -

समानकर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवत्-लोकवत् ।। ४७ ।।

(समानकर्मयोगे) पुरुषार्थाय पुरुषप्रयोजनाय सर्वकरणानां प्रयोजनसाधनकर्म- योगः समान एव, तथापि (बुद्धेः प्राधान्यम्) मनसोऽपेक्षया बुद्धेः प्राधान्यमस्ति तस्या महत्त्वात् (लोकवत्) यथा लोके यः खलु भवत्यन्तरंगतमस्तस्यैव प्राधान्यं भवति। राजप्रयोजनाय राजसभायां मुख्यराजपुरुषाः प्राधान्यं भजन्ते, तेषामपि मध्ये राजमन्त्री सर्वप्राधान्यभाग् भवति । तथैवात्र बाह्येन्द्रियाणां मध्ये प्राधान्यं मनस्तदपेक्षया च बुद्धेःप्राधान्यमिति । लोकवत्, इति द्विरुक्तिरध्यायपरिसमाप्तिसूचिका ।। ४७ ।।

सांख्यदर्शने समाप्तो द्वितीयोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्य पतेः ।।

[**(समानकर्मयोगे) पुरुषार्थाय पुरुषप्रयोजनाय सर्वकरणानां प्रयोजनसाधनकर्म- योगः समान एव**] पुरुष का प्रयोजन सिद्ध करने के लिए सभी करणों का प्रयोजन साधन कर्म समान है, [**तथापि (बुद्धेः प्राधान्यम्) मनसोऽपेक्षया बुद्धेः प्राधान्यमस्ति तस्या महत्त्वात्**] तथा मन की अपेक्षा से बुद्धि की प्रधानता है उसका महत्व अधिक होने से [**(लोकवत्) यथा लोके यः खलु भवत्यन्तरंगतमस्तस्यैव प्राधान्यं भवति**] जैसे संसार में जो व्यक्ति मुख्यमंत्री के सबसे निकट होता है (जैसे पी ०ए ०=निजी सहायक) उसके नीचे अन्य अधिकारी आदि फिर उनके अधीनस्थ और भी अधिकारी आजाते हैं लेकिन मुख्यमंत्री के सबसे निकटतम निजी सहायक ही होता है उसकी प्रधानता अधिक रहती है अन्य अधिकारियों की अपेक्षा ऐसे ही जीवात्मा का निजी सहायक (निकटतम)बुद्धि होता है मन बाद में है तो बुद्धि की प्रधानता अधिक महत्वपूर्ण है।[**राजप्रयोजनाय राजसभायां मुख्यराजपुरुषाः प्राधान्यं भजन्ते, तेषामपि मध्ये राजमन्त्री सर्वप्राधान्यभाग् भवति**] राज्य प्रशासन सिद्धि के लिए राजसभा में मुख्य राज पुरुष ''विधायक'' जनता की अपेक्षा मुख्य होते हैं, उन सबमें जो मुख्यमंत्री होता है वह अधिक प्रधान होता है। [**तथैवात्र बाह्येन्द्रियाणां मध्ये प्राधान्यं मनस्तदपेक्षया च बुद्धेःप्राधान्यमिति**] उसी प्रकार से यहाँ बाह्य इंद्रियों के बीच में मन की प्रधानता है, और मन की प्रधानता से भी बुद्धि की प्रधानता अधिक है। [**लोकवत्, इति द्विरुक्तिरध्यायपरिसमाप्तिसूचिका**] सूत्र में लोकवत् शब्द दो बार पढ़ा इसका अर्थ है की अध्याय पूरा हो गया ।। ४७ ।।

सांख्यदर्शने समाप्तो द्वितीयोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्य पतेः ।।

।।ओ३म्।।

सांख्यदर्शनम्

ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्

तत्र

तृतीयोऽध्यायः

भाष्य विस्तार - पूज्य स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक

(निदेशक- दर्शन योग महाविद्यालय)

तृतीयोऽध्यायः

अविशेषाद् विशेषारम्भः ।।१।।

(अविशेषात्) सामान्यधर्मवतः-स्थूलं प्रति कारणतया सामान्यं सम्बन्धं प्रवर्तयतो महदादितन्मात्रपर्यन्तगणात् (विशेषारम्भः) विशेषाणां विशिष्टरूपेण व्यक्तानां पृथिव्यादीनां स्थूलभूतानामुत्पादो भवति ।।१।।

तस्माच्छरीरस्य ।।२।।

(तस्मात्) पञ्चस्थूलभूतगणात् (शरीरस्य) स्थूलशरीरस्योत्पादो भवति ।।२।।

तद्बीजात् संसृतिः ।।३।।

(तद्बीजात्) तस्य शरीरस्य बीजान्महत्तत्त्वादितन्मात्रपर्यन्तादविशेषगणात् साशयाल्लिंगशरीररूपात् (संसृतिः) संसरणं देहाद्-देहान्तरगमनं भवति ''योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ।'' (मनु० ६.६३) ।।३।।

कदापर्यन्तं तद्बीजं महत्तत्त्वादिकं प्रवर्तते-इत्याकांक्षायामाह -

---

तृतीयोऽध्यायः

अविशेषाद् विशेषारम्भः ।। १ ।।

सूत्रार्थ= पाँच तन्मात्राओं से पाँच स्थूलभूतों की उत्पत्ति होती है।

[(**अविशेषात्**) **सामान्यधर्मवतः-स्थूलं प्रति कारणतया सामान्यं सम्बन्धं प्रवर्तयतो महदादितन्मात्रपर्यन्तगणात्**] जो सामान्य धर्म वाले हैं स्थूल पदार्थों के प्रति कारण के रूप से सामान्य संबंध रखते हुए महत से लेकर तन्मात्रा पर्यंत जो वो पदार्थ थे उनमें से जो स्थूल के प्रति संबंध रखते है वे हैं पाँच उन पाँच में से (तन्मात्राओं) [(**विशेषारम्भः**) **विशेषाणां विशिष्टरूपेण व्यक्तानां पृथिव्यादीनां स्थूलभूतानामुत्पादो भवति**] जो विशेष रूप से व्यक्त हुए पृथ्वी आदि पाँच स्थूलभूत अच्छी प्रकार प्रकट हुए उनकी उत्पत्ति होती है ।।१।।

तस्माच्छरीरस्य ।। २ ।।

सूत्रार्थ- उन पाँच स्थूल भूतों से स्थूल शरीर की उत्पत्ति होती है।

[(**तस्मात्**) **पञ्चस्थूलभूतगणात्** (**शरीरस्य**) **स्थूलशरीरस्योत्पादो भवति**] पांचस्थूल भूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) से यह स्थूल शरीर बना ।। २ ।।

तद्बीजात् संसृतिः ।। ३ ।।

सूत्रार्थ= स्थूल शरीर से भिन्न सूक्ष्म शरीर के माध्यम से जीवात्मा संस्कार सहित एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन करता है।

आविवेकाच्च प्रवर्तनमविशेषाणाम् ।। ४।।

(च) अथ च (आविशेषाणाम्) महत्तत्त्वाहंकारतन्मात्राणां बीजभूतानाम् (प्रवर्तनम्) प्रवृत्तिः स्थूलशरीरनिर्माणाय (आविवेकात्) यावद् विवेको न जायेत तावद् भवति सति विवेके निवृत्तिरित्यर्थः ।।४।।

अथ च -

उपभोगादितरस्य ।।५।।

(इतरस्य) अविशेषेभ्यो महदादिभ्यो लिंगदेहरूपेभ्य इतरस्य विशेषस्य स्थूलशरीरस्य प्रवर्तनं वर्तमानत्वम् (उपभोगात्) उपभोगहेतोर्भवतियावत्तस्योपभोगस्तावदेव स प्रवर्ततेऽवतिष्ठते, किन्तु लिंगदेहस्तु यावद् विवेको न जायेत तावत् तिष्ठत्येव नहि स्थूलशरीरेण नष्टेन सह तस्य विनाशो भवति ।। अपितु -

---

[(तद्बीजात्) तस्य शरीरस्य बीजान्महत्तत्त्वादितन्मात्रपर्यन्तादविशेषगणात् साशयाल्लिंगशरीररूपात्] उस शरीर के बीज से ''महतत्व से लेकर तन्मात्रा पर्यंत'' (ये १८ पदार्थ है इन सबका नाम अविशेष है) इस अविशेष पदार्थ समुदाय से आशय (संस्कार) सहित जो लिंग रूपी बीज (सूक्ष्म शरीर) है उससे **[(संसृतिः) संसरणं देहाद्-देहान्तरगमनं भवति ''योनिकोटिसहस्त्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः]** जीवात्मा जब एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाता है उसमें यह सूक्ष्म शरीर साथ जाता है यह तब तक आत्मा का साथ नहीं छोडता जब तक आत्मा का मोक्ष न हो जाए अथवा सृष्टि प्रलय न हो जाए''अन्यथा करोड़ों जन्मों तक यही इंद्रियाँ हर जन्म में आत्मा के साथ रहती हैं, स्थूल शरीर बदलते रहेंगे, सूक्ष्म नहीं ।'' **(मनु० ६.६३)** ।।३।।

कदापर्यन्तं तद्बीजं महत्तत्त्वादिकं प्रवर्तते-इत्याकांक्षायामाह - वो जो बीज है महत्त्व आदि सूक्ष्म शरीर है वह कब तक चलता रहेगा, इस आकांक्षा पर कहते हैं-

आविवेकाच्च प्रवर्तनमविशेषाणाम् ।।४।।

सूत्रार्थ= सूक्ष्म शरीरों का देहांतर गमन जब तक विवेक तत्वज्ञान (मोक्ष) न हो जाए तब तक चलता रहेगा।

[(च) अथ च (आविशेषाणाम्) महत्तत्त्वाहंकारतन्मात्राणां बीजभूतानाम् (प्रवर्तनम्) प्रवृत्तिः स्थूलशरीरनिर्माणाय (आविवेकात्) यावद् विवेको न जायेत तावद् भवति सति विवेके निवृत्तिरित्यर्थः] ये जो महतत्व अहंकार तन्मत्राएं आदि १८ सूक्ष्म पदार्थ है इनका स्थूल शरीर निर्माण के लिए जो प्रवृत्ति है, ''बार-बार जीवात्मा को अगले जन्म में ले जाना'' ये तब तक चलेगा जब तक तत्वज्ञान नहीं होगा तब तक हमें बार-बार अगले जन्म में ले जाते रहेंगे ।।४।।

अथ च -

उपभोगादितरस्य ।।५।।

सम्प्रति परिष्वक्तो * द्वाभ्याम् ।।६।।

(सम्प्रति) पूर्वसूत्रतः प्रकृत उपभोगोऽपेक्ष्यते । उपभोगकाले (द्वाभ्यां परिष्वक्तः) स्थूलसूक्ष्मशरीराभ्यां परिवृतो भवति जीवात्मा ।।६।।

तत्र शरीरयोः -

मातापितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न ।।7।।

(स्थूलं प्रायशः-मातापितृजम्) स्थूलं शरीरं प्रायशो मातापितृजं भवति प्रायशः कथनेनारम्भसृष्टौ तदप्यमातापितृजमयोनिजं भवति तथा सम्प्रति च स्वेदजोद्भिज्जशरीरं चामातापितृजमयोनिजं भवति हि (इतरत्-न) स्थूलाद्भिन्नं सूक्ष्मशरीरं मातापितृजं न भवति ।।7।।

[(इतरस्य) अविशेषेभ्यो महदादिभ्यो लिंगदेहरूपेभ्य इतरस्य विशेषस्य स्थूलशरीरस्य प्रवर्तनं वर्तमानत्वम् (उपभोगात्) उपभोगहेतोर्भवतियावत्तस्योपभोगस्तावदेव स प्रवर्ततेऽवतिष्ठते] महतत्व आदि जो लिंग देह रूपी जो १८ तत्व हैं उनसे जो भिन्न है स्थूल शरीर है उसका जीवित रहना, टिके रहना कब तक होगा जब तक उपभोग (खाना पीना) रहेगा तब तक जीवित रहेगा, **[किन्तु लिंगदेहस्तु यावद् विवेको न जायेत तावत् तिष्ठत्येव नहि स्थूलशरीरेण नष्टेन सह तस्य विनाशो भवति]** स्थूल शरीर तो ७०-८०-१०० वर्षों तक चलता रहेगा जब तक भोजन पानी है, परंतु लिंग शरीर तो जब तक रहेगा जब तक तत्वज्ञान न हो जाए, ये स्थूल शरीर भले ही मर जाए सूक्ष्म शरीर नहीं मरेगा ।।

अपितु -

सम्प्रति परिष्वक्तो * द्वाभ्याम् ।।६।।

सूत्रार्थ= उपभोग काल में जीवात्मा स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों से युक्त रहता है ।

[(सम्प्रति) पूर्वसूत्रतः प्रकृत उपभोगोऽपेक्ष्यते] पूर्वसूत्र से जो प्रकरण में बात चल रही है उपभोग की वह यहाँ अपेक्षित है। **[उपभोगकाले (द्वाभ्यां परिष्वक्तः) स्थूलसूक्ष्मशरीराभ्यां परिवृतो भवति जीवात्मा]** उपभोगकाल में स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों से जीवात्मा युक्त रहता है।।६।।

तत्र शरीरयोः -

मातापितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न ।।७।।

सूत्रार्थ= स्थूल शरीर अधिकतर माता-पिता से उत्पन्न होता है, सूक्ष्म शरीर से नहीं।

[(स्थूलं प्रायशः-मातापितृजम्) स्थूलं शरीरं प्रायशो मातापितृजं भवति] स्थूल शरीर जो दिख रहा है प्रायः वह मातापिता से उत्पन्न होता है, **[प्रायशः कथनेनारम्भसृष्टौ तदप्यमातापितृजमयोनिजं भवति]** प्रायशः इसलिए कहा की जब ईश्वर सृष्टि को आरम्भ करता है मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि की उत्पत्ति ''अयोनिजं'' मातापिता से नहीं बनाता धरती के गर्भ से उत्पन्न करता है **[तथा सम्प्रति च स्वेदजोद्भिज्जशरीरं चामातापितृजमयोनिजं भवति हि (इतरत्-न) स्थूलाद्भिन्नं सूक्ष्मशरीरं मातापितृजं न भवति]** वर्तमान में भी बहुत से शरीर एसे हैं जो बिना मातापिता के होते हैं जैसे जुएं-लीख पसीने से पैदा हो जाते हैं, धरती को

तयोः स्थूलसूक्ष्मशरीरयोः कस्य सुखदुःखभोगोपपत्तिरित्युच्यते -

पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वं भोगादेकस्य नेतरस्य ।। ८ ।।

(पूर्वोत्पत्तेः-एकस्य भोगात्) पूर्वा सर्गादावुत्पत्तिर्यस्य तथाभूतस्य पूर्वोत्पत्तिमत एकस्य लिंगशरीरस्य भोगात् सुखदुःखभोगसम्भवात् (तत्कार्यत्वम्) सुखदुःखभोग-कार्यत्वं सुखदुःखप्रतीयमानत्वं भवति (इतरस्य न) स्थूलशरीरस्य न भवति, मृतशरीरेऽदर्शनात् ।।८।।

सूक्ष्मशरीरं च -

सप्तदशैकं लिंगम् ।। ९ ।।

अत्र वक्तव्यम् - अनिरुद्धवृत्तौ सूत्रार्थोऽष्टादशपदार्थपरः कृतस्तत्र लिंगशरीरमष्टादशपदार्थकं

फाड़कर वृक्ष-वनस्पति आदि पैदा होते हैं, माता-पिता वाली पद्धति से स्थूल शरीर तो पैदा हो जाता है परंतु सूक्ष्म शरीर बिना मातापिता के सृष्टि के आरंभ में प्रकृति से बनता है ।। ७।।

तयोः स्थूलसूक्ष्मशरीरयोः कस्य सुखदुःखभोगोपपत्तिरित्युच्यते- जीवात्मा को जो सुख दुःख की प्राप्ति होती है वह दोनों शरीरों में से कौन सा शरीर कराता है? इसका उत्तर देते हैं-

पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वं भोगादेकस्य नेतरस्य ।।८।।

सूत्रार्थः-

[(पूर्वोत्पत्तेः-एकस्य भोगात्) पूर्वा सर्गादावुत्पत्तिर्यस्य तथाभूतस्य पूर्वोत्पत्तिमत एकस्य लिंगशरीरस्य भोगात् सुखदुःखभोगसम्भवात् (तत्कार्यत्वम्) सुखदुःखभोग-कार्यत्वं सुखदुःखप्रतीयमानत्वं भवति] जिसकी उत्पत्ति सृष्टि के आरम्भ में हुई थी उस प्रकार का जो पूर्वोक्त उत्पत्तिमत वाला था उस दो में से एक लिंग शरीर का सुख दुःख भोग संभव है, सूक्ष्म शरीर से ही जीवात्मा को दुःख की प्राप्ति होती है उसी में यह क्षमता है **[(इतरस्य न) स्थूलशरीरस्य न भवति, मृतशरीरेऽदर्शनात्]** स्थूल शरीर का यह कार्य नहीं हैं कि जीवात्मा को सुख दुःख की अनुभूति करा सके, मृत शरीर में यह जीवात्मा को सुख दुःख की अनुभूति नहीं करा सकता।। ८।।

सूक्ष्मशरीरं च -

सप्तदशैकं लिंगम् ।। ९ ।।

सूत्रार्थ= सत्रह और एक अठारह इस प्रकार का अठारह पदार्थों का समुदाय सूक्ष्म शरीर कहलाता है।

अत्र वक्तव्यम् - यहाँ इस सूत्र के संबंध के कुछ विशेष कहना चाह रहे हैं-

[अनिरुद्धवृत्तौ सूत्रार्थोऽष्टादशपदार्थपरः कृतस्तत्र] अनिरुद्धवृत्ति में सूत्र का अर्थ अठारह पदार्थों के अनुसार किया है (अर्थात उन्होंने ये स्वीकार किया है कि सूक्ष्म शरीर में अठारह पदार्थ होते हैं) **[लिंगशरीरमष्टादशपदार्थकं मतम्]** अपने भाष्य में उन्होने लिंग शरीर के अठारह पदार्थ माने हैं [**''सप्तदश**

मतम् ''सप्तदश च एकञ्च अष्टादश तैः लिंगं सूक्ष्मदेहः उत्पद्यते। बुद्ध्यहंकारमनांसि पञ्च सूक्ष्मभूतानि दश इन्द्रियाणीति'' (अनिरुद्धः) विज्ञानभिक्षुभाष्येऽनिरुद्धकृतोऽर्थः खण्डितः ''न तु सप्तदशमेकञ्चेत्यष्टादशतया व्याख्येयम्'' (विज्ञानभिक्षुः) परन्तु विज्ञानभिक्षुभाष्येऽपि पदार्थास्तु तथैवाष्टादश मताः सूक्ष्मशरीरस्य केवलमहंकारस्य बुद्धावन्तर्भावं प्रदर्श्य (''एकादशेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणि बुद्धिश्चेति सप्तदश, अहंकारस्य बुद्धावेवान्तर्भावः।'' (विज्ञानभिक्षुः) किमेतेन कथनप्रकारेण पदार्थास्तु तथैवाष्टादशात्रापि स्वीकृताः परन्तु न सरलसरण्या-सारल्येन नासिका न गृहीता किन्तु वक्रतामवलम्ब्य पृष्ठतो हस्तं परिभ्राम्य गृहीता । अहंकारस्तु सांख्यपरिगणिते पञ्च विंशति गडे स्वतन्त्रः पदार्थः, कुतो हि तस्य बुद्धावन्तर्भावः कल्प्यते। अन्यैः स्वामिहरिप्रसादादिभाष्यकारैरपि तथैवाष्टादशपदार्थान् स्वीकृत्यापि साहंकारा बुद्धिरिति बुद्धावहंकारस्यान्तर्भावं प्रदर्श्यार्थो विहितः। सैषा

च एकञ्च अष्टादश तैः लिंगं सूक्ष्मदेहः उत्पद्यते] सत्रह और एक अठारह इस प्रकार से अठारह पदार्थों से सूक्ष्म देह उत्पन्न होता है। [**बुद्ध्यहंकारमनांसि पञ्च सूक्ष्मभूतानि दश इन्द्रियाणीति''**] बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच सूक्ष्मभूत और दश इंद्रियाँ इन अठारह पदार्थों का समुदाय सूक्ष्म शरीर हैं [**(अनिरुद्धः) विज्ञानभिक्षुभाष्येऽनिरुद्धकृतोऽर्थः खण्डितः**] विज्ञानभिक्षु भाष्य ने अनिरुद्धवृत्ति का खंडन किया है [**''न तु सप्तदशमेकञ्चेत्यष्टादशतया व्याख्येयम्''**] सत्रह और एक अठारह ऐसी व्याख्या नहीं करनी चाहिए [**(विज्ञानभिक्षुः) परन्तु विज्ञानभिक्षुभाष्येऽपि पदार्थास्तु तथैवाष्टादश मताः सूक्ष्मशरीरस्य**] परंतु विज्ञान भिक्षु भाष्य में भी पदार्थ तो उसी तरह से अठारह ही माने हैं [**केवलमहंकारस्य बुद्धावन्तर्भावं प्रदर्श्य**] (अठारह नहीं सत्रह मानिए सूत्र में ''सप्तदश'' शब्द है जब सत्रह गिने तो अहंकार बच गया, तो इसका समाधान किया) अहंकार को बुद्धि के अंतर्गत स्वीकार कर लिया (अहंकार का बुद्धि में अंतर्भाव प्रदर्शित कर दिया) [**''एकादशेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणि बुद्धिश्चेति सप्तदश, अहंकारस्य बुद्धावेवान्तर्भावः**] ग्यारह इंद्रियाँ, पाँच तन्मात्राए और बुद्धि ये सत्रह हो गए जो अहंकार था उसको बुद्धि में अंतर्भाव मान लिया।''[**(विज्ञानभिक्षुः) किमेतेन कथनप्रकारेण पदार्थास्तु तथैवाष्टादशात्रापि स्वीकृताः**] ऐसे कथन से क्या लाभ हुआ जो विज्ञानभिक्षु ने कहा पदार्थ तो अनिरुद्ध के तरह इनहोने भी तो अठारह ही माने हैं। [**परन्तु न सरलसरण्या-सारल्येन नासिका न गृहीता किन्तु वक्रतामवलम्ब्य पृष्ठतो हस्तं परिभ्राम्य गृहीता**] अनिरुद्ध ने सीधे सीधे अठारह पदार्थ माने इनहोने घूमा फिरा के अठारह मान लिए, नाक सीधे सीधे पकड़ो अथवा पीछे से हाथ घूमा के पकड़ो बात बराबर है। [**अहंकारस्तु सांख्यपरिगणिते पञ्च विंशति गडे स्वतन्त्रः पदार्थः, कुतो हि तस्य बुद्धावन्तर्भावः कल्प्यते**] अहंकार तो सांख्य में जो पच्चीश पदार्थ बताए है उनमें स्वतंत्र पदार्थ है उसका बुद्धि में अंतर्भाव कैसे हो जाएगा? (बकरी अलग पशु है गधा अलग पशु है, बकरी में गधे का अंतर्भाव कैसे हो जाएगा)। [**अन्यैः स्वामिहरिप्रसादादिभाष्यकारैरपि तथैवाष्टादशपदार्थान् स्वीकृत्यापि साहंकारा बुद्धिरिति बुद्धावहंकारस्यान्तर्भावं प्रदर्श्यार्थो विहितः**] अन्य जो स्वामी हरिप्रसाद आदि भाष्यकार हैं उन्होने भी अठारह पदार्थ स्वीकार किए हैं अहंकार सहित बुद्धि है अहंकार का बुद्धि में अंतर्भाव मान लिया और इस प्रकार से अठारह पदार्थ स्वीकार कर लिए । [**सैषा कथनप्रक्रिया सांख्यपरिगणनप्रकारात् सूत्रपदेभ्यश्च विरुद्धाऽस्ति**] इस प्रकार से जो कथन कि प्रक्रिया है जैसा ये सब मानते है, यह कथन सांख्य कि गणना प्रकार

कथनप्रक्रिया सांख्यपरिगणनप्रकारात् सूत्रपदेभ्यश्च विरुद्धाऽस्ति। अथ च विज्ञानभिक्षुभाष्ये सूत्रस्थम् ''एकम्'' इति पदमाश्रित्य सर्वेषां लिंगशरीरमेकमित्यपि प्रतिपादितं तदपि न युक्तं यत उक्तं हि चतुर्थे सूत्रे 'आविवेकाच्च प्रवनर्तमविशेषाणाम्' (४) विवेकपर्यन्तमेव लिंगशरीरं तिष्ठति येन पुनर्जन्मार्थं देहान्तरे जीवात्मा संसरति तथा च वेदान्तदर्शनेऽपि ''तदापीतेः संसारव्यपदेशात्'' (वेदा० ४.२.८) प्रत्येकस्य सूक्ष्मशरीरं पृथक् तच्च यावन्मोक्षो न जायते तावत्प्रवर्तते। अस्तु। अत्र सूत्रेऽष्टादशपदार्थास्तु सर्वैरपि भाष्यकारैर्लिंगशरीरस्याभिमताः, सप्तदशत्वं कथनमात्रमहंकारस्य बुद्धावन्तर्भावं प्रदर्श्य । तस्मात्सारल्यमवलम्ब्य सूत्रार्थेन भवितव्यमित्येवास्माकमभीष्टं तथैव मत्वेदानीमर्थोविधीयते -

(सप्तदश-एकं लिंगम्) पञ्च तन्मात्राणि मनःसहितान्येकदाशेन्द्रियाण्यहंकारश्च सप्तदश तथैकं लिंगं महत्तत्त्वं बुद्धिरित्यर्थः । लिंगशब्देन महत्तत्त्वमभिप्रेयते ''विशेषाविशेषलिंगमात्रालिंगानि

प्रक्रिया और सूत्र से भी विरुद्ध है ।[**अथ च विज्ञानभिक्षुभाष्ये सूत्रस्थम् ''एकम्'' इति पदमाश्रित्य सर्वेषां लिंगशरीरमेकमित्यपि प्रतिपादितं तदपि न युक्तं**] और उनके भाष्य में एक गलती और है सूत्र में जो शब्द है ''एकं'' इस एकं शब्द को आधार बनाकर उन्होने इस बात की स्थापना की है अपने भाष्य में कि सभी जीवात्माओं का सूक्ष्म शरीर एक ही है [**यत उक्तं हि चतुर्थे सूत्रे 'आविवेकाच्च प्रवनर्तमविशेषाणाम्''**] क्योंकि चौथे सूत्र में ये बात कही जा चुकी है ''सूक्ष्म शरीरों का प्रवर्तन अर्थात देहांतर्गमन जबतक होता तबतक मोक्ष अथवा प्रलय न हो जाए'' [(४) **विवेकपर्यन्तमेव लिंगशरीरं तिष्ठति येन पुनर्जन्मार्थं देहान्तरे जीवात्मा संसरति**] विवेक पर्यंत ही जब तक तत्वज्ञान न हो जाए तब तक ही लिंग शरीर रहता है जिससे जीवात्मा अगले अगले शरीर में गमन करता रहता है [**तथा च वेदान्तदर्शनेऽपि ''तदापीतेः संसारव्यपदेशात्''**] और ऐसा ही वेदान्त दर्शन में भी बताया गया है-वो जो सूक्ष्म शरीर है मोक्ष होने तक हर जन्म में चलता रहता है और जब मोक्ष हो जाएगा तब छुट जाएगा [**(वेदा० ४.२.८) प्रत्येकस्य सूक्ष्मशरीरं पृथक तच्च यावन्मोक्षो न जायते तावत्प्रवर्तते**] इस सूत्र में बताया गया है कि प्रत्येक जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर अलग अलग है जब तक मोक्ष नहीं हो जाएगा तब तक वो अगले अगले जन्म तक चलता रहेगा। [**अस्तु। अत्र सूत्रेऽष्टादशपदार्थास्तु सर्वैरपि भाष्यकारैर्लिंगशरीरस्याभिमताः**] अब यहाँ सूत्र क व्याख्या में अठारह पदार्थ तो सभी भाष्यकारों के द्वारा सूक्षम शरीर के स्वीकार किए गए हैं, [**सप्तदशत्वं कथनमात्रमहंकारस्य बुद्धावन्तर्भावं प्रदर्श्य**] सत्रह कहना तो कथनमात्र ही है अहंकार को बुद्धि के अंतर्गत मानना। [**तस्मात्सारल्यमवलम्ब्य सूत्रार्थेन भवितव्यमित्येवास्माकमभीष्टं**] इसलिए हमको तो यह अभीष्ट है कि सरलता के आधार पर सूत्र का अर्थ होना चाहिए [**तथैव मत्वेदानीमर्थोविधीयते -**] सरलता के आधार पर ही सूत्र का अर्था होना चाहिए ऐसा मानकर के हम अर्थ करते है-

[**(सप्तदश-एकं लिंगम्) पञ्च तन्मात्राणि मनःसहितान्येकदाशेन्द्रियाण्यहंकारश्च सप्तदश तथैकं लिंगं महत्तत्त्वं बुद्धिरित्यर्थः**] सूत्रकार ने जैसे शब्द रखे हैं ''सप्तदश-एकं'' सत्रह और एक लिंग तो सत्रह में तो पाँच तन्मात्राए, मन सहित एकादश इंद्रियाँ, अहंकार और एक अठारहवां पदार्थ महतत्व हैं जिसे लिंग मात्र कहते हैं इस प्रकार से अठारह पदार्थ हैं। [**लिंगशब्देन महत्तत्त्वमभिप्रेयते**] सूत्र के इस लिंग शब्द से महतत्व अभिप्रेत हैं इसमें प्रमाण दिया- [**''विशेषाविशेषलिंगमात्रालिंगानि गुणपर्वाणिलिंगमात्रं महत्तत्त्वम्'' (योग०**

गुणपर्वाणिलिंगमात्रं महत्तत्त्वम्'' (योग० २.१९ व्यासः) कतं हि पृथक्-पृथक निर्देशः 'सप्तदश' पुनः 'एकं लिंगम्' कथं न 'अष्टादश' इत्येवोच्येत । तत्र लिंगस्य महत्तत्त्वस्य प्राधान्यप्रदर्शनाय, यदिदमत्र सूक्ष्मशरीरे प्रमुखं लिंगं महत्तत्त्वं तदेव प्रमुखं लिंगमाश्रित्य हीदं लिंगशरीरमुच्यते । यथा हि पञ्चभूतेषु सर्वस्थूला पृथिवी प्राधान्येन तस्मात् पञ्चभूतनिमित्तकमपि शरीरं स्थूलशरीरं पार्थिवमुच्यते तत्र पृथिवीप्राधान्यात् । तथैवात्र 'एकं लिंगम्' इति प्राधान्यमवलम्ब्य पृथक निर्देशादिदं लिंगशरीरम् यत्खलु वचनमुद्धृतं विज्ञानभिक्षुभाष्ये ''कर्मात्मा पुरुषो योऽसौ बन्धमोक्षैः प्रयुज्यते । ससप्तदशकेनापि राशिना युज्यते च सः ।।'' कुत्रत्यमिदं वचनमिति तु न सूचितं तत्प्रामाणिकशास्त्रस्याप्रामाणिकस्येति न ज्ञायते । तथापि तथाभूतग्रन्थस्यापि वचनेऽस्मिन् न विज्ञानभिक्षुभाष्य पुष्टिर्भवति यथा विज्ञानभिक्षुणा सूत्रार्थमन्यथा कुर्वताऽपि संगृहीता ह्यष्टादश पदार्था लिंगशरीरस्य तथैवात्र वचनेऽपि प्रतिभाति पदार्थाष्टादशत्वम् ''ससप्तदशकेन राशिना कर्मात्मा पुरुषः'' अत्र, ससप्तदशको राशिः, पुनस्तेन सह कर्मात्मा पुरुषः-अहंकारयुक्तो जीव उक्तः । ''निर्गुणत्वात् तदसम्भवादहंकारधर्मा ह्येते'' (सांख्य० ६.६२) अहंकारः प्रक्रियते पुनः ''विशिष्टस्य जीवत्वम्...'' (सांख्य० ६.६३) अहंकारविशिष्ट आत्मा जीव पश्चात्

२.१९ व्यासः) कतं हि पृथक्-पृथक निर्देशः 'सप्तदश' पुनः 'एकं लिंगम्' कथं न 'अष्टादश' इत्येवोच्येत] एक शंका उठाई है-ऐसा अलग अलग कथन क्यों किया? सत्रह और एक अठारह । सीधा ही क्यों नहीं कहा कि अठारह पदार्थ हैं सूक्ष्म शरीर में- इसका उत्तर देते हैं -। **[तत्र लिंगस्य महत्तत्त्वस्य प्राधान्यप्रदर्शनाय]** सूक्ष्म शरीर में (तेरह करणों में) मुख्यता बुद्धि की है इसलिए प्रधानता के कारण अलग से कह दिया, **[यदिदमत्र सूक्ष्मशरीरे प्रमुखं लिंगं महत्तत्त्वं तदेव प्रमुखं लिंगमाश्रित्य हीदं लिंगशरीरमुच्यते]** जो इस सूक्ष्म शरीर में मुख्य पदार्थ है लिंग अर्थात महतत्व उसी लिंग (बुद्धि) को आश्रित करके इसको लिंग शरीर कहा जाता है। **[यथा हि पञ्चभूतेषु सर्वस्थूला पृथिवी प्राधान्येन तस्मात् पञ्चभूतनिमित्तकमपि शरीरं स्थूलशरीरं पार्थिवमुच्यते तत्र पृथिवीप्राधान्यात्]** जैसे पाँच स्थूलभूतों में स्थूल पदार्थ पृथ्वी है और ये जो स्थूल शरीर बना है यह पाँच स्थूल भूतों से मिलकर बना है, परंतु इसमें प्रधानता पृथ्वी की है इसलिए इसे पार्थिव कहा जाता है। **[तथैवात्र 'एकं लिंगम्' इति प्राधान्यमवलम्ब्य पृथक निर्देशादिदं लिंगशरीरम्]** उसी प्रकार से यहाँ भी ''एकं लिंगम'' प्रधानता का आधार लेकर के जो अलग कथन किया है कि ''यह लिंग शरीर है''। **[यत्खलु वचनमुद्धृतं विज्ञानभिक्षुभाष्ये ''कर्मात्मा पुरुषो योऽसौ बन्धमोक्षैः प्रयुज्यते। ससप्तदशकेनापि राशिना युज्यते च सः।।'' कुत्रत्यमिदं वचनमिति तु न सूचितं तत्प्रामाणिकशास्त्रस्याप्रामाणिकस्येति न ज्ञायते]** विज्ञानभिक्षु भाष्य में एक वचन इस विषय में उद्धृत किया है ''जो कर्म करने वाला पुरुष है वह बंधन और मुक्ति से युक्त होता रहता है'' वह जीवात्मा सत्रह पदार्थों के समुदाय सहित उन सूक्ष्म शरीरों से युक्त होता है'' ये जो वाक्य है वह किस प्रामाणिक शास्त्र का है इसकी सूचना नहीं दी। **[तथापि तथाभूतग्रन्थस्यापि वचनेऽस्मिन् न विज्ञानभिक्षुभाष्य पुष्टिर्भवति]** जिस भी ग्रंथ का प्रमाण उन्होंने दिया उस वचन से विज्ञानभिक्षु भाष्य की पुष्टि तो यहाँ भी नहीं होती **यथा विज्ञानभिक्षुणा सूत्रार्थमन्यथा कुर्वताऽपि संगृहीता ह्यष्टादश पदार्था लिंगशरीरस्य** जैसे विज्ञानभिक्षु के द्वारा गलत सूत्रार्थ करते हुए भी उन्होंने अठारह पदार्थ तो लिंग शरीर के स्वीकार किए ही थे **[तथैवात्र वचनेऽपि प्रतिभाति**

''अहंकारकर्त्राधीना कार्यसिद्धिः...'' (सांख्य० ६.६४) कर्तृत्वमहंकारस्य यद्वाऽहघ्कारविशिष्टस्यात्मनो भवति तथैवात्रोद्धृतवचनेऽपि 'कर्मात्मा पुरुषः' अहंकारो निर्दिष्टः ससप्तदशकेन राशिना सह संगतस्तदाष्टादशत्वं तु जातमेव लिंगदेहपदार्थानाम् ।।९।।

ननु लिंगशरीरं तु सर्वेषां समानं पुर्नव्यक्तिभेदो देवमनुष्यतिर्यग्भेदः कथमित्याकांक्षामुच्यते -

व्यक्तिभेदः कर्मविशेषात् ।।१०।।

(व्यक्तिभेदः) तथाविधो व्यक्तिभेदः स्थूलशरीरभेदो देवमनुष्यतिर्यग्देहभेदः (कर्मविशेषात्) कर्मविशेषाददृष्टविशेषाद् भवति ।।१०।।

ननु कर्मविशेषो धर्माधर्मरूपादृष्टविशेषस्तु खल्वात्मानुवर्ती पुनः कथं तेन व्यक्तिभेदः स्थूलशरीरे सम्भवति । अत्रोच्यते -

तदधिष्ठानाश्रये देहे तद्वादात् तद्वादः ।।११।।

पदार्थाष्टादशत्वम्] उसी प्रकार से इस वचन में भी अठारह पदार्थ होना प्रतीत होता है **[''ससप्तदशकेन राशिना कर्मात्मा पुरुषः'']** ये श्लोक के शब्द है कि ''सत्रह पदार्थों के साथ कर्म करने वाला पुरुष'' तो पुरुष बिना अहंकार के कर्म तो कर ही नहीं सकता ? **[अत्र, ससप्तदशको राशिः, पुनस्तेन सह कर्मात्मा पुरुषः- अहंकारयुक्तो जीव उक्तः]** इस श्लोक में भी ''सत्रह पदार्थो का समुदाय'' उस सत्रह से सहित कर्मात्मा पुरुष में अहंकार युक्त जीवात्मा होता है। **[''निर्गुणत्वात् तदसम्भवादहंकारधर्मा ह्येते'' (सांख्य० ६.६२) अहंकारः प्रक्रियते पुनः ''विशिष्टस्य जीवत्वम्...'']** इस सूत्र में अहंकार का प्रसंग चल रहा है बैठना उठना खाना पीना इत्यादि ये सब अहंकार के धर्म हैं इनके विना इसकी सिद्धि नहीं हो पाएगी, इस सूत्र से अगले ही सूत्र में कहा - ''जो अहंकार से युक्त होगा वही जीव है'' **[(सांख्य० ६.६३) अहंकारविशिष्ट आत्मा जीव पश्चात् ''अहंकारकर्त्राधीना कार्यसिद्धिः...'']** अहंकार रूप कर्ता के अधीन सब कार्यों की सिद्धि है **(सांख्य० ६.६४) कर्तृत्वमहंकारस्य यद्वाऽहघ्कारविशिष्टस्यात्मनो भवति** जो कर्तित्व है वह अहंकार से युक्त जीवात्मा का है अकेला जीवात्मा कर्म नहीं कर सकता जब ये कहाँ जाए ''कर्मात्मा पुरुषः'' इसमें स्वतः ही अहंकार का ग्रहण हो जाता है **[तथैवात्रोद्धृतवचनेऽपि 'कर्मात्मा पुरुषः' अहंकारो निर्दिष्टः ससप्तदशकेन राशिना सह संगतस्तदाष्टादशत्वं तु जातमेव लिंगदेहपदार्थानाम्]** इसी प्रकार से उस उद्धृत वचन में भी ''कर्मात्मा पुरुष'' ये शब्द आए थे, इन शब्दों से अहंकार का निर्देश है और सत्रह सहित पदार्थों के समुदाय से वो जुड जाता है, तो सत्रह और एक अहंकार अठारह हो गए, इस प्रकार से लिंग देह के पदार्थों की संख्या अठारह तो हो ही गयी- ।।९।।

[ननु लिंगशरीरं तु सर्वेषां समानं पुर्नव्यक्तिभेदो देवमनुष्यतिर्यग्भेदः कथमित्याकांक्षामुच्यते -] सूक्ष्म शरीर तो सबका एक जैसा है, फिर जो स्थूल शरीर (व्यक्तिभेद) का भेद है कोई देव है कोई मनुष्य कोई पशु कोई पक्षी आदि है, ये किस आधार पर भेद है् इस आकांक्षा पर कहते हैं-

व्यक्तिभेदः कर्मविशेषात् ।।१०।।

सूत्रार्थ= सब जीवात्माओं के कर्मों में भिन्नता के कारण उनके स्थूल शरीर की भिन्नता होती है।

(तदधिष्ठानाश्रये देहे) भवतु कर्मण आत्मानुवर्तित्वं किन्तु तस्यात्मनोऽधिष्ठानं लिंगशरीरं लिंगशरीरस्याश्रयः स्थूलदेहस्तत्र स्थूलदेहे (तद्वादात् तद्वादः) लिंगस्य देहवादात् तस्य स्थूलदेहस्य तद्वादो व्यक्तिदेहवादोऽतस्तस्य व्यक्तिभेदः ।।११।।

भवतु तर्हि लिंगशरीरे हि धर्माधर्मकर्मरूपादृष्टस्य फलं किमर्थो व्यक्तिभेदः स्थूलशरीरे । अत्रोच्यते

न स्वातन्त्र्यात् तदृते छायावच्चित्रवच्च ।।१२।।

(स्वातन्त्र्यात्-न तदृते) स्थूलशरीरेण विना स्वातन्त्रयात् खलु लिंगशरीरेऽदृष्टस्य फलनिष्पत्तिर्न भवति (छायावत्-चित्रवत्-च) यथा छाया चित्रं वाऽऽश्रयेण विना नावतिष्ठते, तस्मात् स्थूल शरीरे ह्यदृष्टवशाद् व्यक्तिभेदेन भाव्यम् ।।१२।।

ननु लिंगशरीरं न चेतनं किन्तु जडमस्ति पुनर्जडस्यापि जडमाश्रयोऽदृष्टफलायेति कथं युज्यते ।

[(व्यक्तिभेदः) तथाविधो व्यक्तिभेदः स्थूलशरीरभेदो देवमनुष्यतिर्यग्देहभेदः (कर्मविशेषात्) कर्मविशेषाददृष्टविशेषाद् भवति] सूक्ष्म शरीर सबका एक समान होते हुए भी स्थूल शरीर में जो भिन्नता है देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि ये सब कर्मों की भिन्नता के कारण से है ।।१०।।

[ननु कर्मविशेषो धर्माधर्मरूपादृष्टविशेषस्तु खल्वात्मानुवर्ती पुनः कथं तेन व्यक्तिभेदः स्थूलशरीरे सम्भवति। अत्रोच्यते -] ये जो भूमिका बनाई है यह सूत्र के साथ मेल नहीं खाती, इसलिए इसे छोड देते हैं। सूत्र भूमिका स्वामी जी कृत = सूक्ष्म शरीर को शरीर (देह) नाम से क्यो बोला जाता है? इसका उत्तर दिया-

तदधिष्ठानाश्रये देहे तद्वादात् तद्वादः ।।११।।

सूत्रार्थ= उस आत्मा के अधिष्ठान (सूक्ष्म शरीर) के आश्रय देह (स्थूल शरीर) में देह शब्द का प्रयोग होने से उसके सम्बंध द्वारा सूक्ष्म शरीर में देह शब्द का प्रयोग होता है।।११।।

[(तदधिष्ठानाश्रये देहे) भवतु कर्मण आत्मानुवर्तित्वं किन्तु तस्यात्मनोऽधिष्ठानं लिंगशरीरं लिंगशरीरस्याश्रयः स्थूलदेहस्तत्र स्थूलदेहे (तद्वादात् तद्वादः) लिंगस्य देहवादात् तस्य स्थूलदेहस्य तद्वादो व्यक्तिदेहवादोऽतस्तस्य व्यक्तिभेदः] ये भाष्य भी ठीक नहीं है।।११।।

[भवतु तर्हि लिंगशरीरे हि धर्माधर्मकर्मरूपादृष्टस्य फलं किमर्थो व्यक्तिभेदः स्थूलशरीरे । अत्रोच्यते -] पूर्वपक्षी कहता है- सूक्ष्म शरीर के सहाय से धर्माधर्म रूपी कर्मों का सम्पादन हो रहा है जिसका नाम अदृष्ट है उसका फल फिर स्थूल शरीर में परिवर्तन क्यों आ रहा है जबकि कर्म सूक्ष्म शरीर के माध्यम से किए जा रहे हैं? इस पर कहते है-

न स्वातन्त्रयात् तदृते छायावच्चित्रवच्च ।।१२।।

सूत्रार्थ=स्थूल शरीर के बिना केवल सूक्ष्म शरीर से कर्म और कर्म का फल नहीं किया और भोगा जा सकता, जैसे छाया और चित्रा बिना आश्रय के टिक नहीं सकता है।

[(स्वातन्त्रयात्-न तदृते) स्थूलशरीरेण विना स्वातन्त्रयात् खलु लिंगशरीरेऽदृष्टस्य फलनिष्पत्तिर्न भवति] स्थूल शरीर के बिना स्वतन्त्रता से लिंग शरीर में अदृष्ट अर्थात् किए हुए कर्मों के फल की उत्पत्ति नहीं होती **[(छायावत्-चित्रवत्-च) यथा छाया चित्रं वाऽऽश्रयेण विना नावतिष्ठते]** छाया और चित्र बिना

अत्रोच्यते –

मूर्तत्वेऽपि न संघातयोगात् तरणिवत ।।१३।।

(मूर्तत्वेऽपि न) मूर्तत्वमत्र जडत्वं गृह्यते। लिंगशरीरस्य मूर्तत्वे जडत्वेऽपि नादृष्टफलवत्त्वम् (सङ्घातयोगात् तरणिवत्) यथा तरणिः सूर्यप्रकाशः संघातस्य पिण्डीभूतस्य स्थूलस्य योगाद् व्यक्तीभवति तथैव लिंगशरीरं जडं सदपि स्थूलशरीरमपेक्षते तस्माद् व्यक्तिभेदस्तत्रोचितः।।१३।।

लिंगशरीरं किम्परिमाणम्। अत्रोच्यते –

अणुपरिमाणं तत्कृतिश्रुतेः ।।१४।।

(अणुपरिमाणम्) लिंगशरीरं खल्वणुपरिमाणमस्ति। अत्राणुशब्देन विभुत्वनिषेधमात्रं तेन तस्यैकदेशित्वमभिप्रेयते। कुतः (तत्कृतिश्रुतेः) तस्य कार्यत्वश्रवणात्। ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च'' (मुण्ड० २.१.३) ।।१४।।

अन्यो हेतुः –

किसी आधार के नहीं हो सकते, **[तस्मात् स्थूल शरीरे ह्यदृष्टवशाद् व्यक्तिभेदेन भाव्यम्]** वैसे ही बिना स्थूल शरीर के अकेला सूक्ष्म शरीर जीवात्मा को कर्मों का फल नहीं भुगवा सकता ।।१२।।

[ननु लिंगशरीरं न चेतनं किन्तु जडमस्ति पुनर्जडस्यापि जडमाश्रयोऽदृष्टफलायेति कथं युज्यते।] अत्रोच्यते –चलो माना की लिंग शरीर जड़ है चेतन नहीं है लेकिन जड़ का आश्रय जड़ हो और वह अदृष्ट कर्मों का फल भुगवाने के लिए है यह कैसे? इस पर कहते हैं–

मूर्तत्वेऽपि न संघातयोगात् तरणिवत ।।१३।।

सूत्रार्थ=लिंग शरीर के जड़ होने पर भी स्थूल शरीर के बिना लिंग शरीर अकेला कर्म फल नहीं भुगवा सकेगा, सूर्य प्रकाश के समान।

[(मूर्तत्वेऽपि न) मूर्तत्वमत्र जडत्वं गृह्यते] इस सूत्र में मूर्त जो शब्द है इसका अर्थ लेंगे जड़। **[लिंगशरीरस्य मूर्तत्वे जडत्वेऽपि नादृष्टफलवत्त्वम्]** लिंग शरीर अर्थात सूक्ष्म शरीर जड़ होने पर भी वह अदृष्ट फल नहीं दिला पाएगा **[(संघातयोगात् तरणिवत्) यथा तरणिः सूर्यप्रकाशः संघातस्य पिण्डीभूतस्य स्थूलस्य योगाद् व्यक्ती भवति तथैव लिंगशरीरं जडं सदपि स्थूलशरीरमपेक्षते तस्माद् व्यक्तिभेदस्तत्रोचितः]** जैसे सूर्य की किरणे (प्रकाश) किसी संघात का पिंडीभूत दीवार आदि के योग से प्रकट होता है उसी प्रकार से लिंग शरीर भी जड होता हुआ स्थूल शरीर की जड पदार्थ अपेक्षा करता है।।१३।।

[लिंगशरीरं किम्परिमाणम्। अत्रोच्यते –] सूक्ष्म शरीर किस परिमाण वाला है? (परिमाण का अर्थ आकार प्रकार रंग रूप आकृति से नहीं है, फैलाव से है) इस पर कहते हैं –

अणुपरिमाणं तत्कृतिश्रुतेः ।।१४।।

सूत्रार्थः– सूक्ष्म शरीर अत्यंत सूक्ष्म एक देशी है, उसकी उत्पत्ति सुनाई देने से।

तदन्नमयत्व (आदि) श्रुतेश्च ।।१५।।

(तदन्नमयत्वादिश्रुतेः-च) अथ च तस्य लिंगशरीरस्यान्नमयत्वादि विषयिका श्रुतिरस्ति ''अन्नमयं हि सौम्य मनः, आपोमयः प्राणः तेजोमयोर्वाक्'' (छान्दो० ६.५.४) ।।१५।।

पुरुषार्थं संसृतिर्लिंगानांसूपकारवद् राज्ञः ।।१६।।

(लिंगानां संसृतिः पुरुषार्थम्) लिंगशरीराणां यद्वा लिंगशरीररूपाणां महत्तत्त्वादीनां बुद्ध्यादीनां पञ्चतन्मात्रान्तानां वा देहे संसरणं प्रापणं पुरुषार्थमात्मार्थमस्ति। उक्तं यथा पूर्वमपि ''आत्मार्थत्वात् सृष्टेः महदादिक्रमेण पञ्चतन्मात्रान्तायाः'' (सांख्य०२.११) (राज्ञः सूपकारवत्) यथा राज्ञः सूपकारस्य पाककर्तुः प्रवृत्ती राजार्था भवति ।।१६।।

अथ च -

[**(अणुपरिमाणम्) लिंगशरीरं खल्वणुपरिमाणमस्ति** लिंग शरीर अणु परिमाण वाला है। **अत्राणुशब्देन विभुत्वनिषेधमात्रं तेन तस्यैकदेशित्वमभिप्रेयते**] सूत्र में जो अणु परिमाण शब्द कहा- यहाँ अणु का तात्पर्य विभुत्व का निषेध मात्र है केवल एक देशीय अभिप्रेत है। [**कुतः (तत्कृतिश्रुतेः) तस्य कार्यत्वश्रवणात्**] अणु का अर्थ एक देशीय क्यों लिया जाए? क्योंकि शास्त्रों में बताया है कि जो सूक्ष्म शरीर है वह कार्य है उत्पन्न किया गया है। [**''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च'' (मुण्ड० २.१.३)**] ।।१४।।

अन्यो हेतुः -

तदन्नमयत्व (आदि) श्रुतेश्च ।।१५।।

सूत्रार्थ= लिंग शरीर के अन्नमय आदि के श्रुति होने से लिंग शरीर अणु परिमाण वाला है।

[**(तदन्नमयत्वादिश्रुतेः-च) अथ च तस्य लिङ्गशरीरस्यान्नमयत्वादि विषयिका श्रुतिरस्ति**] लिंग शरीर के विषय में के ऐसी भी श्रुति है कि वह अन्नमय है [**''अन्नमयं हि सौम्य मनः, आपोमयः प्राणः तेजोमयोर्वाक्'' (छान्दो० ६.५.४)**] एक गुरु जी अपने विद्यार्थी को पढ़ा रहे थे पढ़ाते पढ़ाते कहा - ये जो मन है वह अन्नमय है (मोटी कहावत है- जैसा खाओ अन्न वैसा बने मन) कहने का तात्पर्य है अन्न से मन को शक्ति मिलती है प्राण को जल से शक्ति मिलती है, वाणी को अग्नि से शक्ति मिलती है ।।१५।।

पुरुषार्थं संसृतिर्लिंगानांसूपकारवद् राज्ञः ।।१६।।

सूत्रार्थ=सूक्ष्म शरीरों का देहान्तर गमन जीवात्मा की सेवा के लिए होता है, जैसे राजा के पाचक की प्रवृत्ति राजा के लिए होती है।

[**(लिंगानां संसृतिः पुरुषार्थम्) लिंगशरीराणां यद्वा लिंगशरीररूपाणां महत्तत्त्वादीनां बुद्ध्यादीनां पञ्चतन्मात्रान्तानां वा देहे संसरणं प्रापणं पुरुषार्थमात्मार्थमस्ति**] लिंग शरीरों का अथवा लिंग शरीर रूपी महतत्व (बुद्धि) आदि पाँच तन्मात्राओं तक जो अठारह पदार्थों हैं इन सभी का एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना ''प्राप्त कराना'' पहुंचाना ये सब आत्मा के लिए है आत्मा की सेवा के लिए है । **उक्तं यथा पूर्वमपि** जैसा की पहले भी कह चुके हैं [**''आत्मार्थत्वात् सृष्टेः महदादिक्रमेण पञ्चतन्मात्रान्तायाः''**] महदादि क्रम से

पाञ्चभौतिको देहः ।।१७।।

(देहः) मांसादिभिरुपचितो देहः स्थूलदेहः (पाञ्चभौतिकः) पञ्चभिर्भूतैर्निर्वृत्तः सम्पन्नोऽस्ति । स्थूलशरीरं पाञ्चभौतिकम् ।।१७।।

चातुर्भौतिकमित्येके ।।१८।।

(चातुर्भौतिकम्) आकाशमन्तरेण पृथिव्यादिभिश्चतुर्भिर्भूतैर्निर्वृत्तमस्ति स्थूलशरीरम् (इति-एके) इत्थमेके मन्यन्ते ।।१८।।

ऐकभौतिकमित्यपरे ।।१९।।

(ऐकभौतिकम्) स्थूलशरीरमेकेन भूतेन पृथिव्या निर्वृत्तम् (इति अपरे) एवमपरे मन्यन्ते ।।१९।।

देहे चैतन्यविचारः -

न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ।।२०।।

पाँच तन्मात्राओं तक जो सूक्ष्म शरीर बना था वह आत्मा के उपकरण बनाने के लिए है [**(सांख्य० २.११) (राज्ञः सूपकारवत्) यथा राज्ञः सूपकारस्य पाककर्तुः प्रवृत्ती राजार्था भवति**] इसे समझने के लिए एक दृष्टांत दिया- जैसे कि राजा के रसोईया की प्रवृत्ति राजा के लिए है (राजा का पाचक राजा के लिए भोजन बनाता है) ।।१६।।

अथ च -

पाञ्चभौतिको देहः ।।१७।।

सूत्रार्थ= स्थूल शरीर पृथ्वी आदि पाँच भूतों से बना है।

[**(देहः) मांसादिभिरुपचितो देहः स्थूलदेहः (पाञ्चभौतिकः) पञ्चभिर्भूतैर्निर्वृत्तः सम्पन्नोऽस्ति। स्थूलशरीरं पाञ्चभौतिकम्**] मांसादि से युक्त यह स्थूल देह पाँच महाभूतों से उत्पन्न हुआ है इसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश है इसलिए इसे पंचभौतिक भी कहते हैं ।।१७।।

चातुर्भौतिकमित्येके ।।१८।।

सूत्रार्थ= कुछ आचार्यों की ऐसी मान्यता है कि स्थूल शरीर चार भूतों से बना है।

[**(चातुर्भौतिकम्) आकाशमन्तरेण पृथिव्यादिभिश्चतुर्भिर्भूतैर्निर्वृत्तमस्ति स्थूलशरीरम् (इति-एके) इत्थमेके मन्यन्ते**] आकाश के विना पृथ्वी आदि चार स्थूल भूतों से यह शरीर बना है, ऐसा कुछ और लोग मानते हैं।।१८।।

ऐकभौतिकमित्यपरे ।।१९।।

सूत्रार्थ= कुछ विद्वान स्थूल शरीर को पृथ्वी से बना हुआ मानते हैं।

(चैतन्यं सांसिद्धिकं न) देहे यच्चैतन्यं तत् सांसिद्धिकं स्वाभाविकं देहस्वभावोद्भवं देहप्रकृतिसम्भवं नास्ति देहस्य यानिभूतानि कारणानि तेभ्यो निष्पन्नं नास्ति । यतः (प्रत्येकादृष्टेः) प्रत्येकस्मिन् पृथक् पृथग्भूते तस्य चैतन्यस्यादृष्टत्वात्, नहि पृथक्-पृथग्भूते चैतन्यं चैतन्यमात्रा त्रोपलभ्यते तत्र तु जडत्वमेवावतिष्ठते ।।२०।।

देहचैतन्ये दोषश्चायं प्रसज्यते -

प्रपञ्चत्वाद्यभावश्च* ।।२१।।

(प्रपञ्चत्वाद्यभावः-च) प्रगताः प्रस्थिताः पञ्च प्राणा यस्माद् देहात् स प्रपञ्चो मृतदेहस्तस्य भावः प्रपञ्चतां मृतत्वं तस्य मृतत्वस्य मरणस्य तथादिना सुषुप्तिमूर्च्छयोरपि ग्रहणम्, मृतत्वसुषुप्तिमूर्च्छानामभावः प्रसज्यते देहस्य चैतन्ये सति यतो देहस्तु मृतत्वसुषुप्तिमूर्च्छासु खल्वपि तिष्ठत्येव

[(ऐकभौतिकम्) स्थूलशरीरमेकेन भूतेन पृथिव्या निर्वृत्तम् (इति अपरे) एवमपरे मन्यन्ते] स्थूल शरीर के भूत पृथ्वी तत्व से बना है, ऐसा भी कुछ लोग मानते हैं ।।१९।।

देहे चैतन्यविचारः - शरीर चेतन है या नहीं इस पर विचार करते हैं-

न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ।।२०।।

सूत्रार्थ= सांसिद्धिक (स्वाभाविक) शरीर में उपलब्ध चेतना शरीर की अपनी नहीं है, किसी भी भूत में चेतनता न दिखायी देने से।

[**(चैतन्यं सांसिद्धिकं न) देहे यच्चैतन्यं तत् सांसिद्धिकं स्वाभाविकं देहस्वभावोद्भवं देहप्रकृतिसम्भवं नास्ति**] देह "शरीर" में जो चेतनता है चलना, फिरना, बोलना आदि यह स्वाभाविक है, यह चेतनता शरीर के स्वभाव से उत्पन्न नहीं हुई चेतना [**देहस्य यानिभूतानि कारणानि तेभ्यो निष्पन्नं नास्ति**] शरीर के उत्पत्ति के जो पाँचभूत कारण है उससे यह चेतना उत्पन्न नहीं हुई । [**यतः (प्रत्येकादृष्टेः) प्रत्येकस्मिन् पृथक् पृथग्भूते तस्य चैत्न्यस्यादृष्टत्वात्**] क्योंकि प्रत्येक भूत को अलग-अलग परीक्षण करने से उनमें चेतना नहीं पाई गई, [**नहि पृथक्-पृथग्भूते चैतन्यं चैतन्यमात्रा त्रोपलभ्यते तत्र तु जडत्वमेवावतिष्ठते**] अलग अलग करने पर चेतनता नहीं मिली उसे सिद्ध हुआ पांचों भूतों में जड़ता ही है (जिनसे शरीर बना वही जड है तो शरीर चेतन कैसे हो सकता है) ।।२०।।

देहचैतन्ये दोषश्चायं प्रसज्यते - यदि शरीर में चेतना मान लेवें तो यह दोष आएगा-

प्रपञ्चत्वाद्यभावश्च* ।।२१।।

सूत्रार्थ= शरीर की अपनी चेतना मानने पर सुषुप्ति, मूर्छा और मृत्यु नहीं हो पाएगी।

[**(प्रपञ्चत्वाद्यभावः-च) प्रगताः प्रस्थिताः पञ्च प्राणा यस्माद् देहात् स प्रपञ्चो मृतदेहस्तस्य भावः प्रपञ्चतां मृतत्वं तस्य मृतत्वस्य मरणस्य तथादिना सुषुप्तिमूर्च्छयोरपि ग्रहणम्**] प्रपञ्च का अर्थ किया- प्रस्थिता पाँच प्राण जिसमें से निकाल गए = मृत शरीर। अर्थात मृत शरीर में से पाँच प्राण निकाल गए

तदा तद्धर्मेणापि स्थातव्यमेव ।।२१।।

पुनराशङ्क्य समाधत्ते -

मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टसौक्ष्म्यात् सांहत्ये तदुद्भवः ।।२२।।

(मदशक्तिवत्-चेत्) न स्याद् देहस्य सांसिद्धिकं स्वाभाविकं चैतन्यं किन्तु मदशक्तिवद् देहे प्रादुर्भूतं भवेत्, यथा सुरायां मदशक्तिः समुद्भवति। मदशक्तिनाशाद् देहस्य मृतत्वादिप्रसंगो भवेदतो न दोष इति चेदुच्चेत तर्हि (सौक्ष्म्यात् प्रत्येकपरिदृष्टे) सौक्ष्म्याद् वैद्यकशास्त्रप्रतिपादितमादकत्वपरीक्षणप्रकारात् सूक्ष्मभावेन सुरायाः प्रत्येकपदार्थगतपरिदृष्टे मदशक्तित्त्वे सति (तदुद्भवः सांहत्ये) तस्याः मदशक्तेरुद्भवो भवति तेषां सुरापदार्थानां सति सम्मेलने। न तथा देहकारणेषु भूतेषु प्रत्येकस्मिन् चैतन्यमुपलभ्यते, दृष्टान्तवैपरीत्याद् देहचैतन्यवादो न युक्तः ।।२२।।

भवतु देहधर्मश्चैतन्यं न, चेतनः खलु पुरुषो देहाद् भिन्नः पुनस्तस्य चेतनस्य देहात् कथं मुक्तिः

ऐसा जो देह है उसे प्रपञ्च देह कहते हैं, प्रपञ्च की भाववाचक संज्ञा है, प्रपंचत्व= मृतत्व। शरीर चेतन हो तो उसमें सुषुप्ति, मूर्छा, मृत्यु नहीं आएगी, [**मृतत्वसुषुप्तिमूर्च्छानामभावः प्रसज्यते देहस्य चैतन्ये सति यतो देहस्तु मृतत्वसुषुप्तिमूर्च्छासु खल्वपि तिष्ठत्येव तदा तद्धर्मेणापि स्थातव्यमेव**] शरीर देह को चेतन्य मान लेने पर न तो मृत्यु आयगी न मूर्छा और न सुषुप्ति आएगी, क्योंकि तीनों अवस्थाओं में शरीर तो रहता ही है चाहे व्यक्ति सो रहा हो मूर्छित हो अथवा मर गया हो, जब शरीर है तो शरीर का धर्म भी तो होना चाहिए?।।२१।।

पुनराशङ्क्य समाधत्ते - पुनः शंका उठाकर समाधान करते है-

मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टसौक्ष्म्यात् सांहत्ये तदुद्भवः ।।२२।।

सूत्रार्थ= यदि पूर्वपक्षी कहे कि- नशे के समान चेतना शरीर की है तो ठीक नहीं, क्योंकि शराब के कारण पदार्थों में थोड़ा थोड़ा नशा होता है, जबकि शरीर के कारण पंचभूतों में थोड़ी भी चेतना नहीं है।

[**(मदशक्तिवत्-चेत्) न स्याद् देहस्य सांसिद्धिकं स्वाभाविकं चैतन्यं**] पूर्वपक्षी कहता है मान लिया की शरीर की अपनी चेतना नहीं है [**किन्तु मदशक्तिवद् देहे प्रादुर्भूतं भवेत्**] जैसे शराब में नशा आ जाता है वैसे ही शरीर में चेतना आ जाती है, [**यथा सुरायां मदशक्तिः समुद्भवति**] जैसे शराब में नशा उत्पन्न हो जाता है (अंगूर से शराब बनाते हैं, अंगूर में तो नशा नहीं होता लेकिन जब शराब बनाते हैं तो नशा आ जाता है, ऐसे ही शरीर के जो कारण है पाँच महाभूत परंतु जब पांचों को इकट्ठा करेंगे तो चेतना आ जाएगी ऐसा मान लें)। [**मदशक्तिनाशाद् देहस्य मृतत्वादिप्रसंगो भवेदतो न दोष इति चेदुच्चेत तर्हि**] यदि पूर्वपक्षी ऐसा कहे तो- मद शक्ति का नाश होने से देह का मृतत्व आदि प्रसंग भी आ जाएगा, (शराब पीने से नशा आ जाता है कुछ समह बाद नशा उतर जाता है, वैसे ही शरीर में चेतना पैदा हुई थी जब बो हटी तो शरीर में मूर्छा मृत्यु आदि सब होने लगा) फिर इसमें कोई दोष नहीं आता [**(सौक्ष्म्यात् प्रत्येकपरिदृष्टे) सौक्ष्म्याद वैद्यकशास्त्रप्रतिपादितमादकत्वपरीक्षणप्रकारात् सूक्ष्मभावेन सुरायाः प्रत्येकपदार्थगतपरिदृष्टे मदशक्तित्त्वे सति**] सूक्ष्मता से शराब जिन वस्तुओं से बनती है उन सब कारणों का जब वैद्यक शास्त्रों से परीक्षण करते हैं तब पता चलता है की उन कारण द्रव्यों में नशा होता है (यदि मूल कारण द्रव्यों में नशा न हो तो अभाव से भाव की उत्पत्ति वाला दोष आएगा) [**(तदुद्भवः सांहत्ये) तस्याः मदशक्तेरुद्भवो भवति तेषां सुरापदार्थानां**

स्याद् यतो हि लिंगशरीरस्य संसृतिस्तु स्थूलदेहधारणाय प्रक्रमते हि । अत्रोच्यते -

ज्ञानान्मुक्तिः ।।२३।।

(ज्ञानात्-मुक्तिः) ज्ञानात् खलु सर्वप्रक्रमज्ञानाद् विवेकसाक्षात्काराद् भवति मुक्तिः पुरुषस्य चेतनस्य ।।२३।।

अथ च -

बन्धो विपर्ययात् ।।२४।।

(विपर्ययात्-बन्धः) तद्विपरीतादज्ञानात् प्रक्रमस्याविवेकाद् भवति पुरुषस्य चेतनस्य देहे बन्धः ।।२४।।

सति सम्मेलने] ऐसी स्थिति में शराब के जो मूल कारण द्रव्य हैं उनका सम्मेलन (आपस में मिलाने) पर उनमें नशा उत्पन्न हो जाता है । **[न तथा देहकारणेषु भूतेषु प्रत्येकस्मिन् चैतन्यमुपलभ्यते]** जैसे शराब के अलग अलग कारण द्रव्यों का पता किया उनमें नशा उपलब्ध हो गया, **दृष्टान्तवैपरीत्याद् देहचैतन्यवादो न युक्तः** शरीर के कारण द्रव्यों में चेतना नहीं है इसलिए आपका दृष्टांत विपरीत है।।२२।।

[भवतु देहधर्मश्चैतन्यं न, चेतनः खलु पुरुषो देहाद् भिन्नः पुनस्तस्य चेतनस्य देहात् कथं मुक्तिः स्याद् यतो हि लिंगशरीरस्य संसृतिस्तु स्थूलदेहधारणाय प्रक्रमते हि। अत्रोच्यते -] पूर्वपक्षी कहता है मान लिया कि चेतनता देह का धर्म नहीं है, ये भी मान लिया कि चेतन जीवात्मा देह से भिन्न है, अब जो चेतन जीवात्मा है जो शरीर में बंधा है इसकी मुक्ति कैसे होगी? क्योंकि आपने बताया था लिंग शरीर जो है वह हर जन्म में साथ साथ चलता ही रहता है आत्मा के (इससे छुटकारा कैसे होगा?)। इस पर कहते हैं-

ज्ञानान्मुक्तिः ।।२३।।

सूत्रार्थ= तत्वज्ञान से जीवात्मा का मोक्ष होता है।

[(ज्ञानात्-मुक्तिः) ज्ञानात् खलु सर्वप्रक्रमज्ञानाद विवेकसाक्षात्काराद् भवति मुक्तिः पुरुषस्य चेतनस्य] ज्ञान से सारी प्रक्रियाओं को जान लेने से विवेक साक्षात्कार होने से तत्वज्ञान होने से पुरुष की मुक्ति होगी ।।२३।।

अथ च -

बन्धो विपर्ययात् ।।२४।।

सूत्रार्थ= मिथ्याज्ञान से जीवात्मा का बंधन होता है।

[(विपर्ययात्-बन्धः) तद्विपरीतादज्ञानात् प्रक्रमस्याविवेकाद् भवति पुरुषस्य चेतनस्य देहे बन्धः] तत्वज्ञान से विपरीत अज्ञान (मिथ्याज्ञान) से प्रक्रम को ठीक से न जानने से चेतन पुरुष देह में बंध जाता है ।।२४।।

तत्र मुक्तिविषये -

तत्र मुक्तिविषये -

नियतकारणत्वान्न समुच्चयविकल्पौ ॥२५॥

(नियतकारणत्वात्) मुक्तिप्राप्तौ ज्ञानस्य नियतकारणत्वमनिवार्यकारणत्वमस्ति, तस्मात् (समुच्चयविकल्पौ न) साधनान्तरेण सहास्य समुच्चयभावो विकल्पो वा नास्ति । यद्यप्युच्यते ''विद्याकर्मणी समन्वारभेते'' (बृह० ४.४.२) ज्ञानकर्मणोः समुच्चयः, परन्तु स एष ज्ञानकर्मणोः साधनत्वेन समुच्चयो न मुक्तिविषयकोऽपितु पुनर्जन्मप्राप्तौ वर्णितः ''एष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो... तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति... तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते'' (बृह० ४.४.२) अथ च यत्र क्वचिद् विकल्पः प्रतिभासते ''अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा'' (यजु० ४०.१४) इति कथनात् तत्र कर्मणो ज्ञानांगत्वं लक्ष्यते न हि कर्म स्वतन्त्रं विकल्परूपेण मुक्तिसाधनम् । उक्तं हि श्रुतौ ज्ञानस्यैव मुक्तिसाधनत्वम्

नियतकारणत्वान्न समुच्चयविकल्पौ ॥२५॥

सूत्रार्थ=मुक्ति की प्राप्ति में तत्वज्ञान निश्चित कारण होने से इस ज्ञान के साथ किसी अन्य साधन सकाम कर्म आदि का न तो समुच्चय है न ही विकल्प है।

(नियतकारणत्वात्) मुक्तिप्राप्तौ ज्ञानस्य नियतकारणत्वमनिवार्यकारणत्वमस्ति मुक्ति प्राप्ति के लिए ज्ञान का तत्वज्ञान का अनिवार्यत्व कारण है, [**तस्मात् (समुच्चयविकल्पौ न) साधनान्तरेण सहास्य समुच्चयभावो विकल्पो वा नास्ति**] इसलिए किसी अन्य साधन के साथ इसका (तत्वज्ञान) न तो समुच्चय कर सकते हैं न विकल्प कर सकते हैं [। **यद्यप्युच्यते ''विद्याकर्मणी समन्वारभेते'' (बृह० ४.४.२) ज्ञानकर्मणोः समुच्चयः**] सिद्धांती कहते हैं यद्यपि शास्त्रों में ऐसा कहा गया है ''जब व्यक्ति शरीर छोड़ के दूसरे जन्म में जाएगा तो विद्या और कर्म दोनों उसके साथ चलेंगे'' यहाँ ज्ञान और कर्म को समुच्चय बताया तो है, [**परन्तु स एष ज्ञानकर्मणोः साधनत्वेन समुच्चयो न मुक्तिविषयकोऽपितु पुनर्जन्मप्राप्तौ वर्णितः**] परंतु यह ज्ञान कर्म का समुच्चय मुक्ति के विषय में नहीं है, यहाँ पुनर्जन्म प्राप्ति के संदर्भ में बताया जा रहा है [**''एष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो... तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति... तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते''**] ये आत्मा निकल जाता है शरीर से कहाँ से निकलता हैं? आँख से भी निकाल सकता है ....जब जीवात्मा शरीर से बाहर निकलता है तो मुख्य प्राण भी इसके साथ बाहर निकलता है......फिर उसके साथ जो उसने ज्ञान अर्जित किया और कर्म किए वह भी साथ साथ चलते हैं [**(बृह०४.४.२) अथ च यत्र क्वचिद् विकल्पः प्रतिभासते**] और जहां कहीं विकल्प प्रतीत होता है [**''अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा''**] ''अविद्या से मृत्यु को पार करके, और विद्या से मोक्ष हो जाता है'' [**(यजु० ४०.१४) इति कथनात् तत्र कर्मणो ज्ञानांगत्वं लक्ष्यते न हि कर्म स्वतन्त्रं विकल्परूपेण मुक्तिसाधनम्**] जहां कहीं ऐसा लगता है कि कर्म उपासना से व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त कर लेता है (तो ऐसा लगता है कर्म और उपासना विकल्प है) तो वहाँ ऐसा जानना चाहिए कि वहाँ कर्म को ज्ञान का अंग कहा जा रहा है स्वतंत्ररूप में कर्म को विकल्प मुक्ति का साधन नहीं समझना चाहिए। [**उक्तं हि श्रुतौ ज्ञानस्यैव मुक्तिसाधनत्वम्** श्रुति में मोक्ष का साधन ज्ञान को ही बताया है ''**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥**'' (यजु०

"वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।" (यजु० ३१.१८) ।।२५।।

पूर्वकथने युक्तिमाह -

स्वप्नजागराभ्यामिव मायिकामायिकाभ्यां नोभयोर्मुक्तिः पुरुषस्य ।।२६।।

(स्वप्नजागराभ्याम्-इव मायिकामायिकाभ्याम्) स्वप्नजागरणाभ्यां साधनाभ्यां कल्पिताकल्पितानुभवफलाभ्यां सदृशे ज्ञानकर्मणी स्तः, यथा स्वप्नजागरणयोः समुच्चयो न भवति विरुद्धत्वात्, तथा न हि विकल्पो भवति तयोर्भिन्नभिन्नफलवत्त्वात् तथैव (उभयोः) ज्ञानकर्मणोः समुच्चविकल्पयोर्विषयेऽपि विज्ञेयम्। अतः (पुरुषस्य मुक्तिः-न) तयोः समुच्चयेन विकल्पेन वा पुरुषस्य मुक्तिर्भवतीति न सम्यक् ।।२६।।

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

इतरस्यापि नात्यन्तिकम् ।।२७।।

३१.१८)] यहाँ श्रुति का प्रमाण दिया- इस महान सर्वशक्तिमान को में जनता हूँ, वह सूर्य के समान तेजस्वी अंधकार से परे है। उस महान परमेंश्वर को जानकार ही मृत्यु का उलंघन किया जा सकता है इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं हैं ।।२५।।

पूर्वकथने युक्तिमाह - पूर्व कथन की पुष्टि में एक युक्ति कहते हैं-

स्वप्नजागराभ्यामिव मायिकामायिकाभ्यां नोभयोर्मुक्तिः पुरुषस्य ।।२६।।

सूत्रार्थ=स्वप्न और जागरण अवस्था के समान तत्वज्ञान और सकाम कर्म के समुच्चय अथवा विकल्प से आत्मा की मुक्ति नहीं हो सकती।

[(स्वप्नजागराभ्याम्-इव मायिकामायिकाभ्याम्) स्वप्नजागरणाभ्यां साधनाभ्यां कल्पिताकल्पितानुभवफलाभ्यां सदृशे ज्ञानकर्मणी स्तः स्वप्न जागरणरूपी] अवस्थाओं साधनों में (स्वप्न में जो कुछ भी देखते हैं वह काल्पनिक होता है) स्वप्न का कल्पित फल है और जागृत का वास्तविक फल है, इस तरह के अनुभव फल दोनों अलग अलग होते हैं। उसी के समान ज्ञान और कर्म भी हैं, **[यथा स्वप्नजागरणयोः समुच्चयो न भवति विरुद्धत्वात्]** जैसे जागरण और स्वप्न अवस्था का समुच्चय नहीं हो सकता दोनों में विरोध होने से, **[तथा न हि विकल्पो भवति तयोर्भिन्नभिन्नफलवत्त्वात्]** वैसे ही इनमें विकल्प भी नहीं हो सकता दोनों का फल अलग अलग होने से **[तथैव (उभयोः) ज्ञानकर्मणो समुच्चविकल्पयोर्विषयेऽपि विज्ञेयम्]** ऐसे ही तत्वज्ञान और सकाम कर्मों का समुच्चय और विकल्प के संबंध में जानना चाहिए। **[अतः (पुरुषस्य मुक्तिः-न) तयोः समुच्चयेन विकल्पेन वा पुरुषस्य मुक्तिर्भवतीति न सम्यक्]** इसीलिए दोनों का समुच्चय से अथवा विकल्प से जीवात्मा की मुक्ति हो जाएगी, यह बात ठीक नहीं है।।२६।।

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते - अब अगले सूत्र में पूर्वपक्षी की ओर से कहते है-

(इतरस्य-अपि मुक्तिप्राप्तौ ज्ञानमेव नियतकारणं न तत्सहयोगि कर्म तर्हीतरस्य यज्ञादिकर्मतो भिन्नस्य यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरूपस्य योगाभ्यासनामककर्मणोऽप्यनुष्ठानात् (आत्यन्तिकं न) दुःखात्यन्तनिवृत्तिरूपमात्यन्तिकं मुक्तिपदं न सिध्येत् कर्मसामान्याद्-योगाभ्यासस्यपि तथा ज्ञानतोऽतिरिक्तत्वात्। उच्यते च श्रुतौ मुक्तिसाधनत्वेन योगाभ्यासोऽपि ज्ञानसहयोगी ''वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद यतयः शुद्धसत्त्वाः। ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे'' (मुण्ड० ३.२.६) ।।२७।।

अपरञ्च -

संकल्पितेऽप्येवम् ।।२८।।

(संकल्पिते-अपि) संकल्पिते मानसे जपेऽपि (एवम्) एवं पूर्ववत् खलु नात्यन्तिकं मुक्तिफलं

इतरस्यापि नात्यन्तिकम् ।।२७।।

सूत्रार्थ= योगाभ्यास आदि कर्म के अनुष्ठान से भी मोक्ष नहीं मिलेगा।

[(इतरस्य-अपि मुक्तिप्राप्तौ ज्ञानमेव नियतकारणं न तत्सहयोगि कर्म तर्हीतरस्य यज्ञादिकर्मतो भिन्नस्य यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरूपस्य योगाभ्यासनामककर्मणोऽप्यनुष्ठानात् (आत्यन्तिकं न) दुःखात्यन्तनिवृत्तिरूपमात्यन्तिकं मुक्तिपदं न सिध्येत्] पूर्वपक्षि आरोप लगाता है सिद्धांती पर- सिद्धांती की बात खंडन करते हुए कहता है- ''आप कहते हो की ज्ञान से मुक्ति होती है? यह ठीक नहीं, मुक्ति प्राप्ति में ज्ञान ही निश्चित कारण हो और सहयोगी कर्म न हो या उसका समुच्चय न हो अथवा विकल्प न हो'' अगर आप ऐसी बात कहते हैं तो यज्ञ आदि कर्म से भिन्न यम, निमय, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ऐसे आठ योगाभ्यास अनुष्ठान नामक कर्म हैं इस कर्म के अनुष्ठान से भी दुःख अत्यंत निवृत्ति रूप मुक्ति पद इससे भी प्राप्त नहीं होगा **[कर्मसामान्याद्-योगाभ्यासस्यपि तथा ज्ञानतोऽतिरिक्तत्वात्]** पूर्वपक्षि कहता है कि योगाभ्यास भी तो कर्म है और यह ज्ञान से तो भिन्न है (ज्ञान का अर्थ है जानना, कर्म का अर्थ है क्रिया करना। दोनों अलग अलग हैं)। **[उच्यते च श्रुतौ मुक्तिसाधनत्वेन योगाभ्यासोऽपि ज्ञानसहयोगी]** जबकि उपनिषद आदि में कहा है- योगाभ्यास भी मोक्ष प्राप्ति के लिए साधन के रूप में ज्ञान का सहयोगी है (आप सहयोगी होने का मना करते हो जबकि शास्त्र में कहा है।) **[''वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद यतयः शुद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे'' (मुण्ड० ३.२.६)]** जिन्होंने वेदान्त के ज्ञान से अर्थों को सुनिश्चित कर लिया है (सब वस्तुओं को ठीक ठीक समझ लिया है) और उन्होने सन्यास को भी धारण कर विवेक वैराग्य प्राप्त कर अपने चित्त को शुद्ध कर लिया है। वे लोग ब्रह्म लोकों में परान्त काल के पश्चात मोक्ष का आनद भोग करके वापिस जगत में लौट आते हैं।।२७।।

अपरञ्च -

संकल्पितेऽप्येवम् ।।२८।।

सिध्येत् । उच्यते हि मानसं कर्म ध्यानं मुक्तिसाधनत्वेन ''ओमित्येव ध्यायथात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्'' (मुण्ड० २.२.६) तथा ''तज्जपस्तदर्थभावनम्'' (योग० १.२८) पूर्वं चेदं च सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चाप्रासंगिकत्वेन व्याख्यातम् ।।२८।।

सूत्रद्वयोक्तः पूर्वपक्षः समाधीयते -

भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत् ।।२९।।

(भावनोपचयात्-शुद्धस्य) यमनियमादियोगाभ्यासानुष्ठानात् तथा मानसजपध्यानात् खलु भवति भावनोपचयो पवित्रभावनानां परमात्मानुरागभावनानां च प्रवृद्धिस्ततश्च योगाभ्यासी ध्यानी वा शुद्धः

सूत्रार्थ= मानसिक कर्म जप करने पर भी मोक्ष नहीं मिलेगा, जबकि श्रुतियों में मोक्ष के लिए जप का विधान है।

[**(संकल्पिते-अपि) संकल्पिते मानसे जपेऽपि (एवम्) एवं पूर्ववत् खलु नात्यन्तिकं मुक्तिफलं सिध्येत्**] जैसे ये अष्टांग योग से मुक्तिफल प्राप्त नहीं होगा वैसे ही संकल्प करके मानसिक जप से। [**उच्यते हि मानसं कर्म ध्यानं मुक्तिसाधनत्वेन**] आगे कहते हैं मानसिक जप ध्यान ये मानसिक कर्म है मुक्ति का साधन है [**''ओमित्येव ध्यायथात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्''**] ''ओ३म् का उच्चारण करके ईश्वर का ध्यान करो वह अविद्या से परे हैं इससे तुम्हारा कल्याण होगा और दुःखों से पार हो जाओगे'' (यहाँ जप मानसिक कर्म है उसका विधान किया है मुक्ति प्राप्ति के लिए) [**(मुण्ड० २.२.६) तथा ''तज्जपस्तदर्थभावनम्''**] और प्रमाण दिया योगदर्शन में लिखा है ''उसका जप करो उसके अर्थ की भावना करो'' [**(योग० १.२८) पूर्वं चेदं च सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चाप्रासंगिकत्वेन व्याख्यातम्**] (स्वामी ब्रह्ममुनि जी कह रहे है हमने ये सूत्र २८ और २७ वा को) पूर्वपक्ष का मानकर व्याख्या की परंतु इन दोनों सूत्रों की अनिरुद्धवृत्ति में और विज्ञान भिक्षु भाष्य में अप्रासंगिक व्याख्या की गयी है ।।२८।।

सूत्रद्वयोक्तः पूर्वपक्षः समाधीयते - पिछले दो सूत्रों से जो पूर्वपक्ष कहा गया अब उसका समाधान करते हैं-

भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत् ।।२९।।

सूत्रार्थ= निष्काम कर्म, ध्यान, जप, उपासना, आदि करने से योगाभ्यासी में पवित्र भावना की वृद्धि होती है, उससे व्यक्ति का चित्त शुद्ध हो जाता है, ऐसे व्यक्ति का सम्पूर्ण योगाभ्यास निष्काम कर्म आदि मूल कारण (तत्वज्ञान) के तुल्य हो जाता है।

[**(भावनोपचयात्-शुद्धस्य) यमनियमादियोगाभ्यासानुष्ठानात् तथा मानसजपध्यानात् खलु भवति भावनोपचयो पवित्रभावनानां परमात्मानुरागभावनानां च प्रवृद्धिस्ततश्च**] सिद्धांती कहते हैं- यम नियम आदि उस अष्टांग योग के अभ्यास से आचरण करने से और मानसिक जप ध्यान आदि करने से प्रवित्र भावनाओं की वृद्धि होती है परमात्मा के प्रति अनुराग प्रीति बढ़ेगी [**योगाभ्यासी ध्यानी वा शुद्धः पवित्रो वृत्तिरहितो वासनारहितश्च जायते**] (जब यमनियम का पालन करेगा ध्यान करेगा) तो उससे योगाभ्यासी

पवित्रो वृत्तिरहितो वासनारहितश्च जायते तस्य शुद्धस्य पवित्रस्य वृत्तिरहितस्य वासनारहितस्य योगाभ्यासिनो ध्यानिनो वा (सर्वं प्रकृतिवत्) मुक्तिप्राप्तौ सर्वमेतदुक्तं साधनं प्रकृतिवद् भवति प्रकृतिर्मूलं मूलसाधनवद् भवति । मूलसाधनं ज्ञानं नियतकारणं तद्वज्ज्ञानानन्यत् तदंग भवति। उक्तं यथा ''योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षयेज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः''(योग० २.२८) तथा ''वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः'' (मुण्डको० ३.२.६)। अथवा (सर्वं प्रकृतिवत्) प्रकृतिः स्वभावः, यथास्वभावं सर्वं भवति, स्वभावो हि पुरुषस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तत्वम् ''न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते'' (सांख्य० १.११) इति नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः पुरुषः तेन नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव- वत्त्वं सम्पद्यते तथा ''अध्यात्मयोगाधिगमेन मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति'' (कठो० १.२.१२) यद्वा (सर्वं प्रकृतिवत्) प्रकृतिः खलु सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था समावस्था गुणचेष्टारहिता तथैव तस्य सर्वं करणं चित्तमन्तःकरणं गुणवैषम्यरहितं गुणाऽधिकाररहितं भवति ।।२९।।

भवतु योगाभ्यासध्यानविषयस्य मुक्तिप्राप्तौ ज्ञानांगतया साधनभावेन वाऽनुष्ठेयत्वं कथं तत्सेव्यमिति विव्रियते -

शुद्ध पवित्र हो जाएगा वासना–वृत्ति रहित हो जाएगा **[तस्य शुद्धस्य पवित्रस्य वृत्तिरहितस्य वासनारहितस्य योगाभ्यासिनो ध्यानिनो वा (सर्वं प्रकृतिवत्) मुक्तिप्राप्तौ सर्वमेतदुक्तं साधनं प्रकृतिवद् भवति]** जिसने अष्टांग योग का पालन किया वह शुद्ध पवित्र हो जाएगा वृत्तियाँ हट जाएंगी वासना रहित हो जाएगा ऐसे उस योगाभ्यासी अथवा ध्यानी का मुक्ति प्राप्ति में जो कुछ भी साधन अब तक बताए गए थे (निष्काम कर्म, अष्टांगयोग, मानसिक जप ध्यान करना) ये सब प्रकृति (ज्ञान) के तुल्य हो जाएगा जब प्रकृति के तुल्य हो जाएगा तो न इसका समुच्चय होगा और न विकल्प होगा **[प्रकृतिर्मूलं मूलसाधनवद् भवति]** प्रकृति का अर्थ है ''मूल'' मूल (ज्ञान) साधन के समान हो जाएगा। **[मूलसाधनं ज्ञानं नियतकारणं तद्वज्ज्ञानानन्यत् तं भवति]** मूल कारण तो ज्ञान है वह निश्चित कारण है वह ज्ञान से भिन्न नहीं माना जाएगा बल्कि उसका अंग माना जाएगा। **[उक्तं यथा ''योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षयेज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः'']** जैसे के कहा है- योग के अंगों का अनुष्ठान से अशुद्धि का क्षय होता जाएगा अविद्या का नाश होगा ज्ञान बढ़ता जाएगा जब तक तत्वज्ञान प्राप्त न हो जाए **[(योग० २.२८) तथा ''वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः'' (मुण्डको० ३.२.६)]** (सर्वं प्रकृतिवत की एक व्याख्या पूरी हुई)। [**अथवा (सर्वं प्रकृतिवत्) प्रकृतिः स्वभावः]** यहाँ प्रकृति का अर्थ स्वभाव है, **[यथास्वभावं सर्वं भवति]** जैसा स्वभाव हो शेष वैसा ही हो जाता है, **[स्वभावो हि पुरुषस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तत्वम्]** जीवात्मा का स्वभाव नित्य शुद्ध, बुद्ध, और मुक्त है किसी में घुलता मिलता नहीं है, इसकी पुष्टि में सांख्य का प्रमाण दिया – **[''न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते'' (सांख्य०१.११) इति नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः पुरुषः तेन नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वं सम्पद्यते तथा]** जीवात्मा का स्वभाव नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त है उसने जो जप स्वाध्याय ध्यान योगाभ्यास आदि किया वह उसके स्वभाव के तुल्य ही हो जाता है **[''अध्यात्मयोगाधिगमेन मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति'']** ऐसा ही शास्त्र में बताया है की अध्यात्म योग की प्राप्ति से धीर योगी व्यक्ति मनन करके लौकिक दुख और सुख दोनों को छोड़ देता है, **(कठो० १.२.१२)** (सर्वं प्रकृतिवत का तीसरा अर्थ है) **[यद्वा (सर्वं प्रकृतिवत्) प्रकृतिः खलु सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था समावस्था गुणचेष्टारहिता**

रागोपहतिर्ध्यानम् ।।३०।।

(रागोपहतिः-ध्यानम्) संसारसक्तिरिन्द्रियभोगप्रवृत्तिर्वा रागः, तस्य खलूपशमो निवृत्तिर्ध्यानं मनसः स्थिरीभावः ।।३०।।

ध्यानसाधनम् -

वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः ।।३१।।

(वृत्तिनिरोधात्) प्रमाणादिपञ्चवृत्तीनां निरोधात् (तत्सिद्धिः) ध्यानसिद्धिर्भवति ।।३१।।

कथं पुनर्वृत्तिनिरोधो जायते । अत्रोच्यते -

धारणाऽऽसनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः ।।३२।।

तथैव तस्य सर्वं करणं चित्तमन्तःकरणं गुणवैषम्यरहितं गुणाऽधिकाररहितं भवति] यहाँ प्रकृति का तीसरा अर्थ है मूल प्रकृति -सत्वरजतम। प्रकृति की जो साम्यवास्था है वह प्रकृति है उसकी समावस्था अर्थात गुणचेष्टा रहित (बिलकुल शांत पडी रहती है प्रलय अवस्था में) उसी के तुल्य जीवात्मा (योगाभ्यासी व्यक्ति) का चित्त अंतःकरण शांत हो जाता है, गुणों की विषमता से रहित हो जाता है अब उस पर गुणों का प्रभाव नहीं रहता (रजोगुण तमोगुण आदि के प्रभाव से रहित हो जाता है) इससे वह सारी वस्तुए प्रक्रियाएं उसको शुद्ध बनाने में सहयोगी होती है तो वह ज्ञान का अंग बनती हैं। इसलिए कर्म और ज्ञान का न तो समुच्चय है और न विकल्प।।२९।।

[भवतु योगाभ्यासध्यानविषयस्य मुक्तिप्राप्तौ ज्ञानांगतया साधनभावेन वाऽनुष्ठेयत्वं कथं तत्सेव्यमिति विव्रियते -] चलो योगाभ्यास ध्यान विषय का मुक्ति प्राप्ति में ज्ञान का अंगरूप साधन मान लिया जाए, तो इसका अनुष्ठान कैसे किया जाए? इसको विस्तार पूर्वक कहते हैं-

रागोपहतिर्ध्यानम् ।।३०।।

सूत्रार्थ= भौतिक वस्तुओं में राग का उपशम (विनाश) हो जाना ही ध्यान है।

[(रागोपहतिः-ध्यानम्) संसारसक्तिरिन्द्रियभोगप्रवृत्तिर्वा रागः] संसार के पदार्थों में फंसे रहना (आसक्त रहना) अथवा दूसरे शब्दों में कहें की इंद्रिय भोगों में रुचि रखना इसका नाम है राग, **[तस्य खलूपशमो निवृत्तिर्ध्यानं मनसः स्थिरीभावः]** उस राग का उपशम हो जाना अर्थात निवृत्ति हो जाना, राग हट जाना, भोगौ में रुचि समाप्त हो जाना ये ध्यान कहलाता है। कैसे? जब मन में भोगों को भोगने की इच्छा ही समाप्त हो जाएगी मन की चंचलता समाप्त हो जाएगी मन स्थिर हो जाएगा तो ध्यान हो ही जाएगा ।।३०।।

ध्यानसाधनम् -

वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः ।।३१।।

सूत्रार्था- वृत्तियों के निरोध से ध्यान की सिद्धि हो जाती है।

[(वृत्तिनिरोधात्) प्रमाणादिपञ्चवृत्तीनां निरोधात् (तत्सिद्धिः) ध्यानसिद्धिर्भवति] प्रमाण (प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृति) आदि पाँच वृतियों का निरोध हो जाने से ध्यान की सिद्धि हो जाती है ।।३१।।

(धारणाऽऽसनस्वकर्मणा) धारणयाऽऽसनेन स्वकर्मणा च (तत्सिद्धिः) वृत्तिनिरोधस्य सिद्धिर्भवति ।।३२।।

अथ च -

निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् ।।३३।।

(निरोधः) निरोधो धारणार्थः । मनसो निरोधो देशबन्धो धारणारूपः (छर्दिविधारणाभ्याम्) प्राणस्य छर्दनेन वेगाद् बहिर्निसारणेन स्तम्भनेन च सम्पद्यते ।।३३।।

स्थिरसुखमासनम् ।।३४।।

(स्थिरसुखम्-आसनम्) शरीरस्य स्थिरं सुखं यस्मिन् भवति तथाभूतं शरीरचेष्टारहितं शरीरसुखसम्पादकमासनं विधेयम् ।।३४।।

स्वकर्म विषये -

स्वकर्म स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम् ।।३५।।

(स्वकर्म) स्वकर्म खलु (स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम्) स्वाश्रमस्य मुमुक्षोराश्रमस्य संन्यासाश्रमस्य विहितं यदहिंसादिकर्मानुष्ठानं तत्सेवनीयम् ।।३५।।

कथं पुनर्वृत्तिनिरोधो जायते। अत्रोच्यते - वृत्ति निरोध कैसे होता है? इस पर कहते हैं -

धारणाऽऽसनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः ।।३२।।

सूत्रार्था= धारणा, आसन, और स्वकर्म से ध्यान की सिद्धि होती है।

[(धारणाऽऽसनस्वकर्मणा) धारणयाऽऽसनेन स्वकर्मणा च (तत्सिद्धिः)]वृत्तिनिरोधस्य सिद्धिर्भवति इस सूत्र में तीन उपाय बताए हैं- धारणा = (मन को शरीर के किसी एक स्थान पर स्थिर करना, टिका देना मस्तक नाभि हृदय कंठ कहीं भी जहां पर अनुकूल हो इसका नाम है धारणा) करने से वृत्ति निरोध होता है, आसन= (सुखपूर्वक स्थिरतापूर्वक शरीर को कष्ट न हो अच्छा बैठने का आसन हो कमर गर्दन रीड की हड्डी एक सीध में हो - इसका नाम आसन है) और अपने-अपने आश्रम के कर्म जो शास्त्रों में बताए गए हैं उनका अच्छी प्रकार से पालन करें। ऐसा करने से मन की एकाग्रता अच्छी रहती है और वृत्ति निरोध में सहायता मिलती है।।३२।।

अथ च -

निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् ।।३३।।

सूत्रार्थ= प्राण को ज़ोर से बाहर धक्का देने और उसे बाहर ही रोक देने से मन का निरोध हो जाता है।

(निरोधः) निरोधो धारणार्थः यहाँ जो निरोध शब्द है वह धारणा के अर्थ में है (धारणा= मन को एक स्थान पर टिकाना)। **[मनसो निरोधो देशबन्धो धारणारूपः]** मन को किसी देश-स्थान विशेष पर टिका देना, स्थिर कर देना, बांध देना यह मन का धारणा रूप है। फिर यह धारणा कैसे होगी?

पुनश्च -

वैराग्यादभ्यासाच्च ।।३६।।

(वैराग्यात्) वृत्तिनिरोधो वैराग्याद् द्विविधादपरात्पराच्च विषयदोषदर्शनात् तथा ज्ञानप्रसादमात्रात् ''ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्'' (योग० १.१६ व्यासः) तथा (अभ्यासात् च) ध्यानाभ्यासाच्च भवति ।।३६।।

अधुना विपर्ययविषयमाह -

विपर्ययभेदाः पञ्च ।।३७।।

(विपर्ययभेदाः पञ्च) ज्ञानप्रतिपक्षिणो विपर्ययस्य मिथ्याज्ञानस्य भेदाः पञ्च सन्ति ।।३७।।

विपर्ययस्य कारणं खल्वशक्तिरुच्यते -

(छर्दिविधारणाभ्याम्) प्राणस्य छर्दनेन वेगाद् बहिर्निसारणेन स्तम्भनेन च सम्पद्यते] प्राण को वेग से धक्का देकर बाहर निकालना और उसको वहाँ रोक देना ऐसा करने से मन का निरोध हो जाता है।।३३।।

स्थिरसुखमासनम् ।।३४।।

सूत्रार्थ= स्थिरता पूर्वक और सुख पूर्वक जिस अवस्था में बैठा जाए वह आसन है।

(स्थिरसुखम्-आसनम्) शरीरस्य स्थिरं सुखं यस्मिन् भवति तथाभूतं शरीरचेष्टारहितं शरीरसुखसम्पादकमासनं विधेयम् जिस स्थिति से शरीर में सुख भी हो और स्थिरता भी इस प्रकार शरीर की क्रियाओं से, चेष्टाओं से रहित हो जिससे हम बैठकर ईश्वर का ध्यान कर सके उस स्थिति का नाम आसन है ।।३४।।

स्वकर्म विषये - स्वकर्म के विषय में बताया जा रह है-

स्वकर्म स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम् ।।३५।।

सूत्रार्थ= सभी आश्रमों के लिए अथवा सन्यास के लिए जो विहित अहिंसा आदि कर्मों का अनुष्ठान करना स्वकर्म है।

[(स्वकर्म) स्वकर्म खलु (स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम्) स्वाश्रमस्य मुमुक्षोराश्रमस्य संन्यासाश्रमस्य विहितं यदहिंसादिकर्मानुष्ठानं तत्सेवनीयम्] अपने आश्रम का मुमुक्षु के आश्रम का (सन्यास आश्रम का) जो विहित कर्म है अहिंसा (यम-नियम) आदि कर्म का अनुष्ठान करना उसका आचरण करना ''स्वकर्म'' है।।३५।।

पुनश्च -

वैराग्यादभ्यासाच्च ।।३६।।

सूत्रार्थ= वैराग्य और अभ्यास से वृत्ति निरोध की सिद्धि होता है।

[(वैराग्यात्) वृत्तिनिरोधो वैराग्याद् द्विविधादपरात्पराच्च विषयदोषदर्शनात् तथा ज्ञानप्रसादमात्रात्

अशक्तिरष्टाविंशतिधा ।।३८।।

(अशक्तिः-अष्टाविंशतिधा) अशक्तिः खल्वष्टाविंशतिभेदयुक्ता भवति ।।३८।।

पुनस्तत्कारणं तुष्टिमाह -

तुष्टिर्नवधा ।।३९।।

(तुष्टिः-नवधा) तुष्टिस्तु नवप्रकाराऽस्ति ।।३९।।

तस्याः कारणं सिद्धिः सा च -

सिद्धिरष्टधा ।।४०।।

(सिद्धिः-अष्टधा) सिद्धिः खल्वष्टविधा भवति ।।४०।।

अत्र वक्तव्यम् -

''विपर्ययभेदाः पञ्च'' (३७) ''अशक्तिरष्टाविंशतिधा'' (३८) ''तुष्टिर्नवधा'' (३९)

''ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्'' (योग० १.१६ व्यासः) तथा (अभ्यासात् च) ध्यानाभ्यासाच्च भवति] वृत्ति निरोध वैराग्य से होता है और वैराग्य दो प्रकार का होता है एक अपर वैराग्य दूसरा पर वैराग्य (छोटा वैराग्य और ऊंचा वैराग्य) विषयों में दोष का दर्शन करना यदि हम इंद्रियों के भोग में ही पडे रहे तो उसके हमें क्या क्या परिणाम नुकसान भोगने पडेंगे? उनका विचार करने, चिंतन करने से अपर वैराग्य होता है। पर वैराग्य में ज्ञान का स्तर ऊंचा होता है विषयों में दोष दिखता है तथा ईश्वर में रुचि बडती है। इस प्रकार से वृत्ति निरोध होता है। ज्ञान की पराकाष्ठा वैराग्य है। ध्यान का अभ्यास करने से वृत्ति निरोध होता है ।।३६।।

अधुना विपर्ययविषयमाह - अब विपर्यय के विषय को बताते हैं-

विपर्ययभेदाः पञ्च ।।३७।।

सूत्रार्थ= विपर्यय (मिथ्याज्ञान) के पाँच भेद हैं।

[(विपर्ययभेदाः पञ्च) ज्ञानप्रतिपक्षिणो विपर्ययस्य मिथ्याज्ञानस्य भेदाः पञ्च सन्ति] तत्वज्ञान का जो विरोधी पक्ष है वह है विपर्यय। उस विपर्यय के अर्थात मिथ्याज्ञान के पाँच भेद हैं।।३७।।

विपर्ययस्य कारणं खल्वशक्तिरुच्यते - इस विपर्यय का कारण है अशक्ति। इसके विषय में कहते हैं।

अशक्तिरष्टाविंशतिधा ।।३८।।

सूत्रार्थ= अशक्ति अठाइस प्रकार की होती है

[(अशक्तिः-अष्टाविंशतिधा) अशक्तिः खल्वष्टाविंशतिभेदयुक्ता भवति] अशक्ति अठाइस प्रकार की होती है।।३८।।

पुनस्तत्कारणं तुष्टिमाह - अशक्ति का कारण है तुष्टि।

''सिद्धिरष्टधा'' (४०) इति चतुःसूत्रीमुक्त्वा तथैव ''अवान्तरभेदाः पूर्ववत्'' (४१) ''एवमितरस्याः'' (४२) ''आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः'' (४३) ''ऊहादिभिः सिद्धिरष्टधा'' (४४) एषा चतुःसूत्री पुनरुक्ता, सैषा पुनरुक्तिरयुक्ता प्रतिभाति, मन्येऽहमत्रैषा पुनरुक्तिरियती हि न कृताऽऽसीत् सूत्रकारेण किन्तु सविवरणा कृता भवेत्, कालवशाद् यद्वा लिपिलेखकविभ्रमादथवा कस्यचिद् भाष्यकारस्याज्ञानात् तत्रस्थविवरणवचनानि सूत्रबाह्यानि मत्वा पृथक्कृतानि स्युः पुनश्चाल्पविवरणेन प्रायः संख्यानिर्देशेन सह सैषा पुनरुक्तिरवशिष्टा भवेदिति मे मतिः । द्वितीया विचारणा - ''अवान्तरभेदाः पूर्ववत्'' (४१) इति सूत्रतः 'पूर्ववत्' शब्दः सर्वत्रोत्तरेषु त्रिषु सूत्रेष्वनुषज्यते पूर्वाचार्यकृतविवरणवदर्थे तदा ''विपर्ययभेदाः पञ्च''... (३७-४०) इत्याद्या पूर्वा चतुःसूत्री निरर्थिका भवति । तृतीया विचारणा -तत्रैव पूर्वचतुःसूर्त्याम् ''विपर्ययभेदाः पञ्च पूर्ववत्'' (३७) इति सूत्ररचनया भाव्यं तत एव ''पूर्ववत्' शब्दः पूर्वचतुः

तुष्टिर्नवधा ।।३९।।

सूत्रार्थ= तुष्टि नौ प्रकार की होती है।

(तुष्टिः-नवधा) तुष्टिस्तु नवप्रकाराऽस्ति तुष्टि नौ प्रकार की है।।३९।।

तस्याः कारणं सिद्धिः सा च - उस तुष्टि का कारण है सिद्धि।

सिद्धिरष्टधा ।।४०।।

(सिद्धिः-अष्टधा) सिद्धिः खल्वष्टविधा भवति सिद्धि आठ प्रकार की होती है।।४०।।

अत्र वक्तव्यम् - यहाँ इस विषय में कहते हैं-

[''विपर्ययभेदाः पञ्च'' (३७) ''अशक्तिरष्टाविंशतिधा'' (३८) ''तुष्टिर्नवधा'' (३९) ''सिद्धिरष्टधा'' (४०) इति चतुःसूत्रीमुक्त्वा तथैव ''अवान्तरभेदाः पूर्ववत्'' (४१) ''एवमितरस्याः'' (४२) ''आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः'' (४३) ''ऊहादिभिः सिद्धिरष्टधा'' (४४) एषा चतुःसूत्री पुनरुक्ता, सैषा पुनरुक्तिरयुक्ता प्रतिभाति] ये जो पुनरुक्ति है यह युक्त लगती है।, **[मन्येऽहमत्रैषा पुनरुक्तिरियती हि न कृताऽऽसीत् सूत्रकारेण किन्तु सविवरणा कृता भवेत्]** स्वामीब्रह्ममुनि भाष्यकार कहते हैं- मै ऐसा मानता हूँ, कि ये जो पुनरुक्ति थी ये केवल मात्र इतनी ही नहीं थी, किन्तु कुछ और भी विवरण दिया होगा, **[कालवशाद् यद्वा लिपिलेखकविभ्रमादथवा कस्यचिद् भाष्यकारस्याज्ञानात् तत्रस्थविवरणवचनानि सूत्रबाह्यानि मत्वा पृथक्कृतानि स्युः पुनश्चाल्पविवरणेन प्रायः संख्यानिर्देशेन सह सैषा पुनरुक्तिरवशिष्टा भवेदिति में मतिः]** संभावना व्यक्त करते हुए कहते हैं- कालवशात् काल के कारण (लंबे काल में सैंकड़ों वर्षों) अथवा लिपि लेखक के भ्रम से भाष्यकार की अज्ञानता से शास्त्र की बात का ठीक अर्थ न लिया हो, उन्होंने कुछ मिलावट अथवा कुछ अंश व्यर्थ जान हटा दिए हों, अल्पविवरण के साथ संख्या के निर्देश सहित ये जो पुनरुक्ति थी ये तो बच गयी (पहले के जो चार सूत्र थे) और कुछ शब्द छूट गए ये एक संभावना मेंरी बुद्धि से लगती है।।

दूसरी संभावना **[द्वितीया विचारणा - ''अवान्तरभेदाः पूर्ववत्'' (४१) इति सूत्रतः 'पूर्ववत्'**

सूत्रीस्थेषु त्रिष्वन्येष्वपि सूत्रेषु किलानुवर्तनीयः, पुनरुत्तरचतुःसूत्री स्यादनावश्यकी । तत्रोभयतचतुःसूत्रीरक्षणाय प्रथमा विचारणा गरिष्ठा युक्ता च सा हि खल्वस्माभिरभीष्यते ।।

विपर्ययादीनां चतुर्णामपि विवरणं क्रमशः प्रदर्शयति सूत्रकारस्तत्र पूर्वं विपर्ययमाह -

अवान्तरभेदाः पूर्ववत् ।।४१।।

(पूर्ववत्-अवान्तरभेदाः) पूर्ववदिति पूर्वस्य पञ्चेत्यनुषज्यते । पूर्वस्य प्रक्रमस्य विपर्ययस्यैकस्यापि सतः पञ्चावान्तरभेदाः सन्ति तमो मोहो महामोहस्तामिस्रोऽन्धतामिस्रश्चेति नामभिः ''विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्-तमोमोहोमहामोहस्तमिस्रोऽन्धतमिस्र इति''(योग० १.८ व्यासः) ।।४१।।

अशक्तिमाह -

शब्दः सर्वत्रोत्तरेषु त्रिषु सूत्रेष्वनुषज्यते पूर्वाचार्यकृतविवरणवदर्थे तदा ''विपर्ययभेदाः पञ्च''... (३७-४०) इत्याद्या पूर्वा चतुःसूत्री निरर्थिका भवति] ४१ वें सूत्र से जो पूर्ववत शब्द आया, इसको अगले तीन सूत्रों में भी जो्ना चाहिए पूर्व आचार्य के द्वारा विवरण के अर्थ में ''पूर्ववत्' इसको प्रत्येक सूत्र में जोडना चाहिए, यदि हम ऐसा सोचे पूर्वपक्ष में तो पहले वाले चार सूत्र व्यर्थ हो जाते हैं।

तीसरी संभावना **[तृतीया विचारणा -तत्रैव पूर्वचतुःसूत्र्याम ''विपर्ययभेदाः पञ्च पूर्ववत्'' (३७) इति सूत्ररचनया भाव्यं तत एव ''पूर्ववत्' शब्दः पूर्वचतुः सूत्रीस्थेषु त्रिष्वन्येष्वपि सूत्रेषु किलानुवर्तनीयः,पुनरुत्तरचतुःसूत्री स्यादनावश्यकी]** ''विपर्यय भेदाः पञ्च'' उसी के साथ ''पूर्ववत्' जोडदें तो ऐसी सूत्र की रचना होनी चाहिए थी यदि ऐसी सूत्र रचना होती तो उसी से पूर्ववत् शब्द बाकी के चार सूत्रों में चला जाता, इस पक्ष में अगले चार सूत्र बेकार हो जाएंगे उसकी आवश्यकता नहीं रहेगी। **[तत्रोभयतचतुःसूत्रीरक्षणाय प्रथमा विचारणा गरिष्ठा युक्ता च सा हि खल्वस्माभिरभीष्यते]** स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं- तीन संभावनाएं रखीं, दूसरी, तीसरी सब में दोष दिख रहा है। इसलिए दोनों ही चतुसूत्रियों की रक्षा करने के लिए हमारी जो पहली विचारणा थी पहला पक्ष जो था, वो कुछ गरिष्ठ है, वही उचित है इसलिए हमने उसी को स्वीकार किया।।

[विपर्ययादीनां चतुर्णामपि विवरणं क्रमशः प्रदर्शयति सूत्रकारस्तत्र पूर्वं विपर्ययमाह -] विपर्यय आदि का चारों सूत्रों का विवरण क्रमशः सूत्रकार दिखलाते हैं, और इस प्रसंग में पहले विपर्यय कि बात आएगी-

अवान्तरभेदाः पूर्ववत् ।।४१।।

सूत्रार्थ=पूर्वोक्त मिथ्याज्ञान के (विपर्यय ज्ञान) पाँच अवांतर (आन्तरिक) भेद हैं।

[(पूर्ववत्-अवान्तरभेदाः) पूर्ववदिति पूर्वस्य पञ्चेत्यनुषज्यते] इस सूत्र में जो पूर्ववत शब्द है, वो क्या कह रहा है? जो पहले पहले अविद्या के पञ्च भेद बताए थे। ये उसके साथ जुडता है। **[पूर्वस्य प्रक्रमस्य विपर्ययस्यैकस्यापि सतः पञ्चावान्तरभेदाः सन्ति तमो मोहो महामोहस्तामिस्रोऽन्धतामिस्रश्चेति**

एवमितरस्या ।।४२।।

(एवम्-इतरस्याः) एवं पूर्ववदेवाष्टाविंशतिविधत्वमवान्तरभेदादेकस्या अपि सत्याः खल्वनन्तराया अशक्तेर्विज्ञेयं तत्र-एकादशेन्द्रियाणां वधा इन्द्रियाणामेकादशाशक्तयः, सप्तदशशक्तयस्तु नवतुष्टीनां तथाष्टसिद्धीनां विघातानवलम्ब्य अजायन्ते ।।४२।।

तुष्टिमाह -

आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः * ।।४३।।

(आध्यात्मिकादिभेदात्-नवधा तुष्टिः) आध्यात्मिकाद्ययवान्तरभेदान्नवधा तुष्टिर्भवति ।

नामभिः "विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्-तमोमोहोमहामोहस्तमिस्त्रोऽन्धतमिस्त्र इति" (योग० १.८ व्यासः)] पूर्वक्रम से जो चल रहा है विपर्यय (मिथ्याज्ञान)। उस मिथ्याज्ञान के एक होते हुए भी उसके अवांतर भेद हैं, छोटे छोटे पाँच भेद हैं (जैसे एक मान के चार बच्चे होते हैं, यह पूरा एक परिवार है। ठीक ऐसे ही अविद्या माँ है, अन्य उसी के परिवार के सदस्य हैं) अविद्या के पाँच भेद हैं- तम, मोह, महामोह, तामिस्त्र, और अंधतामिस्त्र। इन नामों से पाँच विपर्यय कहे जाते हैं। योगदर्शन में जो पाँच क्लेश कहे गए हैं, उन्हीं के ये दूसरे नाम हैं ।।४१।।

अशक्तिमाह - अब अशक्ति को बतलाते हैं-

एवमितरस्या ।।४२।।

सूत्रार्थ= ऐसे ही इतरस्य (अशक्ति) के अठाइस भेद होते हैं।

[(एवम्-इतरस्याः) एवं पूर्ववदेवाष्टाविंशतिविधत्वमवान्तरभेदादेकस्या अपि सत्याः खल्वनन्तराया अशक्तेर्विज्ञेयं तत्र-एकादशेन्द्रियाणां वधा इन्द्रियाणामेकादशा- शक्तयः, सप्तदशशक्तयस्तु नवतुष्टीनां तथाष्टसिद्धीनां विघातानवलम्ब्य अजायन्ते] पूर्ववत् ही अठाइस प्रकार के अवांतर भेद होने से एक ही उसके पश्चात अर्थात मिथ्याज्ञान के पश्चात जो अशक्ति बताई गई थी, उस अशक्ति के भी अठाइस भेद जानने चाहिए। ग्यारह इंद्रियों के जो वध हैं (न्यूनता) है (दिखाई नहीं देता, सुनाई नहीं देता, चल नहीं पाते, सूंघ नहीं पाते, खा नहीं पाते। तो इंद्रियों की क्षमता जैसे जैसे कम होती जाएगी सामर्थ्य समाप्त होता जाता है यह कमी ही अशक्ति है) । अठाइस में से ग्यारह इंद्रियों की अशक्ति हो गयी। अब सत्रह अशक्ति- ये नौ तुष्टियों एवं आठ सिद्धियों के विघातों से उत्पन्न हो जाती है ।।४२।।

तुष्टिमाह -अब तुष्टि के विषय में कहते हैं-

आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः * ।।४३।।

सूत्रार्थ= आध्यात्मिक आदि भेद से नौ प्रकार की तुष्टियाँ होती हैं।

[(आध्यात्मिकादिभेदात्-नवधा तुष्टिः) आध्यात्मिकाद्ययवान्तरभेदान्नवधा तुष्टिर्भवति] आध्यात्मिक आदि अवांतर भेदों से तुष्टि नौ प्रकार की होती है । **[आत्मन्यधिष्ठितत्वादाध्यात्मिकी तुष्टिः स्वात्मस्थितिपरितोपरूपेतियावत्]** यह आत्मा में स्थित रहती है (आत्मा पर आधारित) अपनी स्थिति से

आत्मन्यधिष्ठितत्वादाध्यात्मिकी तुष्टिः स्वात्मस्थितिपरितोपरूपेतियावत्। आदिशब्देन बाह्येषु विषयेषु दोषदर्शनात्तेभ्यो घृणारूपा यद्वा वैराग्यरूपा तुष्टिर्बाह्या । एवं तुष्टिद्वयं नवविधं तत्राध्यात्मिक्याश्चत्वारो भेदाः, बाह्यायाश्च पञ्च भेदाः सन्ति। आध्यात्मिक्यस्तुष्टयः प्रकृत्युपादानकालभागाख्याः क्रमशोम्भः सलिलमोघो वृष्टिरित्यवान्तरनामतश्च प्रसिद्धाः। तासु-प्रकृतिः परिणामिनी नाहं परिणामी किन्त्वहं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो न मया तत्परिणामतापः स्वस्मिन् खल्वारोपणीयो नान्यो विवेकदर्शनप्रयासो विधेय इति प्रकृतिविषयाऽम्भो नाम तुष्टिः। प्रव्रज्याव्रतोपादानात् प्राकृतिकसम्बन्धाद्विमुक्तोऽहं नेदानीं तापप्रसंगो न च ध्यानापेक्षेति तूपादानाख्या प्रव्रज्योपादानरूपा सलिलं नाम तुष्टिः ।ध्यानं बहुकालमनुष्ठितं मयाऽतो भविष्यत्येव ब्रह्मसाक्षात्कारोऽलमग्रे ध्यानाभ्यासेनेति कालाख्या खल्वोघः 'ध्यानसंग्रहः' नाम तुष्टि नाम तुष्टिः। स्वतो भाग्यात् साक्षात्कारो भविष्यत्यस्मि ह्यहं भाग्यवान् लब्धसमाधिप्रज्ञोऽहमिति

व्यक्ति संतुष्ट हो जाता है प्रसन्न हो जाता है- मैंने बहुत प्रगति कर ली (अपनी उन्नति देख कर खुश हो जाना आगे के लिए पुरुषार्थ करना छोड देना) यह आध्यात्मिक तुष्टि हुई।**[आदिशब्देन बाह्येषु विषयेषु दोषदर्शनात्तेभ्यो घृणारूपा यद्वा वैराग्यरूपा तुष्टिर्बाह्या]** आदि शब्द से बाह्य विषयों की तुष्टि के संदर्भ में बताते हैं- बाह्य विषयों में दोष दर्शन से जो इंद्रियों के विषय हैं रूप, रस, गंध आदि उनमें दोष देखकर उनके प्रति घृणा हो जाती है या वैराग्य हो जाता है इस प्रकार से यह बाह्य तुष्टि कहलाती है। **[एवं तुष्टिद्वयं नवविधं तत्राध्यात्मिक्याश्चत्वारो भेदाः, बाह्यायाश्च पञ्च भेदाः सन्ति]** इस प्रकार से दोनों तुष्टियों मिलकर के कुल नौ प्रकार की होती हैं, जो आध्यात्मिक तुष्टियाँ हैं उनके चार भेद हैं और जो बाह्य तुष्टि है उनके पाँच भेद हैं। **[आध्यात्मिक्यस्तुष्टयः प्रकृत्युपादानकालभागाख्याः क्रमशोम्भः सलिलमोघो वृष्टिरित्यवान्तरनामतश्च प्रसिद्धाः]** आध्यात्मिक तुष्टियाँ बताते हैं, कौन- कौन सी है? प्रकृति, उपदान, काल, भाग नाम वाली हैं, इनके दूसरे नाम भी हैं- अम्भः , सलिलम, मोघ, वृष्टि ये चार तरह की आध्यात्मिक तुष्टि हो गई। **[तासु-प्रकृतिः परिणामिनी नाहं परिणामी किन्त्वहं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो न मया तत्परिणामतापः स्वस्मिन् खल्वारोपणीयो नान्यो विवेकदर्शनप्रयासो विधेय इति प्रकृतिविषयाऽम्भो नाम तुष्टिः]** प्रकृति के पदार्थ तो परिणाम वाले हैं (घटना बढ़ना सढ़ना गलना होता रहता है) इनमें परिवर्तन होता रहता है किन्तु मैं तो आत्मा हूँ चेतन शक्ति तो कोई परिणाम वाली होती नहीं अपितु मैं तो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव वाला हूँ। इसलिए जो भौतिक बस्तुओं में परिणाम होता है उसे अपने उपर आरोपित नहीं करना है, परिणाम ताप आदि को आरोपित नहीं करना है (वस्तु नष्ट हुई मैं नहीं), इतना समझने से बहुत लाभ हो जाएगा, अब मुझे तत्वज्ञान और बडाने का प्रयास नहीं करना है, मुझे समझ में आ गया। यह प्रकृति विषय वाली अम्भ नाम की तुष्टि है। **[प्रव्रज्याव्रतोपादानात् प्राकृतिकसम्बन्धाद्विमुक्तोऽहं नेदानीं तापप्रसंगो न च ध्यानापेक्षेति तूपादानाख्या प्रव्रज्योपादानरूपा सलिलं नाम तुष्टिः]** सन्यास व्रत को धारण करके प्राकृतिक विषयों से मुक्त हो गए (किसी एक मकान-जमीन से अब हम छूट गए, इन सबसे अब कोई संबंध नहीं रहा) अब उनमें किसी प्रकार का राग मोह आदि नहीं रहा, घर-परिवार, जमीन-जायदाद छोड दी अब उनके दुःख सुख से कोई लेना देना नहीं है, अब न मुझे कोई ध्यान की आवश्यकता है, इस प्रकार से उपादान नामक यह प्रव्रज्या उपादान रूपक ये सलिल नाम की तुष्टि है। **[ध्यानं बहुकालमनुष्ठितं मयाऽतो भविष्यत्येव ब्रह्मसाक्षात्कारोऽलमग्रे**

भाग्याख्या वृष्टिस्तुष्टिः । बाह्यास्तुष्टयस्तु बाह्यविषयोपरमाद् भवन्ति विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसादोषदर्शनाद् भवन्ति ।तत्र गन्धादिविषयाणामर्जनदोषदर्शनाद् या भवति सा पारं नाम तुष्टिः । या रक्षणदोषदर्शनाद् भवति सुपारं नाम सा तुष्टिः । या क्षयदोषदर्शनाद् भवति पारपारं नाम सा तुष्टिः । या संगदोषदर्शनाद् भोगदोषदर्शनाद् भवति सा तुष्टिरनुत्तमाम्भो नाम । या हिंसादोषदर्शनाद् भवति यन्नानुपहत्य भूतानि भोगसिद्धिरेवम्भूता सा तुष्टिरुत्तमाम्भो नाम ।।४३।।

सिद्धिमाह -

ऊहादिभिः सिद्धिरष्टधा ।।४४।।

(ऊहादिभिः सिद्धिः-अष्टधा) ऊहादिभिरवान्तरभेदैः सिद्धिरष्टधा भवति ।तत्र गुरुमुखादनधीत्य स्वयमध्ययनाज्ज्ञानलाभोऽध्ययनसिद्धिस्तारं नाम । स्वयमप्यध्ययनं न कृत्वा शब्दमेव श्रुत्वा ज्ञानोत्पत्तिः शब्दसिद्धिः सुतारं नाम ।शब्दमप्राप्यापि ज्ञानप्रादुर्भाव ऊहः सिद्धिस्तारतारं नाम ।ऊहनमन्तरेणाप्यभीष्टस्य प्राप्तिसिद्धी रम्यकं नाम । बाह्यपदार्थमनपेक्ष्य नैर्मल्यं शुद्धिसिद्धिः सदा मुदितं नाम । स्वत

ध्यानाभ्यासेनेति कालाख्या खल्वोघः 'ध्यानसंग्रहः' नाम तुष्टि नाम तुष्टिः] एक व्यक्ति ने ३० वर्ष तक ध्यान अभ्यास कर लिया वह सोचता है बहुत कर लिया, अब तो साक्षात्कार हो ही जाएगा। अब और ध्यान करने की क्या आवश्यकता? तो यह काल नामक तुष्टि है इसी का नाम ''ध्यानसंग्रह'' है। **[स्वतो भाग्यात् साक्षात्कारो भविष्यत्यस्मि ह्यहं भाग्यवान् लब्धसमाधिप्रज्ञोऽहमिति भाग्याख्या वृष्टिस्तुष्टिः]** एक कहता है - हमारी किस्मत में लिखा होगा तो भगवान का साक्षात्कार हो ही जाएगा, स्वयं ही अपने भाग्य से परमात्मा का साक्षात्कार हो ही जाएगा, इस प्रकार से समाधि प्रज्ञा (संप्रज्ञात समाधि) को प्राप्त हो गया हूँ, अब असंप्रज्ञात समाधि प्राप्त हो ही जाएगी। इस प्रकार अपने आपको भाग्यवान मानता है, तो यह भाग्य नामक वृष्टि तुष्टि है। ये चार आध्यात्मिक तुष्टियाँ हुई। **[बाह्यास्तुष्टयस्तु बाह्यविषयोपरमाद् भवन्ति विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसादोषदर्शनाद् भवन्ति]** बाह्य तुष्टियाँ तो बाह्य विषयों के उपरम (विराम) से, बाह्य विषयों के भोगों को रोक देने से होती है, विषयों के अर्जन, रक्षण, क्षय, संग, अहिंसा आदि में दोष देखकर इनको छोड़ देते हैं ।**[तत्र गन्धादिविषयाणामर्जनदोषदर्शनाद् या भवति सा पारं नाम तुष्टिः]** गंध आदि विषयों में दोष देखकर के जो संतुष्टि हो जाती है वह पारम नाम की तुष्टि होती है।**[या रक्षणदोषदर्शनाद् भवति सुपारं नाम सा तुष्टिः]** रक्षण दोष को देखकर के जो व्यक्ति बाह्य विषयों का संग्रह करना छोड देता है, यह सुपार नाम की तुष्टि है।**[या क्षयदोषदर्शनाद् भवति पारपारं नाम सा तुष्टिः]** वस्तु के क्षय दोष दर्शन से जो तुष्टि होती है वह पारपार नाम की तुष्टि है।**[या संगदोषदर्शनाद् भोगदोषदर्शनाद् भवति सा तुष्टिरनुत्तमाम्भो नाम]** जो भोगों के संग दोष दर्शन से जो तुष्टि हो जाती है, वह अनुतमम्भो नाम की तुष्टि है । **या हिंसादोषदर्शनाद् भवति यन्नानुपहत्य भूतानि भोगसिद्धिरेवम्भूता सा तुष्टिरुत्तमाम्भो** नाम हिंसा दोष दर्शन से जो तुष्टि होती है, जो व्यक्ति यह सोच लेता है की प्राणियों को दु:ख दिए वगैर तो जी नहीं सकते कुछ न कुछ तो हिंसा करनी पडती है, ऐसा सोचकर के वह लापरवाह हो जाता है फिर आगे और हिंसा करने लग जाता है, ऐसी तुष्टि करलेना यह उतमम्भ नाम की तुष्टि है । ये पाँच बाह्य तुष्टियाँ हुई।।४३।।

एवाध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकदुःखविमुक्तिरिति विमुक्तिसिद्धिस्त्रिधाविमुक्तिसिद्धिः प्रमोदमुदितमोदमाननामिका ।।४४।।

तत्र सिद्धिषूहादिषु -

नेतरादितरहानेन विना ।।४५।।

(इतरहानेन विना-इतरात्-न) इतरहानेन स्वस्माद्भिन्नमितरं तच्च पूर्ववर्ति तद्धानेन विना तस्य हानमन्तरेण तदपायमन्तरेण तदभावमन्तरेणेतरात् तद्भिन्नादुत्तरवर्तिनो धर्मात् सिद्धिर्न भवति सिद्धिर्नोच्यते । तद्यथा - अध्ययनसिद्धिस्तु गुरुमुखाध्ययनेन विना स्वयमध्ययनाद् भवति तदग्रे शब्दसिद्धिः स्वयमध्ययनेन विना शब्दादेव भवति पुनः शब्दहानेन शब्दमन्तरेण खलूहाद् भवति ह्यूहासिद्धिः। तथैव

सिद्धिमाह - अब सिद्धि के बारे में कहते हैं-

ऊहादिभिः सिद्धिरष्टधा ।।४४।।

सूत्रार्थ= ऊहादि सिद्धियाँ आठ प्रकार की होती हैं।

[(ऊहादिभिः सिद्धिः-अष्टधा) ऊहादिभिरवान्तरभेदैः सिद्धिरष्टधा भवति] उहादि अवांतरभेद से सिद्धि आठ प्रकार की होती हैं । **[तत्र गुरुमुखादनधीत्य स्वयमध्ययनाज्ज्ञानलाभोऽध्ययनसिद्धिस्तारं]** नाम इन आठ सिद्धियों में पहली सिद्धि है- बिना गुरुमुख से अध्ययन किए, स्वयं ही अध्ययन करके व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त हो जाता है पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण से। यह अध्ययन सिद्धि नाम की तारम नाम सिद्धि हैं। **[स्वयमप्यध्ययनं न कृत्वा शब्दमेव श्रुत्वा ज्ञानोत्पत्तिः शब्दसिद्धिः सुतारं नाम]** व्यक्ति ने स्वयं अध्ययन भी नहीं किया किसी से उपदेश सुनलेने मात्र से ज्ञान प्राप्त हो गया यह शब्द सिद्धि सुतार नाम की सिद्धि है। **[शब्दमप्राप्यापि ज्ञानप्रादुर्भाव ऊहः सिद्धिस्तारतारं नाम]** किसी पुस्तक का अध्ययन भी नहीं किया न ही किसी का उपदेश सुना, स्वयं ऊहा से ज्ञान प्राप्त हो जाना उहसिद्धि तारंतारम नाम वाली है। **[ऊहनमन्तरेणाप्यभीष्टस्य प्राप्तिसिद्धी रम्यकं नाम]** ऊहा भी नहीं बस बैठे बैठे अचानक ही ज्ञान हो गया यह प्राप्ति सिद्धि रम्यक नाम की सिद्धि है। **[बाह्यपदार्थमनपेक्ष्य नैर्मल्यं शुद्धिसिद्धिः सदा मुदितं नाम]** बाह्य पदार्थ की अपेक्षा किए विना ही अपने अंदर से मन की निर्मलता हो जाना, यहा सदा मुदितम नाम की सीधी है। **[स्वत एवाध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकदुःखविमुक्तिरिति विमुक्तिसिद्धिस्त्रिधाविमुक्तिसिद्धिः प्रमोदमुदितमोदमाननामिका]** बिना किसी विशेष प्रयास के संयोगवश आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक इन तीनों दुखों से बचे रहना यह विमुक्ति सिद्धि तीन प्रकार की है- प्रमोद, मुदित, मोदमान नाम की सिद्धि हैं।।४४।।

तत्र सिद्धिषूहादिषु - अब इन ऊहादि सिद्धियों के विषय में कहते हैं

नेतरादितरहानेन विना ।।४५।।

सूत्रार्थ=पिछले सिद्धि को छोड़े बिना अगली सिद्धि के धर्म व्यक्ति युक्त नहीं हो सकता।

[(इतरहानेन विना-इतरात्-न) इतरहानेन स्वस्माद्भिन्नमितरं तच्च पूर्ववर्ति तद्धानेन विना तस्य

प्राप्तिसिद्धिः प्राप्तेः पूर्ववर्तिन ऊहहानेन संकल्पमन्तरेणैवाभीष्टप्राप्तिः प्राप्तिसिद्धिर्भवति । अभीष्टप्राप्तिमन्तरेण यन्नैर्मल्यं सा शुद्धिसिद्धिर्न सा प्राप्तिहानेन विना । शुद्धिमनपेक्ष्यैव शोधनहानेन भवत्याध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकदुःखनिवृत्तिः सा प्रसादसिद्धिर्दुःखविमुक्तिसिद्धिः कथ्यते । अस्य सूत्रस्य विज्ञानभिक्षुभाष्येऽन्यथाऽऽलपितं तत्र योगदर्शन प्रतिपादितानां मन्त्रतपःसमाधिसिद्धीनां खण्डनं कृतं सूत्राभिप्रायमविज्ञाय सूत्रस्थस्य 'इतरात्' शब्दात् सांख्यसिद्धितो भिन्नाद् योगसिद्धिर्न सिद्धिरित्युपरिष्टादर्थकल्पनाऽन्यथा कृता । तथा 'इतरहानेन विना' अत्र च 'इतरशब्देन' विपर्ययो गृहीतो नहि विपर्ययोऽनन्तरो य इतरशब्देन लक्ष्येत । अन्यच्च योगदर्शनप्रतिपादितानां मन्त्रादिसम्भूतानां सिद्धीनां मण्डनं सांख्ये कृतम् ''योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः'' (सांख्य० ५.१२९) अत्र मन्त्रादिजाः सिद्धयः सम्पोषिताः । तस्मादयुक्तं व्याख्यानं तस्य ।।४५।।

व्यक्तिसृष्टेर्भेदप्रयोजने उच्येते -

देवादिप्रभेदा* ।

हानमन्तरेण तदपायमन्तरेण तदभावमन्तरेणेतरात् तद्भिन्नादुत्तरवर्तिनो धर्मात् सिद्धिर्न भवति सिद्धिर्नोच्यते] एक को छोड़े बिना ''अपने से जो दूसरी वस्तु है उसका नाम है इतर'' ये स्वयं इतर पूर्ववर्ती है (यदि कक्षा की बात करें तो पहले की कक्षा हुई इतर दूसरी कक्षा हुई स्वयं) पहली कक्षा को छोडे बिना दूसरी कक्षा में विध्यार्थी नहीं बैठ सकता। [**तद्यथा - अध्ययनसिद्धिस्तु गुरुमुखाध्ययनेन विना स्वयमध्ययनाद् भवति तदग्रे शब्दसिद्धिः स्वयमध्ययनेन विना शब्दादेव भवति पुनः शब्दहानेन शब्दमन्तरेण खलूहाद् भवति ह्यूहासिद्धिः**] जैसे अध्ययन सिद्धि बिना गुरुमुख से अध्ययन किए ही सिद्ध हो जाती है, फिर उसके बाद जी शब्द सिद्धि है वह बिना अध्ययन के ही सिद्ध हो जाती है, फिर शब्द के बिना ही व्यक्ति ऊहा से चिंतन करता है और सिद्धि हो जाती है। [**तथैव प्राप्तिसिद्धिः प्राप्तेः पूर्ववर्तिन ऊहहानेन संकल्पमन्तरेणैवाभीष्टप्राप्तिः प्राप्ति सिद्धिर्भवति**] उसी प्रकार से प्राप्ति सिद्धि ऊह के बिना अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है, यह प्राप्ति सिद्धि कहलाती है। [**अभीष्टप्राप्तिमन्तरेण यन्नैर्मल्यं सा शुद्धिसिद्धिर्न सा प्राप्तिहानेन विना**] अभीष्ट प्राप्ति सिद्धि को छोडकर जो नैर्मल्य सिद्धि है शुद्धि सिद्धि जिसका नाम है जब तक प्राप्ति को नहीं छोड़ेगे तब तक यह नहीं मिलेगी। [**शुद्धिमनपेक्ष्यैव शोधनहानेन भवत्याध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकदुःखनिवृत्तिः सा प्रसादसिद्धिर्दुःखविमुक्तिसिद्धिः कथ्यते**] शुद्धि के बिना ही शोधन सिद्धि को छोडकर के आध्यात्मिक आधिदैविक आदिभौतिक ये तीन दुःखों की निवृति हो जाती है यह प्रसाद सिद्धि अथवा तीन दुःखों से मुक्ति है ऐसा कहा जाता है। [**अस्य सूत्रस्य विज्ञानभिक्षुभाष्येऽन्यथाऽऽलपितं तत्र योगदर्शन प्रतिपादितानां मन्त्रतपःसमाधिसिद्धीनां खण्डनं कृतं सूत्राभिप्रायमविज्ञाय सूत्रस्थस्य 'इतरात्' शब्दात् सांख्यसिद्धितो भिन्नाद् योगसिद्धिर्न सिद्धिरित्युपरिष्टादर्थकल्पनाऽन्यथा कृता**] स्वामी ब्रह्ममुनि जी टीका करते हैं- इस सूत्र के विज्ञानभिक्षु ने भाष्य में अलग ही व्याख्या की है-योगदर्शन में बताई गई मंत्र तप समाधि आदि सिद्धियों का खण्डन कर दिया है यहाँ। सूत्र के अभिप्राय को न समझते हुए इस में जो ''इतरात'' शब्द है, इस शब्द से सांख्य सिद्धियों से जो भिन्न सिद्धियाँ है योगदर्शन में कही गयी है (योगसिद्धि उन्होने अर्थ ले लिया) उन्होंने कहाँ सांख्य से भिन्न जो योग सिद्धियाँ है वह सिद्धियाँ नहीं होती। ये उन्होंने उपर से कल्पन की जो अयुक्त है।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात् ।।४६-४७।।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -

(तत्कृते) पुरुषकृते-पुरुषार्था या खलु (आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं दैवादिप्रभेदा सृष्टिः) ब्रह्माणमारभ्य ब्रह्मणः शरीरमारभ्य स्थावरपर्यन्ता दैवादिप्रभेदयुक्ता दैवमनुष्यतिर्यक्स्थावरभेदयुक्ता सृष्टिरस्ति सा (आविवेकात्) विवेकपर्यन्तं प्रवर्तते, यावत् पुरुषस्य विवेको न जायेत तावत् प्रवर्तते । तत्र तत्र योनिषु शरीरधारणाय तथा भोगाय चान्ते विवेकान्मोक्षायापि ।।४६-४७।।

सा च तथाविधभेदयुक्ता सृष्टिः -

ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला ।।४८।।

[**तथा 'इतरहानेन विना' अत्र च 'इतरशब्देन' विपर्ययो गृहीतो नहि विपर्ययोऽनन्तरो य इतरशब्देन लक्ष्येत**] ''अपनी व्याख्या में एक और भूल करदी'' सूत्र में शब्द था ''इतरहानेन विना'' पिछली सिद्धि को छोड़े बिना। यहाँ उन्होने ''इतर'' शब्द से विपर्यय अर्थ ले लिया, ब्रह्ममुनि जी कहते हैं इस ''इतर'' शब्द के आसपास कोई विपर्यय शब्द तो था ही नहीं । जिससे की इतर शब्द से वह अर्थ ले लिया जाए ।[**अन्यच्च योगदर्शनप्रतिपादितानां मन्त्रादिसम्भूतानां सिद्धीनां मण्डनं सांख्ये कृतम् ''योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः'' (सांख्य० ५.१२९) अत्र मन्त्रादिजाः सिद्धयः सम्पोषिताः**] और दूसरी बात यह है कि - योगदर्शन में जो सिद्धियाँ (मंत्र, जप, तप, औषधि) बताई गई, उन सिद्धियों का मंडन सांख्यदर्शन में पहले से ही कर दिया है। (कपिल जी तो उन सिद्धियों को मानते हैं, विज्ञानभिक्षु नहीं मानते यहाँ टकराव हो रहा है सूत्रकार के मत से) सांख्य का प्रमाण दिया - योग सिद्धियाँ भी औषधादि सिद्धियों के समान खण्डन करने योग्य नहीं हैं। इस सूत्र में मंत्र आदि से होने वाली सिद्धि की पुष्टि कि है। **तस्मादयुक्तं व्याख्यानं तस्य** इसलिए उसका व्याख्यान गलत है ।।४५।।

व्यक्तिसृष्टेर्भेदप्रयोजने उच्येते - अब जो व्यक्ति सृष्टि है (एक एक व्यक्ति का निर्माण) इसका भेद और प्रयोजन क्या है? इस विषय को कहते हैं-

देवादिप्रभेदा* ।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात् ।।४६-४७।।

सूत्रार्थ= देव आदि भेदों वाली, ब्राह्मण से लेकर वृक्ष-वनस्पति पर्यन्त सृष्टि जीवात्मा के लिए है, और यह सृष्टि जब तक विवेक न हो जाए तब तक चलेगी।

[**अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति** -] इन दोनों सूत्रों में एक वाक्यता है, परस्पर संबंध है इसलिए एक साथ व्याख्या की गयी है।

[**(तत्कृते) पुरुषकृते-पुरुषार्था या खलु (आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं दैवादिप्रभेदा सृष्टिः) ब्रह्माणमारभ्य ब्रह्मणः शरीरमारभ्य स्थावरपर्यन्ता दैवादिप्रभेदयुक्ता दैवमनुष्यतिर्यक्स्थावरभेदयुक्ता सृष्टिरस्ति**] जीवात्मा के लिए ये सारी सृष्टि बनाई गयी, ब्रह्मा (चारों वेदों का विद्वान) से लेकर के स्थावर

(ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला) दैवसृष्टिः सत्त्वबहुला भवति ।।४८।।

तमोविशाला मूलतः ।।४९।।

(मूलतः-तमोविशाला) अधोभूता तिर्यकसृष्टिः स्थावरसृष्टिश्च तमोबहुला भवति ।।४९।।

मध्ये रजोविशाला ।।५०।।

(मध्ये रजोविशाला) उभययोर्मध्ये भवा मनुष्यसृष्टिस्तु रजोबहुला भवति ।।५०।।

सैषा प्रकृतेर्विविधाः सृष्टिः कैमर्थिकी भवति । अत्रोच्यते -

कर्मवैचित्र्यात् प्रधानचेष्टा गर्भदासवत् ।।५१।।

(प्रधानचेष्टा) सैषा विविधसृष्टिरूपा प्रधानचेष्टा प्रकृतिपरिणितिः प्रकृतेः क्रिया (कर्मवैचित्र्यात्) जीवात्कर्मवैविध्याद् भवति (गर्भदासवत्) यथा गर्भदासः स्वभावतो दासः स्वाम्यर्थं विविधं चेष्टते

(पेड पौधे) तक देव (विद्वान-योगी), मनुष्य (सामान्य लोग), तिर्यक (साँप विच्छु कीट पतंग आदि), और वृक्ष वनस्पति आदि इस प्रकार के भेदों से युक्त ये सृष्टि परमात्मा ने वनाई **[सा (आविवेकात्) विवेकपर्यन्तं प्रवर्तते, यावत् पुरुषस्य विवेको न जायेत तावत् प्रवर्तते]** जब तक विवेक उत्पन्न होगा तबतक ये सृष्टि (पुनर्जन्म का चक्कर) चलता रहेगा, जबतक तत्वज्ञान नहीं होगा तब तक ये जन्म-मरण चलता रहेगा। **[तत्र-तत्र योनिषु शरीरधारणाय तथा भोगाय चान्ते विवेकान्मोक्षायापि]** उन-उन योनियों में मनुष्य से लेकर वृक्ष-वनस्पति तक शरीर धारण चलता रहेगा, कर्मफल भोगने के लिए, विवेक प्राप्ति से लेकर मोक्ष प्राप्ति तक के लिए ये सृष्टि चलती रहेगी ।।४६-४७।।

सा च तथाविधभेदयुक्ता सृष्टिः - अलग प्रकार से इस सृष्टि के और भेद बताते हैं-

ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला ।।४८।।

सूत्रार्थ= देवों की सृष्टि सत्व प्रधान होती है।

[(ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला) दैवसृष्टिः सत्त्वबहुला भवति दैवसृष्टि-] यह उच्चस्तर की -ब्राह्मण विद्वान धर्मात्मा परोपकारी सदाचारी आदि की सृष्टि सत्वप्रधान (सत्वगुण की बहुलता से) होती है ।।४८।।

तमोविशाला मूलतः ।।४९।।

सूत्रार्थ=जो नीचे की सृष्टि है घटिया स्तर की है वह तमोगुण प्रधान सृष्टि है।

[(मूलतः-तमोविशाला) अधोभूता तिर्यकसृष्टिः स्थावरसृष्टिश्च तमोबहुला भवति] पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-वनस्पति ये तमोगुण की प्रधानता अधिकता के कारण से है यह अधम सृष्टि है ।।४९।।

मध्ये रजोविशाला ।।५०।।

सैषा प्रकृतेर्विविधाः सृष्टिः कैमर्थिकी भवति । अत्रोच्यते -

सूत्रार्थ= मनुष्य की सृष्टि रजोगुण प्रधान होती है।

[(मध्ये रजोविशाला) उभययोर्मध्ये भवा मनुष्यसृष्टिस्तु रजोबहुला भवति] जो इन दोनों के

बीच में सृष्टि है मध्यम स्तर की (ब्राह्मण विद्वानों से नीचे तथा पशु पक्षियों से नीची) सामान्य मनुष्यों की यह रजोगुण प्रधान है ।।५०।।

[सैषा प्रकृतेर्विविधाः सृष्टिः कैमर्थिकी भवति । अत्रोच्यते -] ये जो प्रकृति से बनी हुई विविध प्रकार की सृष्टि है, यह किस प्रयोजन से (आधार से) बनाई ? इस पर कहते हैं-

कर्मवैचित्र्यात् प्रधानचेष्टा गर्भदासवत् ।।५१।।

सूत्रार्थ=प्रकृति की जगतरूप बनाने की चेष्टा जीवात्मा के भिन्न-भिन्न कर्मों के कारण से है। और प्रकृति की यह चेष्टा स्वभाव से है, गर्भदास के समान।

[(प्रधानचेष्टा) सैषा विविधसृष्टिरूपा प्रधानचेष्टा प्रकृतिपरिणितिः प्रकृतेः क्रिया (कर्मवैचित्र्यात्) जीवात्कर्मवैविध्याद् भवति] ये जो विविध सृष्टि रूप प्रकृति की चेष्टा प्रकृति का जो परिणाम है (सत्व रज तम से अगल अलग प्रकार के शरीर बने, योनियाँ बनीं) जीवात्मा के करोड़ों प्रकार के कर्मों के कारण लाखों प्रकार की योनियाँ बनीं (अनेक कर्मों से एक जाति-आयु-भोग मिलता है) **[(गर्भदासवत्) यथा गर्भदासः स्वभावतो दासः स्वाम्यर्थं विविधं चेष्टते तथैव प्रकृतिरपि स्वभावतः शाशतिकी पुरुषार्था सती तदर्थं विविधं चेष्टते सृष्टिरूपं गृह्णाना]** प्रकृति क्यों ऐसा करती है इसके लिए एक दृष्टांत दिया गर्भदास का = जिसकी स्वभाव से सेवा की वृत्ती है, वह अपने स्वामी के लिए विविध प्रकर की चेष्टाएं करता है अपने मालिक के लिए काम करता है (जैसे सेविका का बेटा माँ को देखकर सेवा करने लग जाता है उसका स्वभाव बन जाता है सेवा करने का) ऐसे ही प्रकृति स्वभाव से ही जीवात्मा के लिए अनाड़ी काल से विविध प्रकार के शरीर बनाती है सृष्टि रूप को धरण करती हुई जीवात्मा की सेवा के लिए तत्पर रहती है, (स्वयं जड़ होने के कारण खुद तो सुख दुख भोगती नहीं)।।५१।।

[ननु भवतूत्कृष्टयोनौ सत्त्वविशालायां कृतकृत्यता किं पुनर्मोक्षेण। अत्रोच्यते -] एक व्यक्ति प्रश्न करता है - हम ब्राह्मण आदि उत्कृष्ट योनियों में जन्म लेते रहेंगे अच्छे अच्छे कर्म करते रहेंगे सात्विक जीवन जीते रहेंगे इससे ही कृतकृत्यता हो जाएगी, फिर मोक्ष की क्या आवश्यकता? इस पर कहते हैं-

आवृत्तिस्तत्राप्युत्तरोत्तरयोनियोगाद्धेयः ।।५२।।

सूत्रार्थ=ऊंची-ऊंची योनियों में अधिक सुख होने पर भी उसके बाद भी पुनर्जन्म होगा ही, दुख से पूर्णतया निवृत्ति नहीं हो पाएगी, इसलिए ऊंची- ऊंची योनियाँ त्याज्य हैं।

[(उत्तरोत्तरयोनियोगात्) उत्तरोत्तरयोनिसम्बन्धात् सत्त्वप्रधानाद्‌ भवेदुत्कृष्टता परन्तु (तत्र-अपि-आवृत्तिः) तत्रापि न स्थिरता किन्त्वावृत्तिः पुनर्जन्म ततोऽपि भवति] अगली-अगली, अच्छी-

(उत्तरोत्तरयोनियोगात्) उत्तरोत्तरयोनिसम्बन्धात् सत्त्वप्रधानाद् भवेदुत्कृष्टता परन्तु (तत्र-अपि-आवृत्तिः) तत्रापि न स्थिरता किन्त्वावृत्तिः पुनर्जन्म ततोऽपि भवति, तस्मात् (हेयः) सोऽप्युत्तरोत्तरयोनिसम्बन्धोऽपि त्याज्यः ।।५२।।

अथ च तत्रोत्कृष्टतमयोनौ -

समानं जरामरणादिजं दुःखम् ।।५३।।

(जरामरणादिजं दुःखं समानम्) अधोयोनिमारभ्योत्तरयोनिपर्यन्तं जरामरणजन्मभवं दुःखं समानमेव भवति । तस्मान्नकृतकृत्यताऽत्युत्कृष्टयोनावपि ।।५३।।

ननु भवतूत्कृष्टयोनिं प्राप्यापि ततः पुनरावृत्तिः कार्यत्वान्नहि कार्यशरणं स्थायि भवति किन्तु

अच्छी, ऊंची-ऊंची योनि प्राप्त कर लेने और सत्व की प्रधानता के कारण उत्तमता तो होगी परंतु वह सर्वोत्कृष्ट अवस्था तो नहीं है, वहाँ भी स्थिरता नहीं है, किन्तु आवृति होएगी पुनर्जन्म होता रहेगा, और दुबारा जन्म लेना पडा तो दुःख तो उठाना ही पडेगा (इसलिए दुःख से बचना है तो अगला जन्म लेना बंद करो), [**तस्मात् (हेयः) सोऽप्युत्तरोत्तरयोनिसम्बन्धोऽपि त्याज्यः**] इसलिए एक के बाद अगला जन्म चाहे कितने ही उत्तम हो उनको छोड करके मोक्ष की तैयारी करनी पडेगी मोक्ष में जाना पडेगा तभी सुख होगा, मोक्ष की तुलना में ये सब उच्च उच्च योनियाँ हेय त्याज्य हैं ।।५२।।

अथ च तत्रोत्कृष्टतमयोनौ - और उत्कृष्ट योनियाँ प्राप्त कर लेने के बाद भी कुछ दुःख तो ऐसे हैं जो भोगने ही पड़ेंगे

समानं जरामरणादिजं दुःखम् ।।५३।।

सूत्रार्थ= ऊंची नीची योनियों में जन्म, मरण, बुढ़ापा आदि से होने वाला दुःख समान रूप से भोगना ही पड़ता है।

[**(जरामरणादिजं दुःखं समानम्) अधोयोनिमारभ्योत्तरयोनिपर्यन्तं जरामरणजन्मभवं दुःखं समानमेव भवति**] छोटी योनियों से लेकर के ऊंची ऊंची योनियों तक बुढापा, मृत्यु, जन्म ये दुःख तो सभी योनियों में समान भाव से है इससे बच नहीं सकते। [**तस्मान्नकृतकृत्यताऽत्युत्कृष्टयोनावपि**] इसलिए चाहे आप ऊंची से ऊंची योनि में चले जाए कृतकृत्यता वहाँ भी नहीं है।।५३।।

[**ननु भवतूत्कृष्टयोनिं प्राप्यापि ततः पुनरावृत्तिः कार्यत्वान्नहि कार्यशरणं स्थायि भवति किन्तु कार्याणां कारणे प्रकृतौ लयात्तु न स्यात् पुनरावृत्तिरिति कारणलयात् कृतकृत्यता भवेन्मातुरुत्संगप्राप्तिरिवेत्याकांक्षायामुच्यते** -] एक प्रश्न है। मान लिया कि उत्कृष्ट योनि प्राप्त करने से उससे लौट के आना पडेगा (फिर अगला जन्म लेना पडेगा) ये जो उत्कृष्ट योनि है ये भी तो कार्य है। कार्य कि शरण स्थायी नहीं होती, कार्यों के कारण प्रकृति में लय हो जाने से (कारण में प्रकृति में जाके छुप के बैठ जाएंगे) फिर तो पुनरावृति नहीं होगी ? इस प्रकार से कारण में लय हो जाने से कृतकृत्यता हो जाएगी (हमारा काम पूरा हो जाएगा और हम मोक्ष कि तपस्या से भी बच जाएंगे) ''जैसे बच्चा माँ कि गोद में जाके छुप जाता है' ऐसे ही हम प्रकृति रूपी माँ कि गोद में जाके छुप जाएँगे तो समस्या खत्म हो जाएगी। इस पर कहते हैं-

कार्याणां कारणे प्रकृतौ लयात्तु न स्यात् पुनरावृत्तिरिति कारणलयात् कृतकृत्यता भवेन्मातुरुत्संगप्राप्तिरिवेत्याकांक्षायामुच्यते -

न कारणलयात् कृतकृत्यता मग्नवदुत्थानात् ।।५४।।

(कारणलयात् कृतकृत्यता न) कारणलयात् खलु न कृतकृत्यता पुनरावृत्तेर- भावः (मग्नवत्-उत्थानात्) जलाशये मग्नस्यान्तर्गतस्य यथा पुनरुत्थानं भवति तथैव प्रकृतौ लीनस्याप्युत्थानेन भवितव्यम् ।।५४।।

कुत उत्थानमित्यत्र हेतुः -

न कारणलयात् कृतकृत्यता मग्नवदुत्थानात् ।।५४।।

सूत्रार्थ= प्रकृति में जाकर छिपने से भी जीव कि पूरी सफलता नहीं होती, उसे फिर पुनर्जन्म में आना ही होगा जैसे गोताखोर पानी में डुबकी मारके फिर ऊपर आता है।

[(कारणलयात् कृतकृत्यता न) कारणलयात् खलु न कृतकृत्यता पुनरावृत्तेरभावः] कारण में लय होने से प्रकृति में जाके छुप जाने से इतने मात्र से कृतकृत्यता नहीं होगी पुनरावृति बंद नहीं होगी फिर जन्म लेना पडेगा **[(मग्नवत्-उत्थानात्) जलाशये मग्नस्यान्तर्गतस्य यथा पुनरुत्थानं भवति तथैव प्रकृतौ लीनस्याप्युत्थानेन भवितव्यम्]** जैसे कोई व्यक्ति तालाब में डुबकी मारता है कुछ समय बाद बाहर आ जाता है, इसी प्रकार से प्रकृति में लीन हुए व्यक्ति का उत्थान होगा ही ।।५४।।

कुत उत्थानमित्यत्र हेतुः -

अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात् ।।५५।।

सूत्रार्थ= प्रकृति के कार्य रूप न होने पर भी उसका कार्य के रूप में रूपान्तरण हो ही जाता है, पराधीन होने से।

[(अकार्यत्वे-अपि तद्योगः) प्रकृतेरकार्यत्वेऽपि, प्रकृतिर्नहि कार्ये किन्तु कारणमस्ति तथापि तस्या अकार्यत्वेऽपि कार्यत्वयोगः कार्ये महदादिभूतभौतिकान्ते परिणमनं परिणामस्वभावोऽस्ति] प्रकृति यद्यपि कार्य रूप नहीं है, प्रकृति कार्य स्वरूप नहीं है किन्तु वह कारण रूप है, उसके कार्यरूप न होने पर भी उसका कार्य स्वरूप बन जाता है कार्य में महतत्व अहंकार इंद्रिय पंचमहाभूत फिर अनेक प्रकार के शरीर ये सब भूत भौतिक पदार्थों में परिवर्तन हो जाता है क्योंकि यह परिवर्तन होना उसका स्वभाव है **[(पारवश्यात्) परवशवर्तित्वात् पुनः कार्यरूपे परिणता भविष्यति हि]** प्रकृति कारण रूप से कार्य रूप क्यों बन जाती है (पारधीन होने से) दूसरे के वश में होने से कार्य रूप में परिवर्तन हो ही जाएगी, **[यः खलु परस्तां कार्ये परिणमयिष्यति तस्मात् कारणस्य कार्यरूपपरिणामधर्मवत्त्वात् कार्यरूपे पुनः पुनः प्रवर्तनात् पुनरुत्थानं भवत्येव न कारणलये कृतकृत्यता]** प्रकृति से जो दूसरा पदार्थ (ईश्वर) है वह कारण रूप से (जगतरूप) कार्य रूप में प्रकृति को परिवर्तित कर ही देगा, इसलिए कारण का कार्य रूप में परिणाम धर्म वाला होने से जो जीवात्मा छुप करके बैठा था प्रकृति में उसे संसार में बापिस आना ही पडेगा, इसलिए प्रकृति में छुपके बैठने

अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात् ।।५५।।

(अकार्यत्वे-अपि तद्योगः) प्रकृतेरकार्यत्वेऽपि, प्रकृतिर्नहि कार्यं किन्तु कारणमस्ति तथापि तस्या अकार्यत्वेऽपि कार्यत्वयोगः कार्ये महदादिभूतभौतिकान्ते परिणमनं परिणामस्वभावोऽस्ति (पारवश्यात्) परवशवर्तित्वात् पुनः कार्यरूपे परिणता भविष्यति हि, यः खलु परस्तां कार्ये परिणमयिष्यति तस्मात् कारणस्य कार्यरूपपरिणामधर्मवत्त्वात् कार्यरूपे पुनः पुनः प्रवर्तनात् पुनरुत्थानं भवत्येव न कारणलये कृतकृत्यता ।।५५।।

यद्वशा प्रकृतिः कथम्भूतः स पर इत्याकांक्षायामुच्यते -

स हि सर्ववित् सर्वकर्ता ।।५६।।

से कृतकृत्यता नहीं होगी ।।५५।।

यद्वशा प्रकृतिः कथम्भूतः स पर इत्याकांक्षायामुच्यते - जिसके वश में वह प्रकृति है? वह ''पर'' कैसा है? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं-

स हि सर्ववित् सर्वकर्ता ।।५६।।

सूत्रार्थ= जिसके वश में प्रकृति है, वह निश्चित रूप से सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान सृष्टि कर्ता ईश्वर है।

[(सः हि) स पर एव यः प्रकृतिं कार्ये परिणमयति खल्वस्ति (सर्ववित् सर्वकर्ता) सर्वज्ञः सर्वकर्ता च पुरुषविशेषः] वह ''पर'' ही जिसके अधीन प्रकृति है जो कार्य रूप में प्रकृति को परिणित करता है, वह सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है, और वह पुरुष विशेष (ईश्वर) है ।।५६।।

अथ च -

ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ।।५७।।

सूत्रार्थ= उपर्युक्त गुणों वाले ईश्वर की सत्ता सिद्ध है। (योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष और श्रुतियों के प्रमाण से)

[(ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा) ईदृशस्य सर्वज्ञस्य सर्वकर्तुरीश्वरस्य सिद्धिः सत्ता सिद्धा नित्याऽबाध्याऽनिवार्या न निवार्या] ऐसे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर की सत्ता सिद्ध है जो नित्य है, अबाध्य है उसका कोई खंडन नहीं कर सकता, **[यत्सिद्धये योगिनामबाह्यप्रत्यक्षं प्रथमाध्यायेऽस्माभिः सांख्यैः प्रदर्शितं]** जिस ईश्वर की सिद्धि के लिए, अनुभूति के लिए योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष को हम सांख्य पडने वालों के द्वारा प्रथम अध्याय में दिखलाया गया था । वो ईश्वर यहाँ स्वीकार्य है उसकी सत्ता सिद्ध है **[तथाभूतेन योगिनामबाह्यप्रत्यक्षेण श्रुत्या च सिद्धिः सिद्धा नित्याऽनिवार्याऽस्ति]** उसी प्रकार से योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष से जो ईश्वर सिद्ध होता है वही ईश्वर श्रुति से भी सिद्ध होता है, वो भी नित्य है अनिवार्य है उसका कोई खंडन नहीं कर सकता ''**त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि**'' **(तै० उ० १.१)** श्रुति कहती

(सः हि) स पर एव यः प्रकृतिं कार्ये परिणमयति खल्वस्ति (सर्ववित् सर्वकर्ता) सर्वज्ञः सर्वकर्ता च पुरुषविशेषः ।।५६।।

अथ च -

ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ।।५७।।

(ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा) ईदृशस्य सर्वज्ञस्य सर्वकर्तुरीश्वरस्य सिद्धिः सत्ता सिद्धा नित्याऽबाध्याऽनिवार्या न निवार्या, यत्सिद्धये योगिनामबाह्यप्रत्यक्षं प्रथमाध्यायेऽस्माभिः सांख्यैः प्रदर्शितं तथाभूतेन योगिनामबाह्यप्रत्यक्षेण श्रुत्या च सिद्धिः सिद्धा नित्याऽनिवार्याऽस्ति ''त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि'' (तै० उ० १.१)''स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः ।प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ।'' (श्वेता० ६.१६) ।।५७।।

प्रकृत्याः सृष्टिपरिणामे परप्रयोजनमिति विस्तरेणोच्यते -

प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ।।५८।।

है - हे परमेश्वर आप हीप्रत्यक्ष ब्रह्म हो ''**स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः। प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः।'' (श्वेता० ६.१६)** वह सब कुछ (संसार की रचना) करने वाला है,सबको जानने वाला है, ''आत्मयोनि'' जीवात्मा का संचालक (आत्मा को साधन देकर कार्य में प्रवृत करने वाला) है, वह ज्ञानवान है, काल का भी काल है, अनेक गुणों एवं सर्व विद्याओं से युक्त है। प्रधान= प्रकृति, क्षेत्रज्ञ=जीवात्मा इन दोनों का पालक, धारक, पोषक, रक्षक, पति ईश्वर है, तथा संसार-मोक्ष-बंधन-स्थिति (प्रलय) इन सबका कारण भी ईश्वर ही है।।५७।।

[प्रकृत्याः सृष्टिपरिणामें परप्रयोजनमिति विस्तरेणोच्यते -] प्रकृति को जो सृष्टि परिणाम हुआ इसमें प्रकृति का प्रयोजन नहीं है अपितु दूसरे का लाभ है इसलिए जगत विस्तार किया। इस विषय को विस्तार से बताते हैं-

प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ।।५८।।

सूत्रार्थ= प्रकृति से बनी सृष्टि जीवात्मा के लिए है, क्योंकि प्रकृति जड़ है होने से स्वयं भोक्ता नहीं है। जैसे ऊँट केशर का भोक्ता न होते हुए भी अन्य मनुष्यों के लिए केसर को ढोता है।

[(प्रधानसृष्टिः परार्थम्) प्रधानस्य प्रकृतेः सृष्टिः परार्था पुरुषार्था] प्रकृति की जो सृष्टि है वह ''पर'' के लिए पुरुष (जीवात्मा) के लिए है। **[कुतः (स्वतः-अपि-अभोक्तृत्वात्) अपिरत्र हेत्वर्थः]** यहाँ सूत्र में जो ''अपि'' शब्द है यह हेतु अर्थ में है। जीवत्मा के लिए क्यों है?। **[यतः प्रधानं स्वतो न भोक्तृ तस्मात् तस्याभोक्तृत्वात् तत्सृष्टिः परार्था]** (प्रकृति से जो जगत बनाया जाएगा वह प्रकृति के लिए नहीं है किसी और के लिए है भोक्ता के लिए है जो भोगने की क्षमता रखता है जो चेतन है उसके लिए है) क्योंकि प्रकृति स्वयं भोक्ता नहीं है इसलिए उसके भोक्ता रूप न होने से उससे बनी सृष्टि किसी और के लिए है जो चेतन है भोक्ता है । **तत्र दृष्टान्तमाह** इस विषय में एक दृष्टांत देते हैं- **[(उष्ट्रकुङ्कुमवहनवत्)**

(प्रधानसृष्टिः परार्थम्) प्रधानस्य प्रकृतेः सृष्टिः परार्था पुरुषार्था । कुतः (स्वतः-अपि-अभोक्तृत्वात्) अपिरत्र हेत्वर्थः । यतः प्रधानं स्वतो न भोक्तृ तस्मात् तस्याभोक्तृत्वात् तत्सृष्टिः परार्था । तत्र दृष्टान्तमाह (उष्ट्रकुङ्कुमवहनवत्) यथा ह्युष्ट्रस्य कुङ्कुमवहनं परार्थं भवति तस्याभोक्तृत्वात्, न ह्युष्ट्रः कुङ्कुमं भुङ्क्ते परन्तु वहति तर्हि तस्य तद् वहनं परार्थमेव तथैव प्रधानस्य सृष्टिरस्वार्था सती परार्थाऽस्ति ।।५८।।

भवतु प्रधानस्य सृष्टिः परार्था तस्याभोक्तृत्वात् परन्तु तदचेतनं सत् कथं परस्यार्थं साधयतीत्याकांक्षायामुच्यते -

अचेतनत्वेऽपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य ।।५९।।

यथा ह्युष्ट्रस्य कुङ्कुमवहनं पराथ५ भवति तस्याभोक्तृत्वात्] (एक व्यापारी को पचास किलो केशर ढोके ले जाना था एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसने उस बंडल को ऊँट की पीठ पर रख दिया। क्या व्यापारी ऊँट को केशर खाने देगा? नहीं।) जैसे ऊँट का केशर को ढोना दूसरे के लिए है ऊँट के भोक्ता न होने से, **[न ह्युष्ट्रः कुङ्कुमं भुङ्क्ते परन्तु वहति तर्हि तस्य तद् वहनं परार्थमेव तथैव प्रधानस्य सृष्टिरस्वार्था सती परार्थाऽस्ति]** ऊँट को केशर खाने को नहीं मिलता फिर भी ढोता रहता है, उस समय जो उसका भार ढोना है वह किसी और के लिए है (व्यापारी या ग्राहक के लिए है) उसी प्रकार से प्रधान की जो सृष्टि है वह अस्वार्था=अपने लिए न होते हुए भी जीवात्मा के लिए है।।५८।।

[भवतु प्रधानस्य सृष्टिः परार्था तस्याभोक्तृत्वात् परन्तु तदचेतनं सत् कथं परस्यार्थं साधयतीत्याकांक्षायामुच्यते -] प्रधान की बनी हुई सृष्टि जीवात्मा के लिए हो जाए, क्योंकि प्रधान तो अभोक्ता है जड वस्तु है, परंतु प्रकृति के जड़ होने से उसे कैसे पता किसे क्या देना है? किसका क्या प्रयोजन है? प्रयोजन को कैसे सिद्ध करती है? इस प्रश्न पर कहते हैं-

अचेतनत्वेऽपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य ।।५९।।

सूत्रार्थ= प्रकृति के अचेतन= जड़ होते हुए भी जीव का कल्याण करती है, ईश्वर के अधीन होने से। जैसे दूध जड होते हुए भी गाय की प्रेरणा से बछड़े को तृप्त करता है।

[(प्रधानस्य-अचेतनत्वे-अपि) प्रधानस्याचेतनत्वे सत्यपि (क्षीरवत्‌चेष्टितम्) यथा क्षीरस्याचेतनस्यापि गवि-गोऽधीनं प्रणयनं वत्सार्थं भवति] प्रधान के अचेतन होने पर भी जैसे दूध भी अचेतन है फिर भी गाय अपने बछडे को आते देख दूध उतार देती है (बछड़े को दूध पिलाने के लिए) गौ चेतन है दूध उसके अधीन है **[तथैव प्रधानस्यापि ब्रह्मणि ब्रह्माधीनं प्रणयनं महत्तत्त्वादिरूपेण परार्थं जीवात्मार्थम्]** उसी प्रकार से प्रकृति तो जड है उस जड प्रकृति का ब्रह्म के अधीन होने से वह प्रक्रतीति को सृष्टि रूप में परिणित कर जीवात्मा के लिए परोस देता है ।।५९।।

अत्रैवान्यो दृष्टान्तो दीयते - इसी विषय में एक और दृष्टांत देते हैं-

कर्मवत् कृष्टे (दृष्टेः?*) र्वा कालादेः ।।६०।।

सूत्रार्थ= अथवा जैसे खेती के कार्य में बोया हुआ बीज कुछ काल के पश्चात किसान के श्रम से अंकुर

(प्रधानस्य-अचेतनत्वे-अपि) प्रधानस्याचेतनत्वे सत्यपि (क्षीरवत्चेष्टितम्) यथा क्षीरस्याचेतनस्यापि गवि-गोऽधीनं प्रणयनं वत्सार्थं भवति तथैव प्रधानस्यापि ब्रह्मणि ब्रह्माधीनं प्रणयनं महत्तत्त्वादिरूपेण परार्थं जीवात्मार्थम् ।।५९।।

अत्रैवान्यो दृष्टान्तो दीयते -

कर्मवत् कृष्टे (दृष्टेः?*) र्वा कालादेः ।।६०।।

(कृष्टेः कर्मवत्-वा) अथवा कृष्टेः कर्मवत् कृषेः कर्मवत्-कृषिकर्मवत् तद्यथा कृषिकर्मणि "तत्र तस्येव" (अष्टा० ५.१.११६) सप्तम्यां वत्। उप्तं बीजं वृक्षभावाय चेष्टते (कालादेः) कालादिवशात् कालवशात् कृषीवलस्य प्रयत्नवशाच्च तथैव प्रधानमपि सृष्टिकर्मणि सृष्टिभावाय चेष्टते कालादिवशात् कालवशादीश्वरप्रेरणाच्च ।।६०।।

और वृक्ष बन जाता है, वैसे ही प्रकृति कुछ काल के पश्चात ईश्वर के श्रम से जीवों के लिए सृष्टि रूप धारण कर लेती है।

[(कृष्टेः कर्मवत्-वा) अथवा कृष्टेः कर्मवत् कृषेः कर्मवत्-कृषिकर्मवत् तद्यथा कृषिकर्मणि "तत्र तस्येव" (अष्टा० ५.१.११६) सप्तम्यां वत्] (यहाँ सूत्र में दृष्टांत है "कर्मवत्", "वत्" प्रत्यय दृष्टांत में उदाहरण के रूप में प्रयुक्त होता है प्रायः प्रथमा में इसका प्रयोग होता है। अष्टाध्यायी के सूत्र "तत्र तस्येव" से इसका प्रयोग प्रथमा एवं सप्तमी दोनों में होता है।) यहाँ जो कर्मवत् शब्द है सप्तमी में उदाहरण समझेंगे। तब अर्थ बनेगा कृषि कर्म के तुल्य, कृषि कर्म में, जैसे कृषि कर्म में होता है वैसे यहाँ भी होता है । **[उप्तं बीजं वृक्षभावाय चेष्टते]** बोया हुआ बीज वृक्ष बनने की चेष्टा करता है **[(कालादेः) कालादिवशात् कालवशात् कृषीवलस्य प्रयत्नवशाच्च]** काल के वश अर्थात बीज से वृक्ष बनने में समय एवं किसान का बल लगता है **तथैव प्रधानमपि सृष्टिकर्मणि सृष्टिभावाय चेष्टते कालादिवशात् कालवशादीश्वरप्रेरणाच्च** इसी प्रकार से जो प्रधान है वह बीज रूप है और सृष्टि उसका वृक्ष रूप है, प्रकृति से सृष्टि बनने में समय लगता है और ईश्वर की प्रेरणा भी होती है।।६०।।

[कथं हि प्रकृतिर्विचारशून्या सती काले-ईश्वरप्रेरणाच्चेष्टतेत्याकांक्षायामुच्यते -] प्रकृति जा्‌ व विचार शून्य होते हुए भी उस काल में और ईश्वर की प्रेरणा से वह कैसे क्रिया करती है? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते है-

स्वभावाच्चेष्टितमनभिसन्धानाद् भृत्यवत् ।।६१।।

सूत्रार्थ= बिना विचार किए स्वभाव से ही प्रकृति की चेष्टा होती है, नौकर के समान।

[(अनभिसन्धानात्-चेष्टितं स्वभावात् भृत्यवत्) प्रधानस्य चेष्टा खल्वविचाराद् भवति स्वभावात् तस्य चेष्टनस्वभाववत्त्वाद् भृत्यवत्] प्रधान (प्रकृति) की जो चेष्टा है जगद्रूप बनने की, उसमें कोई विचार नहीं करना होता है, क्योंकि चेष्टा करना प्रकृति का स्वभाव है, ईश्वर का आदेश होता है वैसा वैसा प्रकृति करती जाती है जैसे स्वामी की इच्छा से भृत्य स्वभाव से कार्य करता जाता है, **[यथा भृत्यस्य चेष्टा**

कथं हि प्रकृतिर्विचारशून्या सती काले-ईश्वरप्रेरणाच्चेष्टतेत्याकांक्षायामुच्यते -

स्वभावाच्चेष्टितमनभिसन्धानाद् भृत्यवत् ।।६१।।

(अनभिसन्धानात्-चेष्टितं स्वभावात् भृत्यवत्) प्रधानस्य चेष्टा खल्वविचाराद् भवति, स्वाम्यर्थं चेष्टनं तस्य स्वभावः स्वाभाविको गुणः। अत्र ''तथैव प्रकृतेश्चेष्टितं संस्कारादेव'' (विज्ञानभिक्षुः) इति जडायां प्रकृतौ संस्कारकथनं नितान्तमसंगतम् ।।६१।।

प्रकृतिचेष्टने हेत्वन्तरमाह-

कर्माकृष्टेर्वाऽप्यनादितः ।।६२।।

(अनादितः कर्माकृष्टेः-अपि वा) अनादितः प्रवाहेणानादितः कर्मभिराकर्षणादपि वा प्रकृतिश्चेष्टते

विचारमन्तरेण विवेचनेन विना स्वभावाद् भवति, स्वाम्यर्थं चेष्टनं तस्य स्वभावः स्वाभाविको गुणः] जैसे भृत्य की चेष्टा स्वभाव से विना विचार किए होती है, अपने स्वामी के लिए चेष्टा करना आरम्भ कर देता है, स्वामी के लिए कार्य करना उसका स्वाभाविक गुण है। **[अत्र ''तथैव प्रकृतेश्चेष्टितं संस्कारादेव'' (विज्ञानभिक्षुः) इति जडायां प्रकृतौ संस्कारकथनं नितान्तमसंगतम्]** विज्ञानभिक्षु भाष्य में लिखा है कि ''प्रकृति कि चेष्टा संस्कार से है'' (उसमें अपना ही संस्कार ऐसा है कि वह चेष्टा शुरू कर देती है)। ऐसा उन्होने अर्थ किया है। क्योंकि जड प्रकृति में संस्कार का कथन असंगत है ।।६१।।

प्रकृतिचेष्टने हेत्वन्तरमाह - प्रकृति की चेष्टा में एक और कारण है -

कर्माकृष्टेर्वाऽप्यनादितः ।।६२।।

सूत्रार्थ= जीव अनादिकाल से कर्मों को कर रहा है और उसके कर्मों के आधार पर प्रकृति को जगत रूप ईश्वर बना देता है।

[(अनादितः कर्माकृष्टेः-अपि वा) अनादितः प्रवाहेणानादितः कर्मभिराकर्षणादपि वा प्रकृतिश्चेष्टते सृष्टिरूपतया परिणमते] अनादिकाल से प्रवाह से अनादिकाल से कर्मों के द्वारा आकर्षण से भी प्रकृति सृष्टिरुप बनने की चेष्टा करता है। **[अनादिकालात् कर्मभिराकृष्यते हि सा सृष्टिभावाय तस्याः परतन्त्रत्वात् परार्थत्वाच्च बलादाकृष्यते हि सा सृष्टिभावाय तस्मात् प्रकृतिः सृष्टिरूपाय चेष्टत इति यौक्तिकमेतत्]** अनादि काल से कर्मों के द्वारा वो आकृष्ट की जाती है सृष्टि रूप बनने के लिए क्योंकि वह परतंत्र है और (परार्थ) जीवात्मा का प्रयोजन सिद्ध करने वाली होने से, बलात वह आकृष्ट कर ली जाती है, इसलिए यह युक्तियुक्त है की वह पराधीन है और सृष्टि रूप बनने की चेष्टा करती है।।६२।।

[यद्यनादितः कर्मभिराकर्षणात् प्रकृतेः सृष्टिस्तर्हि न मुक्तिः स्यात् । अत्रोच्यते -] यदि अनादिकाल से कर्मों के द्वारा आकर्षित किया जा रहा है और इस आकर्षण से प्रकृति से सृष्टि बनती जा रही है फिर मुक्ति कैसे होगी? इस पर कहते हैं-

विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके ।।६३।।

सूत्रार्थ=तत्वज्ञानी पुरुष को विवेक हो जाने के कारण उसके लिए आगे प्रकरी का शरीर आदि

सृष्टिरूपतया परिणमते। अनादिकालात् कर्मभिराकृष्यते हि सा सृष्टिभावाय तस्याः परतन्त्रत्वात् परार्थत्वाच्च बलादाकृष्यते हि सा सृष्टिभावाय तस्मात् प्रकृतिः सृष्टिरूपाय चेष्टत इति यौक्तिकमेतत् ।।६२।।

यद्यनादितः कर्मभिराकर्षणात् प्रकृतेः सृष्टिस्तर्हि न मुक्तिः स्यात् । अत्रोच्यते -

विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके ।।६३।।

(विविक्तबोधात्) प्राप्तविवेकस्य पुरुषस्य बोधात् (प्रधानस्य सृष्टिनिवृत्तिः) प्रकृतेः सृष्टिनिवृत्तिः सृष्टिसमाप्तिर्भवति (सूदवत् पाके) यथा पाके सम्पन्ने सति सूदो निवर्तते, इत्थं सृष्टितः प्रकृतिर्निवर्तते ।।६३।।

अथवा -

इतर इतरज्जहाति * तद्दोषात् ।।६४।।

(इतरः-इतरत्-जहाति) प्रधानादितरः पुरुषः खल्वितरत् स्वस्मादितरद् भिन्नं प्रधान त्यजति

निर्माण कार्य बंद हो जाता है, जैसे भोजन तैयार हो जाने पर पाचक रसोई से निवृत हो जाता है।

[(विविक्तबोधात्) प्राप्तविवेकस्य पुरुषस्य बोधात् (प्रधानस्य सृष्टिनिवृत्तिः) प्रकृतेः सृष्टिनिवृत्तिः सृष्टिसमाप्तिर्भवति] जिसे विवेक प्राप्त हो गया और संसार का बोध हो गया की ''यह दु:खदायक है'' फिर ईश्वर प्रकृति से सृष्टि नहीं बनाएगा **[(सूदवत् पाके) यथा पाके सम्पन्ने सति सूदो निवर्तते, इत्थं सृष्टितः प्रकृतिर्निवर्तते]** जैसे पाचक भोजन बनाने वालों के लिए भोजन बना देता है भोजन कर लेने पर भोजन बनाना बंद कर देता है, ऐसे ही जिस जिसको तत्वज्ञान हो जाएगा ईश्वर उस उसके लिए शरीर बनाना जन्म देना बंद कर देता है ।।६३।।

अथवा -

इतर इतरज्जहाति * तद्दोषात् ।।६४।।

सूत्रार्थ=जीवात्मा प्रकृति को छोड़ देता है, उससे अनाशक्त हो जाता है, प्रकृति के दोष देखकर।

[(इतरः-इतरत्-जहाति) प्रधानादितरः पुरुषः खल्वितरत् स्वस्मादितरद् भिन्नं प्रधान त्यजति] प्रधान से जो इतर है (प्रकृति से जो भिन्न है वह है पुरुष वह इतर है) जीवात्मा प्रकृति को छोड़ देता है **[(तद्दोषात्) तस्य प्रधानस्य दोषदर्शनात् ततः प्रधानान्निवर्तते]** वह प्रकृति के दोष देख लेता है इसलिए उसे छोड़ देता है। **[इति तु प्रधानात् पुरुषस्य विमुक्तिः]** इस प्रकार से प्रकृति से जीवात्मा की मुक्ति हो जाती है।।६४।।

एवम् -

द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः ।।६५।।

सूत्रार्थ= प्रकृति और जीवात्मा दोनों की उदासीनता हो जाती है, किन्तु मोक्ष जीवात्मा का ही होता है।

[(द्वयोः-एकतरस्य वा-औदासीन्यम्-अपवर्गः) वाकारोऽत्र चार्थः क्रमबोधने, अर्थाद् द्वयोः-औदासीन्यम्, एकतरस्य-अपवर्गः] यहाँ सूत्र में जो ''व'' शब्द है ये ''च'' अर्थ में है क्रम बतलाने में,

(तद्दोषात्) तस्य प्रधानस्य दोषदर्शनात् ततः प्रधानान्निवर्तते । इति तु प्रधानात् पुरुषस्य विमुक्तिः ।।६४।।

एवम् -

द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः ।।६५।।

(द्वयोः-एकतरस्य वा-औदासीन्यम्-अपवर्गः) वाकारोऽत्र चार्थः क्रमबोधने, अर्थाद् द्वयोः-औदासीन्यम्, एकतरस्य-अपवर्गः ।पूर्वोक्तसूत्रद्वयेन द्वयोः प्रकृतिपुरुषयोर्भवत्यौदासीन्यं परन्तु तत्रौदासीन्ये सति किलापवर्गो मोक्षस्तु खल्वेकतरस्य पुरुषस्य बवतीति सिद्धान्तः । इदं सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च न सम्यग्व्याख्यातम् ।।६५।।

कुतः पुरुषस्यापवर्गो भवति न प्रकृतेः, इत्याकांक्षामुच्यते -

अर्थात कहने का भाव यह है की औदासीनता तो दोनों की हो जाएगी, और मुक्ति एक की होगी (जीवात्मा और प्रकृति में से प्रकृति जड है बंधन का अनुभव नहीं करती जबकि जीवता चेतन है बंधन का अनुभव करता है इसलिए मुक्ति चाहता है जैसे - एक खूँटे पर रस्सी से गाय बंधी थी, जब रस्सी को खोला गया तो गाय और रस्सी अलग अलग हो गए लेकिन मुक्ति तो गाय की हुई न?)। [**पूर्वोक्तसूत्रद्वयेन द्वयोः प्रकृतिपुरुषयोर्भवत्यौदासीन्यं परन्तु तत्रौदासीन्ये सति किलापवर्गो मोक्षस्तु खल्वेकतरस्य पुरुषस्य भवतीति सिद्धान्तः**] पूर्वोक्त दो सूत्रों में (जो चर्चा चल रही थी) प्रकृति और जीवात्मा का दोनों की औदासीनता हो जाती है अलग अलग हो जाते हैं फिर इन दोनों के अलग अलग हो जाने पर मोक्ष तो केवल एक (पुरुष) का होता है ये सिद्धान्त जानना चाहिए। क्योंकि बंधन और मुक्ति का अनुभव जीवात्मा ही करता है। [**इदं सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च न सम्यग्व्याख्यातम्**] इस सूत्र की व्याख्या अनिरुद्धवृत्ति में और विज्ञानभिक्षु भाष्य में ठीक-ठीक नहीं की गयी है।।६५।।

कुतः पुरुषस्यापवर्गो भवति न प्रकृतेः, इत्याकांक्षामुच्यते - पुरुष की ही मुक्ति क्यों होती है प्रकृति की क्यों नहीं ? ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर ये उत्तर दिया जाता है-

अन्यसृष्ट्युपरागेऽपि न विरज्यतेऽप्रबुद्धरज्जुतत्त्वस्येवोरगः ।।६६।।

सूत्रार्थ= अविवेकी व्यक्ति के लिए सृष्टि बनाना रूप प्रकृति का कार्य चालू रहने के कारण प्रकृति की मुक्ति नहीं हो पाती, जैसे रस्सी का सही स्वरूप न जानने वाले व्यक्ति का रस्सी को साँप समझने का भ्रम दूर नहीं होता।

[**(अन्यसृष्ट्युपरागे-अपि) अपिरत्र हेतुप्रदर्शनार्थः** यहाँ जो ''अपि'' शब्द है यह हेतु को दर्शाने के लिए है। **यद्यपि प्रकृतिर्जातविवेकं प्रति सृष्टितो निवर्तते तदा भवति ह्युदासीना परन्तु योऽन्योऽविवेकयुक्तस्तस्मै सृष्टिविषयकोपरागस्तु तस्याः खल्वस्ति हि**] यद्यपि प्रकृति उस व्यक्ति के प्रति सृष्टि बनाने से निवृत हो जाती है, अविवेक से युक्त जो व्यक्ति है उनका सृष्टिविषयक राग उस प्रकृति के प्रति तो बना ही रहेगा, प्रकृति उनके प्रति भोग भूगाते रहेगी, [**तस्मादविवेकयुक्तात् (न विरज्यते) सा न विरज्यते**-

अन्यसृष्ट्युपरागेऽपि न विरज्यतेऽप्रबुद्ध+रज्जुतत्त्वस्येवोरगः ।।६६।।

(अन्यसृष्ट्युपरागे-अपि) अपिरत्र हेतुप्रदर्शनार्थः । यद्यपि प्रकृतिर्जातविवेकं प्रति सृष्टितो निवर्तते तदा भवति ह्युदासीना परन्तु योऽन्योऽविवेकयुक्तस्तस्मै सृष्टिविषयकोपरागस्तु तस्याः खल्वस्ति हि, तस्मादविवेकयुक्तात् (न विरज्यते) सा न विरज्यते-सृष्टितो नापवृज्यते, न तस्या अपवर्गो मोक्ष इत्यर्थः । कथमिव । उच्यते (अप्रबुद्धरज्जुतत्त्वस्य-इव-उरगः) उरगः-सर्पः-रज्जुसर्पः-रज्ज्वां सर्पभ्रमो यथाऽज्ञातरज्जुस्वरूपस्य पुरुषस्य न निवर्तते, एवं ह्यजातविवेकं प्रति प्रकृतिः सृष्टिरचनातो न विरज्यते, विमोक्षस्तु जातविवेकस्यैव भवति । तस्मात् पुरुषस्यैव मोक्षे सिद्धान्तः ।।६६।।

अपरञ्च -

कर्मनिमित्तयोगाच्च ।।६७।।

सृष्टितो नापवृज्यते, न तस्या अपवर्गो मोक्ष इत्यर्थः] जो अविवेकी व्यक्ति है उसके प्रति प्रकृति को कार्य करना ही करना है, इसलिए सृष्टि बनाने के कार्य से वह विरक्त नहीं होती, इसलिए उसका अपवर्ग नहीं होता मोक्ष नहीं होता। **[कथमिव। उच्यते (अप्रबुद्धरज्जुतत्त्वस्य-इव-उरगः) उरगः-सर्पः-रज्जुसर्पः-रज्ज्वां सर्पभ्रमो यथाऽज्ञातरज्जुस्वरूपस्य पुरुषस्य न निवर्तते, एवं ह्यजातविवेकं प्रति प्रकृतिः सृष्टिरचनातो न विरज्यते]** एक दृष्टांत देते हैं- जैसे रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है कोई व्यक्ति रात्री में रस्सी को नहीं समझ पाता साँप का भ्रम हो जाता है (रस्सी को ही साँप समझता है) जिसको रस्सी का स्वरूप पता नहीं है वह उसे साँप ही समझता रहेगा **[विमोक्षस्तु जातविवेकस्यैव भवति]** जिसको तत्वज्ञान नहीं होता, जिसका विवेक उत्पन्न नहीं हुआ, उसको सृष्टि में सुख का भ्रम रहता है, जिसको तत्वज्ञान हो जाता है उसकी मुक्ति हो जाती है। तस्मात् पुरुषस्यैव मोक्षे सिद्धान्तः इसलिए पुरुष के ही मोक्ष का सिद्धान्त है ।।६६।।

अपरञ्च -

कर्मनिमित्तयोगाच्च ।।६७।।

सूत्रार्थ= सकाम कर्मों के कारण प्रकृति का जीवों के साथ बन्धन होने से ही प्रकृति सृष्टि निर्माण कार्यों से निवृत नहीं हो पाती।

[(कर्मनिमित्तयोगात्-च) अथ च प्रकृतिर्न विरज्यतेऽत्रायमपि हेतुरन्यो यत् कर्मनिमित्तः खलु योगः सम्बन्धः प्रकृत्या अस्ति] प्रकृति अपने कार्य से विरक्त नहीं होती। इस विषय में एक हेतु है कि प्रकृति के साथ जीवात्मा का जो योग (सम्बंध) है वह कर्मों के कारण से है, **[यस्य हि कर्माविशिष्टं तस्य फलभोगाय प्रकृतियोगेन भवितव्यमेंव]** जिस जीवात्मा के सकाम कर्म अभी बचे हुए हैं फल भोगने के लिए तो उस जीवात्मा को फल भुगाने के लिए प्रकृति का संयोग होना ही पड़ेगा, **तेन सह प्रकृतिर्युङ्क्ते हि ''कर्माकृष्टेर्वाप्यनादितः'' (सांख्य० ३.६२) कर्मभिस्तस्या आकृष्टत्वाच्च** उस जीवात्मा के साथ प्रकृति तो जुगी ही जिसका सकाम कर्म अभी बाकी है फल भोगने के लिए ''जीवात्मा के कर्मों कि बजह से प्रकृति को आकृष्ट कर ही लिया जाता है ''। **[तस्मात् प्रकृतेर्नापवर्गः किन्तु पुरुषस्यैव भवति]** इसलिए प्रकृति का

(कर्मनिमित्तयोगात्-च) अथ च प्रकृतिर्न विरज्यतेऽत्रायमपि हेतुरन्यो यत् कर्मनिमित्तः खलु योगः सम्बन्धः प्रकृत्या अस्ति, यस्य हि कर्माविशिष्टं तस्य फलभोगाय प्रकृतियोगेन भवितव्यमेव, तेन सह प्रकृतिर्युङ्क्ते हि ''कर्माकृष्टेर्वाप्यना- दितः'' (सांख्य० ३.६२) कर्मभिस्तस्या आकृष्टत्वाच्च । तस्मात् प्रकृतेर्नापवर्गः किन्तु पुरुषस्यैव भवति ।।६७।।

प्रकृतिः परार्था, न हि स्वार्था पुनः स्वार्थहीना निरपेक्षा सती प्रकृतिः कमपि पुरुषं प्रति कथं प्रवर्तते तदेतदन्यथा युक्त्या प्रदर्श्यते -

नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम् ।।६८।।

(नैरपेक्ष्ये-अपि) प्रकृतेर्निरपेक्षत्वेऽपि न केनापि सह प्रकृतेर्विशिष्टा सम्बन्धापेक्षा तस्याः समानभावेन परार्थत्वात् । तथापि (प्रकृत्युपकारे) सृष्टिरूपत्वेन प्रकृतिर्यं कमप्युपकरोति यं कमपि

छुटकारा नहीं होता जीवात्मा का ही होता है।।६७।।

[प्रकृतिः परार्था, न हि स्वार्था पुनः स्वार्थहीना निरपेक्षा सती प्रकृतिः कमपि पुरुषं प्रति कथं प्रवर्तते तदेतदन्यथा युक्त्या प्रदर्श्यते -] प्रकृति परार्थ है, अपने लिए न होते हुए भी वो अपने लिए नहीं चाहती हुई फिर प्रकृति किसी पुरुष के लिए कैसे प्रवृत्त हो जाती है इस बात को एक और युक्ति से कहते हैं-

नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम् ।।६८।।

सूत्रार्थ= प्रकृति की इच्छा रहित होते हुए भी जीवों के लिए शरीर निर्माण आदि का कार्य करती है, उसमें जीवों का अविवेक ही कारण है।

[(नैरपेक्ष्ये-अपि) प्रकृतेर्निरपेक्षत्वेऽपि न केनापि सह प्रकृतेर्विशिष्टा सम्बन्धापेक्षा तस्याः समानभावेन परार्थत्वात्] प्रकृति के निरपेक्ष होते हुए भी किसी के साथ प्रकृति का कोई विशेष सम्बंध की अपेक्षा नहीं है इसलिए समान रूप से सबके लिए परोपकार करना उसका काम है। **[तथापि (प्रकृत्युपकारे) सृष्टिरूपत्वेन प्रकृतिर्यं कमप्युपकरोति यं कमपि पुरुषं प्रति प्रवर्तते तत्र (अविवेकः-निमित्तम्) अविवेकस्तस्य पुरुषस्य निमित्तमस्ति]** सृष्टि के रूप में प्रकृति जिस किसी भी पुरुष का उपकार करती है (जिस किसी को भोग देती है) इसमें क्या कारण है? इसमें उस पुरुष का अविवेक ही कारण है।।६८।।

पुनश्च -

नर्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि विवृत्तिश्चारितार्थ्यत्वात् ।।६९।।

सूत्रार्थ= नर्तकी के समान जैसे नर्तकी नृत्य दिखाकर चली जाती है वैसे ही प्रकृति अपने कार्य को चरितार्थ करके निवृत्त हो जाती है।

[(प्रवृत्तस्य-अपि) अविवेकिनं पुरुषं प्रति प्रवृत्तस्यापि प्रधानस्य (चारितार्थ्यात् -निवृत्तिः) निवृत्तिर्भवति चरितार्थत्वात् समाप्तप्रयोजनत्वात् स्वरूपप्रदर्शनेन कृतकार्यत्वात्] अविवेकी पुरुष के प्रति जो प्रकृति प्रवृत्त होने पर (अपना स्वरूप दिखने के लिए) निवृत्त हो जाती है चरितार्थ हो जाती है प्रकृति स्वरूप दिखाकर स्व प्रयोजन को सिद्ध करते हुए अपने इस कार्य की सिद्धि कर लेती है (जीवात्मा को बता देती है मुझमें कितना दुःख और कितना सुख है) **[(नर्तकीवत्) यथा नर्तकी पारिषद्यान् प्रति नृत्यप्रदर्शनाय**

पुरुषं प्रति प्रवर्तते तत्र (अविवेकः-निमित्तम्) अविवेकस्तस्य पुरुषस्य निमित्तमस्ति ।।६८।।

पुनश्च -

नर्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि विवृत्तिश्चारितार्थ्यत्वात् ।।६९।।

(प्रवृत्तस्य-अपि) अविवेकिनं पुरुषं प्रति प्रवृत्तस्यापि प्रधानस्य (चारितार्थ्यात् -निवृत्तिः) निवृत्तिर्भवति चरितार्थत्वात् समाप्तप्रयोजनत्वात् स्वरूपप्रदर्शनेन कृतकार्यत्वात् (नर्तकीवत्) यथा नर्तकी पारिषद्यान् प्रति नृत्यप्रदर्शनाय प्रवृत्ताऽपि समाप्तनृत्यकृत्या नृत्येन स्वरूपं प्रदर्शितवती सती निवर्तते ।।६९।।

अथ च तन्निवर्तनमपरदृष्टान्तेन पोष्यते -

प्रवृत्ताऽपि समाप्तनृत्यकृत्या नृत्येन स्वरूपं प्रदर्शितवती सती निवर्तते] जैसे कहीं नर्तकी नृत्य करती है सभा में जो बैठे लोग है उनके प्रति नृत्य दिखलाती हुई कुछ कल बाद निवृत हो जाती है।।६९।।

अथ च तन्निवर्तनमपरदृष्टान्तेन पोष्यते -प्रकृति बापिस हट जाती है लौट जाती है, इस बात को किसी और दृष्टांत से समझाते हैं-

दोषबोधेऽपि नोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत् ।।७०।।

सूत्रार्थ=प्रकृति के दोष जीवात्मा को ज्ञात हो जाने पर फिर उस जीवात्मा के लिए प्रकृति आगे शरीर आदि का निर्माण नहीं करती, कुलवधू के समान।

[(दोषबोधे-अपि) अपिशब्दो हेत्वन्तरे दृष्टान्तान्तरे] च सूत्र में ''हेतु'' शब्द दृष्टांत एवं हेतु शब्द के लिए प्रयुक्त हुआ है। **[प्रकृतिनिवर्तनेऽपरोऽयमपि हेतुर्दृष्टान्तश्च यत् खलु दोषबोधेपुरुषेण प्रधानस्य दोषे ज्ञातेपरिणामित्वपुनर्जन्मनिमित्तत्वदुःखरूपत्वादिके दोषे ज्ञाते सति (प्रधानस्य उपसर्पणं न) प्रकृतेर्ज्ञातदोषं पुरुषं प्रति नोपसर्पणमुपगमनं भवति]** प्रकृति के निवृत्त हो जाने में (प्रकृति जीवात्मा के लिए निवृत हो जाने पर बार बार शरीर नहीं बनाती) एक दृष्टांत और भी है कि दोष जान लेने पर पुरुष के द्वारा प्रधान के दोष जान लेने पर, क्या क्या दोष जाने? प्रकृति परिणामिनी है, दूसरा है-यदि हम प्रकृति के भोग भोगते जाएंगे तो उससे हमारे संस्कार बनते जाएंगे, जब राग-द्वेष के संस्कार बनेगे तो ये संस्कार बार बार जन्म-मरण के चक्कर में घसीट लाएँगे, फिर सकाम कर्म करेंगे, उससे फिर जन्म होगा। और प्रकृति दुःख रूप है। इस प्रकार प्रकृति के दोष ज्ञात हो जाने पर, जिस व्यक्ति को प्रकृति के दोष समझ में आ गए फिर उसके सामने यह प्रकृति नहीं जाती, उससे दूर भागती है, **[न हि तदा प्रकृतिस्तत्समीपमुतिष्ठते किन्तु ततो निवर्तते]** हि फिर प्रकृति उसके समीप नहीं जाती उससे दूर भागती है। **[तत्र दृष्टान्तः (कुलवधूवत्) यथा कुलवधू प्रकटितदोषा पुनः पुरुषं प्रति नोपसर्पति किन्तु सङ्कुचति स्वात्मानं सङ्कोचयति निवर्तते हि ततस्तथैव प्रकृतिर्ज्ञातदोषाय सङ्कुचति स्वात्मानं न प्रकटयति ततोऽपसरति हि]** दृष्टांत है जैसे कुलवधू के दोष प्रकट हो जाने पर वह पति से छुपती रहती है उससे डोर भागती है सामने आने में संकोच करती है। उसी प्रकार से प्रकृति के दोष ज्ञात हो जाने पर पुरुष के सामने आने से संकोच करती है, वह आगे उसके भोग के लिए

दोषबोधेऽपि नोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत् ।।७०।।

(दोषबोधे-अपि) अपिशब्दो हेत्वन्तरे दृष्टान्तान्तरे च । प्रकृतिनिवर्तनेऽपरोऽयमपि हेतुर्दृष्टान्तश्च यत् खलु दोषबोधे-पुरुषेण प्रधानस्य दोषे ज्ञाने-परिणामित्वपुनर्जन्मनिमित्तत्वदुःखरूपत्वादिके दोषे ज्ञाते सति (प्रधानस्य उपसर्पणं न) प्रकृतेर्ज्ञातदोषं पुरुषं प्रति नोपसर्पणमुपगमनं भवति, न हि तदा प्रकृतिस्तत्समीपमुतिष्ठते किन्तु ततो निवर्तते हि । तत्र दृष्टान्तः (कुलवधूवत्) यथा कुलवधू प्रकटितदोषा पुनः पुरुषं प्रति नोपसर्पति किन्तु सङ्कुचति स्वात्मानं सङ्कोचयति निवर्तते हि ततस्तथैव प्रकृतिर्ज्ञातदोषाय सङ्कुचति स्वात्मानं न प्रकटयति ततोऽपसरति हि । उक्तं यथा नारदीये ''सविकाराऽपि मौढ्येन चिरं भुक्त्वा गुणात्मना । प्रकृतिर्ज्ञातदोषेयं लज्जयैव निवर्तते'' ।।७०।।

शरीर नहीं बनाती। [**उक्तं यथा नारदीये ''सविकाराऽपि मौढ्येन चिरं भुक्त्वा गुणात्मना। प्रकृतिर्ज्ञातदोषेयं लज्जयैव निवर्तते''**] जैसा कि नारद स्मृति में कहा है -विकार सहित होते हुए भी अविद्या (मूर्खता) के कारण जीवात्मा इसे गुणवान मानता हुआ भोगता है। प्रकृति के दोष ज्ञात हो जाने पर वह लज्जा का अनुभव करती है और जीवात्मा के सामने नहीं जाती फिर जीवात्मा का मोक्ष हो जाता है ।।७०।।

[**यदि प्रकृतिरेव ज्ञातदोषाज्जातविवेकान्निवर्ततेऽज्ञातदोषमजातविवेकं प्रति च प्रवर्तते तर्हि पुरुषे कथं व्यपदिश्यते बन्धो बन्धाच्च मोक्षः। अत्रोच्यते** -] यदि प्रकृति ही उस पुरुष से दूर भागती है जिसको उसके दोष ज्ञात हो गए फिर जिसको दोष ज्ञात नहीं हुए उसके प्रति तो यह कार्य करती रहती है और तत्वज्ञानी से दूर भागती है। जब प्रकृति ही सब कुछ कर रही है, तो शंका यह है कि - पुरुष में बंधन क्यों कहा गया ? बंधन से मोक्ष हो गया? (जब कार्य सारा प्रकृति कर रही है तो फिर पुरुष को बीच में क्यों लिया जा रहा कि वह बंध गया-मोक्ष हो गया)- इसका उत्तर देते है-

नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते ।।७१।।

सूत्रार्थ= पुरुष का बंधन और मोक्ष दोनों एक नियम से नहीं है, स्वाभाविक नहीं है। अविवेक के विना बंधन नहीं होगा, विवेक एक विना मोक्ष नहीं होगा। इसलिए दोनों ही कारण पूर्वक है नैमितिक हैं।

[**(पुरुषस्य बन्धमोक्षौ-एकान्ततः-न) पुरुषस्य बन्धः पुनस्ततो मोक्षश्च खल्वेकान्ततस्तत्स्वरूपतो न स्तः**] पुरुष का जो बंधन है, फिर प्रकृति से छुट भी गया ये दोनों ही चीजे स्वभाव से नहीं है (न तो जीवात्मा का बंधन स्वाभाविक है और न ही मोक्ष स्वाभाविक है- क्योंकि जिसका जो स्वभाव होता है वह उससे कभी हटता नहीं)। [**उक्तं यथापूर्वम् ''व्यावृत्तोभयरूपः'' (सांख्य- १.१६०) यतः (अविवेकात्-ऋते) अविवेकमन्तरेण पुरुषे बन्धस्य पुनस्ततो मोक्षस्यानुपपत्तेः**] जैसा कि सांख्यदर्शन में पहले भी कह ही चुके है'' दोनों ही रूपों से जीवात्मा अलग हैं'', बल्कि निमित्त से है क्या निमित है? अविवेक के कारण पुरुष बंधन में आता है, जब तक विवेक उत्पन्न नहीं होगा तब तक मुक्ति नहीं होगी, [**अविवेकमबलम्ब्य हि पुरुषो बध्यते, अविवेकहानाच्च पुनर्बन्धान्मुच्यते**] अविवेक के आधार पर पुरुष बंध जाता है, अविवेक के हट जाने पर तत्वज्ञान हो जाने पर प्रकृति से मुक्त हो जाता है ।।७१।।

यदि प्रकृतिरेव ज्ञातदोषाज्जातविवेकान्निवर्ततेऽज्ञातदोषमजातविवेकं प्रति च प्रवर्तते तर्हि पुरुषे कथं व्यपदिश्यते बन्धो बन्धाच्च मोक्षः । अत्रोच्यते -

नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते ।।७१।।

(पुरुषस्य बन्धमोक्षौ-एकान्ततः-न) पुरुषस्य बन्धः पुनस्ततो मोक्षश्च खल्वेकान्ततस्तत्स्वरूपतो न स्तः । उक्तं यथापूर्वम् ''व्यावृत्तोभयरूपः'' (सांख्य- १.१६०) यतः (अविवेकात्-ऋते) अविवेकमन्तरेण पुरुषे बन्धस्य पुनस्ततो मोक्षस्यानुपपत्तेः, अविवेकमबलम्ब्य हि पुरुषो बध्यते, अविवेकहानाच्च पुनर्बन्धान्मुच्यते ।।७१।।

अतः -

प्रकृतेराञ्जस्यात् ससंगत्वात् पशुवत् ।।७२।।

अतः -

प्रकृतेराञ्जस्यात् ससंगत्वात् पशुवत् ।।७२।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा का प्रकृति के साथ स्वभाव से ही सम्बन्धी पा्सी होने से वह प्रकृति से बंध भी जाता है, और छुट भी जाता है। पशु के समान।

[(प्रकृतेः- आञ्जस्यात् ससंगत्वात् पशुवत्) पुरुषस्य यो बन्धः पुनस्ततो मोक्षश्च प्रकृतेः पुरुष आञ्जस्यादनायासात् ससंगः सहयोगी खल्वस्ति] पुरुष का जो बंधन है और फिर उस बंधन से मोक्ष है, पुरुष प्रकृति का (स्वभाव से) अनायास ही संग सहयोगी है **[तस्य ससंगत्वात् संगित्वात् सहयोगित्वात् पशुवद्् बन्धमोक्षौ भवतः]** क्योंकि वह उसके पास ही रहता है संग सहयोगी होने से वह पशु के समान बंध भी जाता है और मोक्ष भी हो जाता है, **[यथा पशुर्यूपसन्निधानाद् रज्वा बध्यते पुनश्च ततो विमुच्यते]** जैसे पशु के पास खूंटा है, रस्सी है तो पशु कभी बंध जाता है कभी छूट जाता है, पास रहने से। (ऐसे उसका बंधन मोक्ष होता रहता है)। **[अन्यो व्याख्यामार्गः-(प्रकृतेः-आञ्जस्यात् ससंगत्वात् पशुवत्) प्रकृतेः खल्वाञ्जस्यादनायासान्निसर्गतः परुषेण सह संगोऽस्ति]** अन्य व्याख्या है- प्रकृति का अनायास ही स्वभाव से ही पुरुष के साथ उसका संग है (पडोसी होने से) **[तस्याः परार्थत्वात् पुरुषार्थत्वात् पुरुषसंगत्वात् पुरुषसहयोगिनीत्वात् पशुवद् बन्धः पुनर्मोक्षश्चास्ति]** क्योंकि प्रकृति परार्थ है पुरुष के लिए होने से, पुरुष का संग होने से, पुरुष का सहयोगिनी होने से, इसलिए पशु के समान उसका बंधन हो जाता है और उसका मोक्ष हो जाता है यथा। **[पशुः परार्थः परो जनस्तत्स्वामी तत्पालने बद्धो भवति त्यागे च विमुक्तो भवति तथैव प्रकृत्या सहात्मानं बद्धं तत्वसंगेन विना मुक्तं चानुभवति]** पशु परार्थ है (पशु कि सवारी पशु स्वयं थोडी करेगा, कोई और करेगा) स्वामी के लिए है, जैसे कोई व्यक्ति पशु पाल लेता है तो उसके पालन में बो बंध जाता है, और पशु को छोड दे तो मुक्त हो जाता है। ऐसे ही जो व्यक्ति संसार में सुख देखता है बो प्रकृति के साथ बंध जाता है, और जब संसार में दुख देखता है तो मुक्त हो जाता है ।।७२।।

[तत्र बन्धमोक्षयोर्विवेकाविवेकप्रकारः प्रदर्श्यते -] बंध और मोक्ष का विवेक और अविवेक

(प्रकृतेः-आञ्जस्यात् ससंगत्वात् पशुवत्) पुरुषस्य यो बन्धः पुनस्ततो मोक्षश्च प्रकृतेः पुरुष आञ्जस्यादनायासात् ससंगः सहयोगी खल्वस्ति तस्य ससंगत्वात् संगित्वात् सहयोगित्वात् पशुवद् बन्धमोक्षौ भवतः, यथा पशुर्यूपसन्निधानाद् रज्वा बध्यते पुनश्च ततो विमुच्यते । अन्यो व्याख्यामार्गः-(प्रकृतेः-आञ्जस्यात् ससंगत्वात् पशुवत्) प्रकृतेः खल्वाञ्जस्यादनायासान्निसर्गतः परुषेण सह संगोऽस्ति तस्याः परार्थत्वात् पुरुषार्थत्वात् पुरुषसंगत्वात् पुरुषसहयोगिनीत्वात् पशुवद् बन्धः पुनर्मोक्षश्चास्ति यथा । पशुः परार्थः परो जनस्तत्स्वामी तत्पालने बद्धो भवति त्यागे च विमुक्तो भवति तथैव प्रकृत्या सहात्मानं बद्धं तत्संगेन विना मुक्तं चानुभवति ।।७२।।

का प्रकार दिखलाया जाता है-

रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोशकारवद् विमोचयत्येकेन रूपेण ।।७३।।

सूत्रार्थ=प्रकृति प्रधान जीवात्मा को अपने सात रूपों से बांध लेती है, जैसे मक्ा़ी जाल को बिछाके मक्खी मच्छर को फँसाती है, जब मुक्त करती है जीवात्मा को तो एक रूप से मुक्त करती है।

[(प्रधानं सप्तभिः-रूपैः-आत्मानं बध्नाति)महत्तत्त्वाहंकारपञ्चतन्मात्रैः सप्तभिरवस्थान्तरभूतैर्विकृतिरूपैर्जीवात्मानं बध्नाति यतस्तत एव सान्तःकरणमुभयमिन्द्रियं निष्पद्यते] प्रकृति कैसे बांधती है ये बताते हैं- महतत्व, अहंकार, पाँच तन्मात्राएं इन सात वस्तुएं के द्वारा प्रकृति के ये भिन्न-भिन्न सात अवस्थाएं हैं, इन अवस्थाओं के द्वारा जीवात्मा को बांध लेती है, इन्ही सात अवस्थाओं से दोनों प्रकार कि इंद्रियाँ बनती हैं। **[उच्यते हि ''प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियम्'']** ये सांख्य में पहले भी कहा था- ''प्रकृति से महतत्व महतत्व से अहंकार अहंकार से पाँच तन्मात्राएं दोनों प्रकार कि इंद्रियाँ'' **[(सांख्य० १.६१) कथमिव (कोशकारवत्) कोशकार इव तन्तुकीट]** इव प्रकृति जीवात्मा को कैसे बांधती है?- कोशकार के तंतुकीट के समान **[यथा तन्तुकीटस्तन्तुर्भिबध्नाति]** जैसे तन्तुकीट तन्तुओं के द्वारा बंध जाता है (जैसे मकडी जाला बुनती है उस जाल में मक्खी, मछर फंस जाते हैं, वैसे ही प्रकृति रूप रस गंध के जल में जीवात्मा फंस जाता है), **[दृष्टान्तस्यैक एवांशोऽत्र बन्धनमेवाभिप्रेयते न सर्वांशत्वं स्वबन्धनमपि यद्वा प्रकृतेरात्मभूतः पुरुषस्तमात्मभूतं प्रकृतिर्बध्नाति]** कोई भी दृष्टांत सौप्रतिशत लागू नहीं होता, एक अंश ही लेना है ''दूसरों का बन्धन'' सारे अंश में नहीं लेना, अपना बन्धन यहाँ नहीं कहना चाहते अथवा ऐसे भी कह सकते हैं कि प्रकृति का जो आत्मभूत है वह पुरुष का आत्मभूत है (जैसे मक्ा़ी है, मकडी के अंदर आत्मा है वह फंसा हुआ है ''मकडी के शरीर ने मकडी के आत्मा को बांध लिया'') ऐसे ही शरीर को प्रकृति समझें उसने आत्मा को बांध लिया । **[पुनः (एकेन रूपेण विमोचयति) एकेन रूपेण स्वरूपभूतेन प्रकृतिरूपेण सृष्टिनिवर्तनेन विमोचयति]** एक रूप से अपने स्वरूप से जीवात्मा को प्रकृति छोड़ देती है, जब उसकी सृष्टि निवृत्ति हो जाती है। **[बन्धस्तु खलु पुरुषस्यैव सोऽविवेकात्]** बन्धन तो जीवात्मा का ही होता है वह अविवेक के कारण, **[विवेकाविवेकौ पुरुषाधिष्ठानकौ]** विवेक और अविवेक पुरुष में रहते हैं, **[पूर्वस्मिन्नस्मिंश्च सूत्रे प्रकृतेर्बन्धमोक्षकथनमन्यभाष्यकारप्रलपनमेंव]** पूर्वसूत्र और इस सूत्र में प्रकृति का बन्धन और मोक्ष कहना ये अन्य भाष्यकारों ने गड़बड़ कर रखी है (वो कहते है

तत्र बन्धमोक्षयोर्विवेकाविवेकप्रकारः प्रदर्श्यते -

रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोशकारवद्! विमोचयत्येकेन रूपेण ।।७३।।

(प्रधानं सप्तभिः-रूपैः-आत्मानं बध्नाति) महत्तत्त्वाहंकारपञ्चतन्मात्रैः सप्तभिरवस्थान्तरभूतैर्विकृतिरूपैर्जीवात्मानं बध्नाति यतस्तत एव सान्तःकरणमुभयमिन्द्रियं निष्पद्यते। उच्यते हि''प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियम्''(सांख्य० १.६१) कथमिव (कोशकारवत्) कोशकार इव तन्तुकीट इव यथा तन्तुकीटस्तन्तुर्भिबध्नाति, दृष्टान्तस्यैक एवांशोऽत्र बन्धनमेवाभिप्रेयते न सर्वांशत्वं स्वबन्धनमपि यद्वा प्रकृतेरात्मभूतः पुरुषस्तमात्मभूतं प्रकृतिर्बध्नाति। पुनः (एकेन रूपेण विमोचयति) एकेन रूपेण स्वरूपभूतेन प्रकृतिरूपेण सृष्टिनिवर्तनेन विमोचयति। बन्धस्तु खलु पुरुषस्यैव सोऽविवेकात्, विवेकाविवेकौ पुरुषाधिष्ठानकौ, पूर्वस्मिन्नस्मिंश्च सूत्रे प्रकृतेर्बन्धमोक्षकथनमन्यभाष्यकारप्रलपनमेव ।बहुभिः सूत्रैः सिध्यति हि पुरुषस्य हि बन्धः स चाविवेकात् प्रकृति का बन्धन भी होता है मोक्ष भी, जबकि जड का कैसा बन्धन और कैसा मोक्ष? क्योंकि वह तो अनुभूति रहित है जड़ है)।**[बहुभिः सूत्रैः सिध्यति हि पुरुषस्य हि बन्धः स चाविवेकात् सति विवेके मोक्षः]** बहुत सारे सूत्रों से ये सिद्ध होता है कि पुरुष का ही बन्धन होता है और वह अविवेक के कारण तथा विवेक हो जाने पर उसका मोक्ष हो जाता है (बन्धन और मोक्ष पुरुष का होता है न कि प्रकृति का)।।७३।।

[कथमुच्यते सप्तभिर्महत्तत्त्वाहंकारतन्मात्रैर्बन्धः पूर्वं तु खल्वविवेक एव बन्धकारणमुक्तं ''तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति''(यजु० ३१.१८) इति दृष्टकारणस्य हानिर्भवेदत्रोच्यते -] एक शंका हुई?- पिछले सूत्र में कहा कि प्रकृति सात रूपों से बांधती है, महतत्व अहंकार आदि इन सात रूपों से जीवात्मा का बन्धन है ।जबकि पहले तो आपने एक ही कारण बताया था अविवेक।''परमात्मा को जानकर ही व्यक्ति मृत्यु को पार होता है'', पूर्वपक्षी कहता है कि ऐसा आप कहेंगे तो दृष्ट कारण कि तो हानी हो जाएगी? इस विषय में उत्तर देते हैं-

निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टहानिः ।।७४।।

सूत्रार्थ= महतत्व आदि सात रूपों से जीव को बांधने में अविवेक ही कारण है, इसलिए इस साक्षात कारण का कोई विरोध नहीं है।

[(अविवेकस्य निमित्तत्वम्) तत्र महत्तत्त्वादौ खल्वविवेकस्य निमित्तत्वमस्ति, अविवेकस्तत्र निमित्तम्] सिद्धांती कहता है- पिछले सूत्र में जो कहा कि महतत्व, अहंकार आदि सात पदार्थ जीवात्मा को बांध लेते हैं, ये सात रूपों से जीवात्मा को क्यों बांध लेती है प्रकृति ।इसमें पिछले सूत्रों में जो कारण बताया गया वह अविवेक है, इसलिए कोई टकराव नहीं (अविवेक भी ठीक है सात पदार्थ भी ठीक हैं) अविवेक वहाँ निमित्त है, **[अविवेकयुक्तं हि महत्तत्त्वादिभिर्बध्नाति प्रकृतिः]** जिस जीवात्मा में अविवेक है उस जीवात्मा को ही प्रकृति अपने सात रूपों में बांधेगी, जिसमें अविवेक का कारण नहीं है प्रकृति उसे नहीं बांधेगी **[(दृष्टहानि-न) दृष्टस्य साक्षाद्भूतस्य कारणस्य बन्धकारणस्य न हानिः]** इसलिए दृष्ट कारण जो साक्षात दिख रहा है अविवेक। उस कारण कि कोई हानी नहीं है, **[यतः साक्षान्निमित्तं तु बन्धस्याविवेक एव]** इसलिए सीधा सीधा बन्धन का कारण अविवेक ही है, **[अविवेकनिमित्तादेव पुरुषस्य प्रवृत्तिरतश्च**

सति विवेके मोक्षः ।।७३।।

कथमुच्यते सप्तभिर्महत्तत्त्वाहंकारतन्मात्रैर्बन्धः पूर्वं तु खल्वविवेक एव बन्धकारणमुक्तं ''तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति'' (यजु० ३१.१८) इति दृष्टकारणस्य हानिर्भवेदत्रोच्यते -

निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टहानिः ।।७४।।

(अविवेकस्य निमित्तत्वम्) तत्र महत्तत्त्वादौ खल्वविवेकस्य निमित्तत्वमस्ति, अविवेकस्तत्र निमित्तम्, अविवेकयुक्तं हि महत्तत्त्वादिभिर्बध्नाति प्रकृतिः (दृष्टहानि-न) दृष्टस्य साक्षाद्भूतस्य कारणस्य बन्धकारणस्य न हानिः, यतः साक्षान्निमित्तं तु बन्धस्याविवेक एव, अविवेकनिमित्तादेव पुरुषस्य प्रवृत्तिरतश्च महत्तत्त्वादिसृष्टिः ।।७४।।

अविवेको बन्धस्य निमित्तं तन्निवृत्तिर्विवेकाद्भवति, विवेकसिद्धेः क उपाय इत्याकांक्षायामुच्यते

महत्तत्त्वादिसृष्टिः] अविवेक के कारण ही पुरुष कि भोगों में प्रवृति होती है, फिर उस भोग को भुगवाने के लिए उसे महतत्व आदि दिए जाते हैं।।७४।।

[अविवेको बन्धस्य निमित्तं तन्निवृत्तिर्विवेकाद्भवति, विवेकसिद्धेः क उपाय इत्याकांक्षायामुच्यते-] बन्ध का निमित्त कारण अविवेक समझ में आ गया, उसकी निवृत्ति होती है विवेक से। इस विवेक प्राप्ति का क्या उपाय है? इस पर कहते है-

तत्त्वाभ्यासान्नेति नेतीति त्यागाद् विवेकसिद्धिः।।७५।।

सूत्रार्थ= ईश्वर का चिंतन करने से और भौतिक वस्तुओं से मेरा उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा इनसे ईश्वरीय आनन्द नहीं मिलेगा, इस प्रकार सोचकर इनको छोडते जाने से विवेक कि सिद्धि हो जाती है।

[(तत्त्वाभ्यासात्) तत्त्वचिन्तनादात्मपरमात्मचिन्तनात्] तत्व का अभ्यास करने से आत्मा-परमात्मा का चिंतन करने से। **[कथमित्युच्यते]** कैसे चिंतन करें **[(न-इति न-इति-इति त्यागात्) यद् यद् वस्तु केनापि साधनेन मनसाऽपि वाऽनुभूतं भवेत्तेन तन्नेति नेति तत्त्वमात्मतत्त्वं परमात्मतत्त्वमिति त्यागप्रकारात् (विवेकसिद्धिः) विवेकस्यात्मनः परमात्मनः स्वात्मनि साक्षात्कारसिद्धिर्भवति]** जो जो वस्तु किसी साधन से अथवा मन में आती है उस साधन से उस वस्तु के विषय में ये विचारें वह वस्तु ईश्वर नहीं है, परमात्मा नहीं है इस प्रकार से उन वस्तुओं का त्याग करते जाएंगे, इस त्याग कि पद्धति से, जो आत्मा परमात्मा का विवेक है तत्वज्ञान है उसका आत्मा के भीतर साक्षात्कार हो जाएगा। **[उच्यते यथा ''अथात आदेश नेति नेति नह्येतस्मादति नेत्यन्यत् परमस्ति'' (बृह० २.३.६) ''स एष आत्मा नेति नेति'' (बृह० ३.९.२६)]** जैसा कि उपनिषद में कहा है-अब यही तुम्हारे लिए आदेश है उपदेश है सार यही है कि ये भी परमात्मा नहीं है ये भी नहीं है, इससे (भौतिक वस्तुओं से) हमारा कल्याण नहीं होगा, परमात्मा इन सबसे अलग है। फिर दूसरे उपदेश में कहा -जैसा हमने परमात्मा बताया (निराकार सर्वशक्तिमान सर्वव्यापक) इतना ही परमात्मा को मत मान लेना वह इतना ही नहीं है बल्कि बहुत कुछ है पूरा पूरा हम भी नहीं बता सकते।।७५।।

-

तत्त्वाभ्यासान्नेति नेतीति त्यागाद् विवेकसिद्धिः ।।७५।।

(तत्त्वाभ्यासात्) तत्त्वचिन्तनादात्मपरमात्मचिन्तनात् । कथमित्युच्यते (न-इति न-इति-इति त्यागात्) यद् यद् वस्तु केनापि साधनेन मनसाऽपि वाऽनुभूतं भवेत्तेन तन्नेति नेति तत्त्वमात्मतत्त्वं परमात्मतत्त्वमिति त्यागप्रकारात् (विवेकसिद्धिः) विवेकस्यात्मनः परमात्मनः स्वात्मनि साक्षात्कारसिद्धिर्भवति । उच्यते यथा ''अथात आदेश नेति नेति नह्येतस्मादति नेत्यन्यत् परमस्ति'' (बृह०२.३.६) ''स एष आत्मा नेति नेति'' (बृह० ३.९.२६) ।।७५।।

सा च विवेकसिद्धिर्न सर्वेषां समानेत्युच्यते -

[सा च विवेकसिद्धिर्न सर्वेषां समानेत्युच्यते -] और यह विवेक सिद्धि सबको एक समान तथा एक साथ नहीं होती, इस पर कहते हैं-

अधिकारिप्रभेदान्न नियमः।।७६।।

सूत्रार्थ= तत्वज्ञान प्राप्ति के अधिकारी भिन्न-भिन्न स्तर वाले होने से सबको समान मात्रा में विवेक नहीं होता है।

[(अधिकारिप्रभेदात्-न नियमः) अधिकारिणां विवेकाभ्यासिनां प्रभेदात् सर्वेषां विवेकसिद्धिसमानत्वस्य नियमो नास्ति] जो अधिकारी है (जो तत्वज्ञान के लिए प्रयास कर रहे हैं) उन अधिकारियों के अलग-अलग स्तर होने से, सभीअधिकारियों की विवेक प्राप्ति की समानता का कोई नियम नहीं है, **[न हि सर्वेषां विवेकः समानो भवति यतः सन्ति ह्यधिकारिणो मृदुमध्याधिमात्राः]** सभी का विवेक का स्तर समान नहीं होता क्योंकि वे तीन स्तर वाले होते हैं मृदु (कम गति वाले), मध्य (मध्यम गति वाले), अधिमात्र (तेज गति से चलने वाले)। **उक्तं हि योगदर्शने ''मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः'' (योग० १.२२)** योगदर्शन में भी कहा है इसी बात को - मृदु, मध्य, अधिमात्र तीन प्रकार के स्तर वाले होने से जो तीव्रगाती वाले होंगे उनको पहले विवेक की प्राप्ति होगी।।७६।।

अतएव -

बाधितानुवृत्तेर्मध्यविवेकतोऽप्युपभोगः ।।७७।।

सूत्रार्थ= मध्य (जीवनमुक्त) अधिमात्र (नितांतमुक्त) जिस जीवन मुक्त व्यक्ति ने अपने ज्ञान और वैराग्य से राग-द्वेष आदि क्लेशों को समाप्त कर दिया है उसे भी शरीर के रहने तक तात्कालिक भोग भोजन आदि करना पड़ेगा।

[(मध्यविवेकतः-बाधितानुवृत्तेः-अपि-उपभोगः) मध्यविवेकाद् (जीवनमुक्त) बाधिता या खल्वनुवृत्तिरनुरक्तिरनुरागरूपा प्रवृत्तिर्येनाभ्यासिना तस्यापि विवेकाभ्यासिनो भवत्युपभोगस्तात्कालिको यावत्प्रारब्धभोगसमाप्तिः] मध्य विवेक से जिसने अनुवृति अर्थात अनुराग रूपी प्रवृति (जो भोगों में आसक्ति है) समाप्त कर दी जिस व्यक्ति के द्वारा। उस व्यक्ति का तात्कालिक उपभोग जो पिछले जन्मों का प्रारब्ध रूपी भोग है वह चलता रहता है। **[अधिमात्रविवेकस्य तु सर्वथा भोगाभावो भवति]** जिसका शरीर छूट गया जो

अधिकारिप्रभेदान्न नियमः ।।७६।।

(अधिकारिप्रभेदात्-न नियमः) अधिकारिणां विवेकाभ्यासिनां प्रभेदात् सर्वेषां विवेकसिद्धिसमानत्वस्य नियमो नास्ति, न हि सर्वेषां विवेकः समानो भवति यतः सन्ति ह्यधिकारिणो मृदुमध्याधिमात्राः । उक्तं हि योगदर्शने ''मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः'' (योग० १.२२) ।।७६।।

अतएव -

बाधितानुवृत्तेर्मध्यविवेकतोऽप्युपभोगः ।।७७।।

(मध्यविवेकतः-बाधितानुवृत्तेः-अपि-उपभोगः) मध्यविवेकाद् बाधिता या खल्वनुवृत्तिरनुरक्तिरनुरागरूपा प्रवृत्तिर्येनाभ्यासिना तस्यापि विवेकाभ्यासिनो भवत्युपभोगस्तात्कालिको यावत्प्रारब्धभोगसमाप्तिः । अधिमात्रविवेकस्य तु सर्वथा भोगाभावो भवति । अथवा (मध्यविवेकतः अपि-उपभोगः-बाधितानुवृत्तेः) मध्यविवेकतोऽपि भवत्युपभोगो बाधितानां विवेकाभ्यासान्निवारितानां विषयाणामनुवृत्तेरनुवर्तमानत्वात् तेऽनुवर्तन्ते शरीरमनुवर्तन्ते हि विषया यावच्छरीरं तस्यापि मध्यविवेकिनः,

---

मोक्ष में चला गया है ऐसे अधिमात्र विवेकी का सर्वथा भोगों का अभाव हो जाएगा। अब दूसरी व्याख्या करते हैं [**अथवा (मध्यविवेकतः अपि-उपभोगः-बाधितानुवृत्तेः) मध्यविवेकतोऽपि भवत्युपभोगो बाधितानां विवेकाभ्यासान्निवारितानां विषयाणामनुवृत्तेरनुवर्तमानत्वात् तेऽनुवर्तन्ते शरीरमनुवर्तन्ते हि विषया यावच्छरीरं तस्यापि मध्यविवेकिनः**] मध्य विवेक से भी उपभोग होता रहता है तत्वज्ञान विवेक के अभ्यास से जिन विषयों का निवारण कर दिया गया है उन विषयों की अनुवृति होने से रूप रस गंध आदि विषयों का सेवन शरीर होने के कारण चलता रहता है, जब तक उस विवेकी का शरीर रहेगा तबतक, [**नष्टेन शरीरेण सहैव तेऽपि नक्ष्यन्ति हि**] जब उस विवेकी का शरीर नष्ट हो जाएगा तव उस विवेकी के शरीर के नाश के साथ साथ विषय भी नष्ट हो जाते हैं।।७७।।

जीवन्मुक्तश्च ।।७८।।

सूत्रार्थ= वह मध्य विवेकी व्यक्ति जीवन मुक्त कहलाता है।

[**(जीवन्मुक्तः-च) जीवन्मुक्तश्च स मध्यविवेकी भवति**] मध्य विवेकी ही जीवन मुक्त होता है, [**तदा च स जीवन्मुक्तोऽभिधीयते**] तब वह जीवन मुक्त नाम से कहा जाता है [**''आत्मानं चेद् विजानीयादयस्मीति पुरुषः । किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्'' (बृह० ४.४.१२)**] यदि व्यक्ति अपनी आत्मा को जान लेवे की मैं जीवात्मा हूँ। फिर किस चीज की इच्छा करके (किसी वस्तु की कामना करके) व्यक्ति इस शरीर को धारण करे।।७८।।

जीवन्मुक्तसिद्धौ युक्तिमाह - जीवन मुक्त व्यक्ति कैसे बनेगा? इसके लिए युक्ति बताते हैं-

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः ।।७९।।

सूत्रार्थ= विवेकार्थी शिष्य और विवेक उपदेष्टा गुरु के होने पर जीवन मुक्त व्यक्ति बनता है।

नष्टेन शरीरेण सहैव तेऽपि नक्ष्यन्ति हि ।।७७।।

जीवन्मुक्तश्च ।।७८।।

(जीवन्मुक्तः-च) जीवन्मुक्तश्च स मध्यविवेकी भवति, तदा च स जीवन्मुक्तोऽभिधीयते ''आत्मानं चेद्‌ विजानीयादयस्मीति पुरुषः । किमिच्छन्‌ कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्'' (बृह० ४.४.१२) ।।७८।।

जीवन्मुक्तसिद्धौ युक्तिमाह -

उपदेश्योपदेष्टृत्वात्‌ तत्सिद्धिः ।।७९।।

(उपदेश्योपदेष्टृत्वात्‌) विवेकार्थो खलूपदेश्यस्तस्य विवेकार्थिन उपदेश्यस्य विवेकोपेष्ट्रा भवितव्यमेव तस्मात्‌ (तत्सिद्धिः) तस्य जीवन्मुक्तस्य विवेकसम्पन्नस्य सिद्धिस्तस्यास्तित्वसिद्धिर्भवति ।।७९।।

अत्र खलु -

[(उपदेश्योपदेष्टृत्वात्‌) विवेकार्थो खलूपदेश्यस्तस्य विवेकार्थिन उपदेश्यस्य विवेकोपेष्ट्रा भवितव्यमेव तस्मात्‌ (तत्सिद्धिः) तस्य जीवन्मुक्तस्य विवेकसम्पन्नस्य सिद्धिस्तस्यास्तित्वसिद्धिर्भवति] सूत्र में दो शब्द है एक है- उपदेस्य दूसरा है- उपदेष्ट। उपदेस्य का अर्थ है जो उपदेश गृहण करने वाला है ''विवेकार्थी'', उस विवेकार्थी का कोई न कोई उपदेष्टा होना चाहिए, इसलिए जब विद्यार्थी अच्छा हो और उपदेशक भी अच्छा हो तब उस जीवन मुक्त विवेक सम्पन्न व्यक्ति की विवेक सिद्धि और अस्तित्व की सिद्धि होगी ।।७९।।

अत्र खलु -

श्रुतिश्च ।।८०।।

सूत्रार्थ= जीवन मुक्त व्यक्ति की उत्पत्ति में योगी गुरु की आवश्यकता है, इसमें श्रुति और स्मृति का भी प्रमाण है।

[(श्रुतिः-च) अस्मिन्‌ विषये जीवन्मुक्तविषये श्रुतिरेवास्तीति न किन्तु श्रुतिश्च चकारात्स्मृतिश्च प्रमाणमस्ति] इस विषय में केवल युक्ति ही नहीं है किन्तु प्रमाण भी है श्रुति और स्मृति दोनों का प्रमाण है। **[''समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'']** जब हाथ में समिधा लेकर के वेद को पड़ाने वाले विद्वान के पास जाता था जो ब्रह्मनिष्ठ है ऐसे गुरुजनों के पास विद्यार्थी पड़ने जाते थे **[(मुण्ड० १.२.१२) ''द्विविधश्चित्तनाशोऽस्ति सरूपोऽरूप एव च । जीवन्मुक्तः सरूपः स्यादरूपो देहमुक्तिगः।'']** चित्त का नाश दो प्रकार का है एक रूप सहित दूसरा रूप रहित। जीवन मुक्त व्यक्ति चित्त का रूप बना हुआ क्लेश नष्ट हो गए वह रूप सहित है, अरूप वह होगा जब जीवात्मा देह से छुट जाएगा पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाएगा, तब यह

श्रुतिश्च ।।८०।।

(श्रुतिः-च) अस्मिन् विषये जीवन्मुक्तविषये युक्तिरेवास्तीति न किन्तु श्रुतिश्च चकारात्स्मृतिश्च प्रमाणमस्ति।''समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्''(मुण्ड० १.२.१२)''द्विविधश्चित्तनाशोऽति सरूपोऽरूप एव च।जीवन्मुक्तः सरूपः स्यादरूपो देहमुक्तिगः।''(मुण्डको० २.३२)''आत्मकल्पेन वा व्यवतिष्ठते प्रलयं वाधिगच्छति''(योग० व्यासः)''जीवन्नेव विद्वान् हर्षामर्षाभ्यां विमुच्यते'' इत्यनिरुद्धः ।।८०।।

लोकदृष्ट्या जीवन्मुक्तस्य सिद्धिः सूच्यते -

इतरथाऽन्धपरम्परा ।।८१।।

(इतरथा) अन्यथा यद्येतादृशो जीवन्मुक्त उपदेष्टा न भवेत्-तर्हि (अन्धपरम्परा) अन्धपरम्पराऽविवेकस्य परम्परा प्रसज्येत नहि कस्यापि विवेको जायेत, तस्माज्जीवन्मुक्तस्य सिद्धिः ।।८१।।

चित्त भी पूर्णतःनष्ट हो जाएगा।। [**(मुण्डको० २.३२)''आत्मकल्पेन वा व्यवतिष्ठते प्रलयं वाधिगच्छति''**] यहाँ भी दो प्रकार का चित्त बताया है- एक तो आत्मा के समान शुद्ध (जब जीवात्मा समाधि लगता है उसके रागद्वेष समाप्त हो जाते हैं) अथवा (दूसरा) जब प्रलय होता है तब योगी का शरीर छूटता है। [**(योग० व्यासः)''जीवन्नेव विद्वान् हर्षामर्षाभ्यां विमुच्यते'' इत्यनिरुद्धः**] अनिरुद्ध ने ये वचन उद्धृत किया है- वो विद्वान जीते जी ही हर्ष (खुशी) और अमर्ष (दुख) से विमुक्त हो जाता है ।।८०।।

लोकदृष्ट्या जीवन्मुक्तस्य सिद्धिः सूच्यते - लौकिक दृष्टि से जीवन मुक्त व्यक्ति की सिद्धि बतलाते हैं-

इतरथाऽन्धपरम्परा ।।८१।।

सूत्रार्थ= योग्य गुरु के अभाव में अंधपरम्परा चलती है।

[**(इतरथा) अन्यथा यद्येतादृशो जीवन्मुक्त उपदेष्टा न भवेत्-तर्हि (अन्धपरम्परा) अन्धपरम्पराऽविवेकस्य परम्परा प्रसज्येत नहि कस्यापि विवेको जायेत**] यदि इस प्रकार का उपदेष्टा न होवे तब अंधपरम्परा अविवेक की परंपरा आरंभ हो जाएगी, ऐसी स्थिति में किसी को भी तत्वज्ञान नहीं होगा, **तस्माज्जीवन्मुक्तस्य सिद्धिः** इसलिए जीवन मुक्त की सत्ता है।।८१।।

[**स जीवन्मुक्तो विवेकसम्पन्नोऽपि कथं शरीरं धत्तेऽविवेकक्षये तु शरीराद् विमुच्येत। अत्रोच्यते-**] वह जीवन मुक्त व्यक्ति जो विवेक सम्पन्न हो गया फिर वह क्यों शरीर को धारण कर रहा है अविवेक के हट जाने पर तो शरीर से छुट जाना चाहिए। इस विषय पर कहते हैं-

चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः ।।८२।।

सूत्रार्थ= जीवन मुक्त व्यक्ति मृत्यु आने तक शरीर को धरण किए रहता है, कुम्हार के घूमते हुए चक्र के समान।

स जीवन्मुक्तो विवेकसम्पन्नोऽपि कथं शरीरं धत्तेऽविवेकक्षये तु शरीराद् विमुच्येत । अत्रोच्यते –

चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः ।।८२।।

(चक्रभ्रमणवत्-धृतशरीरः) यथा कुम्भकारस्य चक्रं दण्डेन भ्रामितं सत् तस्य भ्रमणनिमित्तभूतदण्डापगमेऽपि चक्रभ्रमणं भवति हि-कञ्चित् कालं भ्रमच्चक्रं दृश्यते ह्यवशिष्टवेगतो यद्वा वेगलेशतः, तथैव स जीवन्मुक्तोऽपि धृतशरीरः सशरीरस्तिष्ठति । उक्तं च "दीक्षयैव नरो मुच्येत् तिष्ठेन्मुक्तोऽपि विग्रहे । कुलालचक्रमध्यस्थो विच्छिन्नोऽपि भ्रमेद् घटः ।।"अशुक्लकृष्मा संन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरमदेहानामिति" (योग0 ४.७० व्यास०) ।।८२।।

तस्मात् –

संस्कारलेशतस्तत्सिद्धिः ।।८३।।

[(चक्रभ्रमणवत्-धृतशरीरः) यथा कुम्भकारस्य चक्रं दण्डेन भ्रामितं सत् तस्य भ्रमणनिमित्तभूतदण्डापगमेंऽपि चक्रभ्रमणं भवति] जैसे कुम्हार चक्र (चाक) दण्ड के द्वारा घुमा दिया गया हो और चाक को घूमने के बाद दण्ड को उससे हटा लिया जाता है चाक घूमता रहता है **[हि-कञ्चित् कालं भ्रमच्चक्रं दृश्यते ह्यवशिष्टवेगतो यद्वा वेगलेशतः]** कुछ काल तक तो वह चाक घूमता रहता दिखाई देता है, वेग के कारण वह घूमता है, **[तथैव स जीवन्मुक्तोऽपि धृतशरीरः सशरीरस्तिष्ठति]** उसी प्रकार से जीवन मुक्त व्यक्ति भी शरीर को धारण किए रहता है (उसके अंदर भी जीवन धरण का वेग पिछले कर्मों के कारण है इसलिए जब तक वेग रहेगा तब तक शरीर रहेगा)। **[उक्तं च "दीक्षयैव नरो मुच्येत् तिष्ठेन्मुक्तोऽपि विग्रहे । कुलालचक्रमध्यस्थो विच्छिन्नोऽपि भ्रमेद् घटः]** और कहा है- दीक्षा से ही मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होता है, सब क्लेशों से मुक्त रहते हुए भी आत्मा शरीर के अंदर रहता है। जैसे कुमार के चक्र के बीच में से काट देने पर भी घड़ा घूमता रहता है ।। **["अशुक्लकृष्णा संन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरमदेहानामिति" (योग० ४.७० व्यास०)]** अशुक्लकृष्ण जो कर्म जाति है वह सन्यासियों की होती है जिनके क्लेश समाप्त हो चुके हैं जो अंतिम शरीर वाले हैं ।।८२।।

तस्मात् –

संस्कारलेशतस्तत्सिद्धिः ।।८३।।

सूत्रार्थ= उस जीवन मुक्त व्यक्ति के कर्मफल (संस्कार) बचे हुए होने से कुछ समय के लिए उसे शरीर धारण किए रखना पड़ता है।

[(संस्कारलेशतः-तत्सिद्धि) संस्कारलेशतः कृतकर्मभोगरूपविषयाणां संस्कारलेशात् संस्काराभासात् तस्य जीवन्मुक्तस्य शरीरधारणसिद्धिः] संस्कार लेश के कारण किए हुए कर्म का भोग रूपी जो संस्कार बचा हुआ है उस संस्कार के आभास से उस जीवन मुक्त का शरीर धारण होता है।।८३।।

वस्तुतः –

(संस्कारलेशतः-तत्सिद्धि) संस्कारलेशतः कृतकर्मभोगरूपविषयाणां संस्कारलेशात् संस्काराभासात् तस्य जीवन्मुक्तस्य शरीरधारणसिद्धिः ।।८३।।

वस्तुतः -

विवेकान्निःशेषदुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यो नतरान्नेतरात् ।।८४।।

(विवेकात्-निशेषदुःखनिवृत्तौ) पूर्णविवेकात् खलु समस्तदुःखनिवृत्तिर्भवति, तदैव (कृतकृत्यः पुरुषः कृतकृत्यो भवति (इतरात्-न) भिन्नात् विवेकभिन्नात् केवलकर्मणो नेत्यर्थः । नेतरात् द्विरुक्तिरध्यायसमाप्त्यर्था ।।८४।।

सांख्यदर्शने समाप्तस्तृतीयोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्योपेतः ।

विवेकान्निःशेषदुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यो नतरान्नेतरात् ।।८४।।

सूत्रार्थ=पूर्ण विवेक से शरीर छूट जाने पर सम्पूर्ण दुःखों की निवृति होने पर जीवात्मा पूर्णतया सफल होता है, केवल सकाम कर्म करने से पूर्ण सफलता नहीं मिलती।

[**(विवेकात्-निशेषदुःखनिवृत्तौ) पूर्णविवेकात् खलु समस्तदुःखनिवृत्तिर्भवति**] पूर्ण विवेक की प्राप्ति से ही व्यक्ति समस्त दुःखों से छूट पाता है, तदैव [**(कृतकृत्यः पुरुषः कृतकृत्यो भवति**] उस समय ही जीवात्मा कृत कृत्य होता है [**(इतरात्-न) भिन्नात् विवेकभिन्नात् केवलकर्मणो नेत्यर्थः**] और इस विवेक से जो भिन्न उपाय है केवल कर्म से जीवात्मा का पूरा मोक्ष नहींहोगा। [**नेतरात् द्विरुक्तिरध्यायसमाप्त्यर्था**] सूत्र में ये शब्द दो बार कहा है ''नेतरात'' दूसरी बार जो कथन है वह अध्याय की समाप्ति के लिए है ।।८४।।

सांख्यदर्शने समाप्तस्तृतीयोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्योपेतः।

।। ओ३म् ।।

सांख्यदर्शनम्

ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्

तत्र

चतुर्थोऽध्यायः

भाष्य विस्तार - पूज्य स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक

(निदेशक- दर्शन योग महाविद्यालय)

चतुर्थोऽध्यायः

राजपुत्रवत् तत्त्वोपदेशात् ।। १ ।।

(तत्त्वोपदेशात्-राजपुत्रवत्) गतानन्तराध्यायान्तिमसूत्राद् विवेकोऽत्र सूत्रे लक्ष्यते। स च विवेकस्तत्त्वोपदेशाद् यथार्थोपदेशाज्जायते राजपुत्रवद् यथाऽनेकेषां राजपुत्राणां राजवंश्यानां जनकादीनां पञ्चशिखप्रभृतिसकाशात् तत्त्वोपदेशग्रहणाज्जातः। ब्राह्मणानामेव परम्परया विवेको जात इति न किन्तु क्षत्रियाणां राज्यसञ्चालनप्रवृत्तानामपि विवेको जात इति तत्त्वोपदेशस्य माहात्म्यं विवेकप्रादुर्भावे।। १ ।।

न हि साक्षादुपदेशादेव न च क्षात्रवंशपर्यन्तं हि विवेको जायतेऽपितु -

पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि ।। २।।

(अन्यार्थोपदेशेपि पिशाचवत्) अन्यार्थे दीयमाने खलूपदेशेऽप्यन्यस्य समीपस्थस्य

चतुर्थोऽध्यायः

राजपुत्रवत् तत्त्वोपदेशात् ।। १ ।।

सूत्रार्थ= तत्व का उपदेश सुनने से राजाओं को भी विवेक उत्पन्न हो जाता है, जैसे राजा जनक को हुआ था।

[(तत्त्वोपदेशात्-राजपुत्रवत्) गतानन्तराध्यायान्तिमसूत्राद् विवेकोऽत्र सूत्रे लक्ष्यते] पिछले अध्याय के अंतिम सूत्र से यहाँ (इस सूत्र में) विवेक को गृहण कर लेंगे। **[स च विवेकस्तत्त्वोपदेशाद् यथार्थोपदेशाज्जायते राजपुत्रवद्]** वह जो विवेक है जो पिछले सूत्र में बताया-वह विवेक यथार्थ उपदेश से उत्पन्न होता है, राजपुत्र के समान। **[यथाऽनेकेषां राजपुत्राणां राजवंश्यानां जनकादीनां पञ्चशिखप्रभृतिसकाशात् तत्त्वोपदेशग्रहणाज्जातः]** जैसे अनेक राजपुत्रों का राज्यवंश वालों का जनकादि राजाओं ने पंचशिख जैसे आचार्यों से तत्व उपदेश ग्रहण किया। **[ब्राह्मणानामेव परम्परया विवेको जात इति न किन्तु क्षत्रियाणां राज्यसञ्चालनप्रवृत्तानामपि विवेको जात इति तत्त्वोपदेशस्य माहात्म्यं विवेकप्रादुर्भावे]** प्राचीन काल में केवल ब्राम्हणों को ही तत्वज्ञान विवेक उत्पन्न हुआ हो ऐसा नहीं है, किन्तु क्षत्रियों का भी हुआ जो राज्यसंचालन में लगे हुए थे उनका भी विवेक उत्पन्न हुआ था, इस प्रकार से तत्व उपदेश का महात्म्य है विवेक की उत्पत्ति में ।।१।।

ऐसा नहीं है की साक्षात उपदेश से ही विवेक उत्पन्न हो और ऐसा भी नहीं है कि क्षत्रिय वंश वालों का ही विवेक उत्पन्न होता हो। अन्यों को भी हो सकता है-

पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि ।। २ ।।

सूत्रार्थ= जब तत्वज्ञान का उपदेश किसी और को दिया जा रहा हो और निकट में अतिशूद्र = कम ज्ञान बुद्धि वाला उसको भी तत्वज्ञान हो जाता है।

[(अन्यार्थोपदेश-अपि पिशाचवत्) अन्यार्थे दीयमाने खलूपदेशेऽप्यन्यस्य समीपस्थस्य श्रोतुस्तदुपदेशाद् विवेको जायते पिशाचवत्] अन्य को उपदेश दिये जाने पर भी पड़ोस में सुनने वाले का

श्रोतुस्तदुपदेशाद् विवेको जायते पिशाचवत्, यथाऽर्जुनाय कृष्णेन दीयमाने ह्युपदेशे पिशाचस्य समीपस्थस्य जाङ्गलिकस्यातिशूद्रस्यापि किरातस्य 'भील' इत्याख्यस्य यथा वा पार्वत्यै शिवेन दीयमाने तथोपदेशे पिशाचस्य समीपस्थस्य पर्वतीयजनस्य शूद्रस्यापि सेवकस्य विवेको जातः ।। २।।

प्रकारद्वयात् साक्षादसाक्षाद्वोपदेशग्रहणाद् विवेको जायत इति तूक्तं परन्तु केषाञ्चित् कदाचित् सकृदुपदेशाज्जायते विवेकः केषाञ्चित् कदाचिन्न तदा तु -

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ।। ३ ।।

(असकृत्-उपदेशात्-आवृत्तिः) पुनःपुनरुपदेशग्रहणादावृत्तिः कार्या पुनः पुनः श्रोतव्य उपदेशः। तद्यथा ''भूय एव मा भगवान् विज्ञापयतु'' (छान्दो० ६.५.४) श्वेतकेतुरारुणितः पुनः पुनरुपदेशं जग्राह ।। ३ ।।

विवेक उत्पन्न हो गया (उपदेश किसी और को दिया जा रहा था, किसी निम्न स्तर के व्यक्ति ने उपदेश सुना और उसे तत्वज्ञान हो गया) यद्यपि सीधा-सीधा उपदेश उसके लिए नहीं था, पिशाच के समान, **[यथाऽर्जुनाय कृष्णेन दीयमाने ह्युपदेशे पिशाचस्य समीपस्थस्य जाङ्गलिकस्यातिशूद्रस्यापि किरातस्य 'भील' इत्याख्यस्य]** जैसे अर्जुन के लिए श्री कृष्ण जी ने उपदेश दिया था उस समय पास में ही जो जंगली प्रदेश का व्यक्ति था उस भील ''किरात'' को तत्वज्ञान हो गया विवेक उत्पन्न हो गया **[यथा वा पार्वत्यै शिवेन दीयमाने तथोपदेशे पिशाचस्य समीपस्थस्य पर्वतीयजनस्य शूद्रस्यापि सेवकस्य विवेको जातः]** एक और उदाहरण दिया- कहीं पर्वत पर शिव जी पार्वती को उपदेश दे रहे थे पास में ही एक पर्वतीय व्यक्ति शूद्र (सेवक) बैठा था उसने वह उपदेश सुना जिससे उसको विवेक (तत्वज्ञान) हो गया ।। २।।

पिछले सूत्रों में बताया- कि दो प्रकार से तो विवेक उत्पन्न होता ही है, एक साक्षात सुनने से दूसरा परोक्ष में पड़ोस में सुन रहा हो। परंतु कुछ लोगों को कभी-कभी एक बार उदपेश सुनने मात्र से ज्ञान हो गया और कुछ को नहीं हुआ। तब क्या करना चाहिए-

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ।। ३ ।।

सूत्रार्थ=बार-बार उपदेश सुनकर उसकी आवृति करने पर भी विवेक उत्पन्न हो जाता है।

[(असकृत्-उपदेशात्-आवृत्तिः) पुनःपुनरुपदेशग्रहणादावृत्तिः कार्या पुनः पुनः श्रोतव्य उपदेशः] जब एक बार उपदेश सुनने से तत्वज्ञान न हो, तो बार-बार उदपेश सुनने से विवेक उत्पन्न हो सकता है तद्यथा **''भूय एव मा भगवान् विज्ञापयतु'' (छान्दो० ६.५.४) श्वेतकेतुरारुणितः पुनः पुनरुपदेशं जग्राह** जैसाकि एक उदाहरण दिया-उपनिषद कि कथा है जिसमें श्वेतकेतु आरुणी से बार-बार उपदेश ग्रहण करता है, और कहता है हे भगवान, आपने बहुत अच्छा समझाया लेकिन मुझे कुछ-कुछ समझ में आया, कृपा करके और बताइए ।। ३ ।।

किसी-किसी व्यक्ति को किसी घटना के प्रभाव से भी तत्वज्ञान हो जाता है-

पितापुत्रवदुभयोर्दृष्टत्वात् ।। ४ ।।

अथ च कस्यचिद् घटनाप्रभावादपि विवेको जायते -

पितापुत्रवदुभयोर्दृष्टत्वात् ।।४।।

(पितापुत्रवत्-उभयोः-दृष्टत्वात्) पितुर्मृत्युः पुत्रस्य जन्म च यथा भवति तथा ममापि जन्ममृत्युभ्यां भवितव्यं यतः पितृमृत्योः पुत्रजन्मदृष्टत्वात्, दृष्टो हि पितुर्मृत्युर्दृष्टं च पुत्रस्य जन्म मया ''आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ'' तर्ह्यस्मिन् जन्ममरणचक्रयुक्ते संसारे केवलं जन्माथ मरणमेव न पुरुषार्थ इति मत्वा निर्विण्णो विवेकं लभते ।।४।।

विवेकतो विषयाणां त्यागः कर्तव्य इति दृष्टान्तेनाह -

श्येनवत् सुखदुःखी त्यागवियोगाभ्याम् ।। ५।।

(श्येनवत् सुखदुःखी) श्येनो मांसभक्षकः पक्षी भासस्तेन तुल्यो विषयग्रस्तो जनो भवति सुखी दुःखी च (त्यागवियोगाभ्याम्) विषयाणां त्यागाद् वियोगाच्च । स्वयमेव विषयत्यागात् सुखी

सूत्रार्थ= पिता की मृत्यु और पुत्र का जन्म देखकर इन दोनों घटनाओं को अपने पर लागू करने से विवेक उत्पन्न हो जाता है।

[(**पितापुत्रवत्-उभयोः-दृष्टत्वात्) पितुर्मृत्युः पुत्रस्य जन्म च यथा भवति तथा ममापि जन्ममृत्युभ्यां भवितव्यं यतः पितृमृत्योः पुत्रजन्मदृष्टत्वात्**] एक व्यक्ति अपने पुत्र का जन्म एवं अपने पिता की मृत्यु देखता है, इस घटना को वह अपने ऊपर लागू करता है और सोचता है ''ऐसे ही मेरा भी जन्म हुआ ही होगा, पिता जी के समान मुझे भी मरना पड़ेगा, [**दृष्टो हि पितुर्मृत्युर्दृष्टं च पुत्रस्य जन्म मया**] मैंने पिता की मृत्यु और पुत्र का जन्म देखा है [**''आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ''**] पिता की मृत्यु और पुत्र के जन्म से अपने भी जन्म-मृत्यु को अनुमानित कर लेना चाहिए [**तर्ह्यस्मिन् जन्ममरणचक्रयुक्ते संसारे केवलं जन्माथ च मरणमेव न पुरुषार्थ इति मत्वा निर्विण्णो विवेकं लभते**] तो फिर इस जन्म-मरण से युक्त संसार में केवल जन्म ले लेना और मर जाना इतना ही तो पुरुषार्थ नहीं है, ऐसा मानकर उसे खिन्नता आती है और तत्वज्ञान के लिए पुरुषार्थ कर विवेक प्राप्त करता है।।४।।

विवेक वैराग्य की प्राप्ति के लिए रूप रस गंध आदि पाँच विषयों का त्याग करना चाहिए, इस विषय में एक दृष्टांत देते हैं-

श्येनवत् सुखदुःखी त्यागवियोगाभ्याम् ।।५।।

सूत्रार्थ= बाज के समान विषय से ग्रस्त व्यक्ति सुखी-दुःखी होता है, विषयों के त्याग और वियोग से।

[**(श्येनवत् सुखदुःखी) श्येनो मांसभक्षकः पक्षी भासस्तेन तुल्यो विषयग्रस्तो जनो भवति सुखी दुःखी च (त्यागवियोगाभ्याम्) विषयाणां त्यागाद् वियोगाच्च**] श्येन मांसभक्षक एक पक्षी है जिसे भास (बाज) भी कहते हैं, वह विषयों से ग्रस्त होने के कारण सुखी दुःखी होता रहता है, विषयों के त्याग से और वियोग से। [**स्वयमेव विषयत्यागात् सुखी भवति**] स्वयं विचार पूर्वक विषयों का त्याग कर दे तो सुखी होता है, [**अन्यथा विषयवियोगाद् दुःखी जायते**] अन्यथा विषयों का त्याग नहीं करेगा तो एक दिन

भवति, अन्यथा विषयवियोगाद् दुःखी जायते, यथा श्येनो भासो मांसलोलुपः सामिषो व्योम्नि खलूड्डयमानोऽपरैर्बलवद्भिर्मांसभक्षकैः पक्षिभिरामिषं हर्तुमाक्रान्तस्तन्मांसशकलत्यागेन सुखी भवति नो चेद् बलाद् वियोज्यमानो दुःखी जायतेऽन्यैराहन्यते । उक्तं हि ''सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनोऽन्ये निरामिषाः। तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत।'' तथैव विवेकतो विषयत्यागः श्रेयान् सुखनिमित्तश्च, अन्यथा विषयवियोगस्तु निसर्गतोऽवश्यम्भावी तेन दुःखभाग्भवति। तस्माद् विवेकतो विषयत्यागो विधेयः ।। ५।।

हेयस्य त्यागे हि सुखं विवेकिनो भवतीत्यपि दृष्टान्तेनोच्यते -

अहिर्निर्ल्वयिनीवत् ।। ६ ।।

(अहिः- निर्ल्वयिनीवत्) यथा सर्पो ल्वयिनीं जीर्णा त्वचं त्यक्त्वा सुखी भवति तथैव विवेकी

छूट जाएंगे और छूट जाने से वियोग होगा जिससे वह दुःखी होता है, [**यथा श्येनो भासो मांसलोलुपः सामिषो व्योम्नि खलूड्डयमानोऽपरैर्बलवद्भिमा ५सभक्षकैः पक्षिभिरामिषं हर्तुमाक्रान्तस्तन्मांसशकलत्यागेन सुखी भवति नो चेद् बलाद् वियोज्यमानो दुःखी जायतेऽन्यैराहन्यते**] जैसे वाज माँस का लोभी कभी माँस का टुकड़ा लेकर आकाश में उड़ रहा था, कुछ और पक्षी जो उससे बलवान थे उन्होंने उसे देख कर माँस को छुड़ाने के लिए बाज पर आक्रमण कर दिया, उस स्थिति में यदि वाज माँस का टुकड़ा स्वयं ही छोड़ दे तो सुखी हो जाएगा (कम से कम प्राण तो बचेंगे) अन्यथा बलात् छीनने पर माँस के टुकड़े से वियोग होगा फिर दुःखी होगा और आक्रमण से मारा भी जा सकता है। उक्तं हि ''**सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनोऽन्ये निरामिषाः। तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत।**'' माँस के टुकड़े सहित उस पक्षी को देखकर अन्य जिन पक्षियों के पास माँस नहीं था, उन्होंने आक्रमण कर दिया, उस समय उस पक्षी ने माँस के टुकड़े को छोड़ सुखी हो गया [**तथैव विवेकतो विषयत्यागः श्रेयान् सुखनिमित्तश्च**] जैसे बाज ने विवेक पूर्वक विचार के माँस का टुकड़ा छोड़ सुखी हो गया ऐसे ही व्यक्ति का विवेक पूर्वक विषयों का त्याग कर देना अच्छा है सुख का कारण है, [**अन्यथा विषयवियोगस्तु निसर्गतोऽवश्यम्भावी तेन दुःखभाग्भवति**] अन्यथा विषयों का वियोग तो स्वभाव से ही अवश्यंभावी है, उससे व्यक्ति दुःखी होता रहेगा। [**तस्माद् विवेकतो विषयत्यागो विधेयः**] इसलिए सार यही है कि विवेक पूर्वक विषयों का त्याग कर देना चाहिए।। ५।।

हेय वस्तु को त्यागने में ही विवेकी व्यक्ति को सुख होता है, इस विषय में एक दृष्टांत देते हैं-

अहिर्निर्ल्वयिनीवत् ।। ६ ।।

सूत्रार्थ= जैसे साँप पुरानी कैंचुली को छोड़कर सुखी हो जाता है, वैसे ही विवेकी व्यक्ति इस अनेक बार भोगी हुई सृष्टि को छोड़कर सुखी हो जाता है।

[**(अहिः-निर्ल्वयिनीवत्) यथा सर्पो ल्वयिनीं जीर्णा त्वचं त्यक्त्वा सुखी भवति तथैव विवेकी जनो बहुकालोपभुक्तां भुक्तभोगां भोगसृष्टिं विवेकतस्त्यक्त्वा सुखी भवति**] जैसे साँप (पुरानी त्वचा) कैंचुली को त्यागकर सुखी हो जाता है उसी के समान विवेकी ज्ञानी व्यक्ति बहुतकाल से संसार को भोग रहा हूँ ऐसा विचार के इस भोगी हुई सृष्टि को त्यागकर सुखी हो जाता है।। ६।।

जनो बहुकालोपभुक्तां भुक्तभोगां भोगसृष्टिं विवेकतस्त्यक्तवा सुखी भवति ।।६।।

भोगसृष्टित्यागे दृष्टान्तान्तरं दीयते –

छिन्नहस्तवद्वा ।।७।।

(वा) अथवा (छिन्नहस्तवत्) त्यजेदित्यन्वयः । यथा कश्चिज्जनोऽहिना दष्टं तद्विषेणाक्रान्तं हस्तं छिन्नं कारयित्वा छिन्नहस्तः सन् सुखं लभते तद्वद् दृष्टदोषां विषतुल्यां भोगसृष्टिं त्यक्त्वा सुखी भवति । भोगाः खलु विषकल्पाः । उच्यते हि ''विषस्य विषयाणां च दृश्यते महदन्तरम् । उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरणादपि ।'' ।।७।।

त्यक्तस्य त्याजस्य वाऽनुचिन्तनमनिष्टकरमिति वर्णयते –

असाधनानुचिन्तनं बन्धाय भरतवत् ।। ८।।

भोगसृष्टित्यागे दृष्टान्तरं दीयते – भौतिक जगत के सुखों को नहीं भोगना चाहिए इनको त्यागने में ही सुख है, इस विषय में एक दृष्टांत देते हैं–

छिन्नहस्तवद्वा ।।७।।

सूत्रार्थ= विवेकी व्यक्ति हानिकारक संसार के विषयों का त्याग करके सुखी हो जाता है, जैसे साँप द्वारा काटने पर व्यक्ति जहरीले हाथ को कटवाकर सुखी हो जाता है।

[(वा) अथवा (छिन्नहस्तवत्) त्यजेदित्यन्वयः] इसको छोड़ देवें इस वाक्य को पिछले सूत्र से जोड़ लेंगे। **[यथा कश्चिज्जनोऽहिना दष्टं तद्विषेणाक्रान्तं हस्तं छिन्नं कारयित्वा छिन्नहस्तः सन् सुखं लभते तद्वद् दृष्टदोषां विषतुल्यां भोगसृष्टिं त्यक्तवा सुखी भवति]** जैसे कोई व्यक्ति साँप के द्वारा काटा गया हो उसके हाथ पर विष चड़ गया हो तो अपने हाथ को कटवाकर के, वह कटे हाथ वाला होकर भी सुखी हो जाता है । उसी प्रकार से विवेकी व्यक्ति ये जो सृष्टि है वह विष के तुल्य भोग सृष्टि को त्यागकर सुखी हो जाता है। **[भोगाः खलु विषकल्पाः]** ये जो भोग है वह विष के तुल्य है। **[उच्यते हि ''विषस्य विषयाणां च दृश्यते महदन्तरम्। उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरणादपि।'']** किसी ने कहा– कि जब हम विष और विषयों की तुलना करते हैं तो बहुत अंतर दिखता है। विष यदि खाया तो मरेगा किन्तु विषयों के स्मरण मात्र से व्यक्ति मर जाता है।।७।।

त्यागदी हों अथवा त्यागनी हो उन का बार बार चिंतन करना हानिकारक है–

असाधनानुचिन्तनं बन्धाय भरतवत् ।। ८।।

सूत्रार्थ= जो विवेक का साधन नहीं है या अनुचित साधन है, उसको अपनाना (चिंतन करना) बंधन का कारण होता है, राजर्षि भरत के समान।

[(असाधनानुचिन्तनम्) यद्विवेकज्ञानस्य साधनं नास्ति यद्वाऽनुचितसाधनं तथाभूतस्य त्यक्तस्य त्याज्यस्य वा पदार्थस्यानुचिन्तनं मनसि संस्थापनम् (बन्धाय भरतवत्) बन्धाय भवति भरतवत्] जो विवेक ज्ञान का साधन नहीं है अथवा अनुचित साधन है ऐसे स्वरूप वाले उस अनुचित साधन का छोड़ दिया

(असाधनानुचिन्तनम्) यद्विवेकज्ञानस्य साधनं नास्ति यद्वाऽनुचितसाधनं तथाभूतस्य त्यक्तस्य त्याज्यस्य वा पदार्थस्यानुचिन्तनं मनसि संस्थापनम् (बन्धाय भरतवत्) बन्धाय भवति भरतवत्। यथा भरतेन राजर्षिणा हरिणशावकस्य मनसि स्थापनं कृतं तद्रागात् तस्य बन्धो जातो न विमोक्षभागभूत् सः ।। ८।।

विषयानुचिन्तनाभावेऽपि बहुसम्मेलनं नानुष्ठेयमित्युच्यते दृष्टान्तेन -

बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशंखवत् ।।९।।

(बहुभिः-योगे विरोधः-रागादिभिः) बहुभिर्जनैः सह सङ्गे सम्मेलने विरोधः कलहो जायते तेषु रागद्वेषादिभिर्भावैर्वर्तमानैः, वर्तन्ते हि जनेषु रागद्वेषादयस्तस्माद् विरोधः सम्भाव्यते (कुमारीशंखवत्) यथा कुमारीचरणगताः शंखः भूषणविशेषाः परस्परं संघृष्य झणत्कुर्वन्ति भृशं शब्दायन्ते त्रुट्यन्ति च तद्वत्। तस्माद् विवेकिना बहुभिः सम्मेलनं न कार्यम् ।।९।।

अपितु -

हो अथवा छोड़ने योग्य हो ऐसे हानिकारक पदार्थ का चिंतन करना अथवा मन में स्थान देना, ये बंधन को उत्पन्न करेगा भरतमुनि के समान। [**यथा भरतेन राजर्षिणा हरिणशावकस्य मनसि स्थापनं कृतं तद्रागात् तस्य बन्धो जातो न विमोक्षभागभूत् सः**] जैसे भरत मुनि राजर्षि जी हिरण के शावक को मन से चिंतन किया उसमे राग किया जिससे उनका बंधन हुआ और वह मोक्ष से वंचित हो गए।। ८।।

विषयों का चिन्तन नहीं किया किन्तु बहुत से लोगों से संपर्क नहीं करना चाहिए इस बात को दृष्टांत से समझाते हैं-

बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशंखवत् ।।९।।

सूत्रार्थ= राग आदि से युक्त बहुत से सांसारिक लोगों के साथ सम्बंध जोड़ने से विरोध (झगड़ा) होता है, पैरों में बंधे घुंगरू के समान।

[**(बहुभिः-योगे विरोधः-रागादिभिः) बहुभिर्जनैः सह सङ्गे सम्मेलने विरोधः कलहो जायते तेषु रागद्वेषादिभिर्भावैर्वर्तमानैः**] योगाभ्यासी व्यक्ति को बहुत सारे लोगों से सम्पर्क नहीं करना चाहिए, संग से विरोध और कलह होता है, क्योंकि सांसारिक लोगों में रागद्वेष के संस्कार वर्तमान रहते हैं, [**वर्तन्ते हि जनेषु रागद्वेषादयस्तस्माद् विरोधः सम्भाव्यते**] समाज के लोगों में रागद्वेष वर्तमान रहता है इसलिए विरोध की संभावना बनी रहती है [**(कुमारीशंखवत्) यथा कुमारीचरणगताः शंखः भूषणविशेषाः परस्परं संघृष्य झणत्कुर्वन्ति भृशं शब्दायन्ते त्रुट्यन्ति च तद्वत्**] जैसे कुमारी के चरणों में बंधे घुंगरू आपस में जब टकराते तो भीषण आवाज करते और टूटते भी जाते हैं । [**तस्माद् विवेकिना बहुभिः सम्मेलनं न कार्यम्**] इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को बहुत लोगों से सम्पर्क मेलजोल नहीं करना चाहिए।। ९।।

अपितु -

द्वाभ्यामपि तथैव ।।१०।।

द्वाभ्यामपि तथैव ।।१०।।

(द्वाभ्याम्-अपि तथा-एव) द्वाभ्यां सहयोगे खल्वपि तथैव विरोधदोषो जायेतेति सम्भवः । तस्माद् विवेकिना त्वेकाकिनैव स्थेयम् ।।१०।।

यदि द्वाभ्यामपि सह न वसेत्तदैकाकिना कथं स्थेयमित्याकांक्षायामुच्यते -

निराशः सुखी पिङ्गलावत् ।।११।।

(निराशः सुखी) विवेकी जन आशां विहाय सुखी भवति (पिङ्गलावत्) पिङ्गला काचिद् वेश्या तादृशे कालेऽभूद यदा सदाचारस्य प्राधान्यमासीद् यथा ''न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः'' (छान्दो० ५.११.५) तदा सा कामुकार्थिनी कामुकान्

सूत्रार्थ= रागी द्वेषी प्रवृति वाले दो व्यक्तियों से भी सम्बंध जोड़ लेंगे तो झगड़ा होगा।

(द्वाभ्याम्-अपि तथा-एव) द्वाभ्यां सहयोगे खल्वपि तथैव विरोधदोषो जायेतेति सम्भवः अगर दो व्यक्ति भी साथ में रहेंगे तो विचारों में टकराव होने से विरोध होने की सम्भावना रहती है। [**तस्माद् विवेकिना त्वेकाकिनैव स्थेयम्**] इसलिए जब तत्वज्ञान में उन्नति हो रही हो तब व्यक्ति को अकेला ही रहना चाहिए ।।१०।।

यदि दो व्यक्तियों के साथ भी व्यक्ति न रहे और अकेला ही रहे, तो उसे अकेला कैसा रहना चाहिए? इस आकांक्षा पर कहते हैं-

निराशः सुखी पिङ्गलावत् ।। ११।।

सूत्रार्थ=विवेकी व्यक्ति सांसारिक आशाओं को छोड़कर सुखी हो जाता है, पिंगला के समान।

[**(निराशः सुखी) विवेकी जन आशां विहाय सुखी भवति (पिङ्गलावत्) पिङ्गला काचिद् वेश्या तादृशे कालेऽभूद् यदा सदाचारस्य प्राधान्यमासीद्**] एक पिगला नाम की वैश्या थी उस काल में लोग सदाचारी अधिक थे जैसा की इतिहास में एक प्रमाण आता है- [**यथा ''न में स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः''**] राजा अश्वपति के राज्य में कोई चोर नहीं, कोई मद्यपान नहीं करता, कोई विना यज्ञ किए भोजन नहीं करता, कोई भी कंजूस नहीं सभी दान देते हैं न मेरे राज्य में कोई अविद्वान है सब शिक्षित हैं न कोई व्यभिचारी स्त्री है तो पुरुष कहाँ से होगा [**(छान्दो० ५.११.५) तदा सा कामुकार्थिनी कामुकान् प्रतीक्षमाणा कमपि कामुकमलभमाना पिङ्गला सर्पणीवोच्छ्वसती महती व्याकुलाऽऽस**] उस काल में वैश्या को बहुत समय तक प्रतीक्षा करने पर भी कोई कामुक व्यक्ति (ग्राहक) नहीं मिला तो क्रोध से सर्पणी के समान फुसकार ने लगी और बहुत व्याकुल अधीर हो रही थी [**पुनः सा महात्मन उपदेशात् त्यक्ताशा सुखिनी जाता**] फिर एक महात्मा जी का निकालना हुआ उन्होने उस वेश्या को दु:खी देख उससे दुख कारण पूछ उपदेश किया ''आपके द्वारा किया जा रहा कार्य पाप है, किसी का आशा करना ही दुख है आशा का त्याग करो'' इस प्रकार आशा को त्यागकर वह वेश्या सुखी हो गयी। [**पिङ्गला नाम स्याद् योगवशात् कामुकानलब्ध्वा सा पिङ्गला सर्पणी स्फुरन्तीव जाता बभूव**] पिंगला

प्रतीक्षमाणा कमपि कामुकमलभमाना पिङ्गला सर्पणीवोच्छ्वसती महती व्याकुलाऽऽस पुनः सा महात्मन उपदेशात् त्यक्ताशा सुखिनी जाता। पिङ्गला नाम स्याद् योगवशात् कामुकानलब्ध्वा सा पिङ्गला सर्पणी स्फुरन्तीव जाता बभूव। अतएव विवेकात् विषयवासना त्याज्येति गम्यते, वासनया चित्तप्रसादोऽपिहितो भवति तदपगमात् स स्फुटीभवति। उक्तं यथा ''यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्। तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ।।'' (योग० २.४२ व्यासः) ।। ११ ।।

अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत् ।। १२ ।।

(अनारम्भे-अपि) विवेकी जनः स्वगृहादिकस्यानुपार्जनेऽपि (परगृहे सुखी सर्पवत्) अन्यस्य गृहे सुखी भवति सर्पवत्, यथा सर्पः स्वगृहं नारभते न निर्माति प्रत्युत सुखी भवति गृहनिर्माणभारचिन्तया रहितश्च भवति तथैव विवेकी जनो गृहाद्युपार्जनचिन्तया रहितः सुखी भवति गृहस्य ममत्वाच्च विमुक्तस्तिष्ठति

नाम योग (गुण) के कारण भी हो सकता है, कामुक व्यक्ति न मिलने के कारण जब क्रोध से सर्पणी के समान फुफकार रही थी तो इस गुण के कारण भी नाम पिंगला हो सकता है। [**अतएव विवेकात् विषयवासना त्याज्येति गम्यते**] अतएव विषय वासना को विवेक से तत्वज्ञान से छोड़ देना चाहिए, ऐसा जानना चाहिए, **वासनया चित्तप्रसादोऽपिहितो बवति तदपगमात् स स्फुटीभवति** वासनाओं के कारण इच्छाओं के कारण हमारे चित्त की प्रसन्नता दब जाती है, यदि आशा का त्याग कर देते हैं तो चित्त की प्रसन्नता बढ़ जाती है। [**उक्तं यथा ''यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ।।'' (योग० २.४२ व्यासः)**] यदि हम अपनी इच्छाएं कम रखें और संतोष का पालन करें तो हम इस संसार में सबसे अधिक सुखी हो सकते हैं, संसार में जो कामनाओं के पूरा होने से सुख होता है, और कभी कभी दिव्य महान बड़े बड़े सुख भी मिल जाते हैं अचानक से। इन दोनों सुखों को एक पलड़े में रखो और दूसरी तरफ जिसने इच्छों को छोड़ दिया है उस सुख को रखो। इन दोनों की तुलना करने पर सांसारिक सुख जो हैं वह इच्छाओं को त्यागने से जो सुख हुआ उसके-उसके सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं। ११ ।।

अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत् ।। १२ ।।

सूत्रार्थ= अपना घर न बनाकर भी विवेकी व्यक्ति दूसरे के घर (संस्था) आदि में सुखी रहता है, सर्प के समान।

[**(अनारम्भे-अपि) विवेकी जनः स्वगृहादिकस्यानुपार्जनेऽपि (परगृहे सुखी सर्पवत्) अन्यस्य गृहे सुखी भवति सर्पवत्**] विवेक वैराग्य से युक्त तत्वज्ञानी व्यक्ति को अपना घर, आश्रम, मठ आदि का अर्जन (नहीं बनाना चाहिए) नहीं करना चाहिए, दूसरे के घर, आश्रम, कुटिया आदि में सुखी रहना चाहिए, साँप के समान, [**यथा सर्पः स्वगृहं नारभते न निर्माति प्रत्युत सुखी भवति गृहनिर्माणभारचिन्तया रहितश्च भवति**] जैसे साँप अपना घर नहीं बनाता बल्कि दूसरे के घर में रहके सुखी रहता है घर के निर्माण व्यवस्था आदि की चिंता से मुक्त रहता है [**तथैव विवेकी जनो गृहाद्युपार्जनचिन्तया रहितः सुखी भवति गृहस्य**

।।१२।।

नन्वेवं यत्र तत्र विचरन् विवेकी जनः किं कुर्यादित्युच्यते -

बहुशास्त्रगुरुपासनेऽपि सारादानं षट्पदवत् ।।१३।।

(बहुशास्त्रगुरूपासने-अपि) अनेकशास्त्राणामध्ययनात् तथा गुरूणां संसेवनात् समाश्रयात् सत्संगादपि (सारादानं षट्पदवत्) भ्रमर इव सारस्य ग्रहणं कुर्याद् विवेकदार्ढ्याय, यथा भ्रमरः पुष्पेभ्यः सारं रसं गृह्णाति ।।१३।।

सारं गृहीत्वा स्यादेकाग्रमनाः, यतः -

इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः।।१४।।

(इषुकारवत्-एकचित्तस्य समाधिहानिः-न) इषुकार इषुप्रक्षेप्ता-इषूपयोगकर्ता ''किं विक्षेपे''

ममत्वाच्च विमुक्तस्तिष्ठति] वैसे ही विवेकी व्यक्ति ग्रह निर्माण अर्जन व्यवस्था आदि की चिंता से रहित होकर सुखी होता है, अपने घर का मोह-माया-राग आदि से भी मुक्त रहता है ।।१२।।

प्रश्न है कि यहाँ तहां घूमता हुआ विवेकी व्यक्ति को किस प्रकार से अपना जीवन जीना चाहिए?

बहुशास्त्रगुरुपासनेऽपि सारादानं षट्पदवत् ।।१३।।

सूत्रार्थ= बहुत शास्त्रों का अध्ययन एवं गुरु आचार्यों की सेवा, सत्संग करने पर भी विवेकी व्यक्ति शास्त्र आदि से सार-सार को ग्रहण कर लेना चाहिए, भँवरे के समान।

[(बहुशास्त्रगुरूपासने-अपि) अनेकशास्त्राणामध्ययनात् तथा गुरूणां संसेवनात् समाश्रयात् सत्स३ादपि (सारादानं षट्पदवत्) भ्रमरः इव सारस्य ग्रहणं कुर्याद् विवेकदार्ढ्याय] जो विवेकी वैराग्यवान व्यक्ति है उसे अनेक शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए, गुरुओं के अनुशासन में रहना चाहिए, भँवरे के समान सार-सार को ग्रहण करते रहना चाहिए और विवेक को दृढ़ करना चाहिए, **[यथा भ्रमरः पुष्पेभ्यः सारं रसं गृह्णाति]** जैसे भँवरा फूलों में से सार-सार को ग्रहण करता है, ऐसे ही शास्त्रों का सार-सार ग्रहण करना चाहिए ।।१३।।

सार को ग्रहण करके वह एकाग्रामन वाला हो जाए (समाधि लगाए), क्योंकि -

इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः।।१४।।

सूत्रार्थ=अपने मन को एक लक्ष्य (ईश्वर) में स्थिर करने वाले विवेकी व्यक्ति की समाधि हानी नहीं होती, तीरंदाज (तीर चलाने वाले) के समान।

[(इषुकारवत्-एकचित्तस्य समाधिहानिः-न) इषुकार इषुप्रक्षेप्ता-इषूपयोगकर्ता ''कॄ विक्षेपे'' (तुदादि०) ''कृञ् करणे'' (तनादि०) ''कृञ् निक्षेपणे चापि वर्तते कटे कुरु घटे कुरु, अश्मानमितः कुरु स्थापयेति गम्यते'' (महाभाष्य व्या० १.३.१)] इषूकार शब्द पर चर्चा है- इषू कहते हैं वाण को।

(तुदादि०) ''कृञ् करणे'' (तनादि०) ''कृञ् निक्षेपणे चापि वर्तते कटे कुरु घटे कुरु, अश्मानमितः कुरु स्थापयेति गम्यते'' (महाभाष्य व्या० १.३.१) अनेन इषुकार इषुप्रक्षेप्ता । तथा ''कन्याया दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकारः'' (वाराहगृह्यसूत्रम् ख०१३) मन्त्रकारो मन्त्रप्रयोक्ता ब्रह्मा तथैवात्र इषुकारः - इषुप्रयोगकर्ता । तस्येषुप्रक्षेप्तुरिषुप्रयोगकर्तुर्यथैकचित्तस्य स्थितिर्भवति तदानीं न स लक्ष्यं विहायान्यमना भवति नान्यान् पश्यति तथैव विवेकिन एकचित्तस्य सतः समाधिहानिर्न भवति ।।१४।।

पुनश्च स विवेकी मुमुक्षुर्व्रतनियमपरायणो भवेत् । यतः -

व्रतनियमलंघ्नादानर्थक्यं* लोकवत् ।।१५।।

(व्रतनियमलंघ्नात्) व्रतानि सन्ति खल्वहिंसादयः पञ्च नियमाश्च शौचादयः पञ्च तेषां लंघ्नादुल्लंघ्नात् त्यागात् (आनर्थक्यं लोकवत्) आनर्थक्यमनर्थकत्वं प्रसज्यते लोकवत्, यथा लोके व्रतनियमभंगी खल्वनर्थं भजते लोकव्यवहाराच्च्यवते न सोऽर्थफलभाग्भवति तथैव मुमुक्षुर्व्रतनियमभ

इषुकार का सामान्य अर्थ ''तीर बनाने वाला'' यहाँ ये अर्थ नहीं लेंगे। इषु (तीर) चलाने वाला अर्थ लेंगे। यहाँ ''कृ'' धातु है विक्षेप अर्थ में, फेंकने अर्थ में, बनाने अर्थ में भी होता है जैसे- चटाई पर रख दो, इस पत्थर को उठाकर यहाँ रख दो **[अनेन इषुकार इषुप्रक्षेप्ता]** इस प्रकार यहाँ अर्थ होगा तीर को फेंकने वाला। **[तथा ''कन्याया दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकारः'']** जैसे कर्मकाण्ड में ''कन्या दक्षिण में बैठकर उत्तराभिमुख हो मंत्रकार (मंत्र का प्रयोग करने वाला) ऐसा निर्देश करता है'' **[(वाराहगृह्यसूत्रम् ख० १३) मन्त्रकारो मन्त्रप्रयोक्ता ब्रह्मा तथैवात्र इषुकारः-इषुप्रयोगकर्ता]** जैसे यहाँ पर मंत्र कार का अर्थ है मंत्र का प्रयोग करने वाला ब्रह्मा। उसी प्रकार से यहाँ इषुकार का अर्थ है इषु का प्रयोग करने वाला। **[तस्येषुप्रक्षेप्तुरिषुप्रयोगकर्तुर्यथैकचित्तस्य स्थितिर्भवति तदानीं न स लक्ष्यं विहायान्यमना भवति नान्यान् पश्यति तथैव विवेकिन एकचित्तस्य सतः समाधिहानिर्न भवति]** जैसे तीर फेंकने वाला व्यक्ति तीर चलाने वाले व्यक्ति एक चित्त होकर तीर फेंकता है, जैसे उसके चित्त कि स्थिति होती है वह अपने लक्ष्य को छोडकर कहीं और मन नहीं लगाता इधर-उधर नहीं देखता, उसी प्रकार से विवेकी व्यक्ति को एक चित्त होकर ईश्वर प्राप्ति के लक्ष्य को बनाकर साधना करे तो उससे उसकी समाधि हानि नहीं होगी, लक्ष्य से नहीं भटकेगा । ।।१४।।

फिर वह विवेकी मुमुक्षु व्यक्ति यम-नियमों का पालन करे। क्योंकि-

व्रतनियमलंघ्नादानर्थक्यं* लोकवत् ।।१ ५।।

सूत्रार्थ= अहिंसा आदि पाँच व्रत हैं, शौच आदि पांच नियम हैं, इनके उलंघ्यन करने पर विवेकी व्यक्ति अनर्थ (हानि) को प्राप्त करता है, लौकिक व्यक्ति के समान।

[(व्रतनियमलंघ्नात्) व्रतानि सन्ति खल्वहिंसादयः पञ्च नियमाश्च शौचादयः पञ्च] अहिंसा सत्य आदि यमों का पालन करना ये सार्वभौम महाव्रत है, शौच, संतोष आदि नियमों का व्यवहार में पालन करना है **[तेषां लंघ्नादुल्लंघ्नात् त्यागात्]** इन यम नियमों का उलंघन करने से त्याग करने से **[(आनर्थक्यं**

ंगादनर्थं भजते स्वपुरुषार्थाच्च्यवते ।।१ ५।।

न केवलं व्रतनियमानां लंघ्नादेवानर्थं भजते किन्तु -

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ।।१६।।

(तद्विस्मरणे-अपि भेकीवत्) व्रतनियमानां विस्मरणेऽपि भेकीवदनर्थभाग्भवति। भेकानां मण्डूकानां वर्षान्तं यावद्वर्षं नैसर्गिकं व्रतं मौनं नियमश्च गुप्तनिवासः। वर्षासु हि भाषणं बहिरागमनं च तेषां भवति न पूर्वम् । उक्तं हि वेदे ''संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः। वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ।।'' (ऋ० ७.१०३) किन्तु तथाभूतं व्रतं नियमं च विस्मृत्य काचिद् भेकी गुप्तस्थानाद् बहिरागताऽथ चोच्चैर्बभाषे, तस्याः शब्दं श्रुत्वा बहिरागतां च दृष्ट्वा तां सर्पो भक्षयामास। तथैव यो विवेकी मुमुक्षुः स्वव्रतनियमान् विस्मरति सोऽपि मनाग्विनष्टो भवति ।।१६।।

लोकवत्) आनर्थक्यमनर्थकत्वं प्रसज्यते लोकवत्] हानि उठानी पड़ती है जैसे संसार में लोगों को होती है, **[यथा लोके व्रतनियमभंगी खल्वनर्थं भजते लोकव्यवहाराच्च्यवते न सोऽर्थफलभाग्भवति]** जैसे संसार में देखते हैं जो व्यक्ति व्रत नियमों को भंग करता है वह अनर्थ का भागी होता है लौकिक व्यवहार से वह छूट जाता है, गिर जाता है, फिर उसको अच्छा फल नहीं मिलता उसको सम्मान नहीं मिलता **[तथैव मुमुक्षुर्व्रतनियमभंगादनर्थं भजते स्वपुरुषार्थाच्च्यवते]** उसी प्रकार से मुमुक्षु की भी यदि यह व्रत नियमों का उल्लंघन करता है तो अनर्थ का भागी होता है, उसका व्यवहार ठीक नहीं रहता, उसका जितना भी पुरुषार्थ था वह निरर्थक हो जाता है।। १५।।

केवल व्रत नियमों का उलंघ्घन करने से व्यक्ति की हानि नहीं होती किन्तु-

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ।।१६।।

विवेकिना मुमुक्षुणा कृतनियमपरायणेन भवितव्यमित्युच्यते -

सूत्रार्थ= व्रत और नियम को भूल जाने पर मुमुक्षु व्यक्ति को हानि उठानी पड़ती है, मेडकी के समान।

[(तद्विस्मरणे-अपि भेकीवत्) व्रतनियमानां विस्मरणेऽपि भेकीवदनर्थभाग्भवति] यम-नियम आदि व्रतों को भूल जाने पर भी व्यक्ति भेकी (मेडक) के समान दु:ख उठाता है। **[भेकानां मण्डूकानां वर्षान्तं यावद्वर्षं नैसर्गिकं व्रतं मौनं नियमश्च गुप्तनिवासः]** भेकी मेडकी का वर्ष भर एक व्रत रहता है मौन रहने का गुप्त रहने का नियम रहता है जब वर्षा आरंभ न हो। **[वर्षासु हि भाषणं बहिरागमनं च तेषां भवति न पूर्वम्]** बरसात में वे बाहर आते हैं भाषण करते हैं लोग उनको देखते हैं उससे पहले नहीं। **[उक्तं हि देहे ''संवत्सरं शशयाना ब्राऋठणा व्रतचारिणः। वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः।।'']** वेद में कहा कि ब्राऋठण विद्वान जन वर्ष भर सबसे विरक्त होके व्रतों का पालन करते हैं तपस्या करते हैं, वर्षा ऋतु में चातुर्मास के अंतर्गत जैसे बादल शोर करते हैं, मेडक शोर करते हैं बाहर आके वैसे ही इनके व्याख्यान प्रवचन आदि होते हैं **[(ऋ०७.१०३.१) किन्तु तथाभूतं व्रतं नियमं च विस्मृत्य काचिद् भेकी गुप्तस्थानाद् बहिरागताऽथ चोच्चैर्बभाषे]** किन्तु जैसे गुप्त रहने मौन रहने का नियम है उस नियम को तोड़कर एक मेडकी

[पञ्चदशषोडशसूत्रयोरर्थः पञ्चदशसूत्रेऽनिरुद्धपाठमवलम्ब्य त्वेषोऽस्ति विज्ञानभिक्षुभाष्यानुसारतः पाठमाश्रित्य तयोर्व्याख्यामार्गः प्रदर्श्यते -]

[विवेकिना मुमुक्षुणा कृतनियमपरायणेन भवितव्यमित्युच्यते -]

कृतनियमलङ्घनादानर्थक्यं* लोकवत् ।।१५।।

[(कृतनियमलङ्घनात्) यः खलु विवेकिने मुमुक्षवे शास्त्रे नियमो निर्दिष्टः सोऽवश्यं धारणीयः पालनीयश्च। येन हि स नियमः कृतो धारितो यदि स लंघ्येत् तं तर्हि तस्य कृतस्य नियमस्य लंघ्नादुल्लंघ्नात् (आनर्थक्यं लोकवत्) आनर्थक्यं व्रजेत् स लोकवत्, यथा लोके यः स्वास्थ्यलाभाय कृतं नियममुल्लंघ्येदपथ्यमाचरेत् सोऽनर्थं भजते स्वास्थ्याच्च्यवते तथैव विवेकी स्वानुकूलं कृतं

बाहर आती है, **[तस्याः शब्दं श्रुत्वा बहिरागतां च दृष्ट्वा तां सर्पो भक्षयामास]** उसके शब्द को शोर को साँप ने सुना और मेडकी को देखकर वह उसे खा गया। **[तथैव यो विवेकी मुमुक्षुः स्वव्रतनियमान् विस्मरति सोऽपि मनाग्विनष्टो भवति]** उसी प्रकार से जो विवेकी मुमुक्षु व्यक्ति अपने व्रत नियम को भूल जाता है वह भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ।।१६।।

विवेकी मुमुक्षु को किए हुए नियम पर तत्पर रहना चाहिए, यह कहते हैं=

कृतनियमलंघ्नादानर्थक्यं* लोकवत् ।।१५।।

सूत्रार्थः-यम नियम का उलंघ्धन करने से विवेकी योगाभ्यासी को हानि उठानी लौकिक व्यक्ति के समान ।।

भाष्यार्थः-(**कृतनियमलंघ्नात्**) विवेकी मुमुक्षु के लिए शास्त्र में जो नियम निर्दिष्ट किया है, बतलाया है, उसका विवेकी मुमुक्षु को अवश्य धारण और पालन करना चाहिए। क्योंकि धारण किए हुए नियम के उलंघ्घन से तो (**आनर्थक्यं लोकवत्**) अनर्थकता=बन्धता को प्राप्त हो जाता है, लोक की भांति। जैसे लोक में स्वास्थ्य लाभ के लिए किए नियम का उलंघ्घन करके अनर्थ को प्राप्त होता है, अर्थात् रोग को प्राप्त होता है।। १५।।

केवल किए नियम के उलंघ्घन से ही अनर्थ को प्राप्त होता है, ऐसा ही नहीं है, किन्तु-

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ।।१६।।

सूत्रार्थः- व्रत-नियमों को भूलने से भी अनर्थ होता है राजकुमारी के समान।।

भाष्यार्थः-(**तद्विस्मरणे-अपि भेकीवत्**) 'भेकी' यह नाम गुणों के कारण किसी सुकुमारी राजकुमारी का है, वह भेकी=मेण्डकी के समान जल में देर तक डुबकियां लगाते रहने के व्यसन वाली हो गई, अतः वह गुणानुसार 'भेकी' नाम से प्रसिद्ध हो गई। वह सुकुमारी राजकमुारी बहुत सौन्दर्ययुक्त थी। जल में कहीं डूब न जाए इस भय के कारण माता-पिता, राजा-रानी तथा अन्य रक्षिकाओं से अति प्रयत्न से रक्षा रखी जाती थी।

नियममुल्लङ्घ्यानर्थं व्रजेन्मोक्षमार्गाच्च्यवेत ।।१५।।]

[न केवलं कृतनियमलंघ्यादनर्थं भजते किन्तु -]

तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ।।१६।।

(तद्विस्मरणे-अपि भेकीवत्)'भेकी' इति नाम गुणवशात् कस्याश्चिद् राजकुमार्याः सुकुमार्याः, सा खलु भेकीवज्जले चिराय निमज्जनव्यसना बभूव तस्मात्सा गुणानुसारिणीं भेकीं संज्ञामाप्तवाती। सा च राजकुमारी सुकुमारी बहुसौन्दर्यापन्ना मातापितृभ्यां रक्षिकाभिश्च जले निमज्जनभयादतिप्रयत्नेन रक्षिता पुनस्तस्याः विवाहो योग्येन राजकुमारेण सह तन्मातापितृभ्यां कृतः, तस्याश्च जले निमज्जनव्यसनं ज्ञापितं जलाद् भयाय च सूचितो राजकुमारो यदेषा क्वचिज्जले न प्रवेश्या । स च राजकुमारस्तद्विषये

पुनः उसको विवाह योग्य राजकुमार के साथ कर दिया गया और उसके जल में डुबकियां लगाने के व्यसन को भी राजकुमार को बतलाकर जल से भय सूचित किया कि इसे कहीं जल में प्रवेश न करने देना। वह राजकुमार भी कृतनियम=कृतप्रतिज्ञ हो गया कि मैं इसे जल में प्रवेश न करने दूंगा। पुनः किसी समय मृगयार्थ उसे साथ ले गया, वहां जंगल में बहुत भ्रमण की थकावट से और गरमीताप को न सह सकने से व्याकुल होकर उसने जलपान और स्नान के लिए राजकुमार से जलाशय पूछा, राजकुमार ने शीघ्रतावश उस किए नियम को भूलकर महान् जलाशय बतला दियाँ वह राजकुमारी तुरन्त वेग से उसमें प्रविष्ट होकर डूब गई। राजकुमार देर तक खोज करने पर भी उसे पा न सका। पुनः वह गहन शोकसागर में डूब गया और शान्ति प्राप्त न कर सका। इस व्याख्या में '**भेकीवत्**' वत् प्रत्यय सप्तमी विभक्ति में है-''**तत्र तस्येव**'' (**अष्टा० ५.१.११६**) । इसी प्रकार जो कोई विवेकी मुमुक्षु अपने कृतनियम=करी प्रतिज्ञा को भूलेगा तो वह अवश्य शोकसागर में गिरेगा।।१६।।

जिसको विवेक उत्पन्न हो गया है ऐसे व्यक्ति को जो-जो करना चाहिए उसको बताने के बाद विवेक प्राप्ति के लिए श्रवण आदि चार कार्यों का निर्देश किया है-

नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत् ।।१७।।

सूत्रार्थ= केवल उपदेश सुनने पर भी सफलता नहीं मिलती मनन और निधिध्यासन के विना, जैसे विरोचन को नहीं मिली।

[(उपदेशश्रवणे-अपि कृतकृत्यता न) यद्यप्युपदेशस्य श्रवणमावश्यकं न हि श्रवणमन्तरेण कस्यचिज्ज्ञानं भवति] यद्यपि उपदेश सुनना आवश्यक है उपदेश सुने विना किसी को ज्ञान नहीं होता, **[परन्तु केवलं श्रवणमेव पर्याप्तमिति]** परन्तु केवल मात्र उपदेश सुनलेना पर्याप्त नहीं होता, **[यतो हि श्रवणे सत्यपि न कृतकृत्यता-साफल्यं न सम्भवति]** क्योंकि सुनने मात्र पर कृतकृत्यता सफलता नहीं होती, **[(परामर्शात्-ऋते) परामर्शोऽत्र मनननिदिध्यासनार्थः]** परामर्श शब्द से अर्थ है मनन और निदिध्यासन। इनके बिना संभव नहीं है। **[मनननिदिध्यासनाभ्यां विना, श्रवणानन्तरं मनननिदिध्यासनाभ्यां**

कृतनियमो जातः पुनः कदाचित् क्वचिन्मृगयार्थं सह तां नीतवान् तत्र च सा बहुभ्रमणश्रान्त्या ग्रीष्मतापमसोढ्वा व्याकुलीभूत्वा राजकुमारं जलपानाय जलस्नानाय च जलाशयं पृष्टवती, राजकुमारः शौर्घ्यात् तं कृतनियमं विस्मृत्य दर्शितवान् महान्तं जलाशयं सा च सद्यस्तत्र वेगेन प्रविश्य निममज्ज । राजकुमारश्च चिरमन्विष्य तां न लेभे पुनश्च सोऽपि गहने शोकसागरे निममज्ज न शान्तिमवाप्तवान् । अत्र व्याख्याने 'भेकीवत्' वत्प्रत्ययः सप्तम्याम् ''तत्र तस्येव'' (अष्टा०५.१.११६) । एवं यः कश्चिद् विवेकी मुमुक्षुः स्वकृतनियमं विस्मरेत् सोऽवश्यं शोकसागरे निपतेत् ।।१६।।

जातविवेकस्य चर्याविधानानन्तरमधुना विवेकप्राप्तये श्रवणादिकं निर्दिश्यते-

नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत् ।।१७।।

(उपदेशश्रवणे-अपि कृतकृत्यता न) यद्यप्युपदेशस्य श्रवणमावश्यकं न हि श्रवणमन्तरेण

भवितव्यमेव न तद्विना कृतकृत्यता] श्रवण के पश्चात मनन और निधिध्यासन किए बगैर कृतकृत्यता नहीं होती, उपदेश का लाभ पूरा-पूरा नहीं होता समझ में नहीं आता **[(विरोचनवत्) यथा प्रजापतिसकाशाच्छ्रवणमिन्द्रविरोचनाभ्यां कृतं परन्तु विरोचनेन श्रवणानन्तरं मनननिदिध्यासने न कृते तस्मात् तस्य कृतकृत्यता न जाता]** जैसे प्रजापति से श्रवण तो दो व्यक्तियों ने किया इंद्र और विरोचन ने। परंतु विरोचन ने श्रवण के पश्चात् मनन और निदिध्यासन ये दो कार्य नहीं किए इसलिए उसकी सफलता विवेक प्राप्ति में नहीं हुई ।१७।।

किन्तु -

दृष्टस्तयोरिन्द्रस्य ।।१८।।

सूत्रार्थ= उन दोनों (इन्द्र और विरोचन) में से इन्द्र का मनन निदिध्यासन देखा गया, इसलिए उसको सफलता मिली।

[(तयोः-इन्द्रस्य दृष्टः) इन्द्रविरोचनयोरिन्द्रस्य परामर्शो मनननिदिध्यानसरूपो दृष्टः, तस्मात् कृतकृत्यता जाता] उन दोनों इंद्र और विरोचन में से इन्द्र का मनन और निदिध्यासन देख गया, इसलिए उसकी सफलता साक्षात्कार हो गया ।।१८।।

श्रवण से ज्ञान प्राप्ति होती है वह भी तब जब बुद्धि पूर्वक श्रवण किया जाए, विधि पूर्वक श्रवण न करने से शाब्दिक ज्ञान भी कम होता है- इस विषय पर कहते हैं-

प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात् तद्वत् ।।१९।।

सूत्रार्थ= गुरु भक्ति, नम्रता, सेवा, समर्पण की भावना तथा ब्रह्मचर्य का पालन लम्बे काल तक करने पर तत्वज्ञान की प्राप्ति होती है, इन्द्र के समान ।

कस्यचिज्ज्ञानं भवति, परन्तु केवलं श्रवणमेव पर्याप्तमिति न, यतो हि श्रवणे सत्यपि न कृतकृत्यता-साफल्यं न सम्भवति, (परामर्शात्-ऋते) परामर्शोऽत्र मननिदिध्यासनाभ्यां भवितव्यमेव न तद्विना कृतकृत्यता (विरोचनवत्) यथा प्रजापतिसकाशाच्छ्रवणमिन्द्रविरोचनाभ्यां कृतं परन्तु विरोचनेन श्रवणानन्तरं मननिदिध्यासने न कृते तस्मात् तस्य कृतकृत्यता न जाता ।।१७।।

किन्तु -

दृष्टस्तयोरिन्द्रस्य ।।१८।।

(तयोः-इन्द्रस्य दृष्टः) इन्द्रविरोचनयोरिन्द्रस्य परामर्शो मननिदिध्यानसरूपो दृष्टः, तस्मात् कृतकृत्यता जाता ।।१८।।

अथ च श्रवणादपि ज्ञानसिद्धिर्यथाविधानादेव भवति न विधिहीनाच्छ्रवणमात्रादित्युच्यते -

प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात् तद्वत् ।।१९।।

[(प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि बहुकालात् कृत्वा) प्रणतिं गुरौ नम्रता नम्रभावानुष्ठानं] विद्या सीखने के लिए पहले गुरु के प्रति नम्रता श्रद्धा होनी चाहिए **[ब्रह्मचर्यं संयमं]** ब्रह्मचर्य का पालन तथा पांचों इंद्रियों पर संयम करना होता है **[तथोपसर्पणं गुरोरुपसेवनं स्वयमेव श्रद्धया सेवां बहुकालं कृत्वा]** ज्ञान प्राप्ति के लिए तीसरा कार्य है गुरु की सेवा करना स्वयं अपने हाथ से लंबे काल तक श्रद्धा पूर्वक उनकी सेवा करना **[(सिद्धिः-तद्वत्) ज्ञानसिद्धिर्ज्ञानलाभो भवति तद्वदिन्द्रवत्]** ज्ञान की सिद्धि ज्ञान की प्राप्ति होती है इन्द्र के समान, **[यथेन्द्रः प्रणत्यादीन् चिरं सम्यगनुष्ठाय ज्ञानलाभं प्राप्तवान्]** जैसे इन्द्र ने प्रणति आदि (नम्रता, ब्रह्मचर्य, गुरु सेवा) तीन प्रकार से लंबे काल तक सम्यक् रूप से अनुष्ठान करके ज्ञान लाभ प्राप्त किया **[गुरुभक्तितो ज्ञानप्राप्तिश्च श्रुतौ प्रदर्श्यतेऽपि]** श्रुति में भी ऐसा कहाँ गया है कि गुरु भक्ति से ज्ञान कि प्राप्ति होती है **[''यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।'']** जैसे व्यक्ति का ईश्वर के प्रति ऊंचा समर्पण होता है ऐसा ही समर्पण गुरु जी के प्रति होना चाहिए। जिसकी परमात्मा के समान श्रद्धा गुरु जी में होती है उसको गुरु के द्वारा उपदेश की गयी सिखायी गयी विद्या प्रकाशित (समझ) में आ जाती है (श्वेता ६. ६३)।।१९।।

क्या नम्रता, श्रद्धा, पूर्वक, ब्रह्मचर्य का पालन, गुरु सेवा आदि लंबे (१०१ वर्ष तक) काल तक करने से सबको विद्या प्राप्त हो जाती है। इस आकांक्षा पर कहते हैं-

न कालनियमो वामदेववत् ।। २०।।

सूत्रार्थ= विवेक प्राप्ति में समय का कोई नियम नहीं है किसी को जल्दी ज्ञान प्राप्त हो जाएगा किसी को लंबे काल में, वामदेव के समान।

[(कालनियमः-न वामदेववत्) विवेकसिद्धौ कालनियमो नास्ति] इस विवेक (तत्वज्ञान) की प्राप्ति में काल का कोई नियम नहीं है (निश्चित समयावधि नहीं है), **[कस्यचित् क्षिप्रं कस्यचिच्चिरेण कस्यचिदिहजन्मनि कस्यचिदपरजन्मनि विवेकसिद्धिर्भवति वामदेववत्]** किसी को बहुत काल में होगा किसी को शीघ्र किसी को इसी जन्म में किसी को अनेकों जन्मों में विवेक की सिद्धि होती है, वामदेव के समान, **[वामदेवस्य यथेहजन्मनि विवेकसिद्धिर्जाता प्राग्जन्मसाधनानुष्ठानात्]** वामदेव जी को इसी जन्म

(प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि बहुकालात् कृत्वा) प्रणतिं गुरौ नम्रता नम्रभावानुष्ठानं ब्रह्मचर्यं संयमं तथोपसर्पणं गुरोरुपसेवनं स्वयमेव श्रद्धया सेवां बहुकालं कृत्वा (सिद्धिः-तद्वत्) ज्ञानसिद्धिर्ज्ञानलाभो भवति तद्वदिन्द्रवत्, यथेन्द्रः प्रणत्यादीन् चिरं सम्यगनुष्ठाय ज्ञानलाभं प्राप्तवान् गुरुभक्तितो ज्ञानप्राप्तिश्च श्रुतौ प्रदर्श्यतेऽपि ''यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।'' (श्वेता० ६.६३) ।।१९।।

किं प्रणत्यादिना श्रवणं बहुकालमनिवार्यमित्याकांक्षायामुच्यते -

न कालनियमो वामदेववत् ।। २०।।

(कालनियमः-न वामदेववत्) विवेकसिद्धौ कालनियमो नास्ति, कस्यचित् क्षिप्रं कस्यचिच्चिरेण कस्यचिदिहजन्मनि कस्यचिदपरजन्मनि विवेकसिद्धिर्भवति वामदेववत्, वामदेवस्य यथेहजन्मनि

में विवेक की सिद्धि हो गयी, पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण। **[उक्तं यथा ''तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे, अहं मनुरभवमहं सूर्यश्च'']** जैसे कहा भी है- इस प्रकार से आत्मा परमात्मा को देखते हुए (जब उनकी समाधि लगी), तब वामदेव ऋषि ने ऐसा कहा ''अब मैं मनु हो गया हूँ, अब मैं सूर्य हो गया हूँ'' (मनु-मननशील ज्ञानी, सूर्य=सूर्य के समान तेजस्वी) (बृह० १.४.१०) ।। २०।।

वस्तुतस्तु -

अध्यस्तरूपोपासनात् पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव ।। २१।।

सूत्रार्थ=अध्ययन से जो परमात्मा का स्वरूप समझ में आया उस रूप की उपासना से श्रवण, मनन आदि की परंपरा से समय तो लगता ही है, जैसे यज्ञ की विधियों में लगता है।

[(पारम्पर्येण-अध्यस्तरूपोपासनात्) श्रवणमनननिदिध्यासनसाक्षात्कारपरम्पराक्रमेण खल्वध्यस्तस्य गुरुणा शास्त्रेण वाऽधिक्षिप्तस्य प्रस्तावितस्य* रूपस्य परमात्मस्वरूपस्योपासनाद् विवेकसिद्धिर्भवति] श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार इस परम्परा से गुरु के द्वारा अथवा शास्त्र के द्वारा ईश्वर का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया, ऐसे परमात्मा के स्वरूप की उपासना करने से विवेक की सिद्धि होती है **तत्र कालोऽपेक्ष्यते हि** यहाँ काल की अपेक्षा है (विवेक सिद्धि में समय लगता है) **[(यज्ञोपासकानाम्-इव) यथा यज्ञकर्मानुष्ठातृणां पारम्पर्येण यज्ञविधीनामनुक्रमेणानुष्ठानादभ्युदयसिद्धिर्भवति तत्र कालोऽप्यपेक्ष्यते हि]** जैसे यज्ञ कर्म अनुष्ठान करने वालों की परम्परा से यज्ञ विधि में अनुक्रम से अनुष्ठान करने से अभ्युदय की सिद्धि होती है, ऐसे ही अध्यात्म में ईश्वर प्राप्ति में समय लगता है ।। २१।।

यदि परम्परा से विवेक की सिद्धि होती है और यज्ञ करने वाले परम्परा से बहुत लम्बी विधियाँ करते हैं, ऐसा करने से उनको उत्कृष्ट लोक की सिद्धि होती है। फिर तो यज्ञ ही कर लेना चाहिए। इस शंका पर कहते हैं-

इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पञ्चाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः ।। २२।।

विवेकसिद्धिर्जाता प्राग्जन्मसाधनानुष्ठानात् । उक्तं यथा ''तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदे, अहं मनुरभवमहं सूर्यश्च'' (बृह० १.४.१०) ।। २०।।

वस्तुतस्तु -

अध्यस्तरूपोपासनात् पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव ।। २१।।

(पारम्पर्येण-अध्यस्तरूपोपासनात्) श्रवणमनननिदिध्यासनसाक्षात्कारपरम्पराक्रमेण खल्वध्यस्तस्य गुरुणा शास्त्रेण वाऽधिक्षिप्तस्य प्रस्तावितस्य* रूपस्य परमात्मस्वरूपस्योपासनाद् विवेकसिद्धिर्भवति तत्र कालोऽपेक्ष्यते हि (यज्ञोपासकानाम्-इव) यथा यज्ञकर्मानुष्ठातृणां पारम्पर्येण यज्ञविधीनामनुक्रमेणानुष्ठानादभ्युदयसिद्धिर्भवति तत्र कालोऽप्यपेक्ष्यते हि ।। २१।।

यद्येवं पारम्पर्येण विवेकः सिध्यति तर्हि यज्ञोपासकानामपि पारम्पर्येणोत्कृष्ट-लोकसिद्धिर्भवति

सूत्रार्थ= यज्ञादि के अनुष्ठान से उत्कृष्ट योनि तो प्राप्त होगी किन्तु विवेक की सिद्धि व मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी, पंचाग्नि योग से पुनर्जन्म सुनाई देने से।

[(इतरलाभे-अपि-आवृत्तिः) यज्ञानुष्ठानेन खलूत्कृष्टलोकप्राप्तावपि भवति हि तत आवृत्तिः] यज्ञ कर्म का अनुष्ठान करने से पुण्य लोक उत्कृष्ट लोक की प्राप्ति तो होगी ही फिर भी वहाँ से लौकर आना तो पड़ेगा (पुनर्जन्म तो होगा) **[(पञ्चाग्नियोगतः-जन्मश्रुतेः) पञ्चाग्नियोगतः पुनर्जन्म श्रूयते]** यज्ञ करने से पंचाग्नि योग से पुनर्जन्म होता है **[''असौ वाव लोको गौतमाग्निः... योषा वाव गौतमाग्निः... तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति'' (छान्दो० ५.४.१-८.२) देवयानपथेत्युक्तम्]** । **[तस्माद् यज्ञानुष्ठानं न विवेकसाधनं यद्वा मोक्षसाधनम्]** इसलिए यज्ञ का अनुष्ठान करना न तो विवेक प्राप्ति का साधन है और न ही मोक्ष प्राप्ति का साधन है। **[अतोविवेकिना तन्नोपादेयम्]** अतः विवेकी व्यक्ति को यज्ञ की उपादेयता (आवश्यकता) नहीं है ।।२२।।

किन्तु -

विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् ।। २३।।

सूत्रार्थ=जो विरक्त व्यक्ति है जिसको वैराग्य हो गया है, वह हानिकारक छोड़ने योग्य मोक्ष मार्ग के बाधकों को त्याग देता है और जो ग्रहण करने योग्य हैं उनको ग्रहण कर लेता हैं, हंस के जल को छोड़कर दूध को पीने के समान।

[(विरक्तस्य) विवेकप्राप्तस्य तु (हेयहानम्-उपादेयोपादानम्) हेयस्य हानं तथोपादेयस्योपादानं कार्यम्] विवेक प्राप्ति के बाद (विवेकी व्यक्ति में) हानिकारक जो बंधन का कारण बने ऐसी वस्तुओं पदार्थों को त्याग देना और ग्रहण करने योग्य पदार्थ आदि को ग्रहण कर लेना चाहिए **[(हंसक्षीरवत्) यथा हंसो जलमिश्रितदुग्धाज्जलं त्याज्यं त्यजति तथोपादेयं दुग्धमुपादत्ते]** जैसे हंस जल मिश्रित दूध से जो छोड़ने योग्य है ''जल'' उसे छोड़ देता है, और पीने योग्य ग्रहण करने योग्य दूध को पी लेता है (इसी को नीर-क्षीर विवेक बोलते हैं) **[तद्वद्विरक्तो विवेकी यदावृत्तिनिमित्तं तत् त्यजति यद् विमोक्षसाधनं तदुपादत्ते]** ऐसे

तदा यज्ञ एवोपास्यः। अत्रोच्यते -

इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पञ्चाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः ।। २२।।

(इतरलाभे-अपि-आवृत्तिः) यज्ञानुष्ठानेन खलूत्कृष्टलोकप्राप्तावपि भवति हि तत आवृत्तिः (पञ्चाग्नियोगतः-जन्मश्रुतेः) पञ्चाग्नियोगतः पुनर्जन्म श्रूयते ''असौ वाव लोको गौतमाग्निः...योषा वाव गौतमाग्निः...तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति'' (छान्दो० ५.४.१-८.२) देवयानपथेत्युक्तम् । तस्माद् यज्ञानुष्ठानं न विवेकसाधनं यद्वा मोक्षसाधनम्। अतोविवेकिना तन्नोपादेयम् ।। २ २।।

किन्तु -

विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् ।। २३।।

(विरक्तस्य) विवेकप्राप्तस्य तु (हेयहानम्-उपादेयोपादानम्) हेयस्य हानं तथोपादेयस्योपादानं कार्यम् (हंसक्षीरवत्) यथा हंसो जलमिश्रितदुग्धाज्जलं त्याज्यं त्यजति तथोपादेयं दुग्धमुपादत्ते तद्वद्विरक्तो विवेकी यदावृत्तिनिमित्तं तत् त्यजति यद् विमोक्षसाधनं तदुपादत्ते ।। २३।।

ही विवेकी व्यक्ति जो बार-बार जन्म मरण के चक्कर में बांधने वाले पदार्थ हैं उनको छोड़ देता है, और जो मोक्ष के साधन हैं उनको पकड़ लेता है ग्रहण कर लेता है।। २३।।

यतः -

लब्धातिशययोगात् तद्वत् ।। २४।।

सूत्रार्थ= विवेकी व्यक्ति तत्वज्ञान के क्षेत्र में अतिशय योग्यता वाला होता है, हंस के समान।

[**(लब्धातिशययोगात्) विरक्तो हि विवेके लब्धातिशययोगो भवति**] विरक्त व्यक्ति विवेक प्राप्ति के क्षेत्र में अत्यधिक योग्यता प्राप्त कर चुका होता है [**तेन विवेकेऽतिशयो योगो युक्तिर्योग्यता प्राप्ता तस्मिन् विरक्ते विवेकस्य विवेचनस्य पृथक् पृथग्वस्तुज्ञानस्य हेयोपादेययोः पृथक्-पृथक् करणस्य योग्यता भवति**] उस विरक्त व्यक्ति के द्वारा बहुत सारी योग्य प्राप्त करने के बाद उस विरक्त व्यक्ति में विवेक की अर्थात विवेचन की वस्तु के पृथक-पृथक ज्ञान की इतनी योग्यता होती है कि वह हेय और उपादेय को पृथक-पृथक कर लेता है (समझ लेता है) [**(तद्वत्) हंसवत् हंसस्येव**] हंस के समान जैसे वह दूध और पानी को अलग अलग कर लेता है।। २४।।

अविरक्तस्य तु -

न कामचारित्वं रागोपहते शुकवत् ।। २५।।

सूत्रर्थ= अविवेकी व्यक्ति राग से वशीभूत ''दवाए जानें'' होने पर त्याज्य मार्ग को छोड़ने में ग्राह्य मार्ग को अपनाने में अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्रता पूर्वक समर्थ नहीं होता है, पिंजरे में बंधे तोते के समान।

[**(रागोपहते) अविरक्तः खलु रागेण परिवृतो रागस्य वशीभूतः**] जो अविरक्त व्यक्ति है जिसको वैराग्य नहीं हुआ वह चारों ओर से राग से घिरा रहता है राग के वशीभूत रहता है, [**तस्य रागोपहतत्वे सति**]

यतः -

लब्धातिशययोगात् तद्वत् ।। २४।।

(लब्धातिशययोगात्) विरक्तो हि विवेके लब्धातिशययोगो भवति तेन विवेकेऽतिशयो योगो युक्तिर्योग्यता प्राप्ता तस्मिन् विरक्ते विवेकस्य विवेचनस्य पृथक् पृथग्वस्तुज्ञानस्य हेयोपादेययोः पृथक् पृथक् करणस्य योग्यता भवति (तद्वत्) हंसवत् हंसस्येव ।। २४।।

अविरक्तस्य तु -

न कामचारित्वं रागोपहते शुकवत् ।। २५।।

(रागोपहते) अविरक्तः खलु रागेण परिवृतो रागस्य वशीभूतः, तस्य रागोपहतत्वे सति (कामचारित्वं न शुकवत्) कामचारित्वं हेयस्य हानायोपादेयस्योपादानाय यद्वा हेयं मार्गं त्यक्तुमुपादेयं मार्गं चोपादातुं यथेष्टसञ्चारित्वं स्वातन्त्र्यं नास्ति शुकवद् रागवशीभूतत्वात्। यथा शुकः पक्षी पञ्जरोपहतः

उस व्यक्ति के राग से दबे होने पर **[(कामचारित्वं न शुकवत्) कामचारित्वं हेयस्य हानायोपादेयस्योपादानाय यद्वा हेयं मार्गं त्यक्तुमुपादेयं मार्गं चोपादातुं यथेष्टसञ्चारित्वं स्वातन्त्र्यं नास्ति शुकवद् रागवशीभूतत्वात्]** अपनी इच्छा अनुसार जीवन जीना कार्य करना नहीं हो पाता, हेय को छोड़ नहीं पाता और उपादेय को ग्रहण नहीं कर पाता अथवा हेय मार्ग को त्यागने में और उपादेय मार्ग को अपनाने में समर्थ नहीं होता और अपनी इच्छा से स्वतंत्रता से जीवन यापन नहीं कर पाता। कैसे? तोते के समान, राग के वशीभूत होने से। **[यथा शुकः पक्षी पञ्जरोपहतः पञ्जरेण परिवृतः सन् यथेष्टकामचारी न भवति तस्य यथेच्छगमने स्वातन्त्र्यं न भवति]** जैसे तोता पिंजरे से ढका हुआ (पिंजरे में बन्द)होता है तब अपनी इच्छानुसार वह गमन नहीं कर पाता, उड़ नहीं पाता, स्वतन्त्रता नहीं होती **[तद्वत् पुरुषोऽपि रागरूपे पञ्जरे बद्धो न कामचारी भवति]** ऐसे ही राग रूपी पिंजरे में बंधा हुआ जीवात्मा भी अपनी इच्छानुसार कुछ कार्य भ्रमण आदि नहीं कर पाता।। २५।।

ये जीवात्मा राग रूपी पिंजरे में कैसे बन्ध जाता है? इस पर कहते हैं-

गुणयोगाद् बद्धः * शुकवत् ।। २६।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा अपने भोक्तपन के कारण राग रूपी पिंजरे में बन्ध जाता है, जैसे तोता मधुर बोलने के कारण पिंजरे में बन्ध जाता है।

[(शुकवत्-गुणयोगात्-बद्धः) यथा शुकः पक्षी मधुरभाषणगुणवशाद् बद्धो लौहपञ्जरे तथैव पुरुषो भोक्तृत्वगुणवशाद् रागरूपपञ्जरे बद्धः] जैसे तोता पक्षी मधुर भाषण गुण के कारण लोहे के पिंजरे में बांध लिया जाता है उसी प्रकार से पुरुष (जीवात्मा) प्रकृति के सुख भोगने के गुण के कारण राग रूपी पिंजरे में बन्ध जाता है।। २६।।

परन्तु -

न भोगाद्रागशान्तिर्मुनिवत् ।। २७।।

सूत्रार्थ= भोगों को भोगने से राग की शांति नहीं होती, जैसे सौभरि मुनि की नहीं हुई।

पञ्जरेण परिवृतः सन् यथेष्टकामचारी न भवति तस्य यथेच्छगमने स्वातन्त्र्यं न भवति तद्वत् पुरुषोऽपि रागरूपे पञ्जरे बद्धो न कामचारी भवति ।। २५।।

कथं तर्हि रागे रागरूपे पञ्जरे बद्ध इत्युच्यते -

गुणयोगाद् बद्धः* शुकवत् ।। २६।।

(शुकवत्-गुणयोगात्-बद्धः) यथा शुकः पक्षी मधुरभाषणगुणवशाद् बद्धो लौहपञ्जरे तथैव पुरुषो भोक्तृत्वगुणवशाद् रागरूपपञ्जरे बद्धः ।। २६।।

परन्तु -

न भोगाद्रागशान्तिर्मुनिवत् ।। २७।।

(भोगात्-रागशान्तिः-न) भोगात् खलु रागशान्तिर्न कदापि भवति (मुनिवत्) यथा सौभरेर्मुनेर्भोगान्न रागशान्तिर्जाता। तदुक्तं सौभरिणा "आमृत्युतो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं

[(भोगात्-रागशान्तिः-न) भोगात् खलु रागशान्तिर्न कदापि भवति (मुनिवत्) यथा सौभरेर्मुनेर्भोगान्न रागशान्तिर्जाता] भोगों को भोगने से राग शांति कभी भी नहीं होती (जैसे आग में घी डालने से और आग और बड़ती है, वैसे ही इच्छों को पूरा करने से इच्छाए और बढ़ती हैं), सौभरि मुनि के खूब भोगों को भोगा लेकिन भोग से राग शांति नहीं हुई। **[तदुक्तं सौभरिणा "आमृत्युतो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाऽद्य। मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमार्थसङ्गि"]** तब सौभरि मुनि अपना अनुभव सुनाते है- मृत्यु तक कितना ही भोगो को भोगते जाओ मनोरथों को पूरा करते जाओ ये कभी समाप्त होने वाले नहीं हैं इनसे शांति तृप्ति मिलने वाली नहीं है यह मैंने जान लिया है। यदि भोगों को अंधाधुंध भोगते जाएंगे तो इच्छा बढ़ती ही जाएंगी, जो व्यक्ति भोगों को मनोरथों को आसक्ति पूर्वक भोगता है उसका चित्त कभी भी परमार्थ ईश्वर धर्म अध्यात्म की तरह नहीं लगता।। २७।।

फिर कैसे राग की शांति होगी? इस विषय पर कहते हैं-

दोषदर्शनादुभयोः ।। २८।।

सूत्रार्थ=भोग्य पदार्थ (संसार के विभिन्न पदार्थ) भोक्ताभाव रखने वाले जीवात्मा इन दोनों में दोष देखने से राग की निवृति होती है।।

[(उभयोः-दोषदर्शनाद्) उभयोर्भोक्तृभावस्य भोग्यपदार्थस्य च दोषदर्शनात्] दोनों (भोग्य पदार्थ प्रकृति और भोक्ता जीवात्मा) दोष देखने से राग की शांति हो जाती है। **[भोक्तृभावस्य पुनःपुनर्जन्म गर्भवासो मरणत्रासो भिन्नभिन्नयोनिप्रवेशश्च]** भोक्ता होने का दोष ये है यदि हम बार बार भोगेंगे तो भोगने के लिए शरीर चाहिए, पुनर्जन्म होगा गर्भवास करना पड़ेगा मृत्यु का भय बना रहेगा भिन्न-भिन्न योनियों में जाना पड़ेगा तथा **[भोग्यपदार्थस्य परिणतिर्विकारित्वमस्थिरत्वमपायाच्छोकप्राप्तिर्भोगादनुपशान्तिः परपीड़ा चेत्येतादृशानां दोषाणां दर्शनाद् भवति रागशान्तिः]** भोग्य पदार्थ में दोष यह देखे की ये परिवर्तनशील हैं, विकार आते हैं, स्थिरता नहीं रहती, किसी वस्तु के छिन जाने टूट-फुट जाने से दुख होता है,बार-बार भोगने से

मयाऽद्य। मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमार्थसंगि'' ।। २७।।

तर्हि कस्मादुपायात् स्याद् रागशान्तिरित्युच्यते -

दोषदर्शनादुभयोः ।। २८ ।।

(उभयोः-दोषदर्शनाद्) उभयोर्भोक्तृभावस्य भोग्यपदार्थस्य च दोषदर्शनात्। भोक्तृभावस्य पुनःपुनर्जन्म गर्भवासो मरणत्रासो भिन्नभिन्नयोनिप्रवेशश्च तथा भोग्य-पदार्थस्य परिणतिर्विकारित्वमस्थिरत्वमपायाच्छोकप्राप्तिर्भोगादनुपशान्तिः परपीडा चेत्येतादृशानां दोषाणां दर्शनाद् भवति रागशान्तिः । तत्र दोषभावनया रागो निवर्तते । उक्तं च ''न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्तमेव भूय एवाभिवर्धते।'' (मनु०२.९४) ''विषयाणामर्जनरक्षणक्षयस३हिंसादोषदर्शनादस्वीकरणम्'' (योग० २.३० व्यास)) ।। २८।।

सति रागे तु -

शांति तो मिलती नहीं, अपने सुख के लिए किसी न किसी को दुःख देना पड़ता है। इस प्रकार से दोनों में भोक्ता एवं भोग्य पदार्थ में दोषों को देखने से राग शांति हो जाती है। **[तत्र दोषभावनया रागो निवर्तते]** वहाँ यह समझना चाहिए की दोष भावना से राग की निवृति हो जाती है। **[उक्तं च ''न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्तमेव भूय एवाभिवर्धते।'']** और कहा भी है-इच्छाओं की पूर्ति करने से इच्छों की कभी शांति नहीं होती। जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि कम नहीं बढ़ती है ऐसे ही राग भोग बढ़ते हैं। **[(मनु० २.९४) ''विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणम्'' (योग० २.३० व्यास)]** विषयों के अर्जन (संपत्ति कमाना), रक्षण (कमाई की रक्षा), क्षय (कमाई की चोरी, कमी), संग (खाते-पीते रहने की आदत), हिंसा (किसी न किसी को दुख व अन्याय करना) आदि दोष दर्शन ।। २८।।

सति रागे तु -

न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत् ।। २९ ।।

सूत्रार्थ= मलिन चित्त में उपदेश का बीज अंकुर नहीं होता, राजा अज के समान।

[(मलिनचेतसि-उपदेशबीजप्ररोहः-न-अजवत्) रागाच्चेतो मलिनं भवति तदा मलिनचेतसि खलूपदेशबीजस्य प्ररोहोऽङ्कुरप्रादुर्भावो न जायते, अजवत्] राग से चित्त मलिन हो जाता है तब मलिन चित्त में उपदेश बीज का कोई भी अंकुर नहीं फूटता, राजा अज के समान। **[यथा भार्यारागोपहतेऽजनामके नृपे वसिष्ठोपदेशान्न स्थैर्यप्रादुर्भावो जातः]** रघुकुल में अज नाम के राजा थे उनको अपनी पत्नी से बहुत प्रेम था, पत्नी के दहान्त से बहुत दुःखी रहते थे तब वशिष्ठ जी ने शरीर की अनित्यता पर उपदेश किया, परंतु पत्नी के प्रति राग की अधिकता के कारण उपदेश का कोई लाभ नहीं हुआ।। २९।।

अपितु -

नाभासमात्रमपि मलिनदर्पणवत् ।।३०।।

न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत् ।। २९ ।।

(मलिनचेतसि-उपदेशबीजप्ररोहः-न-अजवत्) रागाच्चेतो मलिनं भवति तदा मलिनचेतसि खलूपदेशबीजस्य प्ररोहोऽङ्कुरप्रादुर्भावो न जायते, अजवत्। यथा भार्यारागोपहतेऽजनामके नृपे वसिष्ठोपदेशान्न स्थैर्यप्रादुर्भावो जातः ।। २९ ।।

अपितु -

नाभासमात्रमपि मलिनदर्पणवत् ।।३० ।।

(आभासमात्रम्-अपि न मलिनदर्पणवत्) रागलिप्तचेतसि तूपदेशस्याभासमात्रमपि न भवति मलिनदर्पणवत्, यथा मलिनदर्पणे मललिप्तेदर्पणे कस्यचिदाभासोऽपि न प्रतिबिम्बति ।।३० ।।

अथ च रागलिप्ते मलिनचित्ते किलोपदेशस्यापि स्यादन्यथा भावो यतः -

न तज्जस्यापि तद्रूपता पंकजवत् ।।३१ ।।

सूत्रार्थ= राग से युक्त चित्त में उपदेश का आभास भी नहीं दिखता, मलिन दर्पण के समान।।३० ।।

[(आभासमात्रम्-अपि न मलिनदर्पणवत्) रागलिप्तचेतसि तूपदेशस्याभासमात्रमपि न भवति मलिनदर्पणवत्] राग से लिप्त चित्त में उपदेश का आभास मात्र भी नहीं दिखता, मलिन दर्पण के समान, **[यथा मलिनदर्पणे मललिप्तेदर्पणे कस्यचिदाभासोऽपि न प्रतिबिम्बति]** जैसे मलिन दर्पण में मल से लिप्त दर्पण में कोई भी आभास प्रतिबिम्ब नहीं दिखता ऐसे ही राग से लिप्त चित में उपदेश का कोई प्रभाव नहीं दिखता।।३० ।।

इतना ही नहीं राग लिप्त मलिन चित्त में उपदेश का अन्यथा भाव भी ले लिया जाता है, क्योंकि -

न तज्जस्यापि तद्रूपता पंकजवत् ।।३१ ।।

सूत्रार्थ= जैसे अशुद्ध भूमि में उत्पन्न हुए अंकुर की गुणवत्ता शुद्ध भूमि में उत्पन्न हुए अंकुर के गुणवत्ता के समान नहीं होती, वैसे ही राग युक्त मलिन चित्त में उत्तम उपदेश का भी प्रभाव नहीं पड़ता।

[(तज्जस्य-अपि तद्रूपता न पंकजवत्) तज्जस्य तद्भवस्य खल्वपि तत्सदृशता न भवति पंकजवत्] (मलिन चित्त वाले को उपदेश देने से विपरीत प्रभाव भी पद सकता है) उस अच्छे बीज से अच्छी फसल होनी चाहिए, फिर भी वैसी फसल नहीं हो पाती, पंकज के समान, **[यथा ह्युत्तमं बीजं पंके प्रक्षिप्तं न तद्रूपं तद्गुणमुत्पद्यते किन्त्वन्यथैवोत्पद्यते]** जैसे उत्तम बीज कीचड़ में डाल देने पर, वैसे अच्छे गुणों वाला नहीं उगता किन्तु फसल अथवा पौधा खराब, टेड़ा-मेड़ा या दोष युक्त पैदा होता है। **[तस्माद्रागलिप्ते मलिनचित्ते स्यादुत्तमोपदेशस्यान्यथाभावो यतः सोऽन्यथा हि मंस्यते]** इसी तरह से जो राग लिप्त मलिन चित्त है उसको यदि उपदेश दिया जाए तो भी उसका उल्टा प्रभाव पड़ेगा उपदेश ठीक-ठीक दिया जाएगा अपनी बुद्धि से वह उल्टा ही अर्थ निकलेगा।।३१ ।।

एक शंका उठाई- पाँच विषयों का राग हानिकारक होवे ये तो समझ में आया परंतु जो योगाभ्यास से

(तज्जस्य-अपि तद्रूपता न पंकजवत्) तज्जस्य तद्भवस्य खल्वपि तत्सदृशता न भवति पंकजवत्, यथा ह्युत्तमं बीजं पंके प्रक्षिप्तं न तद्रूपं तद्गुणमुत्पद्यते किन्त्वन्यथैवोत्पद्यते। तस्माद्रागलिप्ते मलिनचित्ते स्यादुत्तमोपदेशस्यान्यथाभावो यतः सोऽन्यथा हि मंस्यते ।।३१।।

भवतु विषयाणां रागो हानिकारकः परन्तु या योगाभ्यासात् विभूतीनां विविधसिद्धीनां प्रवृत्तिस्तया स्यात् कृतकृत्यता किं पुनर्महाप्रयत्नाद् विवेकादुपास्याधानेन। अत्रोच्यते -

न भूतियोगेऽपि कृतकृत्यतोपास्यसिद्धिवदुपास्यसिद्धिवत् ।।३२।।

(भूतियोगे-अपि कृतकृत्यता न) विभूतियोगे विविधसिद्धीनां प्राप्तावपि कृतकृत्यता न भवति (उपास्यसिद्धिवत्) यथा हि कृतकृत्यता भवति विवेकादुपास्यसिद्धौ ब्रह्मसम्पत्तौ, यतो-यतो विभूतियोगे भवति पुनरावृत्तिः, विवेकादुपास्यसिद्धौ भवति मोक्षः। उपास्यसिद्धिवत्, इति द्विरुक्तिरध्यायसमाप्त्यर्था ।।३२।।

विभूतियों से जो सिद्धि प्राप्त हुई उन सिद्धियों से व्यक्ति की कृतकृत्यता हो जावे? फिर विवेक से तत्वज्ञान से परमात्मा की उपासना करे। इतनी लाबी चौड़ी मेहनत क्यों करें? इस शंका पर कहते हैं-

न भूतियोगेऽपि कृतकृत्यतोपास्यसिद्धिवदुपास्यसिद्धिवत् ।।३२।।

सूत्रार्थ= अनेक योग सिद्धियों के प्राप्त होने पर भी वैसी सफलता=पूर्ण सफलता नहीं मिलती जैसी सफलता ईश्वर प्राप्ति से मिलती है।

[(भूतियोगे-अपि कृतकृत्यता न) विभूतियोगे विविधसिद्धीनां प्राप्तावपि कृतकृत्यता न भवति] विभूति योग से विविध प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर लेने पर भी कृतकृत्यता नहीं होती **[(उपास्यसिद्धिवत्) यथा हि कृतकृत्यता भवति विवेकादुपास्यसिद्धौ ब्रह्मसम्पत्तौ]** विवेक सिद्धि में ब्रह्म प्राप्ति में जो सफलता होती है वैसी सफलता सिद्धियों से नहीं होती, **[यतो विभूतियोगे भवति पुनरावृत्तिः, विवेकादुपास्यसिद्धौ भवति मोक्षः]** क्योंकि विभूति योग से पुनर्जन्म होगा और विवेक की सिद्धि से ईश्वर प्राप्ति से मोक्ष की प्राप्ति होती है। **[उपास्यसिद्धिवत्, इति द्विरुक्तिरध्यायसमाप्त्यर्था]** सूत्र में दो बार जो कथन किया गया उपास्य सिद्धिवत् यह अध्याय समाप्ति का संकेत है।।३२।।

सांख्यदर्शने समाप्तस्चतुर्थोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्योपेतः।

।।ओ३म्।।

सांख्यदर्शनम्

ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्

तत्र

पञ्चमोऽध्यायः

भाष्य विस्तार - पूज्य स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक

(निदेशक- दर्शन योग महाविद्यालय)

पञ्चमोऽध्यायः

वक्तव्यम् -

अत्राध्यायस्य प्रारम्भे ''नेश्वराधिष्ठिते फल...''(२) इति सूत्रजातस्यार्थोऽनिरुद्धविज्ञानभिक्षुभ्यामीश्वरप्रतिषेधपरोऽकारि, यथा ''पूर्वसिद्धमीश्वरासत्त्वमिदानीं न्यायेनाह-नेश्वराधिष्ठिते फल...'' (अनिरुद्धः) '''ईश्वरासिद्धेरिति यदुक्तं तन्नोपपद्यते कर्मफलदातृतया तत्सिद्धेरिति ये पूर्वपक्षिणस्तान्निराकरोति-नेश्वराधिष्ठिते फल...'' (विज्ञानभिक्षुः) इत्थं तयोरीश्वरप्रतिषेधपरमर्थविधानमयुक्तमेव, ताभ्यां पूर्वसूत्रार्थेष्वीश्वरस्य स्वीकारात्, तं स्वीकृत्यार्थविधानात् । तद्यथा - ''अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात् - पारवश्यादुक्तं न तु परार्थत्वात्, स च कः परो यस्य वशे प्रकृतिः ? परः - आत्मा किंरूपः, इत्याह - स हि सर्ववित् सर्वकर्ता, - ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा''

पञ्चमोऽध्यायः

वक्तव्यम् -

[**अत्राध्यायस्य प्रारम्भे ''नेश्वराधिष्ठिते फल...''(२) इति सूत्रजातस्यार्थोऽनिरुद्धविज्ञानभिक्षुभ्यामीश्वरप्रतिषेधपरोऽकारि**] इस अध्याय के आरंभ में सूत्र ''२'' इसकी व्याख्या में अनिरूद्ध और विज्ञानभिक्षु जी ने जो अर्थ किया है, ईश्वर का खंडन करते हुए व्याख्यान किया है, [**यथा ''पूर्वसिद्धमीश्वरासत्त्वमिदानीं न्यायेनाह-नेश्वराधिष्ठिते फल...''**] ईश्वर की सत्ता नहीं है ये हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं, उसी बात को अब तर्क से कहते हैं - ''**नेश्वराधिष्ठिते फल**'' [(**अनिरुद्धः**)''**ईश्वरासिद्धेरिति यदुक्तं तन्नोपपद्यते कर्मफलदातृतया तत्सिद्धेरिति ये पूर्वपक्षिणस्तान्निराकरोति-नेश्वराधिष्ठिते फल...**''] ये विज्ञानभिक्षु का कथन है, ''सिद्धांती कहते हैं''**ईश्वरासिद्धे**'' ये कहा किन्तु कर्मों का फल तो मिल रहा है , कर्मों का फला प्रदाता होने से ईश्वर की सिद्धि हो रही है'' ये पूर्वपक्षी लोगों (यहाँ सिद्धांतीयों को पूर्वपक्षी बना दिया) का खंडन करता है सूत्रकार। और सिद्धान्त पक्ष में ये कहता है- ''**नेश्वरासिद्धे**'' ईश्वर की कोई सिद्धि नहीं है, कर्म करोगे तो फल तो मिल ही जाएगा। इसमें ईश्वर को मानने की आवश्यकता। [(**विज्ञानभिक्षुः**) **इत्थं तयोरीश्वरप्रतिषेधपरमर्थविधानमयुक्तमेव**] ब्रह्ममुनि जी कहते हैं इन दोनों ने ईश्वर का खंडन करते हुए जो अर्थ किया है वह अयुक्त है, [**ताभ्यां पूर्वसूत्रार्थेष्वीश्वरस्य स्वीकारात्, तं स्वीकृत्यार्थविधानात्**] इन दोनों ने तीसरे अध्याय में ईश्वर को स्वीकार किया है और यहाँ ये कहना की ईश्वर नहीं है ये कहना ठीक नहीं। तद्यथा - ''**अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात् - पारवश्यादुक्तं न तु परार्थत्वात्** जैसे कि -प्रकृति कार्य न होने पर भी उसका कार्य से योग हो जाता है, परवश होने से। यहाँ परवश होने के लिए कहाँ है, दूसरे के अधीन होने के लिए कहा है, [**स च कः परो यस्य वशे प्रकृतिः**] जिसके वश में प्रकृति है वह पर कौन है? [**परः - आत्मा पर- आत्मा है किंरूपः**] किस स्वरूप वाला है?, [**इत्याह - स हि सर्ववित् सर्वकर्ता, - ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा**''] वह सर्ववित है, सर्व कर्ता है, शक्तिमान है, ऐसे ईश्वर कही सत्ता सिद्ध है (**सांख्य० ३.५५-५७ अनिरुद्धः**) स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं कि यह पूर्वपक्षी तीसरे अध्याय में ब्रह्म को स्वीकार कर चुका है पुनः पांचवे अध्याय में भी यही स्वीकार करेंगे, उसका प्रमाण दे रहे हैं-**तथात्रेव पंचमाध्यायेऽग्रे**

(सांख्य० ३.५५-५७ अनिरुद्धः) तथात्रेव पंचमाध्यायेऽग्रे ''ब्रह्मनिरूपणाय अन्येषां तुल्यरूपमाह-समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता'' (सांख्य० ५-१६ अनिरुद्धः) अत्रानिरुद्धेन पर आत्मा सर्ववित् सर्वकर्ता तथा ब्रह्मनाम्ना स ईश्वरः स्वीकृतो हि । अथ विज्ञानभिक्षुरपि - ''तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत्'' (सांख्य० ११.९६) इति सूत्रे ''पुरुषस्य सन्निधानादेवाधिष्ठातृत्वं स्त्रष्टृत्वादिरूपमिष्यते...आदिपुरुषस्य संयोगमात्रेण प्रकृतेर्महत्तत्त्वरूपेण परिणमनम्... तथा चोक्तं निरिच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोहः प्रवर्तते । सत्तामात्रेण देवेन तथा चायं जगज्जनः । निरिच्छत्वादकर्ता कर्ता सन्निधिमात्रतः'' (विज्ञानभिक्षुः) अत्र विज्ञानभिक्षुणाऽऽदिपुरुष ईश्वरः प्रकृतेः परिणामकर्ता सन्निधिमात्रेणोक्तः, कर्ता स आदिदेवः सन्निधिमात्रेण स्वीकृतस्तथा कथम्भूतः ''स हि सर्ववित् सर्वकर्ता

''ब्रह्मनिरूपणाय अन्येषां तुल्यरूपमाह-समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता'' (सांख्य० ५-११६ अनिरुद्धः) इसी अध्याय में आगे कहेंगे कि ब्रह्म का निरूपण करने के लिए ब्रह्म के स्वरूप को बतलाने के लिए सूत्रकार अन्यों की ब्रह्म की तुलना करके समझाता है कि जैसे वो है वैसा ही ब्रह्म है, जीवात्मा तीन अवस्थाओं में ब्रह्म के तुल्य होता है समाधि-सुषुप्ति और मोक्ष में, समाधि में जीवात्मा को किसी प्रकार का दु:ख नहीं होता खूब आनन्द में रहता है और सुषुप्ति में भी सब दु:ख भूल जाता है प्रगाढ़ निद्रा चिन्ता मुक्त कर देती है कुछ काल के लिए, तथा मोक्ष में भी सब दु:खों से छूटकर परमानन्द को प्राप्त करता है। इस प्रकार से तीन अवस्थाओं में जीवात्मा दु:ख से छूट जाता है और सुख युक्त होता है ऐसा ही ब्रह्म भी दु:ख से रहित और सुख से युक्त है। (यहां ब्रह्म की उपमा देकर समझा रहे हैं ब्रह्म होना चाहिए तभी तो उपमा सार्थक होगी?) **[अत्रानिरुद्धेन पर आत्मा सर्ववित् सर्वकर्ता तथा ब्रह्मनाम्ना स ईश्वरः स्वीकृतो हि]** यहाँ अनिरुद्ध आचार्या ने ईश्वर को परमात्मा सर्ववित सर्वकर्ता और ब्रह्म नाम से स्वीकार किया ही है । और इसी प्रकार से विज्ञानभिक्षु जी ने भी स्वीकार किया है - **[''तत्सन्निधानादेवाधिष्ठातृत्वं मणिवत्'' (सांख्य० १.९६) इति सूत्रे ''पुरुषस्य सन्निधानादेवाधिष्ठातृत्वं स्त्रष्टृत्वादिरूपमिष्यते]** इस सूत्र की व्याख्या में विज्ञानभिक्षु जी ने लिखा है- पुरुष की सन्निधि निकटता होने से उसका अधिष्ठात्रित्व सिद्ध है क्योंकि प्रकृति उसके पास में है होने से वह प्रकृति का मालिक है ..**[आदिपुरुषस्य संयोगमात्रेण प्रकृतेर्महत्तत्त्वरूपेण परिणमनम्...]** आदिपुरुष (परमात्मा) का संयोग मात्र होने से (क्योंकि प्रकृति के साथ वह था ही) प्रकृति को महतत्व रूप से परिणित किया **[तथा चोक्तं निरिच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोहः प्रवर्तते । सत्तामात्रेण देवेन तथा चायं जगज्जनः]** ऐसा ही कहा भी है- जैसे जड़ चुंबक को रख दिया जाए उसकी परिधि में लोहे (जड़) को खींच लेता है जबकि दोनों ही जड़ हैं, इसी प्रकार से परमात्मा के द्वारा ये जगत बना दिया। **[निरिच्छत्वादकर्ता कर्ता सन्निधिमात्रतः'']** वैसे परमात्मा ने अपने लिए (स्वार्थ सिद्धि) जगत नहीं बनाया, फिर भी प्रकृति की निकटता, ईश्वर का सामर्थ्य और जीव के स्वार्थ के कारण जगत बना **[(विज्ञानभिक्षुः) अत्र विज्ञानभिक्षुणाऽऽदिपुरुष ईश्वरः प्रकृतेः परिणामकर्ता सन्निधिमात्रेणोक्तः]** यहाँ विज्ञानभिक्षु जी ने आदिपुरुष (ईश्वर) प्रकृति को जगत रूप में परिणाम करने वाला है और वह सन्निधि मात्र से जगत बनाने वाला है, इस प्रकार से ईश्वर को स्वीकार किया है, **[कर्ता स आदिदेवः सन्निधिमात्रेण स्वीकृतस्तथा कथम्भूतः]** वह कर्ता आदिदेव जिसने सन्निधि मात्र से जगत बनाया। वह कैसा है-**[''स हि सर्ववित् सर्वकर्ता - सर्वकर्तेश्वर आदिपुरुषो भवति...** वह सर्ववित् है, सर्वकर्ता, आदिपुरुष है **ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा]** ऐसे ईश्वर कि सत्ता सिद्ध है **[यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य**

- सर्वकर्तेश्वर आदिपुरुषो भवति... ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः सन्निधिमात्रेणेश्वरस्य सिद्धिस्तु श्रुतिस्मृतिषु सर्वसम्मता-अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।ईशानो भूतभव्यस्य...'' (सांख्य० ३. ५६, ५७ विज्ञानभिक्षुः) अत्र-आत्मनि विराजमानः पुरुषः सर्वज्ञः सर्वकर्ता सान्निध्यतः श्रुतिस्मृतिसम्मतः ।सर्वज्ञ एवमीश्वरः स्वीकृतोऽथ च सन्निधानात् सर्वकर्ताऽपि स्वीकृतस्ताभ्याम् ।तथाभूत ईश्वरस्तु खल्वत्रापि पञ्चमाध्याये स्वीकार्य एव नह्यस्वीकारेण भवितव्यम् ।अथ यत्तत्र भाष्ये प्रकृतिलयत्वमादिपुरुषत्वमिति विशेषणं तु ताभ्यां स्वकल्पनया हि दत्तं न तु सूत्रकृता, सूत्रशैल्या तु स एवेश्वरो यः परम्परया स्वीक्रियते तदेतत्पश्यन्तु खल्वस्मद्भाष्ये विपश्चितः । अतस्ताभ्यामीश्वरस्य खण्डनपरमर्थविधानमत्र पञ्चमाध्यायेऽयुक्तमेव, भेदस्तु खल्वियान् यत् पूर्वं तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य पुरुषस्य सन्निधिमात्रात् कर्तृत्वं सूचितं न स्वतः । अत्र तस्यैव नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य

ज्ञानमयं तपः जो सर्वज्ञ सर्ववित है वह ज्ञानमय है **सन्निधिमात्रेणेश्वरस्य सिद्धिस्तु श्रुतिस्मृतिषु सर्वसम्मता]** सन्निधि मात्र से ईश्वर को श्रुति-स्मृतियों में सब जगह स्वीकार किया है - **[अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।ईशानो भूतभव्यस्य...'']** जो परमात्मा अंगुष्ठमात्र है और वह जीवात्मा के अंदर रहता है तथा वह भूत भविष्यत सबका स्वामी है **[(सांख्य० ३.५६,५७ विज्ञानभिक्षुः) अत्र-आत्मनि विराजमानः पुरुषः सर्वज्ञः सर्वकर्ता सान्निध्यतः श्रुतिस्मृतिसम्मतः]** इन वाक्यों में विज्ञानभिक्षु ने स्वीकार किया है -वह जीवात्मा के अंदर विराजमान है, सर्वज्ञ है, सर्वकर्त्ता है, प्रकृति की सन्निधि से सृष्टि की रचना कर्ता है ऐसा श्रुति-स्मृति सम्मत है। **[सर्वज्ञ एवमीश्वरः स्वीकृतोऽथ च सन्निधानात् सर्वकर्ताऽपि स्वीकृतस्ताभ्याम्]** उन दोनों के द्वारा ईश्वर को स्वीकार किया गया है कि वह सर्वज्ञ है, सर्वकर्ता है। **[तथाभूत ईश्वरस्तु खल्वत्रापि पञ्चमाध्याये स्वीकार्य एव नह्यस्वीकारेण भवितव्यम्]** जैसे पहले (तीसरे अध्याय) में ईश्वर को स्वीकार किया था वैसे ही यहाँ पांचवे अध्याय में ईश्वर को स्वीकार करना था। **[अथ यत्तत्र भाष्ये प्रकृतिलयत्वमादिपुरुषत्वमिति विशेषणं तु ताभ्यां स्वकल्पनया हि दत्तं न तु सूत्रकृता]** और जो यहाँ वहाँ ईश्वर को प्रकृतिलय योग्यता वाला है और वह आदिपुरुष है ऐसा जो विशेषण दिया इन्होंने, ये विशेषण इन्होंने अपनी कल्पना से दिया है सूत्रकार ने ईश्वर को ऐसा नहीं कहा, **[सूत्रशैल्या तु स एवेश्वरो यः परम्परया स्वीक्रियते तदेतत्पश्यन्त खल्वस्मद्भाष्ये विपश्चितः]** सूत्र शैली से तो वही ईश्वर है जो परंपरा से स्वीकार किया जाता है, (सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, अजन्मा, निर्विकार) विद्वान लोग इस बात को देखें हमारे भाष्य में। **[अतस्ताभ्यामीश्वरस्य खण्डनपरमर्थविधानमत्र पञ्चमाध्यायेऽयुक्तमेव]** इसलिए उन दोनों के द्वारा जो खंडन परख अर्थ किया गया है पांचवे अध्याय में वो ठीक नहीं है गलत है, **[भेदस्तु खल्वियान् यत् पूर्वं तु नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य पुरुषस्य सन्निधिमात्रात् कर्तृत्वं सूचितं न स्वतः]** भेद सिर्फ इतना है कि पहले तो परमात्मा को सृष्टि कर्ता स्वीकार किया गया, वह इस आधार पर किया कि वह नित्य शुद्ध-बुद्ध -मुक्त-स्वभाववाला है उसका अपना कोई स्वार्थ न होते हुए भी क्योंकि प्रकृति के निकट है और सृष्टि बनाने में समर्थ है। **[अत्र तस्यैव नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य जीवेभ्यः कर्मापेक्षं फलप्रदातृत्वं न स्वतः, इति प्रतिपाद्यते]** और यहाँ पांचवे अध्याय में ईश्वर के संदर्भ में कहा गया कि परमात्मा नित्य-शुद्ध -बुद्ध-मुक्त स्वभाववाला होते हुए भी यहाँ पुरुष विशेष ईश्वर का जो फल प्रदातृत्व है वो

पुरुषविशेषस्येश्वरस्य जीवेभ्यः कर्मापेक्षं फलप्रदातृत्वं न स्वतः, इति प्रतिपाद्यते । फलप्रदाने स ईश्वरो न सर्वथा स्वतन्त्रः किन्तु कर्मापेक्षः फलप्रदाता स इत्येव लक्ष्यमत्र । अथेदानीं सूत्राण्यर्थाप्यन्तेऽस्माभिः ।

मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ।।१।।

(मंगलाचरण्) पूर्वानन्तराध्यायस्यान्तिमसूत्रे ''न भूतियोगे कृतकृत्यता'' विभूतियोगे सिद्धियोगे योगप्रतिपादितसाधनैः सिद्धिप्राप्तौ कृतकृत्यता नेत्युक्तं तद्विषयेऽत्रानुविधीयते यत्तत्र योगसाधनेषु खल्वपि यन्मंगलाचरणं मंगलानां सर्वप्राणिमंगलकारिणामहिंसासत्यादीनां कर्मणामाचरणमनुष्ठानं स्वात्मीकरणं तु नितान्तमावश्यकं मुमुक्षुणा विवेकिनाऽपि यतस्तदनुष्ठानाद् भवति हि कृतकृत्यता नात्र सन्देहः, तच्चेदं वृत्तम् (शिष्टाचारात् फलदर्शनात्-श्रुतितः-च-इति) शिष्टाचारात्-शिष्टानामाचरणात्, फलदर्शनात्

जीवात्मा के कर्मों के आधार पर देता है, स्वतः नहीं। [**फलप्रदाने स ईश्वरो न सर्वथा स्वतन्त्रः किन्तु कर्मापेक्षः फलप्रदाता स इत्येव लक्ष्यमत्र**] फल देने में ईश्वर सर्वथा स्वतंत्र नहीं है, किन्तु कर्मों के आधार पर फल प्रदाता है, यहाँ इतना लक्ष्य मात्र है। [**अथेदानीं सूत्राण्यर्थाप्यन्तेऽस्माभिः**] इतनी भूमिका बनाकर के अब हमारे द्वारा सूत्रों के अर्थ किए जाएंगे।

मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ।।१।।

सूत्रार्थ= मंगल कर्मों का आचरण करना चाहिए, क्यों?- उत्तम बुद्धिमान लोगों के द्वारा आचरण किए जाने से, शास्त्रों में फल का देखे जाने से, श्रुति में विधान होने से।

[**(मंगलाचरण्) पूर्वानन्तराध्यायस्यान्तिमसूत्रे ''न भूतियोगे कृतकृत्यता'' विभूतियोगे सिद्धियोगे योगप्रतिपादितसाधनैः सिद्धिप्राप्तौ कृतकृत्यता नेत्युक्तं**] अभी पूर्व अध्याय के अंतिम सूत्र में ''बहुत सारी सिद्धियाँ प्राप्त करने पर भी कृतकृत्यता नहीं मानी जाती'' [**तद्विषयेऽत्रानुविधीयते**] उस विषय में यहाँ और बताया जाता है [**यत्तत्र योगसाधनेषु खल्वपि यन्मंगलाचरणं मंगलानां सर्वप्राणिमंगलकारिणामहिंसासत्यादीनां कर्मणामाचरणमनुष्ठानं स्वात्मीकरणं तु नितान्तमावश्यकं मुमुक्षुणा विवेकिनाऽपि यतस्तदनुष्ठानाद् भवति हि कृतकृत्यता नात्र सन्देहः**] योग साधनों में जो भी मंगलाचरण है, सभी प्राणियों का जो मंगलकारी अहिंसा का पालन सत्य का पालन आदि जो यम-नियम हैं इनका अनुष्ठान मुमुक्षु को नितांत आवश्यक है, अवश्य ही करना चाहिए, यम-नियमों का पालन करने से ही विवेकी को सफलता मिलती है इसमें कोई संदेह नहीं है, [**तच्चेदं वृत्तम् (शिष्टाचारात् फलदर्शनात्-श्रुतितः-च-इति) शिष्टाचारात्-शिष्टानामाचरणात्**] इस बात को कहने के तीन हेतु है- पूर्वज जो सफल, योगी, साधक, चरित्रवान व्यक्ति थे उनके जीवन में ये (यमों के पालन का) शिष्टाचार दिखता था, **फलदर्शनात् तत्फलप्रतिपादनात्** शास्त्रों में इन कर्मों का फल देखे जाने से, **श्रुतितः श्रुतिविधानाच्चेति हेतुत्रयात् सिध्यति** तीसरा श्रुतियों का विधान है अहिंसा आदि का पालन करना चाहिए। [**तत्र शिष्टाचारः-शिष्टानामाचारः**] इन तीन हेतुओं में पहले शिष्टाचार है- शिष्ट व्यक्तियों का आचरण, [**सन्ति हि ''शिष्टाः खलु विगतमत्सरा निरहंकाराः कुम्भीधान्या अलोलुपा दम्भदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः''(बौधायनधर्मसू० १.१.५)**] शिष्टों के विषय में कहा वे विगत्मत्सर होते हैं (मत्सर कहते हैं जलन को,वो लोग किसी से जलने वाले नहीं होते)

तत्फलप्रतिपादनात्, श्रुतितः श्रुतिविधानाच्चेति हेतुत्रयात् सिध्यति । तत्र शिष्टाचारः-शिष्टानामाचारः, सन्ति हि''शिष्टाः खलु विगतमत्सरा निरहङ्काराः कुम्भीधान्या अलोलुपा दम्भदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः'' (बौधायनधर्मसू० १.१.५) तैः शिष्टैराचरितत्वात् सर्वैरपि शिष्टैर्महात्मभिर्ऋषिभिराचरितत्वात् । फलदर्शनात् तथाभूतानामहिंसादिमंगलाचाराणां तथैव योगदर्शने फलं प्रदर्श्यते तस्मात् । तद्यथा ''अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः, सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्, अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्, ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः, अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः, शौचात्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः- सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च, सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः, कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः, स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः, समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्''(योग०

और वह अहंकारी नहीं होते, एक मटका अनाज रखते हैं अर्थात् अन्न आदि का अधिक संग्रह नहीं करते। लोभी प्रकृति के नहीं होते, दम्भ= नाटक दिखावा आदि नहीं करते, दर्प= विद्या का अभिमान नहीं करते, लोभ=वस्तु धन आदि का लोभ नहीं करते, मोह= अविद्या से रहित रहते हैं, क्रोध= लड़ाई-झगड़ा करने वाले नहीं होते। ऐसे शिष्ट जन अहिंसा का पालन करते देखे जाते हैं, इसलिए हमको भी उनका अनुकरण करना चाहिए । **तैः शिष्टैराचरितत्वात् सर्वैरपि शिष्टैर्महात्मभिर्ऋषिभिराचरितत्वात्**] इन शिष्टों के द्वारा आचरण किया गया है, सभी शिष्टों, महात्माओं, ऋषियों के द्वारा आचरण किया गया है। [**फलदर्शनात् तथाभूतानामहिंसादिमंगलाचाराणां तथैव योगदर्शने फलं प्रदर्श्यते तस्मात्**] फल दर्शन होने से। उस प्रकार के अहिंसा आदि मंगलाचरणों का उस क्रम से योगदर्शन में फल दिखलाया गया है इसलिए हमको फल की प्राप्ति के लिए इन यमों का पालन करना चाहिए। [**तद्यथा ''अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः,**] अहिंसा का पालन करने पर जो व्यक्ति अहिंसक के पास आएगा उसके उपदेश सुनेगा उस पर श्रद्धा रखेगा, तो उसका भी वैरत्याग हो जाएगा द्वेष को छोड़ देगा [**सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्**] जब जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा हो जाती है तब उसकी सब क्रियाए सफल हो जाती हैं, [**अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्**] अस्तेय का पालन करने से सब रत्नों (उत्तम-उत्तम पदार्थ) की प्राप्ति होती है, [**ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः**] ब्रह्मचर्य का पालन करने पर शक्ति (शारीरिक बौद्धिक बल)की प्राप्ति होती है, [**अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः अपरिग्रह**] की स्थिरता होने पर जन्म-मरण, आत्म-शरीर इन बातों को जानने की इच्छा तीव्र हो जाती है ,[**शौचात्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः-सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च**] जब व्यक्ति आंतरिक शुद्धि करता है तो उससे अंतःकरण की शुद्धि हो जाती है उसके शुद्ध होने से मन प्रसन्न हो जाता है मन के प्रसन्न होने से एकाग्रता बढ़ती है तो इंद्रियों पर विजय प्राप्त होती है जिससे आत्मा परमात्मा को देखने की योग्यता बढ़ती है ये शौच का पालन करने का लाभ है, [**सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः**] संतोष करने से सुख लाभ होता है, [**कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः**] तप करने से अशुद्धि का क्षय होता है, शरीर मन इंद्रियों में जो कमजोरी है वह दूर हो जाती है जिससे इन सब में बल आ जाता है, [**स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः**] स्वाध्याय करने से इष्ट देव का संप्रयोग उसका ज्ञान होता है, [**समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्''**] ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है। ये यम-नियमों के मंगल आचरणों के लाभ बताए [**(योग० २.३५-४५) श्रुतितःश्रुतिविधानात् खल्वपि** श्रुतियों में विधान किया गया है - **''मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे''**]

२.३५-४५) श्रुतितःश्रुतिविधानात् खल्वपि - ''मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे''(यजु०३६.१८)''तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीय-स्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासन्त'' (ऋ० ७.१०४.१२) ''न स्तेयमद्मि'' (अथर्व० १४.१.५७) ''ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत'' (अथर्व० ११.५.१७) ''मा गृधः कस्यस्विद् धनम्'' (यजु० ४०.१) इति हेतुत्रयात् तन्मंगलाचरणं तु खल्वनिवार्यत्वेनानुष्ठेयम् ।।१।।

भवतु मंगलाचरणं मंगलानामहिंसादिकर्मणामाचरणं शिष्टाचारस्तथा च तन्मंगलानामाचरणं श्रुतिविहितं च परन्तु फलप्रदर्शनाद् यत्फलप्रदर्शनमुक्तं तन्न युक्तं नहि मंगलाचरणरूपाहिंसादिकर्माधीनं फलं सम्पद्यते किन्तु फलं त्वीश्वराधीनमेव तस्याधिष्ठातृत्वे हि जीवात्मानः फलं भुञ्जते स हि फलप्रदाता

सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें, मैं सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ [(**यजु० ३६.१८**) **''तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीय-स्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासन्''(ऋ० ७.१०४.१२)**] संसार में दो वस्तु हैं एक सत्य दूसरी असत्य। उन दोनों में से जो सत्य हो वह सरल है, शांति सुख देने वाला राजा सोम निश्चित रुप से सत्य को स्वीकार करने वाली की रक्षा करता है और झूठ बोलने वाले को मारता है [**''न स्तेयमद्मि''(अथर्व० १४.१.५७)**]मैं चोरी करके नहीं खाऊँगा [**''ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत''(अथर्व० ११.५.१७)**] ब्रह्मचर्य की तपस्या करके देवों ने मृत्यु को भी मार डाला [**''मा गृधः कस्यस्विद् धनम्'' (यजु० ४०.१)**] लोभ मत करो यह धन तो ईश्वर का है [**इति हेतुत्रयात् तन्मंगलाचरणं तु खल्वनिवार्यत्वेनानुष्ठेयम्**] इस तीन प्रकार के हेतुओं से मंगलचारण का पालन निश्चित रूप से करना चाहिए ।।१।।

[**भवतु मंगलाचरणं मंगलानामहिंसादिकर्मणामाचरणं शिष्टाचारस्तथा च तन्मंगलानामाचरणं श्रुतिविहितं च**] ठीक है मंगलाचरण अर्थात् मंगल= जो अच्छे-अच्छे कर्म हैं अहिंसादि। इनको हम शिष्टाचार नाम से मान लेते हैं और जो मंगल कर्मों का आचरण है वह श्रुति में भी बताया गया । (परंतु तीन हेतुओं में से एक हेतु पर यहाँ चर्चा होती है) [**परन्तु फलप्रदर्शनाद् यत्फलप्रदर्शनमुक्तं तन्न युक्तं**] परंतु जो आपने फलप्रदर्शन कहा वह युक्त नहीं है [**नहि मंगलाचरणरूपाहिंसादिकर्माधीनं फलं सम्पद्यते**] जो कर्मों के फल के संदर्भ में कहा कि अहिंसादि मंगलाचरणरूपी कर्म करने से फल मिलता है। यह ठीक नहीं लगा [**किन्तु फलं त्वीश्वराधीनमेव**] किन्तु फल तो ईश्वर के अधीन है ईश्वर की मर्जी से फल मिलता है [**तस्याधिष्ठातृत्वे हि जीवात्मानः फलं भुञ्जते स हि फलप्रदाता**] ईश्वर के अधिकार से ही जीवात्माएँ अपना अपना फल भोगती हैं। [**उक्तं च ''यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।''(ऋ० १०.१२५.५)**] वेद में ऐसा कहा भी है- जिस जिसकों मै चाहता हूँ उस उसको तेजस्वी बना देता हूँ, उसको ब्रह्मा बना देता ऋषि बना देता हूँ [**''इन्द्रो विश्वस्य राजति शन्नोऽस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।''(यजु० ३६.८)**] और प्रमाण दिया-इंद्र सारे जगत का राजा है, हम प्रार्थना करते हैं- हे ईश्वर! आप दो पैर और चार पैरों वालों की रक्षा करो सुख दीजिए [**''यो विदधाति कामान् तत्कारणम्''(श्वेता० ६.१३)**] जो सबकी कामनाए पूर्ण करता है वही इस जगत का कारण है [**अत्रोच्यते -**] इस पर सिद्धांती उत्तर देते हैं-

। उक्तं च ''यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।'' (ऋ० १०.१२५.५) ''इन्द्रो विश्वस्य राजति शन्नोऽस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।'' (यजु०३६.८) ''यो विदधाति कामान् तत्कारणम्'' (श्वेता० ६.१३) अत्रोच्यते -

नेश्वराधिष्ठिते फलसम्पत्तिः * कर्मणा तत्सिद्धेः ।।२।।

(ईश्वराधिष्ठिते फलसम्पत्तिः-न) ईश्वरस्याधिष्ठितम्, अधिष्ठितमधिष्ठानम् ''नपुंसके भावे क्तः'' (अष्टा०३.३.११४) केवलमीश्वराधिष्ठाने फलसम्पत्तिर्न भवति । यतः (कर्मणा तत्सिद्धेः) कर्मणा हीश्वराधिष्ठानसिद्धेः, जीवात्मनां कर्मापेक्षं हि खल्वीश्वराधिष्ठानस्य सिद्धिरस्ति न कर्मणा विना । उक्तं यथा ''यदंग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि'' (ऋ० १.१.६) दाशुषे दत्तवते कर्मसूचना, तथा ''एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः (श्वेताश्वतर० ६.११) स्पष्टमुच्यते हि स ईश्वरः कर्माध्यक्षः कर्मानुसारेण फलप्रदाता । अन्यच्च ''पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन'' (बृह० ४.४.२) तस्मान्नेश्वरः कर्मानपेक्षः फलप्रदाता ।।२।।

नेश्वराधिष्ठिते फलसम्पत्तिः * कर्मणा तत्सिद्धेः ।।२।।

सूत्रार्थ= केवल ईश्वर के अधिकार में फल प्रदान करना नहीं है, ईश्वर में जीवों के कर्मों के अनुसार ही फल दातृत्व सिद्ध होने से।

[**(ईश्वराधिष्ठिते फलसम्पत्तिः-न) ईश्वरस्याधिष्ठितम्, अधिष्ठितमधिष्ठानम् ''नपुंसके भावे क्तः''**] अधिष्ठितम शब्द में ''क्त'' प्रत्यय है किन्तु यहाँ अर्थ भाव वाचक है [**(अष्टा० ३.३.११४) केवलमीश्वराधिष्ठाने फलसम्पत्तिर्न भवति**] केवल ईश्वर के अधीन फल संपत्ति=प्राप्ति नहीं है। [**यतः (कर्मणा तत्सिद्धेः) कर्मणा हीश्वराधिष्ठानसिद्धेः**] क्योंकि कर्म के द्वारा ही ईश्वर को फल देने का अधिकार होता है, [**जीवात्मनां कर्मापेक्षं हि खल्वीश्वराधिष्ठानस्य सिद्धिरस्ति न कर्मणा विना**] जीवात्मा के कर्मों की अपेक्षा= आधार पर ही ईश्वर को फल देने का अधिकार है, जीवों के कर्मों के बिना नहीं। [**उक्तं यथा ''यदंग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि''(ऋ० १.१.६)**] जैसा कि वेद में कहा भी है-हे प्रिय परमेश्वर! आप उत्तम कर्म करने वाले यज्ञादि दान देने वाले का कल्याण करेंगे ही (जो कर्म करेगा उसको फल देगा ईश्वर) [**दाशुषे दत्तवते कर्मसूचना**] दाशुषे का अर्थ है दान देने वाला। इस शब्द में कर्म सूचना है (कि कर्म के आधार पर फल मिल रहा है), [**तथा ''एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः स्पष्टमुच्यते हि स ईश्वरः कर्माध्यक्षः कर्मानुसारेण फलप्रदाता**] और कहा है- वह देव एक ही है जो सर्वभूतों में बसा है सर्वव्यापी है सर्वान्तर्यामी है सभी के कर्मों का अध्यक्ष है तथा कर्मों के अनुसार फल देने वाला है । [**अन्यच्च ''पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन''(बृह० ४.४.२)**] अन्यत्र भी कहा है- जो पुण्य कर्म करता है वह पुण्यात्मा हो जाता है और जो पाप कर्म करता है, वह पापात्मा कहलाता है [**तस्मान्नेश्वरः कर्मानपेक्षः फलप्रदाता**] इसलिए ईश्वर जो फल प्रदाता है वह फल अनपेक्ष नहीं है (कर्म को छोड़कर फल नहीं देता) ।।२।।

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते - तीसरे सूत्र में पूर्वपक्षी कहता है-

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत् ।।३।।

(स्वोपकारात्-अधिष्ठानं लोकवत्) ईश्वरः स्वामी, स्वामी च स्वानां भवति तर्हि तस्येश्वरस्य ये सन्ति स्वरूपा जीवात्मानस्तेषामुपकारादुपकारकरणहेतोस्तस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वं भवतु लोकवत्, यथा लोके गृहपतेः परिवारस्वामिनः स्वान् भार्यापुत्रादीनुपकर्तुमधिष्ठातृत्वं भवति कर्मणा विनाऽपि तद्वदीश्वरस्यापि कर्मणा विनाऽधिष्ठातृत्वमस्तु। इदमपि सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चान्यथा व्याख्यातमत्र खलु पूर्वसूत्रस्थकर्मणा शब्दमाश्रित्य पूर्वपक्षेण भवितव्यम् ।।३।।

तत्रैव पूर्वपक्षे पुनरुच्यते -

लौकिकेश्वरवदितरथा ।।४।।

स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत् ।।३।।

सूत्रार्थ= ईश्वर सब जीवों का स्वामी है, और जो स्वामी होता है, वह बिना कार्य कराए अपने स्वजनों का उपकार करता है । गृहपति के समान। वैसे ही ईश्वर भी विना कर्म के जीवात्माओं को फल देने वाला हो जावे।

[**(स्वोपकारात्-अधिष्ठानं लोकवत्) ईश्वरः स्वामी, स्वामी च स्वानां भवति**] ईश्वर स्वामी है रक्षक है, अधिष्ठाता है, और स्वामी किसी स्व (अपने) का होता है [**तर्हि तस्येश्वरस्य ये सन्ति स्वरूपा जीवात्मानस्तेषामुपकारादुपकारकरणहेतोस्तस्येश्वरस्याधिष्ठातृत्वं भवतु लोकवत्**] इसलिए उस ईश्वर के जो स्वरूप है (वह उसके अपने है ईश्वर स्वामी है और जीवात्माएँ उसका स्व है) उन स्व रूपी जीवात्माओं के उपकार के लिए, उनका उपकार करने के कारण से ईश्वर का अधिष्ठातित्व हो जावे, जैसे संसार में देखा जाता है, [**यथा लोके गृहपतेः परिवारस्वामिनः स्वान् भार्यापुत्रादीनुपकर्तुमधिष्ठातृत्वं भवति**] जैसे संसार में परिवार के स्वामी का पत्नी-पुत्र आदि का वह अधिकारी होता है और वह अपने परिवारजनों का उपकार भी करता है [**कर्मणा विनाऽपि तद्वदीश्वरस्यापि कर्मणा विनाऽधिष्ठातृत्वमस्तु**] जैसे कर्मों के विना गृहपति सबका अधिष्ठाता होता है और सबको फल देता है, वैसे ही कर्मों के बिना ईश्वर भी सबका अधिष्ठाता हो जाए। [**इदमपि सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चान्यथा व्याख्यातमत्र**] यह सूत्र भी अनिरुद्धवृत्ति और विज्ञानभिक्षु भाष्य में ठीक से व्याख्यात नहीं हुआ [**खलु पूर्वसूत्रस्थकर्मणा शब्दमाश्रित्य पूर्वपक्षेण भवितव्यम्**] यहाँ पूर्वसूत्र में विद्यमान जो कर्मणा शब्द है, उसके आधार पर ही यहाँ पूर्वपक्ष होना चाहिए ।।३।।

तत्रैव पूर्वपक्षे पुनरुच्यते - इसी विषय में पूर्वपक्षी और कहता है-

लौकिकेश्वरवदितरथा ।।४।।

(इतरथा) अन्यथा यदि स ईश्वरः स्वान् भार्यापुत्रादीन् नोपकुर्वीत तर्हि (लौकिकेश्वरवत्) लौकिकानां पदार्थानामीश्वरः स्वामी भूमिस्वामी धनस्वामी यथा भवति तथा स्यात्, तिष्ठतु तथाभूत ईश्वरः कृपणः किं तेनेश्वरेण यद्वा किं तस्यैश्वर्येण ।।४।।

पुनरपि तत्रैव -

पारिभाषिको वा ।।५।।

(वा) अथवा स निरुपकारकः खल्वीश्वरो भवतु पारिभाषिकः कथनमात्रो वाचनिको नाममात्रो वा काष्ठधेनुवद् यो नोपकुर्वीत। परिभाषा-निन्दा, तद्भाक्-निन्दाभागुपहासभाक्-स्यात् ।।५।।

अथ समाधत्ते -

न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात् ।।६।।

(तत्सिद्धिः-रागात्-ऋते न) कर्माण्यनपेक्ष्योपकारसाधनं रागमन्तरा न सम्भवति

सूत्रार्थ= यदि ईश्वर बिना कर्म किए जीवों को फल नहीं देता तो वह लौकिक सेठ के समान कंजूस होगा।

[(इतरथा) अन्यथा यदि स ईश्वरः स्वान् भार्यापुत्रादीन् नोपकुर्वीत तर्हि] यदि वह ईश्वर अपने पत्नी बच्चों को न खिलाए पिलाए उपकार न करे **[(लौकिकेश्वरवत्) लौकिकानां पदार्थानामीश्वरः स्वामी भूमिस्वामी धनस्वामी यथा भवति तथा स्यात्]** (यदि कोई व्यक्ति पत्नी बच्चों का पालन न करे तो उसे अच्छा नहीं मानते) संसार में अनेक पदार्थों का स्वामी भूमि का स्वामी धन का स्वामी होता है यदि वह इनको अपने स्वजनों को न देवे तो उसका स्वामी होने का क्या अर्थ है, **[तिष्ठतु तथाभूत ईश्वरः कृपणः किं तेनेश्वरेण यद्वा किं तस्यैश्वर्येण]** ऐसा कंजूस ईश्वर से क्या लाभ? उससे हमें क्या लाभ? वह कैसा ईश्वर और फिर कैसा उसका ऐश्वर्य?।।४।।

पुनरपि तत्रैव - और इसी विषय में कहता है पूर्वपक्षी-

पारिभाषिको वा ।।५।।

सूत्रार्थ= बिना उपकार वाला ईश्वर कथन मात्र का होगा, लकड़ी की गाय के समान।

[(वा) अथवा स निरुपकारकः खल्वीश्वरो भवतु पारिभाषिकः कथनमात्रो वाचनिको नाममात्रो वा काष्ठधेनुवद् यो नोपकुर्वीत] अथवा ऐसा ईश्वर जो हमारा उपकार नहीं करेगा, वह तो पारिभाषिक मात्र होगा, नाम मात्र का कहने मात्र का होगा जैसे लकड़ी की गाय (लकड़ी की गाय से कोई लाभ नहीं ऐसे ही ईश्वर से क्या लाभ)। **परिभाषा-निन्दा, तद्भाक्-निन्दाभागुपहासभाक्-स्यात्** यहाँ परिभाषा शब्द से तात्पर्य है निंदा मज़ाक उड़ाना।।५।।

अथ समाधत्ते - अब समाधान करते हैं =सिद्धांती कहता है-

न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात् ।।६।।

(प्रतिनियतकारणत्वात्) कर्मानपेक्षितोपकारे रागः प्रतिनियतकारणमनिवार्यकारणमस्ति तस्मात् कर्मापेक्षं तस्येश्वरत्वम् ।।६।।

पुनश्च -

तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः ।।७।।

(अपि तद्योगे) अपिः सम्भावनायाम् । सम्भवे तद्योगे रागयोगे, यदि तस्येश्वरस्य रागेण सह योगः सम्बन्धः सम्भवो यद्वा तस्मिन्नीश्वरे रागस्य योगः, सम्भवति तर्हि (नित्यमुक्तः-न) स नित्यमुक्तो न स्यात्, प्रतिपाद्यते हि स खल्वीश्वरो नित्यमुक्तः ''स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वरः'' (योग० १.२४ व्यासः) उक्तं हि पूर्वमत्रापि ''नित्यमुक्तत्वम्'' (सांख्य० १.१६२) ।।७।।

पक्षान्तरं निराकरोति -

प्रधानशक्तियोगाच्चेत् संगापत्तिः ।।८।।

सूत्रार्थ= राग के बिना मुफ्त में सुख देने की सिद्धि नहीं हो सकती, राग उसमें नियत=अनिवार्य करना होने से।

[**(तत्सिद्धिः-रागात्-ऋते न) कर्माण्यनपेक्ष्योपकारसाधनं रागमन्तरा न सम्भवति**] पूर्वपक्षी ने अपनी बात को बल, युक्ति, तर्क पूर्वक प्रस्तुत किया। अब सिद्धांती पक्ष रखते हैं-जो कर्मों के बिना ही किसी को सुख देना होता है यह राग के बिना संभव नहीं [**(प्रतिनियतकारणत्वात्) कर्मानपेक्षितोपकारे रागः प्रतिनियतकारणमनिवार्यकारणमस्ति तस्मात् कर्मापेक्षं तस्येश्वरत्वम्**] बिना कर्म किए फल देना उपकार करना इसमें राग नियत कारण है, इसलिए ईश्वर जो कर्मफल प्रदाता है, वह कर्म के आधार पर है, ईश्वर में राग नहीं है ।।६।।

पुनश्च - सिद्धांती फिर कहता है-

तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः ।।७।।

सूत्रार्थ= ईश्वर में राग का सम्बंध मानने पर वह सर्वथा मुक्त नहीं रह पाएगा। इसलिए राग नहीं मान सकते।

[**(अपि तद्योगे) अपिः सम्भावनायाम्**] सूत्र में ''अपि'' शब्द है, ये संभावना अर्थ में नहीं अपितु संभव अर्थ में है। [**सम्भवे तद्योगे रागयोगे, यदि तस्येश्वरस्य रागेण सह योगः सम्बन्धः सम्भवो यद्वा तस्मिन्नीश्वरे रागस्य योगः, सम्भवति तर्हि (नित्यमुक्तः-न) स नित्यमुक्तो न स्यात्**] यदि ईश्वर में राग का योग मान लिया जाए, तो उस ईश्वर का राग के साथ सम्बंध हो जाएगा, राग का सम्बंध मान लेने पर वह नित्यमुक्त नहीं रह पाएगा, [**प्रतिपाद्यते हि स खल्वीश्वरो नित्यमुक्तः**] जबकि शास्त्रों में उसे नित्यमुक्त बताया है [**''स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वरः''(योग० १.२४ व्यासः)**] योगदर्शन के व्यासभाष्य में कहा- ईश्वर सदा से ही नित्यमुक्त है [**उक्तं हि पूर्वमत्रापि ''नित्यमुक्तत्वम्''(सांख्य० १.१६२)**] और इस दर्शन में भी

(प्रधानशक्तियोगात्-चेत्) प्रधानस्याव्यक्तस्य प्रकृत्याख्यस्य या शक्तिर्भोगप्रदानप्रवृत्तिस्तया सह सम्बन्धत्वात् तया बाध्यमानत्वादीश्वरस्य स्वतन्त्रं कर्मनिरपेक्षमधिष्ठातृत्वं फलप्रदाने, इति चेत् कल्प्येत तर्हि (संगापत्तिः) प्रधानस्य प्रवृत्तिशक्त्या सह स सक्तो भविष्यतीति संगापत्तिः, असंगाश्च स उच्यते ''स यत् तत्र किञ्चित् पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवति, असंगो ह्ययं पुरुषः'' (बृह० ४.३.५) ।।८।।

पुनरपरपक्षं निराकरोति –

सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम् ।।९।।

(सत्तामात्रात्-चेत्-सर्वैश्वर्यम्) अस्ति हि प्रकृतितो भिन्ना चेतनसत्ता तस्येश्वरस्य यद्वा प्रकृतिभिन्ना चेतना हीश्वरसत्ता, सत्तामात्रात्सत्तासद्भावात्तस्याः सत्तायाः स्वधर्मवत्त्वेन भवितव्यमेव तच्च स्वधर्मवत्त्वं कर्मनिरपेक्षं स्वतन्त्रं फलप्रदातृत्वमिति चेदुच्येत तर्हि सर्वेषां प्रकृतितो भिन्नानां सत्तावतां चेतनानां

पहले अध्याय में कहा गया- ईश्वर सदा नित्यमुक्त है ।।७।।

पक्षान्तरं निराकरोति - अब अन्य पक्ष का खंडन करता है सूत्रकार-

प्रधानशक्तियोगाच्चेत् संगापत्तिः ।।८।।

सूत्रार्थ= यदि कोई ऐसा माने कि प्रकृति की भोग देने वाली शक्ति से प्रेरित होकर ईश्वर -जीवात्माओं को बिना कर्म किए ही फल देता है तो ईश्वर में प्रकृति से प्रभावित होने (दबने) का दोष आएगा।

[(प्रधानशक्तियोगात्-चेत्) प्रधानस्याव्यक्तस्य प्रकृत्याख्यस्य या शक्तिर्भोगप्रदानप्रवृत्तिस्तथा सह सम्बन्धत्वात् तया बाध्यमानत्वादीश्वरस्य स्वतन्त्रं कर्मनिरपेक्षमधिष्ठातृत्वं फलप्रदाने] प्रधान (प्रकृति) अव्यक्त है प्रकृति नाम वाली है उसकी एक शक्ति है वह जीवात्माओं को भोग प्रदान करने वाली है, इस भोग देने वाली प्रवृत्ति से परमात्मा सम्बद्ध हो जाता है ऐसा पूर्वपक्षी कह रहा है। वह प्रवृत्ति ईश्वर को बाध्य करती है जिसके कारण ईश्वर प्रकृति के दबाव से जीवात्माओं को बिना कर्म किए ही फल देते रहते हैं। ऐसा पूर्वपक्ष है , **इति चेत् कल्प्येत तर्हि** यदि कोई ऐसी कल्पना करे (कि जीव के कर्म के आधार पर ईश्वर ने सृष्टि नहीं बनाई ये तो प्रकृति के दवाव के कारण बनाई) **[(संगापत्तिः) प्रधानस्य प्रवृत्तिशक्त्या सह स सक्तो भविष्यतीति संगापत्तिः]** प्रधान=प्रकृति कि प्रवृत्ति शक्ति के कारण वह= ईश्वर दब जाएगा। कमजोर माना जाएगा ईश्वर को, ऐसा मानना दोष युक्त है, **[असंगाश्च स उच्यते]** जबकि परमात्मा को असंग बताया गया है वह किसी के दवाव से दबता नहीं है **[''स यत् तत्र किञ्चित् पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवति, असंगो ह्ययं पुरुषः''(बृह० ४.३.५)]** वह जो कुछ भी देखता है उससे असम्बद्ध=असंग रहता है,अप्रभावित रहता है, क्योंकि वह असंग है सबसे अलग है किसी से दबता नहीं ।।८।।

पुनरपरपक्षं निराकरोति - फिर अगले पक्ष का खंडन करते हैं-

सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम् ।।९।।

जीवात्मनामपीश्वरत्वमापततीति दोषापातो यतस्तेऽपि प्रकृतिभिन्नाश्चेतनसत्तावन्तस्ततः स्वयमेवेश्वरमनपेक्ष्य भोगं भोक्ष्यन्ते । तस्मात् कर्मनिरपेक्षमीश्वरस्य फलसम्पत्तौ नाधिष्ठातृत्वम् ।।९।।

तथाभूतस्य कर्मनिरपेक्षफलप्रदातुरीश्वरस्य –

प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः ।।१०।।

(प्रमाणाभावात् तत्सिद्धिः-न) तथाभूतस्य कर्मनिरपेक्षफलप्रदातुरीश्वरस्य सिद्धिर्नास्ति प्रमाणाभावात् प्रत्यक्षप्रमाणाभावात् । न हि प्रत्यक्षं कश्चिदीश्वरो जनेश्वरः कर्मनिरपेक्षः पुरस्कारं दण्डं वा कस्मैचित् प्रयच्छति । अत्र प्रमाणशब्दात् प्रत्यक्षं प्रमाणमभिप्रेयतेऽग्रेऽनुमानशब्दप्रमाणयोः प्रतिपादनात् ।।१०।।

सूत्रार्थ=यदि ईश्वर की चेतन सत्ता मात्र से जीवों को फल मिल जाता हो और जीव कर्म न करे तब तो सब जीवों की चेतन सत्ता होने से सब जीव ईश्वर ही बन जाएंगे। और स्वयं फल भोग लेंगे।

[(सत्तामात्रात्-चेत्-सर्वैश्वर्यम्) अस्ति हि प्रकृतितो भिन्ना चेतनसत्ता तस्येश्वरस्य यद्वा प्रकृतिभिन्ना चेतना हीश्वरसत्ता] प्रकृति से एक अलग अस्तित्व है ईश्वर का अथवा प्रकृति से भिन्न ईश्वर की सत्ता अलग है, **[सत्तामात्रात्सत्तासद्भावात्तस्याः सत्तायाः स्वधर्मवत्त्वेन भवितव्यमेव तच्च स्वधर्मवत्त्वं कर्मनिरपेक्षं स्वतन्त्रं फलप्रदातृत्वमिति चेदुच्येत]** यदि ऐसा कोई कहे कि- ईश्वर और प्रकृति दो अलग अलग पदार्थ हैं उसकी अलग सत्ता मात्र मानने के लिए कोई विशेष धर्म उसका होना चाहिए, और वो धर्मवत्व क्या है? वो है -''बिना कर्मों की अपेक्षा किए स्वतंत्र रूप से फल देना'' अर्थात् सत्तामात्र से कर्मों का फल देना। ऐसा कोई कहे **[तर्हि सर्वेषां प्रकृतितो भिन्नानां सत्तावतां चेतनानां जीवात्मनामपीश्वरत्वमापततीति दोषापातो]** फिर तो सारे सत्ता वाले प्रकृति से भिन्न जीव भी तो हैं उनका अस्तित्व तो प्रकृति से भिन्न है (और सत्ता मात्र से ही फल मान लिया जाए) तो जीवों की भी सत्ता है, फिर सारे जीव ईश्वर जो जाएंगे **[यतस्तेऽपि प्रकृतिभिन्नाश्चेतनसत्तावन्तस्ततः स्वयमेवेश्वरमनपेक्ष्य भोगं भोक्ष्यन्ते]** क्योंकि वे भी प्रकृति से भिन्न चेतन सत्ता वाले हैं फिर तो ईश्वर की अनपेक्षा से स्वयं ही भोग भोग लेंगे ईश्वर की आवश्यकता ही न रहेगी। **[तस्मात् कर्मनिरपेक्षमीश्वरस्य फलसम्पत्तौ नाधिष्ठातृत्वम्]** इसलिए सार यह निकला कर्मों के आधार के बिना ही ईश्वर फल देने का अधिकारी नहीं है ।।९।।

तथाभूतस्य कर्मनिरपेक्षफलप्रदातुरीश्वरस्य – उस तरह को जो कर्म निरपेक्ष ईश्वर हो (बिना कर्म किए फल देने वाला) ऐसे ईश्वर की कोई सिद्धि ही नहीं है-

प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः ।।१०।।

सूत्रार्थ=प्रत्यक्ष प्रमाण न होने से ऐसे ईश्वर की सत्ता सिद्ध नहीं होती जो बिना कर्म किए ही जीवों को फल देता हो।

सम्बन्धाभावान्नानुमानम् ।।११।।

(सम्बन्धाभावात्-अनुमानं न) सम्बन्धाभावात् कर्मनिरपेक्षफलप्रदातुरीश्वरस्य विषये नियतसम्बन्धाभावाद् व्याप्तिसम्बन्धाभावादनुमानं नास्ति ।।११।।

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ।।१२।।

(प्रधानकार्यत्वस्य श्रुतिः-अपि) नेत्यनुवर्तते । प्रधानस्य कार्यपरिणयनविषयिका श्रुतिरपि न कर्मनिरपेक्षाऽपितु जीवकर्मापेक्षाऽस्ति''एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च । एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति'' (श्वेता० ६.११, १२) स ईश्वरः कर्माध्यक्षः सन्नेकं बीजं प्रधानं कार्यत्वेन बहुधा करोतीति स्पष्टम्, वक्ष्यति ह्यग्रे ''न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात्''(सांख्य० ५.२०) ।अथ च कर्मनिरपेक्षस्तु

[**(प्रमाणाभावात् तत्सिद्धिः-न) तथाभूतस्य कर्मनिरपेक्षफलप्रदातुरीश्वरस्य सिद्धिर्नास्ति प्रमाणाभावात् प्रत्यक्षप्रमाणाभावात्**] उस तरह के ईश्वर की सिद्धि नहीं है जो कर्मनिरपेक्ष हो (बिना कर्म किए ही फल देता हो) इस संदर्भ में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। [**न हि प्रत्यक्षं कश्चिदीश्वरो जनेश्वरः कर्मनिरपेक्षः पुरस्कारं दण्डं वा कस्मैचित् प्रयच्छति**] कहीं भी ऐसा नहीं दिखता कि किसी का ईश्वर (स्वामी) बिना कर्म के ही पुरस्कार अथवा दण्ड दे रहा हो। [**अत्र प्रमाणशब्दात् प्रत्यक्षं प्रमाणमभिप्रेयतेऽग्रेऽनुमानशब्दप्रमाणयोः प्रतिपादनात्**] यहाँ इस सूत्र में प्रमाण शब्द से प्रत्यक्ष प्रमाण अभिप्रेत है, अगले सूत्र में अनुमान व शब्द प्रमाण का प्रतिपादन करेंगे ।।१०।।

सम्बन्धाभावान्नानुमानम् ।।११।।

सूत्रार्थ=व्याप्ति सम्बंध का अभाव होने से उक्त विषय में अनुमान प्रमाण भी नहीं है।

[**(सम्बन्धाभावात्-अनुमानं न) सम्बन्धाभावात् कर्मनिरपेक्षफलप्रदातुरीश्वरस्य विषये नियतसम्बन्धाभावाद् व्याप्तिसम्बन्धाभावादनुमानं नास्ति**] कर्म निरपेक्ष फल दाता ईश्वर के संबंध में निश्चित संबंध का अभाव होने से अर्थात् व्याप्ति सम्बंध का अभाव होने से इस विषय में अनुमान प्रमाण भी नहीं है ।।११।।

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ।।१२।।

सूत्रार्थ= श्रुति भी प्रकृति का कार्य जगत के रूप में परिवर्तित होना जीवों के कर्मों के बिना नहीं मानती है ।

[**(प्रधानकार्यत्वस्य श्रुतिः-अपि) नेत्यनुवर्तते** ''न'' शब्द की उपर से अनुवृत्ति आ रही है। **प्रधानस्य कार्यपरिणयनविषयिका श्रुतिरपि न कर्मनिरपेक्षाऽपितु जीवकर्मापेक्षाऽस्ति**] श्रुति भी ये कह रही है कि - प्रकृति से जो जगत बनाया गया वह जीव के कर्मों के आधार पर बनाया गया। जैसे कि- [**''एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च। एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति''(श्वेता० ६.११, १२)**] एक देव परमात्मा

स प्रधानं तत्कार्याणि प्रति हि प्रवर्तते प्रधानस्य तत्कार्याणां च जडत्वाद् धर्माधर्मरूपकर्मणो ज्ञानाभावात् तथाभूतानां कर्माभावाच्च, तथैव वदति सा श्रुतिरपि ''निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं निष्क्रियं बीजं बहुधा यः करोति'' (श्वेता० ६.१२) जीवान् प्रति तु कर्मापेक्ष एव प्रवर्तते स ईश्वरो न हि कर्मनिरपेक्षः फलं प्रयच्छति, अतएव प्रधानस्य कार्यरूपे परिणाममपि जीवकर्मापेक्षः सन्नेव करोतीत्यपि सिद्धम् । अत्रापि ''प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः'' (१०) इति सूत्रात् प्रस्तुतसूत्रपर्यन्तमनिरुद्धविज्ञानभिक्षुभ्यामीश्वरखण्डनं कृतम् । महदाश्चर्यं यत् ताभ्यां पूर्वमेव प्रमाणप्रसंगे ''ईश्वरासिद्धेः'' (सांख्य० १.९२) इति सूत्रेणेश्वरस्य खण्डनं कृतमेवात्रापि तथाकरणं तयोरर्थविधानं सूत्रनैरर्थक्यं बालप्रलपनं प्रसज्यते तदेतत्पश्यन्तु मतिमन्तः ।।१२।।

प्रधानकार्यत्वं जीवकर्मापेक्षं प्रधानस्य कार्यरूपे परिणाममीश्वरो जीवकर्मापेक्षः सन् करोतीति यच्छ्रुतितः साधितं तदेव पुनर्युक्तितोऽपि पोष्यतेऽन्यपक्षोत्थापनसमाधानाभ्याम् -

---

सब भूतों में विद्यमान है सर्वव्यापी सवा५तरात्मा है सबके कर्मों का अध्यक्ष है सब भूतों का निवास स्थान है वह सबका साक्षी है वह अकेला है तथा सत्वादि गुणों से रहित है, एक ही है वह सब जगत को वश में रखता है जो निष्क्रिय बीज है उन सबको एक ही करने वाला है और उस मूल बीज (प्रकृति से)एक से बहुत बनाने वाला है [**स ईश्वरः कर्माध्यक्षः सन्नेकं बीजं प्रधानं कार्यत्वेन बहुधा करोतीति स्पष्टम्**] यहाँ इन वचनों में यह स्पष्ट है कि वह कर्माध्यक्ष है और कर्मों का अध्यक्ष होता हुआ एक बीज प्रकृति से बहुत रूप बना देता है, [**वक्ष्यति ह्यग्रे ''न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात्''(सांख्य० ५.२०)।**] आगे सूत्रकार कहेंगे ही इस बात को कि- धर्म का खण्डन नहीं हो सकता प्रकृति के विचित्र कार्यों से [**अथ च कर्मनिरपेक्षस्तु स प्रधानं तत्कार्याणि प्रति हि प्रवर्तते प्रधानस्य तत्कार्याणां च जडत्वाद् धर्माधर्मरूपकर्मणो ज्ञानाभावात् तथाभूतानां कर्माभावाच्च, तथैव वदति सा श्रुतिरपि ''निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति''(श्वेता० ६.१२)**] और कर्म निरपेक्ष ईश्वर हो यदि तो प्रधान और उसके कार्यों की ओर जो प्रवृत्त होता है जो क्रियाशील होता है, प्रधान और उसकी क्रिया के जड़ होने से धर्म-अधर्म रूप कर्म के ज्ञान का अभाव होने से और उस प्रकार के कर्म भी न होने से (धर्माधर्म रूप कर्म के ज्ञान का अभाव रहेगा, प्रकृति में, उस प्रकार के वह कर्म भी नहीं करती जैसे जीव कर्म करता है, तो प्रकृति एक तो जड़ है दूसरा वह कर्म भी नहीं करती फिर प्रकृति के कर्मों के आधार पर ईश्वर सृष्टि क्यों बनाएगा? इसलिए कोई ये कल्पना करे कि जीव के कर्मों को हटा दो तो प्रकृति के कर्मों के आधार पर प्रकृति से जगत बनाया। ये संभव नहीं) वो श्रुति भी ऐसा ही कह रही है - वह प्रकृति निष्क्रिय है जड़ है ऐसे बहुत सारे निष्क्रिय जड़ पदार्थों का एक बीज प्रकृति है इसलिए जो निष्क्रिय जड़ झुंड रूप प्रकृति को बहुत रूप में बनाता है वह ईश्वर है [**जीवान् प्रति तु कर्मापेक्ष एव प्रवर्तते स ईश्वरो न हि कर्मनिरपेक्षः फलं प्रयच्छति**] जीवों के प्रति तो कर्म सापेक्ष ही ईश्वर प्रवृत्त होता है, वह ईश्वर बिना कर्मों के जीवात्मा को कोई फल नहीं देता है, [**अतएव प्रधानस्य कार्यरूपे परिणाममपि जीवकर्मापेक्षः सन्नेव करोतीत्यपि सिद्धम्**] इसलिए प्रधान का जो कार्यरूप परिणाम है प्रकृति से जगत को बनाया ये भी जीव कर्मों के आधार पर ईश्वर ने कार्य किया है ये सिद्ध हुआ, बिना कर्मों के कुछ नहीं किया। [**अत्रापि ''प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः'' (१०) इति सूत्रात् प्रस्तुतसूत्रपर्यन्तमनिरुद्धविज्ञानभिक्षुभ्यामीश्वरखण्डनं**

नाविद्याशक्तियोगो निःसंगस्य ।।१३।।

(अविद्याशक्तियोगः-न निःसंगस्य) यद्युच्येत प्रधानकार्यत्वं न जीवकर्मापेक्षं किन्तु तत्र कारणमविद्याशक्तियोगः, अविद्याशक्तिसम्बन्धात् स ईश्वरः प्रधानं कार्यरूपे परिणमयेदिति न युक्तं यतो हीश्वरो निःसंगो निःसंगस्य च नाविद्याशक्तिसम्बन्धः ।।१३।।

भवतु पुरुषो निःसंगो परन्तु प्रधानकार्यत्वाय-प्रधानं कार्यरूपे परिणमयितुं पुरुषस्याविद्याशक्तियोगेन भाव्यम्। अत्रोच्यते -

तद्योगे तत्सिद्धावन्योऽन्याश्रयत्वम् ।।१४।।

(तद्योगे तत्सिद्धौ-अन्योऽन्याश्रयत्वम्) पुरुषस्याविद्याशक्तियोगे सति तत्सिद्धौ प्रधानकार्यत्वसिद्धौ सत्यां खल्वन्योऽन्याश्रयत्वदोष प्रसज्यते। यतोऽविद्याशक्तियोगात् प्रधानकार्यत्वं पुनः प्रधानकार्यत्वनिमित्तेनाविद्यायोगेन भाव्यम् ।।१४।।

कृतम्] इस सूत्र में भी इन दोनों ने (विज्ञानभिक्षु और अनिरुद्ध ने) ईश्वर का खण्डन किया। **[महदाश्चर्य५ यत् ताभ्यां पूर्वमेंव प्रमाणप्रसंगे ''ईश्वरासिद्धेः'' (सांख्य० १.९२) इति सूत्रेणेश्वरस्य खण्डनं कृतमेवात्रापि तथाकरणं तयोरर्थविधानं सूत्रैनैरर्थक्यं बालप्रलपनं प्रसज्यते तदेतत्पश्यन्तु मतिमन्तः]** महद आश्चर्य है कि पहले भी इन्होने प्रमाण के प्रसंग में ''ईश्वरासिद्धे'' सूत्र में ईश्वर का खण्डन किया, फिर यहाँ पांचवे अध्याय में भी यही प्रसंग लिया। ऐसा बार-बार करने से सूत्र की निरर्थकता सिद्ध होती है और बालक के प्रलाप जैसा होता है इस बात को बुद्धिमान लोग समझें देखें ।।१२।।

प्रधान का जो कार्य बनाया जगत, वो जीव के कर्मों के आधार पर हुआ और प्रधान का जो कार्य रूप में जो परिणाम किया गया वह ईश्वर जीव के कर्मों के आधार पर करता है, ये बात जो अभी श्रुति से सिद्ध की गयी उसी को फिर युक्तियों से पुष्ट करते हैं अन्य पक्ष को उठाकर के और उसका समाधान करके इस प्रक्रिया से इस बात को पुष्ट करते हैं-

नाविद्याशक्तियोगो निःसंगस्य ।।१३।।

सूत्रार्थ= ईश्वर के साथ अविद्या शक्ति का सम्बंध हो जाने पर उसके दबाव से ईश्वर ने जगत को रचा हो ऐसा नहीं है।

[(अविद्याशक्तियोगः-न निःसंगस्य) यद्युच्येत प्रधानकार्यत्वं न जीवकर्मापेक्षं किन्तु तत्र कारणमविद्याशक्तियोगः] यदि कोई ऐसा कहे कि प्रकृति को जो कार्य रूप में परिवर्तित किया ये जीवों के कर्मों के आधार पर नहीं किया, किन्तु उसका कारण अविद्या शक्ति का योग है, **[अविद्याशक्तिसम्बन्धात् स ईश्वरः प्रधानं कार्यरूपे परिणमयेदिति न युक्तं यतो हीश्वरो निःसंगो निःसंगस्य च नाविद्याशक्तिसम्बन्धः]** सिद्धांती ये कहता है ये बात उचित नहीं कि कोई अविद्या शक्ति हो और वह ईश्वर पर दबाव डाले फिर ईश्वर को सृष्टि बनानी पड़े। ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर निःसंग है किसी से दबता नहीं और न ही अविद्या

अविद्याप्रधानकार्यत्वयोरनादिसम्बन्धो बीजाङ्कुरवदस्ति तस्मान्नान्योऽन्याश्र- यत्वं दोषयुक्तमित्यत्रोच्यते -

न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः ।।१५।।

(बीजाङ्कुरवत्-न) अविद्याप्रधानकार्यत्वयोः-अविद्यासंसारयोः खलु बीजाङ्कुरवदनादिसम्बन्धो नास्ति (सादिसंसारश्रुतेः) सादिसंसारस्य श्रुतौ प्रतिपादनात्, संसारो नानादिः किन्त्वादिमान् संसारोऽस्तीति श्रुतिर्वदति ''इयं विसृष्टिर्यत आबभूव'' (ऋ० १०.१२९.७) ''द्यावाभूमी जनयन् देव एकः'' (यजु० १७.१९) ।।१५।।

पुनश्चाविद्यास्वरूपे दोषोऽयम् -

शक्ति उसे दबा सकती है ।।१३।।

चलो मान लिया कि पुरुष निःसंग है, किसी से डरता नहीं, दबता नहीं, परंतु प्रधान को कार्य रूप में परिणित करने के लिए पुरुष का अविद्या शक्ति से योग हो जावे। यहाँ इसका उत्तर देते हैं-

तद्योगे तत्सिद्धावन्योऽन्याश्रयत्वम् ।।१४।।

सूत्रार्थ= ईश्वर के साथ अविद्या का सम्बन्ध होने पर जगत बने फिर जगत बनने के बाद अविद्या उत्पन्न हो इस मान्यता में अन्योन्य आश्रय दोष है।

[(तद्योगे तत्सिद्धौ-अन्योऽन्याश्रयत्वम्) पुरुषस्याविद्याशक्तियोगे सति तत्सिद्धौ प्रधानकार्यत्वसिद्धौ सत्यां खल्वन्योऽन्याश्रयत्वदोष प्रसज्यते] ईश्वर का अविद्या शक्ति के साथ योग होने पर तब तो प्रकृति से जगतरूप की सिद्धि होवे। इस मान्यता में एक दूसरे पर आधारित होने का दोष आएगा। **[यतोऽविद्याशक्तियोगात् प्रधानकार्यत्वं पुनः प्रधानकार्यत्वनिमित्तेनाविद्यायोगेन भाव्यम्]** पहले अविद्या शक्ति के योग से प्रधान जगत बना फिर प्रकृति से जब जगत बन गया उसके कारण फिर बाद में अविद्या पैदा हुई फिर उसने ईश्वर पर दवाव डाला ये अन्योन्य आश्रित दोष है ।।१४।।

अविद्या और प्रकृति से जो जगत बना इनका जो आपस में सम्बन्ध है वह बीज और अंकुर के समान है । इसलिए इसमें अन्योन्य आश्रित दोष नहीं है । इसका उत्तर देते हैं-

न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः ।।१५।।

सूत्रार्थ= बीज और अंकुर के समान अविद्या और जगत का अनादि सम्बन्ध नहीं है, जगत की उत्पत्ति श्रुति में कही जाने से।

विद्यातोऽन्यत्वे ब्रह्मबाधप्रसंगः ।।१६।।

(विद्यातः-अन्यत्वे) ब्रह्मणि खल्वविद्याशक्तियोगात् प्रधानकार्यत्वं भवेदिति स्वीकारेऽविद्या स्याद् वस्तुरूपा यस्याः शक्त्या सह ब्रह्म युज्यते पुनस्तस्या अविद्यायाः किल विद्यातोऽन्यत्वे भिन्नवस्तुत्वे ब्रह्मणो बाधप्रसंगो भवति, यतो हि यत्खलु विद्यातोऽन्यत्तद् वस्तु खल्वविद्येति कथने ब्रह्म स्यादविद्या तदपि विद्यातोऽन्यत्, विद्या हि ज्ञानं परन्तु ब्रह्म तु द्रव्यं ज्ञानतोऽन्यत् पुनस्तस्यापि बाधः स्याद् विद्यातोऽन्यद् विद्यया बाध्यते यतः, विद्या स्वान्यामविद्यां बाधते यथा। अथवाऽविद्या हि विद्यां बाधते विद्यातोऽन्यत्वाद् यदा किलाविद्या तदा न विद्याऽवतिष्ठते पुनस्तयाऽविद्यया युक्तं ब्रह्म बाधितं भवेद् विद्याशून्यं स्यात्। यद्वा ब्रह्मैव न स्यात् तदनिष्टं यतः ''यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः'' (मुण्ड० १.१.९) इत्थं ब्रह्मबाधप्रसंगदोषान्नैतन्मन्तव्यमुचितम्, अत्र 'ब्रह्म' सूत्रकारेण मतमेवेति स्पष्टम् ।।१६।।

[**(बीजाङ्कुरवत्-न)अविद्याप्रधानकार्यत्वयोः-अविद्यासंसारयोः खलु बीजाङ्कुरवदनादिसम्बन्धो नास्ति**] सिद्धांती कहता है- अविद्या और कार्य जगत का(प्रधान से जो कार्य जगत बना) इन दोनों का बीज और अंकुर के समान सम्बन्ध नहीं है [**(सादिसंसारश्रुतेः) सादिसंसारस्य श्रुतौ प्रतिपादनात्**] श्रुति में तो ऐसा बताया गया है कि संसार आदि सहित है आरंभ वाला है, [**संसारो नानादिः किन्त्वादिमान् संसारोऽस्तीति श्रुतिर्वदति**] संसार अनादि नहीं है वह तो आदिमन है आरंभ वाला है संसार है ऐसा श्रुति बता रही है [**''इयं विसृष्टिर्यत आबभूव''(ऋ० १०.१२९.७)**] ये जो विविध सृष्टि है ये जिससे उत्पन्न हुई वह प्रकृति है (ये तो उत्पन्न हो रहा है) [**''द्यावाभूमी जनयन् देव एकः'' ब्रह्म**] द्यावा भूमि को उत्पन्न करने वाला एक परमात्मा है यहाँ तो संसार की उत्पत्ति बता रहे है जबकि आप कह रहे हैं कि संसार अनादि है। इसलिए आपकी बात ठीक नहीं ।।१५।।

पुनश्चाविद्यास्वरूपे दोषोऽयम् - अविद्या के स्वरूप में ये भी दोष है-

विद्यातोऽन्यत्वे ब्रह्मबाधप्रसंगः ।।१६।।

सूत्रार्थ= विद्या से भिन्न सभी पदार्थों को अविद्या मानने पर ब्रह्म के विनाश का दोष आएगा, जो कि ठीक नहीं।

[**(विद्यातः-अन्यत्वे) ब्रह्मणि खल्वविद्याशक्तियोगात् प्रधानकार्यत्वं भवेदिति स्वीकारेऽविद्या स्याद् वस्तुरूपा यस्याः शक्त्या सह ब्रह्म युज्यते**] ब्रह्म में अविद्या शक्ति योग हो जाने से प्रकृति से कार्य जगत उत्पन्न हो जावे ऐसा स्वीकार कर लेने पर तब अविद्या को एक वस्तु रूप मानना पड़ेगा (एक सत्तात्मक पदार्थ मानना पड़ेगा जो ब्रह्म पर दबाव बनाती है) जिसकी शक्ति से ब्रह्म जगत बनाने में लग जाएगा [**पुनस्तस्या अविद्यायाः किल विद्यातोऽन्यत्वे भिन्नवस्तुत्वे ब्रह्मणो बाधप्रसंगो भवति**] उस स्थिति में अविद्या के विद्या से भिन्न होने में ब्रह्म के विनाश का प्रसंग आएगा (क्योंकि पूर्वपक्षी का ये सिद्धान्त है कि - विद्या से जो भी अतिरिक्त है वह अविद्या है) ऐसी स्थिति में ब्रह्म भी विद्या से भिन्न है (विद्या है ज्ञान=द्रव्य , ब्रह्म वस्तु है), [**यतो हि यत्खलु विद्यातोऽन्यत्तद् वस्तु खल्वविद्येति कथने ब्रह्म स्यादविद्या तदपि**

अथ च -

अबाधे नैष्फल्यम् ।।१७।।

(अबाधे नैष्फल्यम्) अबाधे सति-यदि पुनरविद्यया ब्रह्म न बाध्यते तदा विद्यातोऽन्यत्वमन्तव्यस्य निष्फलत्वं स्यादविद्यायाः पुनरकिञ्चित्करत्वं सिध्येत् ।।१७।।

विद्यातोऽन्यत्] क्योंकि आपके सिद्धान्त के अनुसार- जो भी वस्तु विद्या से भिन्न है वह सब अविद्या है। इस कथन में ब्रह्म भी अविद्या बन जाएगा क्योंकि वह भी विद्या से अन्य है। तो उसका नाम भी अविद्या ही रखना पड़ेगा, और जो विद्या है शुद्ध ज्ञान वह अविद्या का नाशक होगा (ब्रह्म अविद्या बन रहा है और विद्या उसका विनाश कर देगी तो ब्रह्म का ही विनाश हो जाएगा), **[विद्या हि ज्ञानं परन्तु ब्रह्म तु द्रव्यं ज्ञानतोऽन्यत् पुनस्तस्यापि बाधः स्याद् विद्यातोऽन्यद् विद्यया बाध्यते यतः]** विद्या ज्ञान है परंतु ब्रह्म तो द्रव्य है ज्ञान से भिन्न है, विद्या अविद्या का नाश करती है ब्रह्म अविद्या बन गया क्योंकि वह ज्ञान से भिन्न वस्तु है, इस प्रकार उसका भी विनाश हो जाएगा, क्योंकि विद्या से जो अन्यत होगा वह सब विद्या से नष्ट कर दिया जाएगा, **[विद्या स्वान्यामविद्यां बाधते यथा]** विद्या जैसे अपने से भिन्न अविद्या को मार देती है ।[अब इस सूत्र कि दूसरी व्याख्या **अथवाऽविद्या हि विद्यां बाधते विद्यातोऽन्यत्वाद्]** अथवा अविद्या विद्या का नाश करेगी विद्या से भिन्न होने से **[यदा किलाविद्या तदा न विद्याऽवतिष्ठते]** क्योंकि दोनों में टकराव है- जिस समय विद्या रहेगी उस समय अविद्या नहीं रहेगी **[पुनस्तयाऽविद्यया युक्तं ब्रह्म बाधितं भवेद् विद्याशून्यं स्यात्]** जब अविद्या आएगी तब विद्या नहीं रहेगी, जब अविद्या ब्रह्म पर वार करेगी तो उसमें से विद्या को उखाड़ फेंक देगी, फिर ब्रह्म विद्या से शून्य हो जाएगा। **[यद्वा ब्रह्मैव न स्यात् तदनिष्टं यतः]** जब ब्रह्म ही नहीं रहेगा अथवा उसमें ज्ञान ही न रहेगा, यह तो ठीक नहीं=अनिष्ट है, क्योंकि - **[''यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः'']** जो सर्वज्ञ है सर्ववित् है जिसका अनन्त ज्ञानमय तप सामर्थ्य है, वह ब्रह्म कभी नष्ट हो ही नहीं सकता **[(मुण्ड० १.१.९) इत्थं ब्रह्मबाधप्रसंगदोषान्नैतन्मन्तव्यमुचितम्]** इसलिए ब्रह्म के विनाश का प्रसंग दोष आने से ये मान्यता उचित नहीं है ''विद्या से भिन्न जो कुछ भी है वह अविद्या है'', **[अत्र 'ब्रह्म' सूत्रकारेण मतमेवेति स्पष्टम्]** अब सूत्रकार ने ब्रह्म कि सत्ता को स्वीकार किया है, ''ब्रह्म के बाध'' का प्रसंग आएगा तभी तो दोष आएगा अर्थात सूत्रकार ब्रह्म को मानते हैं, तभी तो इसमें दोष दिखाएंगे कि ''विद्या से भिन्न जो कुछ भी है वह अविद्या है'' ऐसा मानने पर तो ब्रह्म का ही विनाश हो जाएगा। ये बात वही कहेगा जो ब्रह्म की सत्ता को मानता हो, जो ब्रह्म को मानता ही न हो वह क्यों कहेगा? इसलिए सूत्रकार स्वयं ब्रह्म को मानता है आस्तिक है ।१६।।

अथ च -

अबाधे नैष्फल्यम् ।।१७।।

सूत्रार्थ= यदि अविद्या ब्रह्म का विनाश नहीं कर पाती है तो पूर्वपक्षी की मान्यता व्यर्थ है।

[(अबाधे नैष्फल्यम्) अबाधे सति-यदि पुनरविद्यया ब्रह्म न बाध्यते तदा विद्यातोऽन्यत्वमन्तव्यस्य निष्फलत्वं स्यादविद्यायाः पुनरकिञ्चित्करत्वं सिध्येत्] पूर्वपक्षी अपनी बात को थोड़ा सुधारते हुए कहता है-अविद्या ब्रह्म को मारेगी नहीं, सिद्धांती कहते हैं = यदि अविद्या के द्वारा ब्रह्म का

पक्षान्तरमाक्षिप्यते -

विद्याबाध्यत्वे जगतोऽप्येवम् ।।१८।।

(विद्याबाध्यत्वे) अविद्याया विद्यातोऽन्यत्वं न, किन्तु विद्याबाध्यत्वमेव सैवा विद्यया बाध्यते न हि सा बाधे समर्था न तयाऽन्यद् बाध्यते तस्मान्न ब्रह्मबाधप्रसंगः। यदा हि पुरुषे विद्या प्रवर्ततेऽथाविद्या निवर्तते तथारूपाऽविद्या चेदुच्येत तर्हि (जगतः-अपि-एवम्) जगदपि खल्वेवं विद्यया बाध्यते-विद्यावतः पुरुषस्य सकाशात् खलु जगदपि निवर्तते ''अथात आदेशो नेति नेति'' (बृह० २.३.६) एवं जगतोऽपि विद्यया बाध्यत्वाज्जगदपि स्यादविद्या ।।१८।।

भवतु जगदप्यविद्या । अत्रोच्यते -

तद्रूपत्वे सादित्वम् ।।१९।।

विनाश नहीं किया जाएगा तब आपकी वह मान्यता निष्फल हो जाएगी कि ''विद्या से भिन्न जो कुछ भी है वह अविद्या है'', इस मान्यता का कोई औचित्य नहीं रहा, फिर वह अविद्या किसी को नहीं मारेगी ऐसा आप कह रहे हैं फिर तो वह निर्बल हो जाएगी (ऐसी अविद्या माननी पड़ेगी जो कुछ नहीं करेगी) ।।१७।।

फिर इससे अलग पक्ष पर आक्षेप करता है सिद्धांती-

विद्याबाध्यत्वे जगतोऽप्येवम् ।।१८।।

सूत्रार्थ=विद्या से अविद्या नष्ट हो जाती है, ऐसा मानने पर विद्या से जगत भी नष्ट होता है। ''मुक्तात्मा के लिए'' तो क्या ये जगत भी अविद्या है।

[**(विद्याबाध्यत्वे) अविद्याया विद्यातोऽन्यत्वं न**] विद्या से भिन्न जो कुछ भी हो वह अविद्या है, हम ऐसा नहीं मानते, [**किन्तु विद्याबाध्यत्वमेव सैवा विद्यया बाध्यते**] वह विद्या को नहीं मारती किन्तु वह स्वयं विद्या से मर जाती है [**न हि सा बाधे समर्था**] वह किसी को मारने में समर्थ नहीं [**न तयाऽन्यद् बाध्यते**] न उस= अविद्या के द्वारा दूसरी वस्तु नहीं मारी जाती [**तस्मान्न ब्रह्मबाधप्रसंगः**] इसलिए ब्रह्म के विनाश का प्रसंग नहीं आएगा। [**यदा हि पुरुषे विद्या प्रवर्ततेऽथाविद्या निवर्तते**] जब जीवात्मा में विद्या आ जाएगी और अविद्या नष्ट हो जाएगी [**तथारूपाऽविद्या चेदुच्येत तर्हि**] यदि पूर्वपक्षी इस तरह की अविद्या कहे तो क्या समस्या है? [**(जगतः-अपि-एवम्) जगदपि खल्वेवं विद्यया बाध्यते-विद्यावतः पुरुषस्य सकाशात् खलु जगदपि निवर्तते**] यदि आप अविद्या को ऐसी मानते हैं कि- वह स्वयं तो किसी को मारेगी नहीं, ''बल्कि वह इतनी कमजोर है कि दूसरे से खुद मर जाएगी'', (ऐसी है अविद्या ऐसी जब मानो तो विद्या के आने पर अविद्या मर जाएगी) सिद्धांती कहता है- यूं तो जगत भी विद्या के द्वारा मार दिया जाता है। कैसे? विद्या वाले पुरुष के पास से जगत भी निवृत हो जाता है। अब इसकी पुष्टि में कहते हैं- [**''अथात आदेशो नेति नेति''(बृह० २.३.६)**] जिसने संसार में दुख देखा अविद्या नष्ट कर ली वह कहता है अब संसार में जन्म नहीं लेना [**एवं जगतोऽपि विद्यया बाध्यत्वाज्जगदपि स्यादविद्या**] इस प्रकार जगत का भी विद्या से विनाश हो जाने पर अर्थात पुनर्जन्म रुक जाने पर पुनर्जन्म को भी अविद्या मानना पड़ेगा जो ठीक नहीं ।।१८।।

(तद्रूपत्वे) जगतोऽविद्यारूपत्वे सति-यदि हि जगदप्यविद्या तर्हि (सादित्वम्) अविद्यायाः सादित्वं सिद्धं भवति यतो जगत् सादि तच्च पूर्वं साधितं जगतः सादित्वम् ''न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः'' (१५) ''इयं विसृष्टिर्यत आबभूव'' (ऋ० १०.१२९.७) ''द्यावाभूमी जनयन् देव एकः'' (यजु० १७.१९) इत्थं ह्यविद्या नानादिः पुनश्चाविद्याशक्तियोगाद् ब्रह्मकार्यरूपे प्रधानं परिणमयेदिति न सिध्यति किन्तु जीवकर्मापेक्षः सन्नेवेश्वरः प्रधानं कार्यरूपे परिणमयतीति ''श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य'' (१२) इत्यनेन यदुक्तं पूर्वं तदेवावतिष्ठते ।।१९।।

अत एव -

न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात ।।२०।।

जगत यदि अविद्या बन जाए। इस विषय पर कहते हैं-

तद्रूपत्वे सादित्वम् ।।१९।।

सूत्रार्थ= जगत को भी अविद्या मानने पर तब आपकी मानी हुई अविद्या स्वरूप से अनादि नहीं रहेगी।

[(तद्रूपत्वे) जगतोऽविद्यारूपत्वे सति-यदि हि जगदप्यविद्या तर्हि (सादित्वम्) अविद्यायाः सादित्वं सिद्धं भवति यतो जगत् सादि तच्च पूव५ साधितं जगतः सादित्वम् ''न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः''] जगत को भी अविद्या रूप मानने पर, ''अविद्या भी उत्पन्न हुई'' ऐसा मानना पड़ेगा, क्योंकि जगत तो उत्पन्न होता है ये पहले ही सिद्ध कर चुके हैं -**''न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः''** कि जगत उत्पन्न होता है, और आपकी मान्यता है कि अविद्या अनादि है (इसमें टकराव आएगा) (१५) **[''इयं विसृष्टिर्यत आबभूव''(ऋ० १०.१२९.७)]** ये जो विविध प्रकार कि सृष्टि है ये परमात्मा से उत्पन्न होती है **[''द्यावाभूमी जनयन् देव एकः''(यजु० १७.१९)]** एक देव परमात्मा है जो भूमि द्यौलोक को उत्पन्न करता है **[इत्थं ह्यविद्या नानादिः पुनश्चाविद्याशक्तियोगाद् ब्रह्म कार्यरूपे प्रधानं परिणमयेदिति न सिध्यति]** इस प्रकार से अविद्या अनादि नहीं रहेगी यदि आप जगत को अविद्या मानेंगे तो, इस स्थिति में अविद्या शक्ति के दबाव से परमात्मा प्रकृति को जगत रूप में परिणित करे। फिर ये बात सिद्ध नहीं होगी क्योंकि वह तो अनादि है ही नहीं, जब अविद्या पहले है ही नहीं फिर ब्रह्म पर दबाव कौन डाले? **[किन्तु जीवकर्मापेक्षः सन्नेवेश्वरः प्रधानं कार्यरूपे परिणमयतीति]** किन्तु सत्य सिद्धान्त तो यह है कि जीव के कर्मों के आधार पर ही ईश्वर प्रकृति को जगत रूप में कार्य रूप में परिणित करता है। जैसा कि पहले बताया था **[''श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य'']** इस सूत्र में बताया था कि- श्रुति भी कहती है कि परमात्मा ने जीवों के कर्मों के आधार पर प्रकृति से जगत बनाया **[(१२) इत्यनेन यदुक्तं पूर्वं तदेवावतिष्ठते]** इस बारहवें सूत्र से जो बात कही थी वही ठीक है ।।१९।।

अत एव -

न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात् ।।२०।।

सूत्रार्थ= उत्तम धर्माचरण का खण्डन नहीं हो सकता, प्रकृति के कार्य योनियां भिन्न-भिन्न होने से।

(धर्मापलापः-न) धर्मस्याहिंसादिमंगलाचरणरूपस्य कर्मणोऽपलापो न भवति यदपेक्षमीश्वरस्याधिष्ठातृत्वं फलप्रदानाय द्वितीयसूत्रे व्यक्तीकृतं तद्युक्तमेव। कुतः (प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात्) प्रकृतेः कार्याणां वैचित्र्यादुच्चावचत्वात् सुखदुःखरूपत्वात् सकलविकलांगत्वाच्च वक्ष्यति ह्यग्रे ''कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्'' (सांख्य० ६.४२) ।।२०।।

धर्माचरणात्प्रकृतिकार्यवैचित्र्यं सुखित्वादिकमस्तीत्यत्र किं प्रमाणमित्याकांक्षा-यामुच्यते -

श्रुतिलिंगादिभिस्तत्सिद्धिः ।।२१।।

(श्रुतिलिंगादिभिः-तत्सिद्धिः) श्रुतिप्रमाणेन लिंगप्रमाणेनानुमानप्रमाणेनेति यावत्, तथाऽऽदिशब्दाद् योगिनामबाह्यप्रत्यक्षेण च धर्माचरणात्सुखित्वादिकस्य प्रकृतिकार्यवैचित्र्यस्य सिद्धिर्भवति। श्रुतिस्तावत् - ''पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति।'' (बृह०३.२.१३)

[**(धर्मापलापः-न) धर्मस्याहिंसादिमंगलाचरणरूपस्य कर्मणोऽपलापो न भवति यदपेक्षमीश्वरस्याधिष्ठातृत्वं फलप्रदानाय द्वितीयसूत्रे व्यक्तीकृतं तद्युक्तमेव**] धर्म का जो अहिंसा आदि रूप मंगलाचरण रूप कर्म बताया था, उसका खण्डन नहीं हो सकता। जिन शुभ कर्मों कि अपेक्षा से ईश्वर का अधिकार है फल देने के लिए। जो बात दूसरे सूत्र में प्रकट कि गयी थी, वह सही है । [**कुतः (प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात्) प्रकृतेः कार्याणां वैचित्र्यादुच्चावचत्वात् सुखदुःखरूपत्वात् सकलविकलांगत्वाच्च वक्ष्यति ह्यग्रे ''कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्'' (सांख्य० ६.४२)**] प्रकृति के जो कार्य है उनमें विचित्रता होने से शरीर ऊंचे-नीचे हैं, कोई सुख वाला है तो कोई दुख वाला। कोई सकलांग है कोई विकलांग है। ऐसा ही आगे कहा - कर्मों की विचित्रता से सृष्टि की विचित्रता है ।।२०।।

धर्माचरण से प्रकृति के विभिन्न कार्य उत्पन्न होते हैं, और ये जो अनेक प्रकार का सुख दुःख हो रहा है इस विषय में क्या प्रमाण है? इस पर कहते हैं-

श्रुतिलिंगादिभिस्तत्सिद्धिः ।।२१।।

सूत्रार्थ= शब्द प्रमाण, अनुमान प्रमाण और योगियों के आन्तरिक प्रत्यक्ष से सिद्ध होता है कि धर्म आचरण से सुख उत्तम योनियाँ और अधर्म आचरण से दुख निकृष्ट योनियाँ प्राप्त होती है।

[**(श्रुतिलिंगादिभिः-तत्सिद्धिः) श्रुतिप्रमाणेन लिंगप्रमाणेनानुमानप्रमाणेनेति यावत्**] श्रुति के प्रमाण से (शब्द प्रमाण से) अच्छे कार्य से अच्छा फल सुख और बुरे कार्यों से दण्ड और दुःख मिलता है, दूसरा अनुमान प्रमाण से, [**तथाऽऽदिशब्दाद् योगिनामबाह्यप्रत्यक्षेण च धर्माचरणात्सुखित्वादिकस्य प्रकृतिकार्यवैचित्र्यस्य सिद्धिर्भवति**] श्रुति में लिंग आदि शब्द है यहाँ आदि शब्द से अभिप्रेत योगियों का अबाह्य (आंतरिक) प्रत्यक्ष है, इन सब प्रमाणों से ये सिद्ध होता है कि धर्माचरण से सुख होता है और प्रकृति के विचित्र कार्यों की सिद्धि हो जाएगी। **श्रुतिस्तावत्** पहले श्रुति का प्रमाण देते हैं - [**''पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति।''(बृह० ३.२.१३)**] पुण्य कर्म से पुण्य लोक की प्राप्ति होती है [**लिंगप्रमाणमनुमानप्रमाणं तु जन्मतः सुखसम्पत्तिः सकलांगत्वादिका भोगरूपा पूर्वजन्माचरितधर्मणः फलमिहजन्माचरितोचितकर्मणः सुखभोगफलमिव**] अब ये लिंग प्रमाण है अनुमान प्रमाण है, उससे देखते हैं कि जन्म से ही किसी को सुख

लिंगप्रमाणमनुमानप्रमाणं तु जन्मतः सुखसम्पत्तिः सकलांगत्वादिका भोगरूपा पूर्वजन्माचरितधर्मणः फलमिहजन्माचरितोचितकर्मणः सुखभोगफलमिव। योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षेणापि सिद्धिर्भवति ।।२१।।

श्रुत्यादीनि प्रमाणानि स्युः प्रत्यक्षं-लौकिकप्रत्यक्षप्रमाणं तु न तत्सिद्धावित्याकांक्षायामुच्यते -

न नियमः प्रमाणान्तरावकाशात् ।।२२।।

(नियमः-न) प्रत्यक्षप्रमाणेनैव वस्तुसिद्धिः स्यादिति न नियमोऽस्ति, न हि सर्वं प्रत्यक्षप्रमाणेन सिध्यति (प्रमाणान्तरावकाशात्) वस्तुसिद्धौ प्रत्यक्षप्रमाणादतिरिक्त-प्रमाणानामनुमानादीनामवकाशसद्भावात् ।।२२।।

अथ च -

उभयत्राप्येवम् ।।२३।।

मिला सुख संपत्ति प्राप्त हो गयी और सब अंग भी उत्तम मिले। इस प्रकार से जो भोग रूप पूर्व जन्म में आचरण किए धर्म का फल है ये जो वर्तमान में हम देखते हैं। **[योगिनामान्तरिकप्रत्यक्षेणापि सिद्धिर्भवति]** योगियों के आन्तरिक प्रत्यक्ष से भी इस बात कि सिद्धि होती है, अच्छा कार्य करने से आनंद उत्साह कि प्राप्ति होती है ।।२१।।

कर्म फल के विषय में श्रुति का प्रमाण दिया और अनुमान प्रमाण भी दिया कि कर्मों का फल मिलता है परन्तु कर्मों का फल मिलता है ये लौकिक प्रत्यक्ष प्रमाण से तो सिद्ध नहीं होती। इसके उत्तर में कहते हैं-

न नियमः प्रमाणान्तरावकाशात् ।। २२।।

सूत्रार्थ= प्रत्येक वस्तु लौकिक प्रत्यक्ष प्रमाण से ही सिद्ध हो ऐसा नियम नहीं है, अन्य अनुमान आदि प्रमाणों से भी वस्तुओं कि सिद्धि होने से।

[(नियमः-न) प्रत्यक्षप्रमाणेनैव वस्तुसिद्धिः स्यादिति न नियमोऽस्ति] हर वस्तु आँख से ही दिखाई देने पर सिद्ध हो ऐसा नियम नहीं है, **न हि सर्वं प्रत्यक्षप्रमाणेन सिध्यति** प्रत्येक की सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाण से हो ऐसा संभव नहीं है **[(प्रमाणान्तरावकाशात्) वस्तुसिद्धौ प्रत्यक्षप्रमाणादतिरिक्त-प्रमाणानामनुमानादीनामवकाशसद्भावात्]** वस्तु की सिद्धि करने में प्रत्यक्ष प्रमाण के अतिरिक्त अन्य अनुमानादि प्रमाणों की सत्ता है उनकी सहता से किसी भी बात को सिद्ध कर सकते हैं ।।२२।।

अथ च -

उभयत्राप्येवम् ।।२३।।

सूत्रार्थ= धर्म करने से सुख मिलता है, और अधर्म करने से दुख मिलता है । दोनों ही क्षेत्रों में शब्द प्रमाण और अनुमान प्रमाण प्राप्त होने से।

[(एवम्-उभयत्र-अपि) इत्थं श्रुतिलिंगादिभिर्धर्मसिद्धिरेवेति न किन्तूभयत्रापि धर्मसिद्धौ तथाऽधर्मसिद्धौ च समानप्रमाणनिर्देशो विज्ञेयः] इस प्रकार श्रुति लिंगादि प्रमाणों से केवल धर्म की ही सिद्धि होती हो ऐसा नहीं है अपितु दोनों क्षेत्रों में धर्म की सिद्धि में और अधर्म की सिद्धि में समान रूप से

(एवम्-उभयत्र-अपि) इत्थं श्रुतिलिंगादिभिर्धर्मसिद्धिरेवेति न किन्तूभयत्रापि धर्मसिद्धौ तथाऽधर्मसिद्धौ च समानप्रमाणनिर्देशो विज्ञेयः । तेनाधर्मसिद्धिरपि भवति तैः श्रुतिलिंगादिभिः प्रमाणैः । श्रुतिस्तावत् ''पापः पापेन'' (बृह०३.२.१५) लिंगप्रमाणादिकं वैपरीत्येन विज्ञेयम् ।।२३।।

धर्मसिद्धौ तु श्रुत्यादिप्रमाणमपेक्ष्यतेऽधर्मसिद्धौ न, तत्सिद्धिस्तु भविष्यत्य-र्थापत्त्या हि । अत्रोच्यते -

अर्थात् सिद्धिश्चेत् समानमुभयोः ।।२४।।

(अर्थात् सिद्धिः) अर्थापत्त्या हि खल्वधर्मस्य सिद्धिर्भविष्यति (उभयोः समानं चेत्) उभयोर्धर्माधर्मयोः समानं क्षेत्रं प्रकरणं वर्णनं वा स्यात्, परन्तु यत्र क्षेत्रं-प्रकरणं-वर्णनं वा समानं नास्ति

प्रमाण का निर्देश समझना चाहिए (अर्थात् श्रुति लिंगादि जो प्रमाण है ये इस बात को भी बताते हैं कि धर्म का फल सुख है और अधर्म का फल दुःख है, दोनों क्षेत्रों में श्रुति प्रमाण और अनुमान प्रमाण आदि चलते हैं)। [**तेनाधर्मसिद्धिरपि भवति तैः श्रुतिलिंगादिभिः प्रमाणैः**] इस कारण से अधर्म की भी सिद्धि होती है,श्रुति लिंगादि प्रमाणों से जैसे कि ।[**श्रुतिस्तावत् ''पापः पापेन''**] श्रुति का वचन है जब व्यक्ति पाप करता है तो पापी कहलाता है [**(बृह० ३.२.१५) लिंगप्रमाणादिकं वैपरीत्येन विज्ञेयम्**] अनुमान प्रमाण को इससे विपरीत मानलो जैसे पहले बताया था।।२३।।

[**धर्मसिद्धौ तु श्रुत्यादिप्रमाणमपेक्ष्यतेऽधर्मसिद्धौ न, तत्सिद्धिस्तु भविष्यत्यर्थापत्त्या हि । अत्रोच्यते -**] पूर्वपक्षी एक शंका रखता है- धर्म के क्षेत्र में तो माना कि श्रुति आदि का प्रमाण है, किन्तु अधर्म कि सिद्धि में कोई आवश्यकता नहीं दिखती । उसकी (अधर्म की) सिद्धि तो अर्थापत्ति से भविष्य में हो ही जाएगी? इसके उत्तर में सिद्धांती कहता है-

अर्थात् सिद्धिश्चेत् समानमुभयोः ।।२४।।

सूत्रार्थ= यदि अधर्म की सिद्धि अर्थापत्ति से हो जाए तो वहाँ-वहाँ होगी जहां-जहां धर्म और अधर्म के वर्णन के प्रकरण समान हो किन्तु जहां इसमें असमानता हो वहाँ श्रुति के प्रमाण देना ही पड़ेगा।

[**(अर्थात् सिद्धिः) अर्थापत्त्या हि खल्वधर्मस्य सिद्धिर्भविष्यति (उभयोः समानं चेत्) उभयोर्धर्माधर्मयोः समानं क्षेत्रं प्रकरणं वर्णनं वा स्यात्**] सिद्धांती कहता है- एक अंश में आपकी बात ठीक है, अर्थापत्ति से अधर्म की सिद्धि जाएगी, जहां धर्म और अधर्म का क्षेत्र समान होगा वहाँ तो अर्थापत्ति से सिद्ध हो जाएगा, [**परन्तु यत्र क्षेत्रं-प्रकरणं-वर्णनं वा समानं नास्ति तत्र नाधर्मसिद्धिर्भवेत्**] परंतु जहां-जहां क्षेत्र प्रकरण समान नहीं होगा तो वहाँ-वहाँ अर्थापत्ति से अधर्म की सिद्धि नहीं होगी, [**तस्मादधर्मार्थमपि श्रुत्यादिप्रमाणप्रदर्शनं युक्तमेव**] इसलिए अधर्म को दिखलाने के लिए श्रुति आदि का प्रमाण भी उचित है।

तत्र नाधर्मसिद्धिर्भवेत्, तस्मादधर्मार्थमपि श्रुत्यादिप्रमाणप्रदर्शनं युक्तमेव । तद्यथा ''मा हिंसीः पुरुषं जगत्'' (यजु० १६.३, श्वेता०३.६) ''न स्तेयमद्मि'' (अथर्व० १४.१.५७) ''अक्षैर्मा दीव्यः'' (ऋ० १०.३४.१३) ''पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्'' (ऋ० १०.१०.१२) ''मा गृधः कस्यस्विद् धनम्'' (यजु० ४०.१) इत्याद्यनुसन्धेयम् ।।२४।।

सिध्यन्तु धर्माधर्मौ तत्फले सुखदुःखे च परन्तु ततः पुरुषे संगापत्तिर्भविष्यति, उच्यते हि''असंगो ह्ययं पुरुषः'' (बृह० ४.३.१५) अत्रोच्यते -

अन्तःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम् ।।२५।।

(धर्मादीनाम्-अन्तःकरणधर्मत्वम्) धर्माधर्मसुखदुःखानामन्तःकरणगुणत्वमस्ति, सन्ति हि धर्माधर्मसुखदुःखानि किलान्तःकरणगुणाः । अन्तःकरणं हि करणं साधनमान्तरिकं पुरुषस्य बहिष्करणवत्, यथा ह्यादानादीनि हस्तादिबहिष्करणस्य कर्मेन्द्रियजातस्य यथा च रूपादीनि नेत्रादिबहिष्करणस्य ज्ञानेन्द्रियगणस्य गुणाः सन्ति तथैव धर्माधर्मसुखदुःखानि खल्वन्तःकरणस्योभयेन्द्रियात्मकस्य गुणाः

तद्यथा जैसे कहा - [**''मा हिंसीः पुरुषं जगत्''**] पुरुषों को जगत में मत मारो [**''न स्तेयमद्मि''(अथर्व० १४.१.५७)**] चोरी करके नहीं खाऊँगा [**''अक्षैर्मा दीव्यः''(ऋ० १०.३४.१३)**] जुआ मत खेलो [**''पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्''(ऋ० १०.१०.१२)**] जो व्यक्ति अपनी सगी बहिन से विवाह करता है, वह पाप है [**''मा गृधः कस्यस्विद् धनम्''(यजु० ४०.१)**] धन का लोभ मत करो, ये सोचो कि ये धन किसका है? इत्यादि अनुशंधान करना चाहिए ।।२४।।

धर्म और अधर्म की सत्ता सिद्ध हो गयी तथा धर्म-अधर्म से सुख दुःख मिलता है ये मान लिया, परंतु उससे पुरुष में संगापत्ति का दोष आएगा। (यदि जीवात्मा सुखी दुःखी होने लगा तो उसमें बाह्य संग की प्राप्ति आरंभ हो जाएगी ।) जबकि शास्त्रों में ये कहा है कि ''पुरुष असंग है'' इस बात का विरोध आएगा । इस पर कहते हैं-

अन्तःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम् ।।२५।।

सूत्रार्थ= धर्म-अधर्म, सुख-दुःख, आदि मन के गुण हैं जैसे नेत्रादि के देखना और हस्त आदि ग्रहण करना आदि गुण हैं, इसलिए आत्मा के स्वरूप में कोई विकृति नहीं आती।

[**(धर्मादीनाम्-अन्तःकरणधर्मत्वम्) धर्माधर्मसुखदुःखानामन्तःकरणगुणत्वमस्ति, सन्ति हि धर्माधर्मसुखदुःखानि किलान्तःकरणगुणाः**] धर्म, अधर्म, सुख-दुःख आदि ये अन्तःकरण (मन, बुद्धि आदि) के गुण हैं, यदि अन्तःकरण सुखी-दुःखी होता है ऐसा मानते हैं तो ऋषियों के वचनों के विरुद्ध होगा, इसलिए वैदिक सिद्धान्त के अनुसार यह अर्थ ठीक होगा- धर्म-अधर्म के जो संस्कार हैं वो मन में जमा होते हैं (सुख दुःख कि प्राप्ति मन के द्वारा आत्मा को होती है) ।[**अन्तःकरणं हि करणं साधनमान्तरिकं पुरुषस्य बहिष्करणवत्**] अन्तःकरण (मन, बुद्धि)ये जीवात्मा के साधन हैं बाह्य करणों के समान,[**यथा ह्यादानादीनि हस्तादिबहिष्करणस्य कर्मेन्द्रियजातस्य**] जैसे कि लेना-देना आदि कर्म हैं ये बाह्य इंद्रियों के कर्मेन्द्रियों के

सन्ति करणसामान्याद् यतो ह्यत्रैवाधीयन्तेऽनेनैव प्रतीयन्ते चेति तस्मान्न पुरुषे संगापत्तिः ।।२५।।

यद्येवं तर्ह्यलं विवेकेनेत्यत्रोच्यते -

गुणानां (गुणादीनां ?*) नात्यन्तबाधः ।।२६।।

(गुणानां-अत्यन्तबाधः-न) विवेकमन्तरेण तेषां धर्माधर्मसुखदुःखानामन्तःकरणगुणानां सतामप्यत्यन्तबाधो न भविष्यति किन्तु धर्माधर्मयोरदृष्टवशाद् यद्वा धर्माधर्मनिष्पन्नसंस्कारात् तत्फलयोः सुखदुःखयोरनुभूतिस्तु खल्वनिवार्या भविष्यति हीहजन्मनि परजन्मनि वा ।।२६।।

यतः -

गुण हैं [**यथा च रूपादीनि नेत्रादिबहिष्करणस्य ज्ञानेन्द्रियगुणस्य गुणाः सन्ति**] और जैसे रूपादि नेत्रादि बाह्य करणों के ज्ञानेन्द्रियों के गुण हैं [**तथैव धर्माधर्मसुखदुःखानि खल्वन्तःकरणस्योभयेन्द्रियात्मकस्य गुणाः सन्ति**] उसी प्रकार से धर्म-अधर्म और सुख-दुःख आदि भी अन्तःकरण मन आदि के गुण हैं जो कि उभय इंद्रिय है सुख-दुःख आदि का भोग करना मन का कर्म है न कि करना [**करणसामान्याद् यतो ह्यत्रैवाधीयन्तेऽनेनैव प्रतीयन्ते चेति तस्मान्न पुरुषे संगापत्तिः**] ये समस्त सुख दुःख मन आदि के द्वारा ही प्रतीत होते हैं इनके संस्कार मन में ही जमा होते हैं, साधन होने से। इसलिए संगापत्ति का दोष जीव में नहीं आएगा ।।२५।।

पूर्वपक्षी कहता है कि- यदि जीवात्मा असंग रहता है, उसको फिर विवेक प्राप्त करने कि कोई आवश्यकता ही नहीं है -

गुणानां (गुणादीनां?*) नात्यन्तबाधः ।।२६।।

सूत्रार्थ= तत्वज्ञान प्राप्त किए बिना धर्माधर्म, सुख दुःख गुणों का अत्यंत विनाश नहीं हो पाएगा।

[**(गुणानां-अत्यन्तबाधः-न) विवेकमन्तरेण तेषां धर्माधर्मसुखदुःखानामन्तःकरणगुणानां सतामप्यत्यन्तबाधो न भविष्यति**] विवेक प्राप्त किए बिना उन धर्म-अधर्म, सुख-दुःख जो अन्तःकरण के गुण बताए उनका अत्यंत विराम (विनाश) नहीं हो पाएगा किन्तु [**धर्माधर्मयोरदृष्टवशाद् यद्वा धर्माधर्मनिष्पन्नसंस्कारात् तत्फलयोः सुखदुःखयोरनुभूतिस्तु खल्वनिवार्या भविष्यति हीहजन्मनि परजन्मनि वा**] किन्तु धर्म-अधर्म का जो अदृष्ट के कारण से अथवा धर्म-अधर्म से जो उत्पन्न संस्कार हैं उनका जो फल है सुख दुःख इनकी अनुभूति निश्चित रूप से होगी ही, चाहे इस जन्म में हो चाहे परजन्म में हो ।।२६।।

यतः -क्योंकि

पञ्चावयवयोगात् सुखसंवित्तिः ।।२७।।

पञ्चावयवयोगात् सुखसंवित्तिः ।।२७।।

(पञ्चावयवयोगात्-सुखसंवित्तिः) निर्णयसाधनानामनुमानविषयकाणां पञ्चावयवानां योगात् प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनानां प्रवर्तनात् खलु भवति हि सुखसंवित्तिः सुखानुभूतिः । यथा सुखसंवित्तिर्धर्मफलं तथा दुःखसंवित्तिरधर्मफलमपि पञ्चावयवयोगात् सिध्यति ।।२७।।

तत्रानुमाने -

न सकृद् ग्रहणात् सम्बन्धसिद्धिः ।।२८।।

(न सकृद्ग्रहणात् सम्बन्धसिद्धिः) पुनःपुनर्ग्रहणात् पुनः पुनः कार्यकारणयोर्दर्शनात् कार्यकारणयोर्नैकस्मिन् देशे काले वा दर्शनात् किन्तु देशे देशे काले काले च तथैव दर्शनात् खलु

सूत्रार्थ= प्रतिज्ञा हेतु आदि पंचावयव के प्रयोग से धर्म का फल सुख और अधर्म का फल दुःख मिलता है, इसकी सिद्धि होती है।

[(पञ्चावयवयोगात्-सुखसंवित्तिः) निर्णयसाधनानामनुमानविषयकाणां पञ्चावयवानां योगात् प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनानां प्रवर्तनात् खलु भवति हि सुखसंवित्तिः सुखानुभूतिः] जो सत्यासत्य के निर्णय करने वाले साधन है उन अनुमान के विषय में जो पंचावयव प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टांत, उपनय और निगमन। उन पंचावयव के योग से जब व्यक्ति कुछ कर्म करता है तो उसको सुख संपत्ति सुख की अनुभूति होती है। **[यथा सुखसंवित्तिर्धर्मफलं तथा दुःखसंवित्तिरधर्मफलमपि पञ्चावयवयोगात् सिध्यति]** जैसे सुख कि अनुभूति धर्म का फल है और दुःख कि अनुभूति अधर्म का फल है, ये बात भी पंचावयव योग से सिद्ध होती है।।२७।।

तत्रानुमाने - अब अनुमान प्रमाण से संबन्धित विषय आरम्भ होता है-

न सकृद् ग्रहणात् सम्बन्धसिद्धिः ।।२८।।

सूत्रार्थ= किन्हीं दो वस्तुओं को एक बार साथ-साथ देखने से उन दोनों के सम्बंध की सिद्धि नहीं होती है।

[(न सकृद्ग्रहणात् सम्बन्धसिद्धिः) पुनःपुनर्ग्रहणात् पुनः पुनः कार्यकारणयोर्दर्शनात् कार्यकारणयोर्नैकस्मिन् देशे काले वा दर्शनात् किन्तु देशे देशे काले काले च तथैव दर्शनात् खलु कार्यकारणसम्बन्धसिद्धिरनुमाने निमित्तं भवति] बार-बार देखने से, बार-बार कार्य कारण को साथ-साथ देखने से, कार्य कारण की एक बार किसी में देख अथवा काल में देखने से सम्बन्धों की सिद्धि नहीं होती । भिन्न-भिन्न स्थानों पर समय-समय पर भी देखा। इस प्रकार बार-बार देखने से कार्य कारण के सम्बंध की सिद्धि अनुमान के निमित से हो जाती है।।२८।।

कार्यकारणसम्बन्धसिद्धिरनुमाने निमित्तं भवति ।।२८।।

सा हि -

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः ।।२९।।

(वा) अथवा (उभयोः-नियतधर्मसाहित्यम्) कार्यकारणयोर्नियतस्य धर्मस्य सहभावः (एकतरस्य व्याप्तिः) एकतरस्यानुमाने ज्ञाने विषये व्याप्तिर्भवति, यथा धूमाद् अग्नेः सिद्धिः-अग्नेर्वा धूमस्य प्रवर्तनम् ।।२९।।

ननु कार्यकारणयोर्नियतधर्मसाहित्यं व्याप्तिर्या खलूक्ता सा किं ताभ्यां कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरमस्तीत्याकांक्षायामुच्यते -

न तत्त्वान्तरं वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः ।।३०।।

सा हि - वह सम्बंध सिद्धि-

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः ।।२९।।

सूत्रार्थ= कार्य और कारण के नियम पूर्वक साथ रहने पर उनमें से कार्य को देखकर कारण का ज्ञान कराने में जो नियम साधन बनता है, उसका नाम व्याप्ति है जैसे धुएँ से अग्नि का ज्ञान होता है।

[(वा) अथवा (उभयोः-नियतधर्मसाहित्यम्) कार्यकारणयोर्नियतस्य धर्मस्य सहभावः] अथवा इसको इस प्रकार से भी कह सकते हैं- कार्य कारण के नियत धर्म का साथ-साथ रहना **[(एकतरस्य व्याप्तिः) एकतरस्यानुमाने ज्ञाने विषये व्याप्तिर्भवति]** जैसे धुएं को देखकर अग्नि का अनुमान कर लेते हैं दोनों साथ-साथ रहते हैं एक को देखकर दूसरे का अनुमान कर लेते हैं इसमें व्याप्ति कारण होता है, **[यथा धूमाद् अग्नेः सिद्धिः-अग्नेर्वा धूमस्य प्रवर्तनम्]** जहां धुआँ होगा वहाँ अग्नि की सिद्धि होती है अथवा अग्नि से धुआँ की सिद्धि होती है ।।२९।।

एक प्रश्न है- कार्य कारण का नियत रूप से साथ-साथ रहना, इसका नाम है व्याप्ति। ये जो व्याप्ति है सम्बंध है इन दोनों में क्या ये कार्य कारण इन दोनों वस्तुओं से अलग कोई तीसरी वस्तु है? इस आकांक्षा पर कहते हैं-

न तत्त्वान्तरं वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः ।।३०।।

सूत्रार्थ= व्याप्ति कार्य और कारण दो पदार्थों से अलग कोई तीसरा पदार्थ नहीं है, इसमें नई वस्तु की कल्पना करने का दोष आने से।

[(तत्त्वान्तरं न) व्याप्तिः खलु कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरं वस्त्वन्तरं ताभ्यां भिन्नं तृतीयं वस्तु

(तत्त्वान्तरं न) व्याप्तिः खलु कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरं वस्त्वन्तरं ताभ्यां भिन्नं तृतीयं वस्तु नास्ति । कुतः (वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः) वस्तुकल्पनाप्रसंगदोषात्, न हि धर्मः कदाचिद् धर्मी भवति व्याप्तिस्तु धर्मः कार्यकारणयोः सहभावे नियतो धर्मः । तस्माद् व्याप्तिः कार्यकारणाभ्यां भिन्नं वस्त्वन्तरं नास्ति ।।३०।।

अवस्तुत्वे पुनः किंस्वरूपा व्याप्तिरित्यत्रोच्यते -

निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः ।।३१।।

(निजशक्त्युत्भवम्-इति-आचार्याः) निजशक्तेः कार्यकारणयोर्या निजा शक्तिरस्ति तस्या उद्भवमर्थात् कार्यकारणभावे प्रवृत्तयोः पदार्थयोः समानदेशकालवतोः कार्यकारणतामपन्नयोर्व्याप्ता या शक्तिस्तस्या उद्भवं व्याप्तिं मन्येऽहमितीत्थमेवानेके किलाचार्याः सांख्याचार्या मन्यन्ते ।।३१।।

नास्ति] ये व्याप्ति कार्य और कारण से भिन्न कोई तीसरी वस्तु नहीं है। **[कुतः क्यों? (वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः) वस्तुकल्पनाप्रसंगदोषात्]** तीसरी वस्तु नाम से प्रसंग में दोष आ जाएगा, **[न हि धर्मः कदाचिद् धर्मी भवति व्याप्तिस्तु धर्मः कार्यकारणयोः सहभावे नियतो धर्मः]** एक नियम बताया-कि धर्म होता है वह कभी भी धर्मी नहीं होता (जो चीज किसी पर आश्रित है वह धर्म है। अग्नि धर्मी ''द्रव्य'' है धुआँ भी धर्मी है, इनमें जो सम्बंध है वह कोई वस्तु नहीं अपितु धर्म है)। **[तस्माद् व्याप्तिः कार्यकारणाभ्यां भिन्नं वस्त्वन्तरं नास्ति]** इसलिए व्याप्ति एक सम्बंध का नाम है, कार्य कारण से भिन्न कोई तीसरी वस्तु नहीं है।।३०।।

माना की व्याप्ति कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है, फिर वस्तु न होने पर व्याप्ति का सही स्वरूप क्या है? इस पर कहते हैं-

निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः ।।३१।।

सूत्रार्थ= कार्य और कारण द्रव्यों कि अपनी ही शक्ति कि उत्पत्ति व्याप्ति कहलाती है ऐसा सांख्य के अनेक आचार्य मानते हैं।

[(निजशक्त्युत्भवम्-इति-आचार्याः) निजशक्तेः कार्यकारणयोर्या निजा शक्तिरस्ति तस्या उद्भवमर्थात् कार्यकारणभावे प्रवृत्तयोः पदार्थयोः समानदेशकालवतोः कार्यकारणतामपन्नयोर्व्याप्ता या शक्तिस्तस्या उद्भवं व्याप्तिं मन्येऽहमितीत्थमेवानेके किलाचार्याः सांख्याचार्या मन्यन्ते] जो कार्य कारण की निज शक्ति है उस निजशक्ति का प्रकट हो जाना, अर्थात् कार्य कारण के रूप में जो प्रवृत्त पदार्थ हैं (धुआँ और अग्नि, लकड़ी और कुर्सी) ''ये दो कार्य कारण है ये इस प्रकार प्रवृत्त हो रहे है कि लकड़ी कारण बने और कुर्सी कार्य'' ऐसे दो पदार्थो में जो समान देश काल वाले हैं उसी स्थान पर कारण (लकड़ी), और कार्य (कुर्सी) है । ऐसे कार्य कारणता को प्राप्त हुए जो दो पदार्थ है उनमें जो व्याप्त है शक्ति। उन शक्ति के प्रकट होने वाली शक्ति को ही मैं मानता हूँ वही व्याप्ति है। ऐसा अनेक सांख्य पढ़ने-पढ़ाने वाले आचार्य मानते हैं (कि कार्य कारण कि जो अपनी शक्ति है वही प्रकट हो जाती है उसी का नाम व्याप्ति है)।।३१।।

आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः ।।३२।।

(आधेयशक्तियोगः-इति पञ्चशिखः) आधारभूते हि कार्यकारणे तयोः कार्यकारणभाव आधेयः, आधेयस्य शक्तियोगः शक्तिसंयोगः समानदेशकालापेक्षः सम्बन्धो व्याप्तिरस्तीति पञ्चशिखो मन्यते ।।३२।।

न स्वरूपशक्तिनियमः पुनर्वादप्रसक्तेः ।।३३।।

(स्वरूपशक्तिनियमः-न) व्याप्तिः खलु निजशक्त्युद्भवः कार्यकारणशक्त्युद्भवो वा आधेयशक्तियोगो वोभयविधलक्षणलक्षिता भवितुमर्हति परन्तु स्वरूपशक्तिनियमो न, कार्यद्रव्यस्य कारणद्रव्यस्य च स्वरूपशक्तेर्नियमनं कार्यत्वं कारणत्वं हि तत्र द्रव्ये स्थितं देशकालमनपेक्ष्य वर्तमानं तत्तद्द्रव्यमात्रं कार्यत्वं कारणत्वं चाप्रादुर्भूतं व्याप्तिर्नास्ति। यतः (पुनर्वादप्रसक्तेः) पुनरुक्तिदोषप्रसंगात्, यथा घटस्य कार्यस्य देशकालावनपेक्ष्य मृत्तिकास्वरूपं मृत्तिकैव यथा मृत्तिकायाः कारणस्य देशकालावनपेक्ष्य घटस्वरूपं घट एव यथा धूमस्य कार्यस्य देशकालावनपेक्ष्याग्निस्वरूपमग्निरेव यथाग्नेः

आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः ।।३२।।

सूत्रार्थ= पंचशिख आचार्य के मत में दो द्रव्यों में जो कार्य कारण भाव आश्रित है उसका नाम व्याप्ति है।

[(आधेयशक्तियोगः-इति पञ्चशिखः) आधारभूते हि कार्यकारणे तयोः कार्यकारणभाव आधेयः] (अब इस बात को नए प्रकार से कह रहे हैं- एक लकड़ी है जिससे कुर्सी बन चुकी है, तब कहा गया लकड़ी एक कार्य वस्तु है जो प्रकृति से उत्पन्न हुई, यही इसका कारण द्रव्य है) लकड़ी और कुर्सी ये दो द्रव्य हैं कारणभूत (आधारभूत) कार्यकारण आधारभूत है और जिस पर इन दोनों का संबंध टिका है वह आधेय(आश्रित) है, **[आधेयस्य शक्तियोगः शक्तिसंयोगः समानदेशकालापेक्षः सम्बन्धो व्याप्तिरस्तीति पञ्चशिखो मन्यते]** आधेय की शक्ति का संयोग होना उसी देश और उसी काल में (जब कुर्सी और लकड़ी दोनों उपस्थित हैं) ये कहना कि इन दोनों में संबंध है। यह जो सम्बंध बताया उसी का नाम व्याप्ति है ऐसा पञ्चशिख आचार्य का मत है।।३२।।

न स्वरूपशक्तिनियमः पुनर्वादप्रसक्तेः ।।३३।।

सूत्रार्थ= एक वस्तु के स्वरूप में व्याप्ति की परिभाषा नहीं बन पाती है, उसमें वस्तु के स्वरूप का पुनरुक्त दोष होने से।

[(स्वरूपशक्तिनियमः-न) व्याप्तिः खलु निजशक्त्युद्भवः कार्यकारणशक्त्युद्भवो वा आधेयशक्तियोगो वोभयविधलक्षणलक्षिता भवितुमर्हति परन्तु स्वरूपशक्तिनियमो न] व्याप्ति को किसी भी प्रकार से समझ सकते हैं निज शक्ति उद्भव (जो ३१ वे सूत्र में बताई), कार्य कारण शक्ति का उद्भव हो जाना अथवा आधेय शक्ति के योग से। दोनों में से किसी भी प्रकार से व्याप्ति को समझ सकते हैं, परंतु स्वरूप शक्ति का नियम नहीं है, **[कार्यद्रव्यस्य कारणद्रव्यस्य च स्वरूपशक्तेर्नियमनं कार्यत्वं कारणत्वं हि तत्र द्रव्ये स्थितं देशकालमनपेक्ष्य वर्तमानं तत्तद्द्रव्यमात्रं कार्यत्वं कारणत्वं चाप्रादुर्भूतं व्याप्तिर्नास्ति]** कार्य द्रव्य का और कारण द्रव्य का जो स्वरूप शक्ति का नियम है वो है कार्यत्व और कार्णत्व। उस द्रव्य में जो देश

कारणस्य देशकालावनपेक्ष्य धूमस्वरूपं धूम एवेति कथने पुनरुक्तिरेव वस्तुनो भवति। इदं सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चान्यथाव्याख्यातं तत्र शक्तो मल्लः, घटः कलशः, इति पर्यायत्वमाश्रित्य पुनरुक्तिर्दर्शिता नह्यत्र पर्यायत्वपुनरुक्तिरभीष्टाऽपि तु स्वरूपपुनरुक्तिदोषोऽभीष्टः ।।३३।।

तथा -

विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः ।।३४।।

(विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः) स्वरूपशक्तिनियमो व्याप्तिरितिमन्तव्ये विशेषणस्यानर्थकता प्रसज्यते, मल्लः शक्तः, इति कथनेन किं शक्तिसिद्धकार्यमन्तरेण, यत् कारणं वस्तु कारणं यत् काय५ वस्तु कार्यमिति कारणविशेषणं कार्यविशेषणं व्यर्थं स्यात् यावता कार्यकारणतायाः खलु देशे काले च सहभावप्रसंगो न भवेत् ।।३४।।

काल को बिना अपेक्षा किए वर्तमान है, केवल वही-वही द्रव्य केवल एक ही वस्तु को देखेंगे तो उस एक वस्तु में कार्यत्व और कार्णत्व उत्पन्न नहीं होगा वह अपेक्षा करने पर ही होगा। [**यतः (पुनर्वादप्रसक्तेः) पुनरुक्तिदोषप्रसंगात्**] यदि एक ही वस्तु में व्याप्ति कहेंगे तो वहाँ पुनरुक्ति दोष आएगा, **यथा घटस्य कार्यस्य देशकालावनपेक्ष्य मृत्तिकास्वरूपं मृत्तिकैव** जैसे घट कार्य का देश काल की अपेक्षा न करते हुए केवल मिट्टी ही हो एक ही द्रव्य होने से तत समय व्याप्ति नहीं होगी, तब मिट्टी का स्वरूप केवल मिट्टी ही है [**यथा मृत्तिकायाः कारणस्य देशकालावनपेक्ष्य घटस्वरूपं घट एव**] अथवा जैसे मिट्टी कारण कि देश काल की अपेक्षा किए बिना केवल घड़े को एक ही वस्तु के रूप में देखें तो वह एक ही वस्तु है (घड़े को घड़े ही कह सकते है कारण नहीं) [**यथा धूमस्य कार्यस्य देशकालावनपेक्ष्याग्निस्वरूपमग्निरेव यथाग्नेः कारणस्य देशकालावनपेक्ष्य धूमस्वरूपं धूम एवेति कथने पुनरुक्तिरेव वस्तुनो भवति**] ऐसे ही धुएँ रूपी कार्य को जो कि देश काल की अपेक्षा न करके अग्नि के स्वरूप को देखें तो वह केवल अग्नि ही है, ऐसे ही अग्नि कारण रूप द्रव्य है उसके कारण कि अपेक्षा किए बिना केवल धुएँ को देखना इस कथन में केवल वस्तु कि पुनरुक्ति ही है सम्बंध की सिद्धि नहीं होती है। [**इदं सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चान्यथाव्याख्यातं**] यहाँ इस सूत्र को अनिरुद्ध वृत्ती में और विज्ञानभिक्षु भाष्य में ठीक से व्याख्या नहीं की गई [**तत्र शक्तो मल्लः, घटः कलशः, इति पर्यायत्वमाश्रित्य पुनरुक्तिर्दर्शिता**] इन्होनें जो पुनरुक्ति दिखाई वो एक ही वस्तु के दो पर्यायवाची शब्द दिखाकर के की है जैसे की पहलवान ताकतवर है, घड़ा है, कलश है, इस प्रकार से पर्यायवाची शब्दों से पुनरुक्ति दोष दिखाया है [**नह्यत्र पर्यायत्वपुनरुक्तिरभीष्टाऽपि तु स्वरूपपुनरुक्तिदोषोऽभीष्टः**] यहाँ पर्यायवाची शब्द दिखाकर पुनरुक्ति दोष दिखाना उचित नहीं है, यहाँ सूत्रकार को दिखाना अभीष्ट नहीं है, सूत्रकार तो वस्तु स्वरूप में पुनरुक्ति दोष दिखाना चाहता है ।।३३।।

तथा -

विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः ।।३४।।

अपरञ्च -

पल्लवादिष्वनुपपत्तेश्च ।।३५।।

(पल्लवादिषु-अनुपपत्तेः-च) कार्यकारणयोः स्वरूपशक्तिनियमो व्याप्तिरिति मन्तव्येऽपरोऽयं दोषो यत् पल्लवादिषु दृश्यमानेषु वृक्षादिरनुमीयते तत्र स्वरूपशक्तिमात्रं कार्यस्य स्वस्मात् कारणात् पृथग्भूतं सदपि विद्यते तदा छिन्नेषु पल्लवादिषु वृक्षोऽत्रेत्यनुमानस्यायुक्तता स्यान्न तत्र वृक्षादयः सन्ति केवलं पल्लवादय एव सन्ति। तस्मान्न स्वरूपशक्तिनियमो व्याप्तिरस्ति ।।३५।।

किन्तु -

सूत्रार्थ= स्वरूप शक्ति ही (एक वस्तु में) व्याप्ति है, इस मान्यता में कार्य अथवा कारण ये विशेषण शब्द व्यर्थ सिद्ध होगा।

[(विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः) स्वरूपशक्तिनियमो व्याप्तिरितिमन्तव्ये विशेषणस्यानर्थकता प्रसज्यते, मल्लः शक्तः, इति कथनेन किं शक्तिसिद्धकार्यमन्तरेण] अगर ये माना जाए की एक ही वस्तु में व्याप्ति है और ऐसा कोई व्याप्ति माने भी तो विशेषण की अनर्थकता होगी जैसे कि ये ''पहलवान बलवान है'' ऐसा कहने से क्या प्रयोजन सिद्ध हो रहा है? जब तक आप शक्ति से सिद्ध होने वाला कोई कार्य न बताए (इसलिए स्वरूप शक्ति में व्याप्ति का नियम नहीं बनता), **[यत् कारणं वस्तु कारणं यत् काय५ वस्तु कार्यमिति कारणविशेषणं कार्यविशेषणं व्यथ५ स्यात्]** कारण वस्तु को कहा जाए कि वह कारण है ऐसे ही कार्य वस्तु को कार्य कहा जाए तो कार्य विशेषण और कारण विशेषण लगाना व्यर्थ है **[यावता कार्यकारणतायाः खलु देशे काले च सहभावप्रसंगो न भवेत्]** जब तक उस देश काल में कार्य कारण सा सहभाव प्रसंग न हो, तब तक एक ही वस्तु में विशेषण लगाना व्यर्थ है ।।३४।।

अपरञ्च -

पल्लवादिष्वनुपपत्तेश्च ।।३५।।

सूत्रार्थ=वृक्ष से कटे हुए पत्तों को देखकर उन पत्तों से वृक्ष का अनुमान नहीं होता, इसलिए एक वस्तु के स्वरूप में व्याप्ति नहीं बनती है।

[(पल्लवादिषु-अनुपपत्तेः-च) कार्यकारणयोः स्वरूपशक्तिनियमो व्याप्तिरिति मन्तव्येऽपरोऽयं दोषो यत् पल्लवादिषु दृश्यमानेषु वृक्षादिरनुमीयते] कार्य कारण में स्वरूप शक्ति का नियम व्याप्ति है, यदि ऐसा माना जाए तो इस मान्यता में एक और दोष आता है कि पत्ते आदि केवल देखने पर वृक्ष आदि है ऐसा अनुमान होगा जो कि गलत होगा **[तत्र स्वरूपशक्तिमात्रं कार्यस्य स्वस्मात् कारणात् पृथग्भूतं सदपि विद्यते]** कार्य का वहाँ स्वरूप शक्ति मात्र है अपने कारण वृक्ष से कट करके पृथक-पृथक होकर के केवल पत्ते ही दिख रहे हैं, इसलिए अनुमान ठीक नहीं है **[तदा छिन्नेषु पल्लवादिषु वृक्षोऽत्रेत्यनुमानस्यायुक्तता स्यान्न तत्र वृक्षादयः सन्ति केवलं पल्लवादय एव सन्ति]** इसलिए केवल वहाँ पत्ते देखकर ये अनुमान लगाना की वृक्ष भी है, ये अनुचित है। वहाँ वृक्ष आदि कुछ नहीं है केवल पत्ते ही पत्ते हैं इसलिए एक वस्तु में स्वरूप शक्ति में व्याप्ति का नियम नहीं बनता। **[तस्मान्न स्वरूपशक्तिनियमो व्याप्तिरस्ति]** इसलिए स्वरूप

आधेयशक्तिसिद्धौ निजशक्तियोगः समानन्यायात् ।।३६।।

(आधेयशक्तिसिद्धौ) आधेयशक्तियोगो व्याप्तिरुक्ता तत्राधेयशक्तिसिद्धौ कार्यकारणयोराधारयोराधेयशक्तिः कार्यकारणयोर्नियतधर्मसहभावो व्याप्तिस्तत्सिद्धौ (निजशक्तियोगः) निजशक्तियोगः कार्यकारणयोः कार्यत्वकारणत्वरूपा निजा शक्तिर्व्याप्तिरस्ति हि ।कुतः (समानन्यायात्) कार्यकारणयोः सहभावस्य स्वीकारात् खलु व्याप्तिलक्षणं न दोषयुक्तम् ।।३६।।

धर्मरूपकर्मणः फलसिद्धावनुमानस्य स्वरूपमुक्तं यदनुमानं लिंगलिंगिनावभिलक्ष्य प्रवर्तते । अधुना तत्रैव शब्दप्रमाणं शब्दार्थावधिकृत्य प्रसिध्यति तत्र शब्दार्थयोः कः सम्बन्ध इत्यत्रोच्यते -

वाच्यवाचकभावः सम्बन्धः शब्दार्थयोः ।।३७।।

शक्ति का नियम व्याप्ति नहीं है एक वस्तु में व्याप्ति नहीं होती ।।३५।।

किन्तु -

आधेयशक्तिसिद्धौ निजशक्तियोगः समानन्यायात् ।।३६।।

सूत्रार्थ= व्याप्ति के रूप में आधेय शक्ति का होना और कार्य कारण की निजशक्ति का होना, ये दोनों बातें ठीक हैं दोनों का उत्तर ठीक है।

[(आधेयशक्तिसिद्धौ) आधेयशक्तियोगो व्याप्तिरुक्ता तत्राधेयशक्तिसिद्धौ कार्यकारणयोराधारयोराधेयशक्तिः कार्यकारणयोर्नियतधर्मसहभावो व्याप्तिस्तत्सिद्धौ] आपने आधेय शक्ति का युक्त होना व्याप्ति बताया था वहाँ आधेय शक्ति का व्याप्ति के रूप में सिद्ध हो जाने पर कार्य कारण दोनों वस्तुए आधार थीं और आधेय शक्ति उन पर आश्रित थी, कार्य कारण का साथ रहना यह व्याप्ति है यह भी सिद्ध हो गया **[(निजशक्तियोगः) निजशक्तियोगः कार्यकारणयोः कार्यत्वकारणत्वरूपा निजा शक्तिर्व्याप्तिरस्ति]** हि ऐसी स्थिति में जैसे उपर बताया था -उस स्थिति में निज शक्ति का होना अर्थात् कार्य कारण की निजशक्ति को व्याप्ति का नाम दें तो ठीक है। **[कुतः (समानन्यायात्) कार्यकारणयोः सहभावस्य स्वीकारात् खलु व्याप्तिलक्षणं न दोषयुक्तम्]** क्योंकि कार्य कारण का दोनों का साथ-साथ रहना ये व्याप्ति के स्वरूप में स्वीकार किया गया था ये दोष युक्त नहीं है।।३६।।

धर्म रूपी कर्म की सिद्धि में अनुमान का रूप कह दिया (कि धर्म करेंगे तो सुख मिलेगा, अधर्म करेंगे तो दु:ख मिलेगा)अनुमान प्रमाण लिंग और लिंगी के आधार पर चलता है। इसी प्रकार से इस विषय में शब्द प्रमाण कि बात करते हैं वो भी शब्द और अर्थ के आधार पर प्रसिद्ध होता है, शब्द और अर्थ में क्या संबंध है इस विषय में बताएँगे-

वाच्यवाचकभावः सम्बन्धः शब्दार्थयोः ।।३७।।

सूत्रार्थ=शब्द और उसके अर्थ में वाच्य-वाचक सम्बंध होता है।

(शब्दार्थयोः सम्बन्धः-वाच्यवाचकभावः) शब्दार्थयोः सम्बन्धः खलु वाच्यवाचकभावोऽस्ति। तत्र शब्दो वाचकोऽर्थो वाच्यः ।।३७।।

तस्य वाच्यवाचकसम्बन्धस्य सिद्धेरुपायमाह -

त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः ।।३८।।

(त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः) त्रिभिः प्रकारैः-आप्तोपदेशात्, वृद्धव्यवहारात्, प्रसिद्धपदसहचारात् सम्बन्धसिद्धिः शब्दार्थयोः सम्बन्धसिद्धिर्भवति । आप्तोपदेशात्-सास्नावती गौः। वृद्धव्यहारात्-वत्स गामानय दोहनाय । प्रसिद्धपदसहचारात्-गुरुर्गां दोग्धि ।।३८।।

ननु शब्दस्य प्रामाण्यं क्रियार्थमेव यद्वा वस्तुस्वरूपप्रदर्शनार्थमपि । अत्रोच्यते -

न कार्ये नियम उभयथा दर्शनात् ।।३९।।

[**(शब्दार्थयोः सम्बन्धः-वाच्यवाचकभावः) शब्दार्थयोः सम्बन्धः खलु वाच्यवाचकभावोऽस्ति**] शब्द और अर्थ इनमें जो संबंध है वह है वाच्य वाचक सम्बंध। [**तत्र शब्दो वाचकोऽर्थो वाच्यः**] जिस वस्तु के लिए शब्द उच्चारण किया गया (वो उसका नाम है अथवा शब्द है) यहाँ शब्द है वाचक और अर्थ है वाच्य (कहने वाला = वाचक, कहने योग्य पदार्थ ये है वाच्य)।।३७।।

उस वाच्य वाचक सम्बंध कि सिद्धि का उपाय बताते हैं -

त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः ।।३८।।

सूत्रार्थ= तीन प्रकार से शब्द और अर्थ के सम्बंध का ज्ञान होता है, आप्तों के उपदेश से, वृद्धों के व्यवहार से, प्रसिद्ध पदों के सहचार से।

[**(त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः) त्रिभिः प्रकारैः-आप्तोपदेशात्, वृद्धव्यवहारात्, प्रसिद्धपदसहचारात् सम्बन्धसिद्धिः शब्दार्थयोः सम्बन्धसिद्धिर्भवति**] तीन प्रकार से सम्बंध कही सिद्धि होती है एक तो आप्तोप्देश (अनुभवी व्यक्तियों ने जो सिखाया बताया), वृद्धव्यवहार= वयोवृद्ध व्यक्तियों का व्यवहार, प्रसिद्ध शब्द के साथ किसी अन्य का व्यवहार होने से उन शब्द और अर्थ के सम्बंध की जानकारी हमें हो जाती है। [**आप्तोपदेशात्-सास्नावती गौः**] किसी ने पूछा गाय कैसी होती है? किसी आप्त ने गाय के (गलकम्बल वाली) लक्षण बता दिये। [**वृद्धव्यहारात्-वत्स गामानय दोहनाय**] बड़ों के व्यवहार से भी हमें पता चल जाता है जैसे-जाओ गाय को लेके आओ दूध दोहेंगे। [**प्रसिद्धपदसहचारात्-गुरुर्गां दोग्धि**] प्रसिद्ध शब्द के साथ व्यवहार होने से =गुरुजी गाय का दूध निकाल रहे हैं।।३८।।

एक प्रश्न है- शब्द की जो प्रामाणिकता है वह क्रियाओं को बताने के लिए ही सीमित है अथवा वस्तु

(कार्ये नियमः-न) शब्दस्य प्रामाण्यं क्रियार्थमेवास्तीति नियमो न । यतः (उभयथा दर्शनात्) शब्दस्य मन्त्रात्मकस्य क्रियार्थत्वं वस्तुस्वरूपप्रदर्शनार्थत्वं चोभयथा प्रयोजनं दृश्यते ''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः'' (यजु० ४०.२) इति क्रियाविधानम् ''अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रः श्रवस्तमः'' (ऋ०र १.१.३) ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' (तै० उ० २.१.१) इति स्वरूपवर्णनम् ।।३९।।

लोके तु व्यवहारेण शब्दा ज्ञानसम्बन्धाः, कथं हि वैदिकशब्दानामर्थप्रतीतिः स्यादित्यत्रोच्यते -

लोक (वद्) व्युत्पन्नस्य* वेदार्थप्रतीतिः ।।४०।।

(लोकवत्-व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः) लोके यथा लौकिकशब्देषु व्युत्पन्नो जनो विज्ञातवाच्यवाचकत्वसम्बन्धो लौकिकानां शब्दानामर्थान् ज्ञातुं शक्नोति तथैव वैदिकशब्देषु व्युत्पन्नो

के स्वरूप को बताने में भी शब्द को प्रमाण माना जाता है? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं-

न कार्ये नियम उभयथा दर्शनात् ।।३९।।

सूत्रार्थ= शब्द प्रमाण केवल क्रियाओं का ही विधान करे ऐसा नियम नहीं है, शब्द प्रमाण में क्रिया विधान और वस्तु का स्वरूप दोनों देखा जाने से।

[(कार्ये नियमः-न) शब्दस्य प्रामाण्यं क्रियार्थमेवास्तीति नियमो] न शब्द प्रमाण केवल क्रियाओं को बताने तक सीमित है, ऐसा नियम नहीं है। **[यतः क्योंकि (उभयथा दर्शनात्) शब्दस्य मन्त्रात्मकस्य क्रियार्थत्वं वस्तुस्वरूपप्रदर्शनार्थत्वं चोभयथा प्रयोजनं दृश्यते]** शब्द क्रियाओं को भी बताता है और वस्तुओं के स्वरूप को भी बताता है क्योंकि मंत्रात्मक जो शब्द है उसका प्रयोजन केवल क्रियाओं का बताना मात्र नहीं है अपितु वस्तु के स्वरूप को भी बताना है ऐसा दोनों प्रकार का दिख रहा है। जैसे कि उदाहरण दिया- **[''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः'' (यजु० ४०.२) इति क्रियाविधानम्]** शब्द प्रमाण में ये क्रिया का विधान किया कि मनुष्य को कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीने कि इच्छा करनी चाहिए । अब वस्तु का स्वरूप बताते हैं- **[''अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रः श्रवस्तमः''(ऋ०र १.१.३)]** ईश्वर अग्नि स्वरूप है, कवि है विद्वान है, कर्मशील है, वह सत्यस्वरूप है, विचित्र है, सबकी सुनने वाला है **[''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' (तै० उ० २.१.१)]** ईश्वर सत्य है, ज्ञानवान है, अनंत है व्यापक है **[इति स्वरूपवर्णनम्]** यह वस्तु का स्वरूप वर्णन हुआ ।।३९।।

लोक में तो व्यवहार से सम्बन्धों का पता चल जाता है, अब वैदिक शब्दों का अर्थ कैसे पता चलेगा इसका उत्तर देते हैं-

लोक (वद्) व्युत्पन्नस्य* वेदार्थप्रतीतिः ।।४०।।

सूत्रार्थ= जैसे लौकिक शब्दार्थ सम्बंध को जानने वाला व्यक्ति लौकिक शब्दों को सुनकर उनका

जनो विज्ञातवाच्यवाचकत्वसम्बन्धो वेदार्थं वैदिकशब्दानामर्थानपि प्रत्येति वाच्यवाचकत्वसम्बन्धसामान्यात् ।।४० ।।

लोकवद् व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिरुच्यते भवतु वेदेऽपि व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः, परन्तु वेदे व्युत्पन्नता भवेत् कथम् ? लोके तु त्रिभिरुपायैराप्तोपदेशाद् वृद्धव्यवहारात् प्रसिद्धपदसहचाराद् भविष्यति लौकिकशब्देषु मनुष्यस्य व्युत्पन्नता किन्तु वेदे -

न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद् वेदस्य तदर्थस्याप्यतीन्द्रियत्वात् ।।४१ ।।

(वेदस्य-अपौरुषेयत्वात्) वेदस्यामनुष्यकृतत्वात् (तदर्थस्य-अतीन्द्रियत्वात्-अपि) पुनश्च वेदार्थस्याप्रत्यक्षत्वादपि (त्रिभिः-न) त्रिभिरुपायैराप्तोपदेशवृद्धव्यवहारप्रसिद्ध पदसहचारैः सह सम्बन्धो

अर्थ जान लेता है, वैसे ही वैदिक शब्दार्थ सम्बंध को जानने वाला व्यक्ति शब्दों को सुनकर उनका अर्थ जान लेता है।

[(लोकवत्-व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः) लोके यथा लौकिकशब्देषु व्युत्पन्नो जनो विज्ञातवाच्यवाचकत्वसम्बन्धो लौकिकानां शब्दानामर्थान् ज्ञातुं शक्नोति] जैसे लोक में लौकिक शब्दों में विशेषज्ञ व्यक्ति वाच्य वाचक संबंध को जान लेता है और लौकिक सम्बन्धों के अर्थों को जानने में समर्थ हो जाता है **[तथैव वैदिकशब्देषु व्युत्पन्नो जनो विज्ञातवाच्यवाचकत्वसम्बन्धो वेदार्थं वैदिकशब्दानामर्थानपि प्रत्येति वाच्यवाचकत्वसम्बन्धसामान्यात्]** वैसे ही वैदिक शब्दों के जानकार व्यक्ति इन वैदिक शब्दों का विशेषज्ञ होता है वह वैदिक शब्दों के अर्थों को जानने में समर्थ हो जाता है वैदिक शब्दों का भी अर्थों के साथ वाच्य वाचक संबंध होने से ।।४० ।।

लोकवत् सांसारिक शब्दार्थ में जो जानकार व्यक्ति है वैसे ही जो वेद में जानकार होगा वो वेदार्थ को जानने में विशेषज्ञ हो जाएगा। परंतु प्रश्न है कि वेद में व्यक्ति कुशल होगा कैसे? लोक में तो व्यक्ति तीन उपायों से व्यक्ति कुशल बन जाएगा आप्तोपदेश से, वृद्ध व्यक्तियों के व्यवहार से, प्रसिद्ध पद के सहचार से लौकिक शब्दों में मनुष्य की कुशलता हो जाती है। किन्तु वेद में कैसे होगा?

न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद् वेदस्य तदर्थस्याप्यतीन्द्रियत्वात् ।।४१ ।।

सूत्रार्थ= पूर्वपक्षी कहता है- पूर्वोक्त तीनों उपायों से वेद के अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि वेद मनुष्य कृत नहीं है, और वेद का अर्थ भी अप्रत्यक्ष है।

[(वेदस्य-अपौरुषेयत्वात्) वेदस्यामनुष्यकृतत्वात् (तदर्थस्य-अतीन्द्रियत्वात्-अपि) पुनश्च वेदार्थस्याप्रत्यक्षत्वादपि (त्रिभिः-न) त्रिभिरुपायैराप्तोपदेशवृद्धव्यवहार- प्रसिद्ध पदसहचारैः सह सम्बन्धो न भवति पुनः कथं वैदिकशब्देषु स्याद् व्युत्पन्नो जनः] पूर्वपक्षी कहता है-वेद किसी मनुष्य ने तो बनाया नहीं और फिर उसका अर्थ भी अप्रत्यक्ष है (उसके उपदेश का अर्थ अप्रत्यक्ष रहता है) वेद का आप्तोपदेश, वृद्ध व्यवहार और प्रसिद्ध पद सहचार ऐसा कोई सम्बंध मनुष्य को बनाता नहीं, फिर कैसे वैदिक शब्दों में

न भवति पुनः कथं वैदिकशब्देषु स्याद् व्युत्पन्नो जनः, न स्याद् व्युत्पन्न इत्यर्थः। इति पूर्वपक्षोक्तिः ।।४१।।

अथ समाधत्ते पूर्वं वेदार्थस्यातीन्द्रियत्वे समाधानमुच्यते -

न यज्ञादेः स्वरूपतो धर्मत्वं वैशिष्ट्यात् ।।४२।।

(न) वेदार्थस्यातीन्द्रियत्वं नास्ति (यज्ञादेः) यज्ञदानाध्ययनानाम् (वैशिष्ट्यात्) विशिष्टविधिपूर्वकानुष्ठानात् (स्वरूपतः-धर्मत्वम्) स्वरूपतस्तत्तद्व्यवहारेण प्रत्यक्षतो धर्मत्वं धर्मफलमुपलभ्यते हि, तस्माद् वेदार्थो नातीन्द्रियः ।।४२।।

यच्चोक्तमपौरुषेयत्वाद् वेदस्य त्रिभिः सह सम्बन्धाभावाद् वैदिकशब्देषु मनुष्यस्य व्युत्पत्तिर्न स्यात्। अत्र प्रतिविधीयते -

निजशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते ।।४३।।

व्यक्ति कुशल बनेगा?, **[न स्याद् व्युत्पन्न इत्यर्थः]** किसी भी प्रकार से व्यक्ति वेद में कुशल नहीं होगा। ये पूर्वपक्ष का कथन हुआ।।४१।।

सिद्धांती कहता है- वेद का अर्थ अतीन्द्रिय है, इसका पहले समाधान करते हैं-

न यज्ञादेः स्वरूपतो धर्मत्वं वैशिष्ट्यात् ।।४२।।

सूत्रार्थ= वेदार्थ अप्रत्यक्ष नहीं है, यज्ञ आदि शुभ कर्मों का अनुष्ठान करने से स्वतः ही सुख शान्ति धर्म कि प्राप्ति होने से।

[(न) वेदार्थस्यातीन्द्रियत्वं नास्ति] वेद का अर्थ अतीन्द्रिय नहीं है, बहुत सा प्रत्यक्ष भी है जैसे- **[(यज्ञादेः) यज्ञदानाध्ययनानाम् (वैशिष्ट्यात्) विशिष्टविधिपूर्वकानुष्ठानात्]** वेद में बताया गए कर्म जैसे यज्ञ करना, दान देना, अध्ययन करना आदि कर्मों का विशेष विधिपूर्वक अनुष्ठान किया जाए तो इनका प्रत्यक्ष फल दिखता है **[(स्वरूपतः-धर्मत्वम्) स्वरूपतस्तत्तद्व्यवहारेण प्रत्यक्षतो धर्मत्वं धर्मफलमुपलभ्यते हि, तस्माद् वेदार्थो नातीन्द्रियः]** विधि पूर्वक अनुष्ठान करने पर उस-उस स्वरूप का ठीक-ठीक व्यवहार करने पर प्रत्यक्ष रूप से उन-उन कर्मों का धर्म फल मिलता ही है, इसलिए वेदार्थ अतीन्द्रिय नहीं है ।।४२।।

[यच्चोक्तमपौरुषेयत्वाद् वेदस्य त्रिभिः सह सम्बन्धाभावाद् वैदिकशब्देषु मनुष्यस्य व्युत्पत्तिर्न स्यात् । अत्र प्रतिविधीयते -] सिद्धांती और आगे कहता है कि- जो आपने आरोप लगाया था कि वेद अपौरुषेय होने से मनुष्य का तीन उपायों से वैदिक शब्दार्थ सम्बंध अभाव रहेगा (वैदिक शब्दों को तीन उपायों से नहीं जान पाएगा), इसलिए वैदिक शब्दों में मनुष्य की कुशलता कैसे होगी अर्थात नहीं होगी। इस बात का यहाँ खंडन करते हैं-

(निजशक्तिः-व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते) अपौरुषयत्वेऽपि वेदस्य वैदिकशब्दानामर्थे निजशक्तिः स्वाभाविकी शक्तिरस्ति, शब्दो न ह्यर्थमन्तरेण भवति ''शब्दार्थसम्बन्धो नित्यः'' (महाभाष्ये) शब्दैः सह खल्वर्थसम्बन्धेनावश्यं भाव्यमेव स्वाभाविकी साऽर्थशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते विशेषतोऽवच्छिद्यते सम्बध्यते तद्व्युत्पत्त्या मनुष्योऽपि व्युत्पन्नो वेदार्थज्ञाने भवति, सा चादिमहर्षिभिरध्यात्मप्रत्यक्षेण साक्षात्कृता पुनश्च नैरुक्तशैल्या निर्वचनेन शिष्येभ्यो विश्लिष्य ज्ञाप्यते। तस्मान्न दोषः।।४३।।

एवम् -

योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात् तत्सिद्धिः ।।४४।।

(योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात्) इन्द्रिययोग्येषु लौकिकशब्दार्थेषु तथेन्द्रियायोग्येष्वतीन्द्रियेषु वैदिकशब्दार्थेषु प्रतीतिजनकत्वाज्ज्ञानजनकत्वसाम्यात् (तत्सिद्धिः) व्युत्पत्तिसिद्धिर्भवति यया वेदार्थज्ञाने

निजशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते ।।४३।।

सूत्रार्थ= शब्दों के अर्थो को प्रकट करने कि जो अपनी शक्ति है वह ईश्वर के द्वारा दी गई है, वह शक्ति व्युत्पत्ति के माध्यम से मनुष्य के साथ जुड़ जाती है फिर वह वेदार्थ को समझने में कुशल हो जाता है।

[**(निजशक्तिः-व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते) अपौरुषयत्वेऽपि वेदस्य वैदिकशब्दानामर्थे निजशक्तिः स्वाभाविकी शक्तिरस्ति**] वेद के अपौरुषेय होने पर भी वैदिक शब्दों की अर्थ के प्रकट करने में शब्दों की स्वाभाविक शक्ति है (जिससे मनुष्य कुशल हो जाएगा), [**शब्दो न ह्यर्थमन्तरेण भवति**] कोई भी शब्द अर्थ के विना नहीं होता [**''शब्दार्थसम्बन्धो नित्यः''**] व्याकरण महाभाष्य में बताया कि ''शब्द अर्थ सम्बन्ध नित्य है'' [**(महाभाष्ये) शब्दैः सह खल्वर्थसम्बन्धेनावश्यं भाव्यमेव**] शब्द के साथ अर्थ का सम्बन्ध अवश्य ही होना चाहिए [**स्वाभाविकी साऽर्थशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते विशेषतोऽवच्छिद्यते सम्बध्यते तद्व्युत्पत्त्या मनुष्योऽपि व्युत्पन्नो वेदार्थज्ञाने भवति**] शब्दों में जो स्वाभाविकी अर्थ शक्ति है वह व्युत्पत्ति के माध्यम से मनुष्य उस शब्दार्थ के साथ जुड़ जाता है, उस व्युत्पत्ति की सहायता से मनुष्य भी वेद का अर्थ जानने में कुशल हो जाता है, [**सा चादिमहर्षिभिरध्यात्मप्रत्यक्षेण साक्षात्कृता**] शब्दों की जो निज शक्ति है वह आरंभ के जो चार ऋषि हुए थे उनके अध्यात्म प्रत्यक्ष के द्वारा साक्षात की गई [**पुनश्च नैरुक्तशैल्या निर्वचनेन शिष्येभ्यो विश्लिष्य ज्ञाप्यते**] फिर उन्होने निरुक्त शैली से निर्वाचन करके अपने शिष्यों को विश्लेषण करके बता दिया। [**तस्मान्न दोषः**] इसलिए इसमें कोई दोष नहीं है ।।४३।।

एवम् -

योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात् तत्सिद्धिः ।।४४।।

सूत्रार्थ= योग्य= जो प्रत्यक्ष है लौकिक अर्थ वाले हैं, अयोग्य = जो इंद्रियों से नहीं जाने जाते परोक्ष पदार्थ हैं, उनमें भी दोनों प्रकार के अर्थों को बताने में शब्दों की ज्ञान उत्पादकत्व होने से वैदिक शब्दों का अर्थ भी पता चल जाता है।

मनुष्यो व्युत्पन्नो जायते ।।४४।।

यद्यपि वैदिकशब्दानामर्थे स्वाभाविकी शक्तिरस्ति तथापि -

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ।।४५।।

(वेदानां नित्यत्वं न) स्वाभाविकार्थशक्तिमतामपि वेदानां मन्त्रसमूहानां नित्यत्वं यथास्वं वर्तमानत्वं नास्ति (कार्यत्वश्रुतेः) तेषां कार्यत्वश्रुतिदर्शनात् ''तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।'' (यजु०३१-७) ''त्रयो वेदा अजायन्त'' (शत० ११.५.८.३) ।।४५।।

वेदानां कार्यत्वं यद्यपि प्रतिपाद्यते तथापि तेषाम् -

न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।।४६।।

[(योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात्) इन्द्रिययोग्येषु लौकिकशब्दार्थेषु तथेन्द्रियायोग्येष्वतीन्द्रियेषु वैदिकशब्दार्थेषु प्रतीतिजनकत्वाज्ज्ञानजनकत्वसाम्यात् (तत्सिद्धिः) व्युत्पत्तिसिद्धिर्भवति यया वेदार्थज्ञाने मनुष्यो व्युत्पन्नो जायते] इंद्रियों के योग्य विषयों में अर्थात् लौकिक शब्दों के अथो५ में और जो इंद्रियों से नहीं जाने जाते (अतीन्द्रिय हैं) उन वैदिक शब्दों के अर्थों में इन दोनों में एक विशेषता है की लौकिक शब्दों में विशेषता है की वह अर्थो का ज्ञान कराती है और वैदिक शब्दों में ये क्षमता है की वह अर्थ का ज्ञान उत्पन्न करते हैं। इस कारण से शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध हो जाती है उसके अर्थ का ज्ञान हो जाता है। जिस व्युत्पत्ति कि सहायता से वेदार्थ ज्ञान में मनुष्य कुशल हो जाता है ।।४४।।

यद्यपि वैदिक शब्दों में अर्थों को प्रकट करने की स्वाभाविक शक्ति है, फिर भी-

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ।।४५।।

सूत्रार्थ= वेद नित्य नहीं है क्योंकि वो उत्पन्न हुए हैं, ऐसा सुनाई देने से।

[(वेदानां नित्यत्वं न) स्वाभाविकार्थशक्तिमतामपि वेदानां मन्त्रसमूहानां नित्यत्वं यथास्वं वर्तमानत्वं नास्ति] स्वाभाविक रूप से अर्थ को प्रकट करने की शक्ति है जिनमें ऐसे वेदों के मंत्र समूहों का नित्यत्व नहीं है जैसे वेद रहेंगे वैसे ये (मंत्र समूह आदि) नहीं रहेंगे। **[(कार्यत्वश्रुतेः) तेषां कार्यत्वश्रुतिदर्शनात्]** क्योंकि उनका कार्यत्व देखी जाने वाली श्रुति बताती है **[''तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।'' (यजु० ३१-७) ''त्रयो वेदा अजायन्त'' (शत० ११.५.८.३)]** यहाँ कहा गया कि चारों वेद उत्पन्न हुए फिर नित्य कैसे हुए? ।।४५।।

यद्यपि वेदों का कार्यत्व बताया जा रहा है, फिर भी उन वेदों का -

न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।।४६।।

सूत्रार्थ= वेद पुरुष कृत नहीं है= मनुष्य कृत नहीं है, वेद बनाने वाले पुरुष के विद्यमान न होने से।

[(पौरुषेयत्वं न) पुरुषकृतत्वं नास्ति तद्भिन्नस्येश्वरस्यैव कार्यमस्ति तेन कृतत्वात्] यद्यपि वेद

(पौरुषेयत्वं न) पुरुषकृतत्वं नास्ति तद्भिन्नस्येश्वरस्यैव कार्यमस्ति तेन कृतत्वात् । उक्तं यथा "तस्माद् यज्ञात् सर्वहूत ऋचः सामानि जज्ञिरे..." (यजु० ३.७) कुतो न पुरुषकृतत्वं वेदानाम् । उच्यते (तत्कर्तुः पुरुषस्य-अभावात्) तेषां कर्तुः पुरुषस्याविद्यमानत्वात् ।।४६।।

कथमुच्यते तत्कर्तृपुरुषस्याभावो यावता पुरुषाः सन्ति मुक्ता अमुक्ताश्च । अत्रोच्यते -

न मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ।।४७।।

(मुक्तामुक्तयोः-न) वेदानां कर्ता मुक्तामुक्तयोः कश्चनापि न भवितुमर्हति (अयोग्यत्वात्) योग्यत्वाभावात्। मुक्तस्यैश्वर्यं जगद्व्यापारवर्जं भवतीत्यतस्तथा प्रयोजनाभावाच्च, अमुक्तस्याल्पज्ञत्वात्। तस्मात् सर्वज्ञ एव जगदीश्वरो वेदानां कर्ता ।।४७।।

कथमेवं वेदानामपौरुषेयत्वं च प्रतिपाद्यते नित्यत्वं च निवार्यते, इत्याकांक्षाया- मुच्यते -

---

कार्य रूप है नष्ट हो जाएंगे, फिर भी वे पुरुष कृत तो नहीं है। क्योंकि मनुष्यों से भिन्न ईश्वर का भी कार्य है, वेद उत्पत्ति उसी के द्वारा की गयी है। [**उक्तं यथा "तस्माद् यज्ञात् सर्वहूत ऋचः सामानि जज्ञिरे..." (यजु० ३.७)**] जैसा कि श्रुति में बताया गया है-उसी परमात्मा से उत्पन्न हुए [**कुतो न पुरुषकृतत्वं वेदानाम्**] प्रश्न किया- वेद मनुष्य कृत क्यों न मान लिए जाएँ?। [**उच्यते (तत्कर्तुः पुरुषस्य-अभावात्) तेषां कर्तुः पुरुषस्याविद्यमानत्वात्**] इसका उत्तर दिया- उनका कर्ता पुरुष कोई भी विद्यमान नहीं (वेद कि पुस्तक पर किसी लेखक का नाम नहीं)।।४६।।

प्रश्न किया- आप ये कैसे कहते हैं कि वेद का कर्ता पुरुष का अभाव है् जबकि बहुत सारे पुरुष हैं कुछ मुक्त हैं और कुछ बद्ध हैं। इसका उत्तर देते हैं-

न मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ।।४७।।

सूत्रार्थ= मुक्त आत्मा और बद्ध जीवात्मा दोनों ही वेदों के बनाने में समर्थ नहीं हैं, दोनों में योग्यता न होने से।

[**(मुक्तामुक्तयोः-न) वेदानां कर्ता मुक्तामुक्तयोः कश्चनापि न भवितुमर्हति (अयोग्यत्वात्) योग्यत्वाभावात्**] वेदों का बनाने वाला मुक्त हो अथवा बद्ध इन दोनों में से कोई भी नहीं हो सकता योग्यता का अभाव होने से। [**मुक्तस्यैश्वर्यं जगद्व्यापारवर्जं भवतीत्यतस्तथा प्रयोजनाभावाच्च, अमुक्तस्याल्पज्ञत्वात्**] मुक्तात्मा के लिए जगत व्यापार निषिद्ध हैं और उसका कोई प्रयोजन भी नहीं है, "अमुक्त आत्मा को अल्पज्ञ कहना" (ये हेतु ठीक नहीं क्योंकि आत्मा बद्ध हो अथवा मुक्त दोनों में योग्यता नहीं है वेद बनाने कि)। [**तस्मात् सर्वज्ञ एव जगदीश्वरो वेदानां कर्ता**] इसलिए जो सर्वज्ञ जगत का स्वामी है परमात्मा वही वेदों का कर्ता है।।४७।।

कैसे आप वेदों का अपौरुषेयत्व स्वीकार कर रहे हैं (वेद ईश्वर कृत हैं ये तो आप स्वीकार कर रहे हैं

नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ।।४८।।

(अपौरुषेयत्वात्-न नित्यत्वम्-अंकुरादिवत्) वेदानमपौरुषेयत्वात् खल्वपि नास्ति नित्यत्वमङ्कुरादिवत्, यथाङ्कुरशाखापत्रपुष्पफलानि खल्वपौरुषेयाणि सन्त्यपि न नित्यानि तान्यपि वेदवदीश्वरकृतानि कार्याणि। तथापि यथा ह्यङ्कुरादीनि प्रवाहेण नित्यानि प्रतिकल्पे प्रवर्तनात् तथैव वेदानां प्रावाहिकनित्यत्वं त्वस्त्येव प्रतिकल्पे प्रवर्तनान्, एवं ज्ञानरूपो वेदस्तु नित्य एव ।।४८।।

पुनः -

तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तेः ।।४९।।

(तेषाम्-अपि तद्योगे अंकुरादीनामपि पुरुषकर्तृत्वयोगे स्वीकारे (दृष्टबाधादिप्रसक्तेः) लोकदृष्टबाधोऽदृष्टकल्पनं च प्रसज्यते, लोकदृष्टस्य प्रत्यक्षस्य बाधस्तथाऽयुक्तानुमानकल्पनं भवेत् ।।४९।।

) और वेद नित्य नहीं हैं (नित्यत्व का खंडन कर रहे हैं)। इस आकांक्षा पर कहते हैं-

नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ।।४८।।

सूत्रार्थ= मनुष्य कृत न होने पर भी अंकुरादि के समान वेद भी नित्य नहीं हैं, वेद का ज्ञान नित्य है, वेद तो प्रवाह से नित्य हैं अंकुरादि के समान प्रत्येक सृष्टि में उत्पन्न होने से।

[(अपौरुषेयत्वात्-न नित्यत्वम्-अंकुरादिवत्) वेदानमपौरुषेयत्वात् खल्वपि नास्ति नित्यत्वमङ्कुरादिवत्] वेद भले ही अपौरुषेय हैं (मनुष्य कृत नहीं हैं) फिर भी वो नित्य नहीं हैं ये बात ठीक है, अंकुरादि के समान, **[यथाङ्कुरशाखापत्रपुष्पफलानि खल्वपौरुषेयाणि सन्त्यपि न नित्यानि तान्यपि वेदवदीश्वरकृतानि कार्याणि]** जैसे अंकुर हैं, शाखा है, पत्र, पुष्प, फल, तना है ये सब भी तो अपौरुषेय हैं। ईश्वर के द्वारा बनाए होने पर भी वह नित्य नहीं हैं, ये सब वेद के समान ईश्वर द्वारा किया गया कार्य है। **[तथापि यथा ह्यङ्कुरादीनि प्रवाहेण नित्यानि प्रतिकल्पे प्रवर्तनात् तथैव वेदानां प्रावाहिकनित्यत्वं त्वस्त्येव प्रतिकल्पे प्रवर्तनान्]** जैसे अंकुर आदि प्रवाह से नित्य हैं प्रत्येक सृष्टि में अंकुर से वृक्ष शाखा होते जाते हैं फिर अगला बीज बनता है फिर बीज से अंकुर अंकुर से वृक्ष ये क्रम चलता रहता है और जब प्रलय हो जाती है तब सारा समाप्त हो जाता है, फिर अगली सृष्टि में अंकुर शाखा पत्र पुष्प आदि उत्पन्न होने लग जाते हैं। प्रवाह रूप से वह भी नित्य हैं। इसी प्रकार से वेदों का प्रवाहिक नित्यत्व तो है ही, प्रत्येक कल्प में वेदों की प्रवृति चलती रहती है, **[एवं ज्ञानरूपो वेदस्तु नित्य एव]** इस प्रकार से ज्ञान के रूप में वेद तो नित्य ही है परंतु वेद पुस्तक अनित्य है।।४८।।

पुनः -

तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तेः ।।४९।।

सूत्रार्थ= उन अंकुरादि का भी पुरुष कर्तृत्व में योग मानने पर अंकुरादि का कर्ता पुरुष को मानने पर लौकिक प्रत्यक्ष से विरुद्ध कथन होगा और प्रत्यक्ष अदृश्य की व्यर्थ कल्पना करनी पड़ेगी।

वस्तुतः -

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।।५०।।

(यस्मिन्-अदृष्टे-अपि) यस्मिन् ह्यदृष्टेऽपि कर्तृत्वयोगे (कृतबुद्धिः-उपजायते) पुरुषकृतत्वनिश्चयः सञ्जायते (तत् पौरुषेयम्) तत्खलु पुरुषकृतं पुरुषकार्यं न च तथाऽङ्कुरादौ जायते न हि वेदेष्वपि ।।५०।।

वेदानां तु -

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ।।५१।।

(निजशक्त्यभिव्यक्तेः) वेदानां तु स्वाभाविक्या शक्त्याऽभि व्यक्तिमत्त्वात्-अपौरुषेयशक्त्या

[(तेषाम्-अपि) तद्योगे अंकुरादीनामपि पुरुषकर्तृत्वयोगे स्वीकारे (दृष्टबाधादिप्रसक्तेः) लोकदृष्टबाधोऽदृष्टकल्पनं च प्रसज्यते] अंकुरादि को भी मनुष्य कृत मान लें ऐसा स्वीकार करने में जो लोक दृष्ट है बाध होता है उसका खण्डन होता है और जो कभी देखी नहीं ऐसी कल्पना करनी पड़ती है, **[लोकदृष्टस्य प्रत्यक्षस्य बाधस्तथाऽयुक्तानुमानकल्पनं भवेत्]** मनुष्य वृक्ष शाखा आदि बनाता हो ऐसा मानने पर लौकिक प्रत्यक्ष का विरोध होता है अदृष्ट बात कि कल्पना करनी पड़ेगी ।।४९।।

वस्तुतः -

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।।५०।।

सूत्रार्थ= जिस परोक्ष कार्य में कोई प्रामाणिक बुद्धि उत्पन्न होती है, उसका कोई कर्ता है यह अनुमान से सिद्ध होती है तो उस वस्तु को पौरुषेय=मनुष्यकृत कहते हैं।

[(यस्मिन्-अदृष्टे-अपि) यस्मिन् ह्यदृष्टेऽपि कर्तृत्वयोगे (कृतबुद्धिः-उपजायते) पुरुषकृतत्वनिश्चयः सञ्जायते (तत् पौरुषेयम्) तत्खलु पुरुषकृतं पुरुषकार्यं न च तथाऽङ्कुरादौ जायते न हि वेदेष्वपि] जिसको बनाते हुए न देखने पर भी उसकी रचना देखकर ऐसा लगता है की ये मनुष्य कृत है , वो पुरुष का कृत कार्य है परंतु अंकुर आदि में ऐसी अनुभूति नहीं होती और न ही वेदों के संदर्भ में ऐसा लगता है की ये मनुष्य कृत हों ।।५०।।

वेदानां तु -

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ।।५१।।

सूत्रार्थ= अपनी शक्ति= सामर्थ्य को अभिव्यक्त करने में स्वतः समर्थ होने से वेद स्वतः प्रामाणिक हैं तथा ईश्वर की निज शक्ति से प्रकट होने से भी वेद स्वतः प्रमाण हैं।

जगदीश्वरस्य निजशक्त्याऽभिव्यक्तिमत्त्वात् (स्वतः प्रामाण्यम्) स्वतः प्रामाण्यमस्ति न हि परतः प्रामाण्यं पौरुषेयाणामिव ।।५१।।

अथ पञ्चचत्वारिंशं सूत्रमारभ्यैकपञ्चाशत्तमसूत्रपर्यन्तसूत्रक्रमस्यान्यो व्याख्या- मार्गः -

ननु कथमुच्यते वैदिकशब्दानामर्थे स्वाभाविकी शक्तिर्यावता -

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ।।४५।।

(वेदानां नित्यत्वं न) वेदानां नित्यत्वं नास्ति, न हि वेदा नित्याः सन्ति (कार्यत्वश्रुतेः) तेषां कार्यत्वश्रुतिदर्शनात् ''तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।।'' (ऋ० १०.९०.९) ''त्रयो वेदा अजायन्त'' (शत० ११.५.८.३) ।।४५।।

~~समाधत्ते -~~

[(निजशक्त्यभिव्यक्तेः) वेदानां तु स्वाभाविक्या शक्त्याऽभि व्यक्तिमत्त्वात्-अपौरुषेयशक्त्या जगदीश्वरस्य निजशक्त्याऽभिव्यक्तिमत्त्वात् (स्वतः प्रामाण्यम्) स्वतः प्रामाण्यमस्ति न हि परतः प्रामाण्यं पौरुषेयाणामिव] वेदों की जो अभिव्यक्ति है वह ईश्वर की स्वाभाविक शक्ति से हुई है, अपौरुषेय शक्ति से ईश्वर की निज शक्ति से प्रकट होने के कारण वेद स्वतः प्रमाण हैं उसे प्रामाणिक करने के लिए अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जैसे पुरुष कृत ग्रन्थों को प्रामाणिक करने के लिए अन्य ग्रन्थों के प्रमाणों की आवश्यकता होती है, ईश्वर की बनाई हुए वेद को किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी होने से ।।५१।।

४५ वे सूत्र से आरंभ करके और ५१ वें सूत्र तक इन सभी सूत्रों की दूसरी व्याख्या करेंगे-

वैदिक शब्दों के अर्थ में स्वाभाविक शक्ति होते हुए भी वेदों का नित्यत्व क्यों नहीं है? इस बात को अलग प्रकार से नए ढंग से प्रस्तुत करते हैं-

न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ।।४५।।

सूत्रार्थ= वेदों का नित्यत्व नहीं हैं कार्यपन सुनाई देने से।

[(वेदानां नित्यत्वं न) वेदानां नित्यत्वं नास्ति, न हि वेदा नित्याः सन्ति (कार्यत्वश्रुतेः) तेषां कार्यत्वश्रुतिदर्शनात्] वेदों का नित्यत्व नहीं है वेद नित्य नहीं हैं क्योंकि वेदों की उत्पत्ति श्रुति में दिखाई जाने से **[''तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।'' (ऋ० १०.९०.९) ''त्रयो वेदा अजायन्त'' (शत० ११.५.८.३)]** ।।४५।।

समाधत्ते - समाधान करते हैं-

न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।।४६।।

सुत्रार्थः-वेद पुरूष कृत=मनुष्य कृत नहीं है वेद बनाने वाले पुरूष के विद्यमान न होने से।

न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।।४६।।

(तत्कर्तुः पुरुषस्य-अभावात् पौरुषेयत्वं न) वेदानां कार्यत्वमुच्यते पुनः कार्यत्वमाश्रित्य हि तेषामनित्यत्वं साध्यते परन्तु कार्यस्य कर्त्रा भाव्यं किन्तु तत्कर्तुस्तेषां वेदानां कर्तुः पुरुषस्याभावात् पौरुषेयत्वं पुरुषकृतत्वं कार्यत्वं नास्ति पुनः कार्यत्वमवलम्ब्यनित्यत्वं वेदानां न सिध्यति ।।४६।।

कुतो हि वेदानां कर्तुः पुरुषस्याभावः । अत्रोच्यते -

न मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ।।४७।।

(मुक्तामुक्तयोः-न) वेदानां कर्ता मुक्तामुक्तयोः कश्चनापि न भवितुमर्हति (अयोग्यत्वात्) तयोर्योग्यत्वाभावात्। मुक्तस्यैश्वर्यं जगद्व्यापारवर्जं भवति "जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च" (वेदा० ४.४.१७) तथा प्रयोजनाभावाच्च, अमुक्तस्याल्पज्ञत्वात्। या हि खलु श्रुतिर्दर्शिता वेदानां कार्यत्वं साधयितुं तत्र तु वेदानां जायमानत्वमुक्तं न हि कार्यत्वम्, जायमानत्वं प्रादुर्भावः "जनी प्रादुर्भावे"

[(**तत्कर्तुः पुरुषस्य-अभावात् पौरुषेयत्वं न) वेदानां कार्यत्वमुच्यते पुनः कार्यत्वमाश्रित्य हि तेषामनित्यत्वं साध्यते**] सिद्धांती कहता है वेद कार्य रूप हैं और कार्य रूप होने से उनका अनित्यत्व सिद्ध करते हैं (क्योंकि जो वस्तु उत्पन्न होती भी वह अनित्य होती है- आप इस प्रकार से अपनी बात को प्रस्तुत कर रहे हैं) [**परन्तु कार्यस्य कर्त्रा भाव्यं किन्तु तत्कर्तुस्तेषां वेदानां कर्तुः पुरुषस्याभावात् पौरुषेयत्वं पुरुषकृतत्वं कार्यत्वं नास्ति**] परंतु किसी भी कार्य का कर्ता होना चाहिए (ये नियम है) कर्ता के बिना कोई कार्य होता नहीं। किन्तु वेदों को बनाने वाला कोई पुरुष तो है ही नहीं, इसलिए वेदों के कर्ता पुरुष का अभाव होने से वेदों का पुरुष कृतत्व नहीं है [**पुनः कार्यत्वमवलम्ब्यनित्यत्वं वेदानां न सिध्यति**] फिर जब वेदों का कार्यपन ही सिद्ध नहीं हो रहा उस आधार पर अनित्यता कैसे सिद्ध कर सकते हैं, इसलिए वेदों की अनित्यता भी सिद्ध नहीं होती।।४६।।

वेदों के बनाने वाले पुरुष का अभाव कैसे है? इस पर कहते हैं-

न मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ।।४७।।

सूत्रार्थः-मुक्त जीवात्मा और बद्ध जीवात्मा दोनों ही वेदों के बनाने में समर्थ नहीं

[(**मुक्तामुक्तयोः-न) वेदानां कर्ता मुक्तामुक्तयोः कश्चनापि न भवितुमर्हति (अयोग्यत्वात्) तयोर्योग्यत्वाभावात्**] वेदों का कर्ता मुक्त और बद्ध दोनों में से कोई भी नहीं हो सकता, दोनों ही अयोग्य अल्पज्ञ हैं। [**मुक्तस्यैश्वर्यं जगद्व्यापारवर्जं भवति**] मुक्त की जो शक्ति=योग्यता है वह संसार में हस्तक्षेप की नहीं है [**"जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च"(वेदा०४.४.१७)**] मुक्तात्मा के लिए जगत का व्यापार वर्जित है, प्रकरण से सृष्टि रचना आदि कार्य में कोई योगदान नहीं है [**तथा प्रयोजनाभावाच्च, अमुक्तस्याल्पज्ञत्वात्**] तथा उनका कोई प्रयोजन भी नहीं है, "अल्पज्ञ वाला हेतु दोनों पर लगेगा-मुक्त और बद्ध पर"। [**या हि खलु श्रुतिर्दर्शिता वेदानां कार्यत्वं साधयितुं तत्र तु वेदानां जायमानत्वमुक्तं न हि**

(दिवादि०) प्रादुर्भूता वेदाः। तेन न कार्यत्वं कार्यत्वाभावान्नित्यत्वं वेदानां नात्र क्षतिः ।।४७।।

पुनः पूर्वक्षत्वेनोच्यते -

नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ।।४८।।

(अपौरुषेयत्वात्-नित्यत्वम् न-अंकुरादिवत्) वेदानमपौरुषेयत्वं भवतु जायमानत्वं तु तत्र श्रुतौ प्रतिपाद्यते तेनापौरुषेयत्वाद्धेतोरेव तेषां नित्यत्वं न भवति जायमानत्वधर्मवत्त्वादङ्कुरादिवत्, यथाङ्कुरशाखापत्रपुष्पफलानि सन्त्यपौरुषेयाणि परन्तु जायमानत्वान्न नित्यानि, तथैव वेदा अपि जायमानत्वादनित्याः, अन्यथा तान्यपि नित्यानि स्युः ।।४८।।

कार्यत्वम्] अब सिद्धांती उत्तर दे रहा है पूर्वपक्षी के आक्षेप का-आपने जो श्रुति दिखलाई थी वेदों के कार्यपन को सिद्ध करने की (चारों वेद उत्पन्न हुए) वहाँ तो वेद प्रकट हुए ऐसा कहा है, उत्पन्न हुए ऐसा नहीं कहा, **[जायमानत्वं प्रादुर्भावः ''जनी प्रादुर्भावे'' (दिवादि०) प्रादुर्भूता वेदाः]** जायमान का अर्थ है प्रादुर्भाव होना ''जनी प्रादुर्भाव'' वेद प्रकट हुए । **[तेन न कार्यत्वं कार्यत्वाभावान्नित्यत्वं वेदानां नात्र क्षतिः]** इस कारण से जब वेद उत्पन्न हुए ही नहीं प्रकट हुए इस कारण से वेदों का कार्यत्व सिद्ध नहीं हुआ परंतु कार्यत्व सिद्ध न होने से वेदों का नित्यत्व सिद्ध हुआ।।४७।।

फिर पूर्वपक्ष की तरफ से कहते हैं-

नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ।।४८।।

सूत्रार्थः- मनुष्यकृत न होने पर भी अंकुरादि के समान वेद भी नित्य नहीं है, किन्तु वेद का ज्ञान नित्य है।वेद तो प्रवाह से नित्य है अंकुरादि के समान प्रत्येक सृष्टि में उत्पन्न होने से ।

[(अपौरुषेयत्वात्-नित्यत्वम् न-अंकुरादिवत्) वेदानमपौरुषेयत्वं भवतु जायमानत्वं तु तत्र श्रुतौ प्रतिपाद्यते तेनापौरुषेयत्वाद्धेतोरेव तेषां नित्यत्वं न भवति जायमानत्वधर्मवत्त्वादङ्कुरादिवत्] वेदों का अपौरुषेयत्व हो जावे, वेद प्रकट हुए थे ये श्रुति में बताया गया था इस कारण (अपौरुषेय होने) से उनका नित्यत्व नहीं है। पूर्वपक्षी का हेतु-क्योंकि वेद ईश्वर के द्वारा बनाए गए इस कारण से वेद अनित्य है, वे प्रकट हुए हैं अंकुर आदि के समान, **[यथाङ्कुरशाखापत्रपुष्पफलानि सन्त्यपौरुषेयाणि परन्तु जायमानत्वान्न नित्यानि]** जैसे अंकुर शाखा फूल पत्ते आदि ये भी ईश्वर कृत हैं=अपौरुषेय हैं परंतु क्योंकि ईश्वर से प्रकट हुए हैं इसलिए ये नित्य नहीं है भले ही ईश्वर से बने हों, **[तथैव वेदा अपि जायमानत्वादनित्याः]** इसी प्रकार से वेद भी ईश्वर से प्रकट हुए हैं इसलिए अनित्य हैं, **[अन्यथा तान्यपि नित्यानि स्युः]** यदि आप ऐसा नहीं मानते तो अंकुर आदि को भी नित्य मानो।।४८।।

दृष्टान्तसिद्ध्या समाधत्ते -

तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तिः ।।४९।।

(तेषाम् तद्योगे-अपि) अंकुरादीनामपौरुषेयत्वयोगेऽपि न नित्यत्वम् 'न नित्यत्वम्' पूर्वसूत्रतोऽनुवर्तते। कुतोऽङ्कुरादीनां न नित्यत्वम् । उच्यते (दृष्टबाधादिप्रसक्तिः) अङ्कुरशाखापत्रपुष्पफलानि क्रमशो नष्टानि दृश्यन्ते-इति। दृष्टस्य बाधनं प्रसज्यतेऽथ च पुनः पुनर्बीजात् प्ररोक्ष्यन्तीत्यनुमानहानिः प्रसज्यते। तस्मादङ्कुरादिदृष्टान्तासिद्ध्या वेदानां नित्यत्वनिराकरणं न युज्यते, तेषां तु नित्यत्वमेवापौरुषेयत्वात् ।।४९।।

वेदानां कुतो न पौरुषेयत्वं कुतस्तत्कर्तुः पुरुषस्याभावः? किमदृष्टत्वाद् यत्तेषां कर्ता केनापि न दृष्ट इति मत्वा। अत्रोच्यते -

---

दृष्टान्तसिद्ध्या समाधत्ते - आपका दृष्टांत उचित नहीं, अब सिद्धांती समाधान करता है-

तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तेः ।।४९।।

सूत्रार्थः- उन अंकुरादि का भी पुरूष कर्तृत्व में योग मानने पर अंकुरादि का कर्त्ता पुरूष को मानने पर लौकिक प्रत्यक्ष से विरूद्ध कथन होगा और प्रत्यक्ष विरूद्ध कल्पना करनी पड़ेगी।

[**(तेषाम् तद्योगे-अपि) अंकुरादीनामपौरुषेयत्वयोगेऽपि न नित्यत्वम् 'न नित्यत्वम्' पूर्वसूत्रतोऽनुवर्तते**] ''न नित्यत्वम्'' पूर्व सूत्र से ला रहे हैं- अंकुर आदि के अपौरुषेय होने पर भी वो नित्य नहीं है। [**कुतोऽङ्कुरादीनां न नित्यत्वम्**] अंकुरादि का नित्यत्व क्यों नहीं है?। **उच्यते** उत्तर देते हैं- [**(दृष्टबाधादिप्रसक्तिः) अङ्कुरशाखापत्रपुष्पफलानि क्रमशो नष्टानि दृश्यन्ते-इति**] अंकुर शाखा पत्र पुष्प फल ये तो क्रमशः नष्ट होते जाते हैं। [**दृष्टस्य बाधनं प्रसज्यतेऽथ च पुनः पुनर्बीजात् प्ररोक्ष्यन्तीत्यनुमानहानिः प्रसज्यते**] यदि हम अंकुर शाखा आदि को नित्य माने तो प्रत्यक्ष से विरोध आएगा, इसलिए इनको नित्य नहीं मान सकते, अंकुर शाखा आदि को नित्य मानने पर जो अनुमान करते हैं, पुनः पुनः बीज डालने वाले कार्य से जो उत्पत्ति का अनुमान करते हैं उसकी भी हानि होगी। [**तस्मादङ्कुरादिदृष्टान्तासिद्ध्या वेदानां नित्यत्वनिराकरणं न युज्यते**] इसलिए अंकुरादि का जो दृष्टांत आपने दिया वह ठीक सिद्ध नहीं हुआ, ऐसे वेदों की नित्यता का खंडन नहीं कर सकते, [**तेषां तु नित्यत्वमेवापौरुषेयत्वात्**] वेदों का ईश्वर कृत होने से नित्यत्व तो है ही।।४९।।

वेदों का पुरुष कृर्तत्व क्यों नहीं है? क्यों ऐसा मानते हैं की वेदों का बनाने वाला कोई पुरुष नहीं है? क्या अदृष्ट होने से? क्या ये सोच करके कि वेद का कर्ता किसी मनुष्य ने देखा ही नहीं? इसका उत्तर देते हैं-

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।।५०।।

(यस्मिन्-अदृष्टे-अपि कृतबुद्धिः-उपजायते) यस्मिन् खल्वदृष्टेऽपि वस्तुनि कृतबुद्धिः पुरुषकृतत्वबुद्धिर्निश्चिता भवति (तत् पौरुषेयम्) तत् पुरुषकृतं विज्ञेयम्, न तथा वेदाः। ते तु प्रादुर्भूताः सन्तो ज्ञानदृष्ट्या नित्याः सन्ति ।।५०।।

तस्मात्-

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ।।५१।।

(निजशक्त्यभिव्यक्तेः) वेदानां पुरुषकृतत्वाभावे मनुष्यकृतत्वाभावे निजशक्त्या शाश्वतया स्वाभाविक्या शक्त्याऽभिव्यक्तत्वात् प्रादुर्भूतत्वात् । उक्तं यथा "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः" (शत० १४.५.४.१०) "स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" (श्वेता०

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।।५०।।

सूत्रार्थः- जिस परोक्ष कार्य में कोई प्रमाणिक बुद्धि उत्पन्न होती है, उसको कोई कर्त्ता है यह अनुमान से सिद्ध होता है ता उस वस्तु को पौरूषेय=मनुष्यकृत कहते हैं।

[(यस्मिन्-अदृष्टे-अपि कृतबुद्धिः-उपजायते) यस्मिन् खल्वदृष्टेऽपि वस्तुनि कृतबुद्धिः पुरुषकृतत्वबुद्धिर्निश्चिता भवति (तत् पौरुषेयम्) तत् पुरुषकृतं विज्ञेयम्, न तथा वेदाः] किसी वस्तु को बनाते हुए न देखने पर भी ऐसा विचार आए कि यह मनुष्य कृत है परंतु वेद इस प्रकार के नहीं हैं जिसे देख कर ये लगता हो कि यह मनुष्य कृत है।**[ते तु प्रादुर्भूताः सन्तो ज्ञानदृष्ट्या नित्याः सन्ति]** बल्कि वे चार वेद ईश्वर से प्रकट हुए ज्ञान कि दृष्टि से नित्य हैं ।।५०।।

तस्मात्-

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ।।५१।।

सूत्रार्थः-अपनी शक्ति सामर्थ्य को अभिव्यक्त करने में स्वतः समर्थ होने से वेद स्वतः प्रमाणिक हैं तथा ईश्वर की निज शक्ति से प्रकट होने से भी वेद स्वतः प्रमाण हैं।

[(निजशक्त्यभिव्यक्तेः) वेदानां पुरुषकृतत्वाभावे मनुष्यकृतत्वाभावे निजशक्त्या शाश्वतया स्वाभाविक्या शक्त्याऽभिव्यक्तत्वात् प्रादुर्भूतत्वात्] वेदों के पुरुष कृत न होने पर मनुष्य कृत न होने पर भी परमात्मा की अपनी शक्ति से जो स्वाभाविक शाश्वत है उस शक्ति से अभिव्यक्त होने के कारण प्रकट हुए हैं। **[उक्तं यथा "अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः"(शत० १४.५.४.१०)]** जैसा कि कहा शास्त्र में "कि इस महान परमात्मा से चार वेद ऐसे प्रकट हुए जैसे श्वास निकलता है (जैसे श्वास लेना छोड़ना स्वाभाविक कार्य है छोटा सा कार्य है ऐसे ही ईश्वर को वेद प्रकट करना,

६.८) (स्वतः प्रामाण्यम्) स्वतः प्रमाणत्वमस्ति ।।५१।।

भवतु वेदानां निजशक्त्याऽभिव्यक्तिरभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावो दर्शनं तथा हि ''न, अभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ'' (सांख्य० १.१२०) अनेन सूत्रेण जगतोऽपि सांख्यमतेऽभिव्यक्तिरभिव्यक्त्वं प्रकटीभावः प्रकाशो वा प्रत्यपादि । श्रुतौ यज्जायमानत्वं वेदानां जगतश्च निर्दिष्टम् ''तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।'' (ऋ० १०.९०.९) ''द्यावाभूमी जनयन् देव एकः'' (यजु० १७.१९) जनीधातोः प्रादुर्भावार्थत्वात्। तदित्थं वेदानां जगतश्चाभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावो दर्शनं वा किमसद्रूपाद् भवति ? कथं वा भवतीत्याकांक्षायामुच्यते -

नासतः ख्यानं नृशृंगवत् ।।५२।।

(असतः ख्यानं न नृशृंगवत्) वेदानां जगतश्च ख्यानमभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावो दर्शनं वा

स्वाभाविक आसान काम है) [''**स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च**''(**श्वेता० ६.८**)] ज्ञान, बल और क्रिया तीनों स्वाभाविक हैं [(**स्वतः प्रामाण्यम्**) **स्वतः प्रमाणत्वमस्ति**] इन कारणों से वेदों का स्वतः प्रमाणत्व है, उनको सिद्ध करने के लिए किसी और प्रमाण कीह आवश्यकता नहीं है ।।५१।।

जैसे वेदों की अभिव्यक्ति परमात्मा की निज शक्ति से हुई है प्रादुर्भाव दर्शन हुआ है, उसी प्रकार से सांख्य में एक सूत्र आया है कि ''अभिव्यक्ति के कारण से ही व्यवहार और अव्यवहार होते हैं'' [**अनेन सूत्रेण जगतोऽपि सांख्यमतेऽभिव्यक्तिरभिव्यक्त्वं प्रकटीभावः प्रकाशो वा प्रत्यपादि**] इस सूत्र से ये विचारधारा भी सामने आती है, सांख्यदर्शन से कि जगत का भी प्रकटी भाव हुआ है, सांख्य की दृष्टि से, जैसे वेद ईश्वर से प्रकट हुए ऐसे जगत भी प्रकट हुआ है, इसकी भी अभिव्यक्ति हुई है अथवा प्रकाश हुआ है ऐसा संख्यादर्शन में प्रतिपादन किया है। [**श्रुतौ यज्जायमानत्वं वेदानां जगतश्च निर्दिष्टम्**] श्रुति में वेदों का और जगत का जो जायमानत्व दिखाया है [**''तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।।'' (ऋ० १०.९०.९) ''द्यावाभूमी जनयन् देव एकः'' (यजु० १७.१९) जनीधातोः प्रादुर्भावार्थत्वात्**] क्योंकि जनी धातु का प्रादुर्भाव अर्थ है। [**तदित्थं वेदानां जगतश्चाभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावो दर्शनं वा किमसद्रूपाद् भवति? कथं वा भवतीत्याकांक्षायामुच्यते -**] इस प्रकार से वेदों का और जगत का जो प्रादुर्भाव हुआ अभिव्यक्ति हुई दर्शन हुआ वह क्या अभाव रूप से हुआ अथवा कैसे हुआ? इसका उत्तर देते हैं-

नासतः ख्यानं नृशृंगवत् ।।५२।।

सूत्रार्थ= असत=अभाव का प्रादुर्भाव नहीं होता है, जैसे मनुष्य का सींग नहीं होता।

[**(असतः ख्यानं न नृशृंगवत्) वेदानां जगतश्च ख्यानमभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावो दर्शनं वा नासद्रूपाद् भवति, न ह्यसतो वस्तुनः ख्यानं दर्शनं भवति नृशृङ्गमिव**] वेदों का और जगत का जो

नासद्रूपाद् भवति, न ह्यसतो वस्तुनः ख्यानं दर्शनं भवति नृशृंगमिव। तस्माज्जगच्छुक्तौ रजतवन्नास्ति, शुक्तौ रजतख्यानमपि नान्यत्रासतो रजतस्य ।।५२।।

किं पुनः सतां वेदानां सतो जगतो वा ख्यानाम् । अत्रोच्यते -

न सतो बाधदर्शनात् ।।५३।।

(सतः-न) सतां वेदानां सतो जगतोऽपि न तथारूपेणैवाभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावः ख्यानं वा । कुतः (बाधदर्शनात्) बाधोऽत्राभावः । सतो वस्तुनां बाधोऽभावो दृश्यते, नहि सर्वकाले वेदाः सन्तो न सर्वकाले जगत् सत्, प्रलयेऽभावात् । तस्मात् सतो विज्ञानात्मनो जगतोऽनादितो वर्तमानस्य वा जगतः ख्यानमित्यपि न युक्तं नहि सर्वकाले सतो वस्तुनः ख्यानमभिव्यक्तत्वं युक्तमभिव्यक्तस्य भावाभावधर्मित्वात् ।।५३।।

ख्यान है, अभिव्यक्ति है, प्रादुर्भाव, प्रकट, दर्शन होना ये अभावरूप स्थिति से नहीं है, क्योंकि असद रूप वस्तु से (अभावात्मक वस्तु से) किसी भी वस्तु की अभिव्यक्ति, दर्शन नहीं होता। जैसे मनुष्य का सींग। **तस्माज्जगच्छुक्तौ रजतवन्नास्ति** इसलिए जगत सीपी में चाँदी के तुल्य भ्रांति में नहीं है, **[शुक्तौ रजतख्यानमपि नान्यत्रासतो रजतस्य]** सीपी में चाँदी का दिखना भी अभावात्मक चाँदी से कोई भिन्न नहीं है (ये पंक्ति का अर्थ सूत्र से मेल नहीं खाता) ।।५२।।

क्या ऐसा मानले के वेद पहले से सत्तात्मक रूप से तैयार थे और जगत जैसा का तैसा बना रखा था? ''ये दूसरा पक्ष है'' इस प्रश्न का उत्तर देते हैं-

न सतो बाधदर्शनात् ।।५३।।

सूत्रार्थ = उत्पन्न होने वाले विद्यमान सभी पदार्थ सदा प्रकट नहीं रहते हैं। उनका अभाव भी देखे जाने से।

[(सतः-न) सतां वेदानां सतो जगतोऽपि न तथारूपेणैवाभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावः ख्यानं] वा वेद पहले से बना हुआ एवं जगत भी बना हुआ था इस प्रकार से इस जगत का प्रादुर्भाव नहीं है। ये पक्ष भी ठीक नहीं है। **[कुतः क्यों (बाधदर्शनात्) बाधोऽत्राभावः]** (क्योंकि एक समय के पश्चात् जगत का विनाश हो जाएगा जगत बना बनाया नहीं रहेगा) एक समय बाद इसका बाध हो जाता है। **[सतो वस्तुनां बाधोऽभावो दृश्यते]** जो सत्तात्मक वस्तुएं हैं इनका अभाव देखा जाता है, **[नहि सर्वकाले वेदाः सन्तो न सर्वकाले जगत् सत्, प्रलयेऽभावात्]** न तो सब कालों में वेद विद्यमान रहते हैं (मनुष्यों के पास) और न ही प्रत्येक काल में जगत रहने वाला है, दोनों का प्रलय में अभाव हो जाएगा। **[तस्मात् सतो विज्ञानात्मनो जगतोऽनादितो वर्तमानस्य वा जगतः ख्यानमित्यपि न युक्तं]** इसलिए विज्ञानात्मक वेद भी सदा से ही था और जगत भी अनादि काल से वर्तमान है ये जैसे के तैसा प्रकट हो गया ऐसा मानना ठीक नहीं है **[नहि सर्वकाले सतो**

तर्हि यद्वस्तुनोऽभिव्यक्तस्वरूपं नासद्रूपतो न सद्रूपतः किन्तु तद्विलक्षणमनिवर्चनीयं स्यात् । अत्रोच्यते -

नानिर्वचनीयस्य तदभावात् ।।५४।।

(अनिर्वचनीयस्य न) अनिर्वचनीयस्य सदसद्भ्यां भिन्नस्याभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावः ख्यानं दर्शनं स्यादिति न (तदभावात्) तस्य सदसद्भ्यां भिन्नस्य वस्तुनोऽविद्यमानत्वादसम्भवात्। तथाभूतस्य वस्तुनो भावः स्यात् तर्हि निर्वचनीयं तत् स्यात्। तस्माज्जगतोऽभिव्यक्तत्वं दर्शनं न सदसद्भिन्नहेतुकं भवति ।।५४।।

वस्तुनः ख्यानमभिव्यक्तत्वं युक्तमभिव्यक्तस्य भावाभावधर्मित्वात्] जो वस्तु प्रकट हुई है उस वस्तु का सदा ही प्रकटता बनी रहे ऐसा प्रमाणों के अनुकूल नहीं है जो वस्तु अभिव्यक्त होती है उसके दो धर्म होते हैं एक भाव भी और अभाव भी ।।५३।।

तीसरा पक्ष- फिर ये मान लिया जाए जिस वस्तु की अभिव्यक्ति हुई है, न तो वह अभाव से प्रकट हुआ और न ही बना बनाया था, किन्तु इनसे तीसरे प्रकार का मान लेते हैं, वह है अनिर्वचनीय (जिसकी व्याख्या नहीं कर सकते) ऐसे जगत कि अभिव्यक्ति हुई? इस पर कहते हैं-

नानिर्वचनीयस्य तदभावात् ।।५४।।

सूत्रार्थ= अनिर्वचनीय (न कहने योग्य वस्तु का कथन) प्रादुर्भाव नहीं होता, उसका सर्वथा अभाव होने से।

[(अनिर्वचनीयस्य न) अनिर्वचनीयस्य सदसद्भ्यां भिन्नस्याभिव्यक्तत्वं प्रादुर्भावः ख्यानं दर्शनं स्यादिति] न वो सद भी नहीं था असद भी नहीं था इन दो से भिन्न तीसरे प्रकार का था, ये बात भी नहीं हो सकती। **[(तदभावात्) तस्य सदसद्भ्यां भिन्नस्य वस्तुनोऽविद्यमानत्वादसम्भवात्]** दो में से कोई तीसरा प्रकार होता ही नहीं यह असंभव है वो सद भी न हो और असद भी न हो ऐसा कैसे हो सकता है?। **[तथाभूतस्य वस्तुनो भावः स्यात् तर्हि निर्वचनीयं तत् स्यात्]** यदि कोई ऐसी वस्तु होवे फिर तो उसकी सत्ता होगी जब सत्ता होगी फिर उसकी व्याख्या की जा सकती है। **[तस्माज्जगतोऽभिव्यक्तत्वं दर्शनं न सदसद्भिन्नहेतुकं भवति]** इसलिए जगत कि अभिव्यक्ति या दर्शन सत्तात्मक और असत्तात्मक इन दोनों से अलग तीसरे प्रकार के पदार्थ से नहीं हो सकता।।५४।।

चौथा पक्ष- फिर भी है तो जगत लेकिन मिथ्या ही मान लो-

अस्तु तर्हि जगतो दर्शनमन्यथैव मिथ्येत्यर्थः -

नान्यथाख्यातिः स्ववचो व्याघातात् ।।५५।।

(अन्यथाख्यातिः-न) अन्यथाख्यानं मिथ्याभिव्यक्तत्वं दर्शनमपि न सम्भवति दृश्यमानस्य जगतः। कुतः (स्ववचोव्याघातात्) स्वकथनविरोधात् - उच्यते ह्यस्तीदं जगत् पुनरन्यथा मिथ्याऽपि कथ्यते - अस्तीति च नास्तीति च वचनविरोधः, न हि सतोऽन्यथात्वं मिथ्यात्वं भवति । तथाऽन्यदन्यात्मनाऽवभासते जगद् यथा रजतात्मना शुक्तिरवभासते तद्वज्जगदन्यात्मनाऽवभासते तद्वचनविरुद्धं यदा जगतोऽसत्त्वं तदाऽसत्त्वं सत्त्वात्मनाऽवभासेतेति नावसरः सर्वस्यान्यथात्वान्मिथ्यात्वात् पुनः किं केन रूपेणावभासेत । तस्मान्न जगच्छुक्तौ रजतवदन्यथाऽभिव्यक्तं ख्यातं वा ।।५५।।

वस्तुतस्तु -

सदसत्ख्यातिर्बाधाबाधात् ।।५६।।

नान्यथाख्यातिः स्ववचो व्याघातात् ।।५५।।

सूत्रार्थ= दृश्यमान जगत का जो ज्ञान हो रहा है, वह मिथ्या नहीं है, अपने ही वचन का विरोध होने से।

[**(अन्यथाख्यातिः-न) अन्यथाख्यानं मिथ्याभिव्यक्तत्वं दर्शनमपि न सम्भवति दृश्यमानस्य जगतः**] दिखने वाले इस जगत का मिथ्या दर्शन संभव नहीं है (जगत हो नहीं और हमको जगत दिख रहा हो ऐसा संभव नहीं) चौथा पक्ष भी ठीक नहीं। [**कुतः (स्ववचोव्याघातात्) स्वकथनविरोधात्**] क्योंकि ऐसा बोलने में अपने ही कथन से विरोध आता है - [**उच्यते ह्यस्तीदं जगत् पुनरन्यथा मिथ्याऽपि कथ्यते**] कहते हैं जगत है फिर कहते हैं मिथ्या है - [**अस्तीति च नास्तीति च वचनविरोधः**] ''जगत है ये कहना और जगत नहीं है ये कहना'' है और नहीं है इस प्रकार से वचन विरोध आता है, [**न हि सतोऽन्यथात्वं मिथ्यात्वं भवति**] यदि कोई सत्तात्मक वस्तु है फिर मिथ्या कैसे हो सकती है?। [**तथाऽन्यदन्यात्मनाऽवभासते जगद् यथा रजतात्मना शुक्तिरवभासते तद्वज्जगदन्यात्मनाऽवभासते तद्वचनविरुद्धं यदा जगतोऽसत्त्वं तदाऽसत्त्वं सत्त्वात्मनाऽवभासेतेति नावसरः सर्वस्यान्यथात्वान्मिथ्यात्वात् पुनः किं केन रूपेणावभासेत**] तथा एक वस्तु किसी दूसरे रूप में दिख रही है जैसे चाँदी एक रूप में सीपी दिखती है ऐसे ही है तो कुछ और लेकिन जगत रूप में दिख रहा है। ऐसा माना जाए तो। ये बात अपने ही वचन के विरुद्ध है जब आपने जगत की असत्ता मान ली तब ऐसी स्थिति में जो वस्तु है ही नहीं, फिर वह है के रूप में कैसे प्रतीत होगा? वह तो अभाव रूप हो गया फिर अभाव भावरूप में कैसे दिखेगा। क्योंकि जगत की प्रत्येक वस्तु आपने मिथ्या मान ली फिर कौन सी वस्तु किस रूप में दिखेगी?। [**तस्मान्न जगच्छुक्तौ रजतवदन्यथाऽभिव्यक्तं ख्यातं**] वा इसलिए जो जगत है वह सीपी में चाँदी के समान अभिव्यक्त नहीं हो रहा, वास्तविक जगत जगत के रूप में ही दिख रहा है ।।५५।।

(सदसत्ख्यातिः) सदसत्ख्यानम्-यत्खलु वस्तु प्रादुर्भवति तस्य सदसत्ख्यानमभिव्यक्तत्वं दर्शनं वा भवति, वेदानां जगतोऽपि प्रादुर्भूतत्वमभिव्यक्तत्वं सदसदात्मना विज्ञेयम्। कुतः (बाधाबाधात्) अबाधात्यावन्न स्याद् बाधोऽभावस्तावत् सद्रूपेण ख्यानं दर्शनं वर्तमानत्वं वा, बाधात्-यदा बाधोऽभावो भवेत् तदाऽसद्रूपेण वर्तमानत्वं भवति। यद्वा सदात्मकं बाधात् सद्भूतस्य विद्यमानस्यैव बाधः प्रलयेऽभावो भवति तस्मात् सदात्मकम्, असदात्मकं चाबाधान्न ह्यसद्रूपेण वर्तमानस्यानभिव्यक्तस्याभावो भवति। तस्माज्जगदिदं पर्यायेण सदसद्धर्मकमस्ति न नितान्तं सन्न नितान्तमसदित्यर्थः ।।५६।।

इदानीं शब्दविषये सांख्यसिद्धान्तः पक्षविपक्षाभ्यां प्रदर्श्यते -

प्रतीत्यप्रतीतिभ्यां न स्फोटात्मकः शब्दः ।।५७।।

सदसत्ख्यातिर्बाधाबाधात् ।।५६।।

सूत्रार्थ= वेद और जगत कभी प्रकट हो जाते हैं और कभी अप्रकट हो जाते हैं, सृष्टि काल में इनकी सत्ता देखी जाने से और प्रलयकाल में न देखी जाने से।

[(सदसत्ख्यातिः) सदसत्ख्यानम्-यत्खलु वस्तु प्रादुर्भवति तस्य सदसत्ख्यानमभिव्यक्तत्वं दर्शनं वा भवति] जो वस्तु हमारे समक्ष प्रकट होती है वह कभी सद होती है कभी असद, दोनों रूप होते हैं तब उसकी ठीक प्रकार से अभिव्यक्ति मानी जाती है, **[वेदानां जगतोऽपि प्रादुर्भूतत्वमभिव्यक्तत्वं सदसदात्मना विज्ञेयम्]** वेद भी प्रकट हुए जगत भी प्रकट हुआ, इनका दोनों रूप मानने चाहिए कभी सद रूप में कभी असद रूप में। **कुतः** क्योंकि **[(बाधाबाधात्) अबाधात्यावन्न स्याद् बाधोऽभावस्तावत् सद्रूपेण ख्यानं दर्शनं वर्तमानत्वं वा]** जब तक इसका बाध (विनाश) नहीं होगा तब तक सत्तारूप में ये जगत रहेगा अथवा इनकी वर्तमानता बनी रहेगी, **[बाधात्यदा बाधोऽभावो भवेत् तदाऽसद्रूपेण वर्तमानत्वं भवति]** दूसरा हेतु-जब प्रलय होगी और इनका बाध (विनाश) होगा तब ये असद रूप से विद्यमान रहेंगे। **[यद्वा सदात्मकं बाधात् सद्भूतस्य विद्यमानस्यैव बाधः प्रलयेऽभावो भवति तस्मात् सदात्मकम्]** यहाँ दूसरी व्याख्या करते हैं- जो सदात्मक वस्तु है उसका बाध हो जाता है, टूटना नष्ट होना किसी सत्तात्मक वस्तु का ही होगा इसलिए वह सदात्मक है, **[असदात्मकं चाबाधान्न ह्यसद्रूपेण वर्तमानस्यानभिव्यक्तस्याभावो भवति]** जो असदात्मक हो उसका भाव हो सकता है और जो शून्य हो, प्रलय में जो अभाव रूप से वर्तमान हो जो प्रकट नहीं है उसका अभाव नहीं होता। **[तस्माज्जगदिदं पर्यायेण सदसद्धर्मकमस्ति न नितान्तं सन्न नितान्तमसदित्यर्थः]** इसलिए यह जगत क्रमशः सद धर्म वाला फिर असद धर्म वाला होता है न तो हमेशा सद रहेगा और न ही सदैव असद, ये अर्थ हुआ।।५६।।

अब सांख्य सिद्धान्त में शब्द के विषय में पक्ष विपक्ष में चर्चा आरंभ करते हैं-

(स्फोटात्मकः-शब्दः-न) वाचा खलूच्चार्यमाणः श्रोत्राभ्यां श्रूयमाणशब्दो ध्वन्यात्मकः पुनरुच्चारणानन्तरमर्थस्य स्फुटीकरणहेतुत्वाद् ध्वन्यात्मकाद् भिन्नः स्फोटात्मकः कल्प्यते। अत्र सांख्यसिद्धान्ते स न स्वीक्रियतेऽत एवोच्यते स्फोटात्मकः शब्दो नास्ति। कुतः। उच्यते (प्रतीत्यप्रतीतिभ्याम्) वस्तुनोऽस्तित्वनास्तित्वसाधने प्रतीत्यप्रतीति भवतः, यः प्रतीयते सोऽस्ति यश्च न प्रतीयते स नास्ति। ध्वन्यात्मकस्य शब्दस्य तु प्रतीतिरस्ति तदनन्तरं स्फोटात्मको यः कल्पयते तस्याप्रतीतिरस्ति। तस्मात् स्फोटात्मकः शब्दो न स्वीक्रियते सांख्यसिद्धान्ते ।।५७।।

ननु स्फोटात्मकः शब्दो न स्वीक्रियते किं शब्दो नित्यः स्वीक्रियते इत्याकांक्षायामुच्यते -

---

प्रतीत्यप्रतीतिभ्यां न स्फोटात्मकः शब्दः ।।५७।।

सूत्रार्थ= किसी वस्तु की सत्ता है वह प्रतीति से सिद्ध होती है और किसी वस्तु की सत्ता नहीं है वो उसकी अप्रतीति से सिद्ध होती है। स्फोटात्मक शब्द की प्रतीति होती नहीं।

[**(स्फोटात्मकः-शब्दः-न) वाचा खलूच्चार्यमाणः श्रोत्राभ्यां श्रूयमाणशब्दो ध्वन्यात्मकः पुनरुच्चारणानन्तरमर्थस्य स्फुटीकरणहेतुत्वाद् ध्वन्यात्मकाद् भिन्नः स्फोटात्मकः कल्पयते**] वाणी से उच्चारण किया जाता हुआ और दोनों कानों से सुना जाता हुआ शब्द ध्वन्यात्मक है और फिर उच्चारण के पश्चात् अर्थ को प्रकट करने के हेतु से इस ध्वन्यात्मक शब्द से भिन्न स्फुटात्मक नाम से कल्पित किया जाता है, जो अर्थ को प्रकट करता है [(वार्ता करते हैं- वाणी से शब्द बोला कान से सुनते हैं ये हैं ध्वन्यात्मक शब्द। ध्वनि सुनी और समाप्त हो गयी फिर अर्थ कैसे पता चला? उस अर्थ को समझाने के लिए एक और ध्वनि की कल्पना करते है जो स्फोटात्मक है। कंठ से बोलते हैं वह है ध्वन्यात्मक, और जो मस्तिष्क में रहता है वह स्फोटात्मक है जो अर्थ को प्रकट करता है)। **अत्र सांख्यसिद्धान्ते स न स्वीक्रियतेऽत एवोच्यते स्फोटात्मकः शब्दो नास्ति**] यहाँ सांख्य के सिद्धान्त में उस स्फोटात्मक शब्द को स्वीकार नहीं किया जाता, इसलिए कहा जा रहा है की सांख्य में स्फोटात्मक शब्द नहीं है। [**कुतः क्यों। उच्यते (प्रतीत्यप्रतीतिभ्याम्) वस्तुनोऽस्तित्वनास्तित्वसाधने प्रतीत्यप्रतीति भवतः**] कहा है- वस्तु का अस्तित्व है अथवा नहीं है इन दोनों को सिद्ध करने वाले दो साधन एक प्रतीति और दूसरी अप्रतीति होते हैं, [**यः प्रतीयते सोऽस्ति यश्च न प्रतीयते स नास्ति**] जो प्रतीत होती है वह वस्तु है जो प्रतीत नहीं होती वह नहीं है। [**ध्वन्यात्मकस्य शब्दस्य तु प्रतीतिरस्ति तदनन्तरं स्फोटात्मको यः कल्प्यते तस्याप्रतीतिरस्ति**] ध्वन्यात्मक शब्द की प्रतीति तो हो ही रही है इसके बाद जो स्फोटात्मक शब्द कल्पित किया जाता है उसकी यहाँ प्रतीति नहीं होती। [**तस्मात् स्फोटात्मकः शब्दो न स्वीक्रियते सांख्यसिद्धान्ते**] इसलिए स्फोटात्मक शब्द को सांख्य के सिद्धान्त में स्वीकार नहीं किया जाता ।।५७।।

प्रश्न है कि स्फोटात्मक शब्द स्वीकार नहीं किया, फिर क्या आप शब्द को नित्य मानते हैं? इस

न शब्दनित्यत्वं कार्यताप्रतीतेः ।।५८।।

(शब्दनित्यत्वं न) शब्दस्य नित्यत्वं नास्ति। कुतः (कार्यताप्रतीतेः) कार्यतायाः प्रतीतेः, प्रत्यक्षं ह्युच्चारणेनोत्पद्यते खलु शब्दः ।।५८।।

ननु सांख्यमते स्फोटात्मकः शब्दो न मन्यते न च शब्दस्य नित्यत्वं स्वीक्रियते, तदा शब्दोच्चारणात् पश्चात् तस्योभयप्रकाराभ्यां स्थिरत्वाभावादर्थप्रतीतिः कथं भविष्यतीत्यत्रोच्यते -

पूर्वसिद्धसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेव घटस्य ।।५९।।

(पूर्वसिद्धसत्त्वस्य-अभिव्यक्तिः-दीपेन-इव घटस्य) उच्चरितेन शब्देन पूर्वतःसिद्धस्य सत्त्वस्यार्थस्याभिव्यक्तिर्भवति यथा दीपेन घटस्य पूर्वतो वर्तमानस्याभिव्यक्तिः प्रकटता भवति,

---

आकांक्षा पर कहते हैं-

न शब्दनित्यत्वं कार्यताप्रतीतेः ।।५८।।

सूत्रार्थ= शब्द नित्य नहीं है, उसकी उत्पत्ति होने से अर्थात् कार्यपन दिखाई देने से।

[(शब्दनित्यत्वं न) शब्दस्य नित्यत्वं नास्ति । कुतः (कार्यताप्रतीतेः) कार्यतायाः प्रतीतेः, प्रत्यक्षं ह्युच्चारणेनोत्पद्यते खलु शब्दः] शब्द की नित्यता नहीं है, कैसे-कार्यता के प्रतीत होने से, प्रत्यक्ष ही शब्द उच्चारण से शब्द उत्पन्न होता है (जब उत्पन्न होता है तो नष्ट भी होगा)।।५८।।

प्रश्न है- सांख्यमत में स्फोटात्मक शब्द को नहीं माना जाता और न ही शब्द की नित्यता स्वीकार करते हैं। तब शब्दोचारण के बाद उसके दोनों ही प्रकार से स्थिरता न होने से अर्थ कि प्रतीति कैसे होग़ी? इसका उत्तर देते हैं-

पूर्वसिद्धसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेव घटस्य ।।५९।।

सूत्रार्थ= शब्द को सुनने से पूर्व ज्ञात पदार्थ का ज्ञान हो जाता है, जैसे दीपक से घड़े का ज्ञान हो जाता है।

[(पूर्वसिद्धसत्त्वस्य-अभिव्यक्तिः-दीपेन-इव घटस्य) उच्चरितेन शब्देन पूर्वतःसिद्धस्य सत्त्वस्यार्थस्याभिव्यक्तिर्भवति यथा दीपेन घटस्य पूर्वतो वर्तमानस्याभिव्यक्तिः प्रकटता भवति] (जो शब्द उच्चारण किया उस बोले गए शब्द से अर्थ तो पहले से ही जानते हैं) सुने हुए शब्द से पहले से विद्यमान अर्थ कि अभिव्यक्ति हो जाती है, जैसे दीपक के प्रकाश से पहले विद्यमान घट आदि (जो घर में रखे थे) कि अभिव्यक्ति हो जाती है, **[दीपेन दृष्टं घटमुत्थाप्य गच्छति जनः]** दीपक के जलने से घड़े को देखकर उठाकर लोग ले जाते हैं, **[घटदर्शनकाले दीपस्यावश्यकता स्वायत्तीकृते घटे न दीपोऽपेक्ष्यते दीपदृष्टान्तस्य प्रकाशकत्वमात्रमेव गृह्यते]** घटदर्शन काल में दीपक की आवश्यकता होती है हाथ में उठा लेने पर फिर दीपक की आवश्यकता नहीं रहती। यहाँ जो दीपक का दृष्टांत् दिया वह बहुत सीमित है दीपक से प्रकाश मात्र

दीपेन दृष्टं घटमुत्थाप्य गच्छति जनः, घटदर्शनकाले दीपस्यावश्यकता स्वायत्तीकृते घटे न दीपोऽपेक्ष्यते दीपदृष्टान्तस्य प्रकाशकत्वमात्रमेव गृह्यते। तस्माच्छब्दस्य स्फोटात्मकतया यद्वा नित्यभावेन स्थिरत्वं नापेक्ष्यते।।५९।।

एवं तु सत्कार्यसिद्धान्त आपतति । उच्यते -

सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् सिद्धसाधनम् ।।६०।।

(सत्कार्यसिद्धान्तः-चेत् सिद्धसाधनम्) सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् तदा सिद्धस्य सांख्याभिमतस्य सिद्धपक्षस्य साधनं तदभीष्टमेव, न दोषः ।।६०।।

अथान्तिमसूत्रद्वयस्यान्योऽर्थः, तत्र पुनः पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

का ग्रहण करने तक का दृष्टांत है। **[तस्माच्छब्दस्य स्फोटात्मकतया यद्वा नित्यभावेन स्थिरत्वं नापेक्ष्यते]** इसलिए शब्द का स्फोटात्मक रूप से अथवा नित्य होने से स्थिर हो ऐसी अपेक्षा नहीं है।।५९।।

पूर्वपक्षी कहता है- इससे तो सत्कार्य सिद्धान्त आ जाएगा? सिद्धांती कहता है-

सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् सिद्धसाधनम् ।।६०।।

सूत्रार्थ=यदि पूर्वपक्षी ऐसा कहे कि- उपर बाले शब्द की व्याख्या में सत्कार्यवाद सिद्ध हो जाएगा? ऐसा होने से स्वीकारित बात की सिद्धि होती है।

[(सत्कार्यसिद्धान्तः-चेत् सिद्धसाधनम्) सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् तदा सिद्धस्य सांख्याभिमतस्य सिद्धपक्षस्य साधनं तदभीष्टमेव, न दोषः] (कार्य उत्पत्ति अभिव्यक्ति से पूर्व विद्यमान होना-सत्कार्यवाद है) सत्कार्य सिद्धान्त हो, सांख्य में जो पहले से स्वीकार्य है (सत्कार्यवाद) उस पक्ष की दुबारा सिद्धि होती है, ऐसा मानने से वह अभीष्ट ही है, उसमें कोई दोष नहीं है।।६०।।

अब अंतिम दो सूत्रों की दूसरी प्रकार से व्याख्या करते हैं- यहाँ पूर्वपक्ष की तरफ से कहा जा रहा है

पूर्वसिद्धसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेव घटस्य ।।५९।।

सूत्रार्थः-

[(पूर्वसिद्धसत्त्वस्य-अभिव्यक्तिः-दीपेन-इव घटस्य) यदा शब्दो न स्फोटात्मको न च नित्यस्तदा तु पूर्वं सिद्धं सत्त्वं स्वरूपं यस्य तथाभूतस्यार्थस्य शब्दोच्चारणेनाभिव्यक्तिर्भवति सत्कार्यतया] जब शब्द स्फोटात्मक नहीं है और सांख्यमत के अनुसार नित्य भी नहीं है, तब तो पहले से रखे पदार्थ के अर्थ

पूर्वसिद्धसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेव घटस्य ।।५९।।

(पूर्वसिद्धसत्त्वस्य-अभिव्यक्तिः-दीपेन-इव घटस्य) यदा शब्दो न स्फोटात्मको न च नित्यस्तदा तु पूर्वं सिद्धं सत्त्वं स्वरूपं यस्य तथाभूतस्यार्थस्य शब्दोच्चारणेनाभिव्यक्तिर्भवति सत्कार्यतया यथा दीपेन घटस्य सदात्मनः पूर्वतो वर्तमानस्याभिव्यक्तिर्भवतीति मन्तव्यं भवेत् ।।५९।।

उत्तरयति -

सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् सिद्धसाधनम् ।।६०।।

(सत्कार्यसिद्धान्तः-चेत् सिद्धसाधनम्) एष पूर्वतः सदात्मनो वर्तमानस्याभिव्यक्तिवादस्तु सत्कार्यसिद्धान्तः सांख्येऽभीष्टः स चेदापतेत् तर्हि (सिद्धसाधनम्) सांख्ये सिद्धस्य पक्षस्य साधनं न तु दोषः ।।६०।।

की उच्चारण से अभिव्यक्ति हो जाती है, सत्कार्य के नियम से **[यथा दीपेन घटस्य सदात्मनः पूर्वतो वर्तमानस्याभिव्यक्तिर्भवतीति मन्तव्यं भवेत्]** जैसे दीपक से घट की (जो कि पहले से विद्यमान है) अभिव्यक्ति हो जाती है उससे ये भी मानना पड़ेगा कि शब्द के सुनने से पहले अर्थ प्रकट हो जाता है ।।५९।।

उत्तरयति -अब सिद्धांती उत्तर देता है-

सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् सिद्धसाधनम् ।।६०।।

[(सत्कार्यसिद्धान्तः-चेत् सिद्धसाधनम्) एष पूर्वतः सदात्मनो वर्तमानस्याभिव्यक्तिवादस्तु सत्कार्यसिद्धान्तः सांख्येऽभीष्टः स चेदापतेत् तर्हि (सिद्धसाधनम्) सांख्ये सिद्धस्य पक्षस्य साधनं न तु दोषः] ये जो पहले से विद्यमान वस्तु का अभिव्यक्तिवाद है यह सत्कार्य सिद्धान्त सांख्य में अभीष्ट है तो सांख्य में जो पहले से सिद्ध है उसे पुनः सिद्ध किया। इसमें कोई दोष नहीं है ।।६०।।

सत्कार्यवाद सत्तात्मक और असत्तात्मक वस्तु का प्रकट होना जीवात्मा के कर्मों की बजह से जगत में भिन्नता होना और जीवात्मा-प्रकति की सत्ता से आश्रित होकर ये सब सिद्ध होती है, परंतु किसी ने कल्पना की जीवात्मा और प्रकृति को कल्पना मान लें, किन्तु जीवात्मा के स्वरूप से भिन्न वस्तु नहीं हैं। इस मान्यता का खंडन करने के लिए ये सूत्र आगे बताता है-

नाद्वैतमात्मनो लिंगात् तद्भेदप्रतीतेः ।।६१।।

सूत्रार्थ=आत्मा एक नहीं हो सकता दो आत्मा हैं दोनों के लक्षण से दोनों के भेद प्रतीत होते हैं।

सत्कार्यवादः सदसद्भ्यां वस्तुनः ख्यानं जीवात्मनः कर्मवशाज्जगद्वैविध्यमिति जीवात्मनः प्रकृतेश्च सत्तामाश्रित्य साध्यते परन्तु भवेतां प्रकृतिजीवात्मानौ किन्तु ब्रह्मात्मनः स्वरूपतो भिन्नवस्तुनी नेति कल्पनां निराकर्तुमाह -

नाद्वैतमात्मनो लिंगात् तद्भेदप्रतीतेः ।।६१।।

(आत्मनः-अद्वैतं न) आत्मा नैक एव, न हि ब्रह्मात्मैव किन्तु जीवात्माऽप्यस्ति। यतः (लिंगात् तद्भेदप्रतीतेः) ब्रह्मात्मजीवात्मनोः पृथक् पृथग्लिंगात् तयोर्भेदप्रत्यक्षात्। तद्यथा - ''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया सामनं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ।।'' (ऋ० १.१६४.२०) ।।६१।।

प्रकृत्या सह स्याद् ब्रह्मात्मनोऽभेदः सोऽपि -

[(आत्मनः-अद्वैतं न) आत्मा नैक एव, न हि ब्रह्मात्मैव किन्तु जीवात्माऽप्यस्ति] आत्मा ही एक नहीं है, ब्रह्म भी है, प्रकृति भी है, जीवात्मा भी है। यतः क्योंकि **[(लिंगात् तद्भेदप्रतीतेः) ब्रह्मात्मजीवात्मनोः पृथक् पृथग्लिंगात् तयोर्भेदप्रत्यक्षात्]** जीव और ब्रह्म दोनों एक नहीं हैं क्योंकि दोनों के लक्षण अलग अलग है, दोनों का भेद प्रत्यक्ष है। **तद्यथा** जैसे कि- **[''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया सामनं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।।''(ऋ० १.१६४.२०)]** दो सुंदर पंखों वाले पक्षी हैं मित्रभाव से साथ-साथ रहते हैं एक ही वृक्ष पर दोनों विराजमान हैं। उन दो में से एक पक्षी वृक्ष के फल खाता है, दूसरा पक्षी फल को न खाता हुआ पहले वाले पक्षी के कर्मों को देखता रहता है ।।६१।।

प्रकृति और ब्रह्म का अभेद नहीं है-

नानात्मनाऽपि प्रत्यक्षबाधात् ।।६२।।

सूत्रार्थ=प्रकृति के साथ भी ब्रह्म का एकत्व नहीं है, दोनों को एक मानने पर जगत के नाश आदि धर्म ब्रह्म में भी मानने पड़ेंगे।

[(अनात्मना-अपि न) अनात्मना जडेन प्रकृत्याख्येन प्रधानेन सहापि नाद्वैतमपार्थक्यमैक्यम्] जो अनात्मा है जड़ वस्तु प्रकृति है उस प्रधान नामक वस्तु का ब्रह्म के साथ अद्वैत नहीं है। **[यतः (प्रत्यक्षबाधात्) प्रत्यक्षं हि दृश्यते प्रकृतिपरिणामो जगन्नश्यमानं तत्रापि नश्वरधर्मत्वमापद्येत]** क्योंकि प्रत्यक्ष ही ये दिखता है कि प्रकृति में परिणाम होता है और जगत नाशवान है यदि ब्रह्म और प्रकृति को एक मान लें तो ब्रह्म में भी नाश का धर्म आ जाएगा **[किन्तु स तु प्रकृतिं परिणामयति ''एकं बीजं बहुधा यः करोति'' (श्वेता०**

नानात्मनाऽपि प्रत्यक्षबाधात् ।।६२।।

(अनात्मना-अपि न) अनात्मना जडेन प्रकृत्याख्येन प्रधानेन सहापि नाद्वैतमपार्थक्यमैक्यम् । यतः (प्रत्यक्षबाधात्) प्रत्यक्षं हि दृश्यते प्रकृतिपरिणामो जगन्नश्यमानं तत्रापि नश्वरधर्मत्वमापद्येत किन्तु स तु प्रकृतिं परिणमयति ''एकं बीजं बहुधा यः करोति'' (श्वेता० ६.१२) ।।६२।।

प्रकृतिजीवात्माभ्यामुभाभ्यां सह सकृदैकात्म्यं गतः स्यात्। अत्रोच्यते -

नोभाभ्यां तेनैव ।।६३।।

(उभाभ्यां न तेन-एव) प्रकृतिजीवात्माभ्यामुभाभ्यां सहापि नाद्वैतं गतो भवति तेन पूर्वोक्तेनैव लिंगभेदप्रत्यक्षबाधरूपेण हेतुना ।।६३।।

कथं तर्ह्यद्वैतकथनं श्रुतौ ''आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्'' (ऐ०उ० १.१.१) । अत्रोच्यते

६.१२)] जबकि श्रुति तो यह कह रही है कि परमात्मा प्रकृति को परिणामित करता है ''जो एक रूप प्रकृति को बहुत रूप बना देता है'' इससे पता चलता है कि वह ब्रह्म प्रकृति से भिन्न है ।।६२।।

प्रकृति और जीवत्मा दोनों को ब्रह्म के साथ एक हों, ऐसा भी नहीं है-

नोभाभ्यां तेनैव ।।६३।।

सूत्रार्थ= प्रकृति और जीव दोनों के साथ ब्रह्म की एकता नहीं है पूर्वोक्त हेतुओं से।

[(उभाभ्यां न तेन-एव) प्रकृतिजीवात्मभ्यामुभाभ्यां सहापि नाद्वैतं गतो भवति तेन पूर्वोक्तेनैव लिंगभेदप्रत्यक्षबाधरूपेण हेतुना] प्रकृति और जीवात्मा के साथ इकट्ठा भी अद्वैत नहीं हो सकता ब्रह्म का, क्योंकि जीव और ब्रह्म की भिन्नता बताई थी उनके भिन्न लक्षण के कारण बताई थी और प्रकृति व ब्रह्म की एकता का भी खंडन पूर्वसूत्र में हुआ था ।।६३।।

पूर्वपक्षी कहता है यदि प्रकृति ब्रह्म जीव सब एक नहीं है फिर श्रुति में अद्वैत का कथन क्यों हुआ ''सृष्टि बनने से पूर्व आत्मा ही एक था'' यहाँ एक ब्रह्म की बात क्यों कही गयी प्रकृति और जीव की क्यों चर्चा नहीं की-

अन्यपरत्वमविवेकानां तत्र ।।६४।।

सूत्रार्थ=उस श्रुति में केवल यह मानना की ब्रह्म ही था ये अज्ञानी लोगों की मान्यता है, जबकि वो श्रुति अन्य (सृष्टि रचना) प्रसंग में है।

[(तत्र-अविवेकानाम्) तत्र श्रुतौ खल्वद्वैतकल्पनं विवेकरहितानामेव] उस वचन में केवल ब्रह्म की कल्पना करना ये अज्ञानी लोगों की बात है, **[यतः (अन्यपरत्वम्) श्रुतेरन्यपरत्वं सृष्टिरचनापरत्वमस्ति]** क्योंकि वहाँ पर पदार्थों की सत्ता का निर्णय नहीं हो रहा था (पदार्थों की सत्ता का प्रकरण नहीं था) वहाँ तो केवल सृष्टि की रचना का प्रकरण है, **[''आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत् स ईक्षते**

-

अन्यपरत्वमविवेकानां तत्र ।।६४।।

(तत्र-अविवेकानाम्) तत्र श्रुतौ खल्वद्वैतकल्पनं विवेकरहितानामेव, यतः (अन्यपरत्वम्) श्रुतेरन्यपरत्वं सृष्टिरचनापरत्वमस्ति''आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन मिषत् स ईक्षते लोकान्नु सृजा इति''(ऐ०उ० १.१.१) सृष्टितः पूर्वं चेष्टमानो ब्रह्मात्मा ह्यासीज्जीवात्मानो निश्चेष्टा आसन् प्रकृतिरपि निश्चेष्टाऽऽसीत् ।।६४।।

भवतु श्रुतिः सृष्टिरचनापरा परन्तु तत्र जगत्कारणत्वं ब्रह्मात्मनः किमुपादानत्वेन? न वेत्याकांक्षायामाह-

लोकान्नु सृजा इति''(ऐ०उ० १.१.१)] सृष्टि बनने से पूर्व जब प्रलय की स्थिति थी, उस समय एक परमात्मा ही चेतन होश में था और कोई भी चेष्टा करने में समर्थ नहीं था । उसने विचार किया, मै लोकलोकांतरों को बनाता हूँ **[सृष्टितः पूर्वं चेष्टमानो ब्रह्मात्मा ह्यासीज्जीवात्मानो निश्चेष्टा आसन् प्रकृतिरपि निश्चेष्टाऽऽसीत्]** सृष्टि से पूर्व क्रियाशील ज्ञानवान केवल ईश्वर ही था बाकी जीवात्माएं भी थी किन्तु वे निश्चेष्ट थीं और प्रकृति भी क्रिया शून्य थी।।६४।।

चलो मान लिया की वह श्रुति सृष्टि रचना से संबन्धित हो, परंतु जो परमात्मा जगत का कारण है, जिससे ये जगत बनाया बो कौन सा कारण है? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं-

नात्माऽविद्या नोभयं जगदुपादानकारणं निःसंगत्वात् ।।६५।।

सूत्रार्थ= जगत का उपादान कारण परमात्मा नहीं है और न अविद्या है। क्योंकि वह वस्तु (परमाणुरूप) रूप नहीं है, और न ही ये इकट्ठे मिलकर के बन सकते। तीन पक्षों का खंडन हुआ। तीनों ही पक्षो में ये जगत का उपादान कारण नहीं हो सकते निःसंग होने से।

[(आत्मा-अविद्या जगदुपादानकारणं न-उभयं न निःसंगत्वात्) ब्रह्मात्मा जगतो नोपादानकारणं निःसंगत्वात्] ब्रह्म जगत का उपदान कारण नहीं है, निःसंग होने से, **[उपादानं हि खलु कमप्यन्यं संगत्यैव कार्यात्मना भासते]** उपादान किसी अन्य चेतन वस्तु की संगति करके ही कार्य रूप में प्रतीत होता है **[मृत्तिका यथा कुम्भकारं दण्डचक्रादिकं संगत्य घटरूपेण कार्यात्मना सञ्जायते]** जैसे मिट्टी उपादान कारण है घड़े का और वह कुंभकार दण्ड चाक आदि की संगति करके घट के रूप में कार्य रूप में प्रकट हो जाती है। **[अविद्याऽपि नोपादानकारणम्]** अविद्या भी जगत का उपादान कारण नहीं है, **[अविद्या हि खल्ववस्तुरूपा न ह्यवस्तु संसर्गसमर्थम्]** अविद्या अवस्तु (ठोस पदार्थ नहीं है) रूप है, इसलिए अवस्तु संसर्ग में समर्थ नहीं होती, **[ब्रह्मात्माऽथाविद्या च परस्परं संगत्योपादनं भवेत् तदपि न निःसंगत्वादेव नहि वस्त्ववस्तुनोः संगो भवति]** ब्रह्म और अविद्या दोनों आपस में मिलकर किसी अन्य वस्तु की संगति करके जगत का उपादान बन जाए ऐसा भी नहीं हो सकता। क्योंकि वो सब निःसंग हैं इसलिए दोनों मिलकर के

नात्माऽविद्या नोभयं जगदुपादानकारणं नि:संगत्वात् ।।६५।।

(आत्मा-अविद्या जगदुपादानकारणं न-उभयं न नि:संगत्वात्) ब्रह्मात्मा जगतो नोपादानकारणं नि:संगत्वात्, उपादानं हि खलु कमप्यन्यं संगत्यैव कार्यात्मना भासते मृत्तिका यथा कुम्भकारं दण्डचक्रादिकं संगत्य घटरूपेण कार्यात्मना सञ्जायते । अविद्याऽपि नोपादानकारणम्, अविद्या हि खल्ववस्तुरूपा न ह्यवस्तु संसर्गसमर्थम्, ब्रह्मात्माऽथाविद्या च परस्परं संगत्योपादनं भवेत् तदपि न नि:संगत्वादेव नहि वस्त्ववस्तुनो: संगो भवति । एवं सांख्यमते ब्रह्मात्मा जगत उपादानकारणं न किन्तूपादानकारणमन्तरेण भवतु निमित्तकारणमिति न निषेधस्तस्मान्निमित्तकारणम् ।।६५।।

आत्माद्वैतं निरस्तं परमात्मा जीवात्मा च स्त:, तत्र विशेषोऽवधार्यते -

नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात् ।।६६।।

(द्वयो:-एकस्य-आनन्दचिद्रूपत्वे न) परमात्मजीवात्मनोरेकस्य जीवात्मन आनन्दचिद्रूपत्वे

उपादान नहीं हो सकते और ब्रह्म वस्तु तो है पर अविद्या अवस्तु है ऐसे भी संग नहीं हो सकता। **[एवं सांख्यमते ब्रह्मात्मा जगत उपादानकारणं न]** इस प्रकार से सांख्यमत में ब्रह्म जगत का उपादान कारण नहीं है **[किन्तूपादानकारणमन्तरेण भवतु निमित्तकारणमिति न निषेधस्तस्मान्निमित्तकारणम्]** किन्तु उपादान कारण से भिन्न वह निमित्त कारण हो सकता है, उपादान कारण का निषेध है निमित्त कारण का नहीं ।।६५।।

आत्मा एक है इस बात का खंडन हो चुका। अब दोनों में भेद क्या है? ये बताएँगे-

नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात् ।।६६।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा और परमात्मा एक नहीं है, क्योंकि जीवात्मा में आनन्द का अभाव है और वह केवल चेतन स्वरूप है। इस प्रकार दोनों में भेद की श्रुति होने से।

[(द्वयो:-एकस्य-आनन्दचिद्रूपत्वे न) परमात्मजीवात्मनोरेकस्य जीवात्मन आनन्दचिद्रूपत्वे न स्त: स तु चिदेव परमात्मनस्तु स्त एव] दो चेतन है एक परमात्मा दूसरा जीवात्मा । इनमें से एक में आनन्द और चिद्रूपता ये दोनों गुण जीवात्मा में नहीं है, परमात्मा में ये दोनों हैं । जीवात्मा केवल चेतन ही है उसमें आनन्द नहीं है, **[कुत: (भेदात्) भेदेन वर्णनात् ''रसो वै स:, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति']** शास्त्रों में दोनों का भेद से वर्णन है ''वह (ईश्वर) आनन्द से परिपूर्ण हैं'', इस रस (परमात्मा) को प्राप्त करके वह जीवात्मा आनंदी हो जाता है **[(तै०उ० २.७) अत्राऽऽनन्दो जीवात्मनि नास्ति चेतनत्वमेवेति स्पष्टं]** यहाँ बताया जीवात्मा में आनन्द नहीं है चेतनता ही है केवल ये स्पष्ट है **[तथाऽऽनन्दस्तु परमात्मनि विद्यते]** तथा आनन्द तो परमात्मा में है **[तमानन्दरूपं लब्ध्वा हि जीवात्माऽऽनन्दमनुभवति]** उस आनन्द रूप परमात्मा को प्राप्त करके जीवात्मा आनन्द का अनुभव करता है ।।६६।।

पूर्वपक्षी ने प्रश्न उठाया- चलो जीवात्मा स्वरूप से आनन्द रूप न हो परंतु मुक्ति में तो आनन्द रूप हो जाएगा? इस पर कहते हैं-

न स्तः स तु चिदेव परमात्मनस्तु स्त एव, कुतः (भेदात्) भेदेन वर्णनात् ''रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति' (तै०उ० २.७) अत्राऽऽनन्दो जीवात्मनि नास्ति चेतनत्वमेवेति स्पष्टं तथाऽऽनन्दस्तु परमात्मनि विद्यते तमानन्दरूपं लब्ध्वा हि जीवात्माऽऽनन्दमनुभवति ।।६६।।

जीवात्मा स्वरूपत आनन्दरूपो न भवेत् परन्तु मुक्तौ तु स्यात् स आनन्दरूपः । अत्रोच्यते -

दुःखनिवृत्तेर्गौणः ।।६७।।

(दुःखनिवृत्तेः-गौणः) मुक्तौ दुःखनिवृत्तिर्जायते तदा तत्रानन्दरूपो भवत्यात्मा गौणो न मुख्यः, न हि तदा स आनन्दरूपो भवति किन्तु स आनन्दी भवति तेनानन्दरूपेण परमात्मना सहानन्दी धनेन धनीव भवति ।।६७।।

तदाऽऽनन्दरूपत्वं तस्य -

दुःखनिवृत्तेर्गौणः ।।६७।।

सूत्रार्था= मुक्ति में दुःखों से हट जाने पर जीवात्मा आनन्द स्वरूप हो जाता है, यह गौण कथन है क्योंकि वह परमात्मा के आनन्द से आनंदी होता है। जैसे धनिक धन से धनी होता है।

[(दुःखनिवृत्तेः-गौणः) मुक्तौ दुःखनिवृत्तिर्जायते तदा तत्रानन्दरूपो भवत्यात्मा गौणो न मुख्यः] सिद्धांती कहता है कि- मुक्ति में दुःख की निवृत्ति हो जाएगी और वहाँ जीवात्मा आनन्द स्वरूप हो जाएगा। ऐसा यदि कोई कह दे तो ये गौण कथन है, मुख्य कथन नहीं, **[न हि तदा स आनन्दरूपो भवति किन्तु स आनन्दी भवति तेनानन्दरूपेण परमात्मना सहानन्दी धनेन धनीव भवति]** वह आनन्द रूप नहीं होता किन्तु आनंदी होता है जैसे कोई धनी हो जाता है धन से युक्त हो जाता है धन नहीं होता ऐसे ही परमात्मा के सानिध्य से वह आनंदी होता है ।।६७।।

फिर मुक्ति में जीवात्मा को आनन्द स्वरूप क्यों कह रहे हैं? इसका उत्तर देते हैं-

विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम् ।।६८।।

सूत्रार्थ=मुक्ति में आनन्द का प्रकट होना ये कथन सामान्य जनों में मुक्ति कि प्रति रुचि उत्पन्न होवे, इसलिए मुक्ति की प्रशंसा मात्र है, विवेकियों के लिए तो सम्पूर्ण दुःखों से छुटना ही मुक्ति है ।

[(विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम्) मुक्तावानन्दाभिव्यक्तिः खलु विमुक्तिप्रशंसा मन्दानां दृष्टौ विवेकिनां तु दुःखनिवृत्तिः] मुक्ति में आनन्द की अभिव्यक्ति होगी ये मुक्ति की प्रशंसा है मंद बुद्धि वालों की दृष्टि ये है कि वहाँ आनन्द मिलेगा विवेकी बुद्धिमान लोगों की दृष्टि ये है कि वहाँ दुःखों से छूट जाएंगे ।।६८।।

दुःख से छूटना मुक्ति है और आनन्द गौंण भाव है क्योंकि आनन्द तो सुख है । फिर सुख-दुःख की अनुभूति तो मन से होती है, मन व्यापक नहीं है कि जिससे मुक्ति में भी आनन्द की अनुभूति कर लेंगे। इस

विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम् ।।६८।।

(विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम्) मुक्तावानन्दाभिव्यक्तिः खलु विमुक्तिप्रशंसा मन्दानां दृष्टौ विवेकिनां तु दुःखनिवृत्तिः ।।६८।।

दुःखनिवृत्तिर्मुक्तिरानन्दो गौणभावेनोच्यते प्रशंसायां यत आनन्दः सुखम्, पुनः सुखदुःखानुभूतिर्मनसा भवति, मनसो न व्यापकत्वं यन्मुक्तावपि तेनानन्दानुभूतिः स्यादित्येवोच्यते -

न व्यापकत्वं मनसः करणत्वादिन्द्रियत्वाद्वा वास्यादिवच्चक्षुरादिवत् ।।६९।।

(मनसः-व्यापकत्वं न) मनसो विभुत्वं नास्ति (करणत्वात्वास्यादिवत्) करममुपकरणं साधनं साधनत्वात् कुठारादिवत् (वा) अथवा (इन्द्रियत्वात्-चक्षुरादिवत्) एकादशेन्द्रियेषु तस्येन्द्रियभावाच्चक्षुरादिवत्। यथेव हि कुठारादीनि साधनानि चक्षुरादीनीन्द्रियाणि न व्यापकानि सर्वत्र

विषय में कहते हैं-

न व्यापकत्वं मनसः करणत्वादिन्द्रियत्वाद्वा वास्यादिवच्चक्षुरादिवत् ।।६९।।

सूत्रार्थ=मन सर्वव्यापक नहीं है कुठार आदि के समान साधन होने से तथा चक्षु आदि के समान इंद्रिय होने से।

[**(मनसः-व्यापकत्वं न) मनसो विभुत्वं नास्ति**] मन विभु (व्यापक) नहीं है [**(करणत्वात्वास्यादिवत्) करममुपकरणं साधनं साधनत्वात् कुठारादिवत्**] मन एक साधन है करण-उपकरण है, जैसे लकड़ी काटने का साधन कुल्हाड़ी होता है [**(वा) अथवा (इन्द्रियत्वात्-चक्षुरादिवत्) एकादशेन्द्रियेषु तस्येन्द्रियभावाच्चक्षुरादिवत्**] ग्यारह इंद्रियों में उसका इंद्रिय स्वरूप होने से चक्षु आदि इंद्रिय बाहरी इंद्रिय हैं मन आंतरिक इंद्रिय है। [**यथेव हि कुठारादीनि साधनानि चक्षुरादीनीन्द्रियाणि न व्यापकानि सर्वत्र स्वव्यापारकराणि तथैव मनोऽपि**] जैसे कुठार आदि साधन हैं एकदेशीय हैं और चक्षु आदि इंद्रिय हैं वह भी एकदेशीय है एक स्थान पर ही कार्य कर सकता है सब जगह नहीं इसी प्रकार मन भी एकदेशीय है, सर्वव्यापक नहीं है ।।६९।।

इसी विषय में एक और हेतु बताते हैं-

सक्रियत्वाद् गतिश्रुतेः ।।७०।।

सूत्रार्थ=श्रुति में गति कथन होने से मन सक्रिय क्रियावन है। और सक्रिय होने से एकदेशीय है।

[**(सक्रियत्वात्) मनसः क्रियावत्त्वात् क्रियामयात् परिणामरूपक्रियामयात् (गतिश्रुतेः) पुनस्तस्य गतिश्रुतित्वात् ''यद् वो मनः परागतं यद बद्धमिह वेह वा। तद् व आवर्तयामसि...'' (अथर्व० ७.१ं̆ग.४) ''गच्छतीव च मनः'' (केनो० ४.५)**] मन के क्रिया वाला होने से क्रियामय होने से, परिणामरुप क्रियामय होने से, (मन में क्रियारूप परिणाम होते रहते हैं अवयव वाला होने से) और उसकी गति

स्वव्यापारकराणि तथैव मनोऽपि ।।६९।।

तत्रैवापरो हेतुः -

सक्रियत्वाद् गतिश्रुतेः ।।७०।।

(सक्रियत्वात्) मनसः क्रियावत्त्वात् क्रियामयात् परिणामरूपक्रियामयात् (गतिश्रुतेः) पुनस्तस्य गतिश्रुतित्वात् ''यद् वो मनः परागतं यद् बद्धमिह वेह वा । तद् व आवर्तयामसि...'' (अथर्व० ७.१३.४) ''गच्छतीव च मनः'' (केनो० ४.५)।।७०।।

मनो न स्याद् व्यापकं किन्तु भवेदणु यथा जीवात्माऽणुरस्ति स मोक्षेऽवतिष्ठते तद्वन्मनोऽपि स्यादणु मोक्षानन्दं परिचाययेदत्रोच्यते -

न निर्भागत्वं तद्योगाद्‌ घटादिवत्* ।।७१।।

(निर्भागत्वं न) अणुत्वेऽपि मनसो निर्भागत्वं भागराहित्यं नास्ति (तद्योगात्-घटादिवत्)

सुनाई देती है। जो आपका मन चला गया, और जो बंधा हुआ है इस वस्तु में और इस वस्तु में। उस तुम्हारे मन को हम वापिस पाएंगे। इससे सिद्ध हुआ मन सर्वव्यापक नहीं है। और मन ऐसा लगता है ये गया और वो गया ।।७०।।

मन व्यापक न हो अणु हो छोटा हो जैसे जीवात्मा अणु हो छोटा हो एकदेशीय हो परंतु जीवात्मा तो मोक्ष में रहता है मन भी अणु होकर मोक्ष में चला जाए आत्मा के साथ साथ और मोक्ष भुगवादे जीवात्मा को? इस पर कहते हैं-

न निर्भागत्वं तद्योगाद् घटादिवत्* ।।७१।।

सूत्रार्थ=अवयवों से युक्त होने से घड़े आदि के समान मन खण्ड रहित नहीं है।

[(निर्भागत्वं न) अणुत्वेऽपि मनसो निर्भागत्वं भागराहित्यं नास्ति (तद्योगात्-घटादिवत्) भागयोगाद् घटादिवत्] सिद्धांती कहता है- मन अणु है, परंतु वह निरावयव नहीं है भागरहित नहीं है (सत, रज, तम के छोटे छोटे टुकड़े तो उसमें विद्यमान हैं) भागों का संयोग होने से घटादि के समान, **[यथा घटः पटः कटोवेत्येवमादिपदार्थः स्वभागैर्युक्तः प्रयुक्तश्च भवति तथैव मनोऽपीति सर्वजनानुभूतिः]** जैसे घड़ा, कपड़ा, चटाई, वस्त्र आदि अपने-अपने भागों से युक्त होता है प्रयुक्त होता है उसी प्रकार मन भी टुकड़ों से जुड़कर बना है, जिन्होंने शास्त्र पढ़े हैं उनकी अनुभूति है, **[न हि मनः सर्वेन्द्रियैः सह सकृत् संयुज्यते सत्त्वरजस्तमोभिरवयवैश्च लक्ष्यते]** मन सब इंद्रियों के साथ एक साथ युक्त नहीं होता है, मन सत्व-रज-तम अवयवों से जाना जाता है, ऐसा दिखता है और इन गुणों से प्रभावित होता रहता है ।।७१।।

भागयोगाद् घटादिवत्, यथा घटः पटः कटोवेत्येवमादिपदार्थः स्वभागैर्युक्तः प्रयुक्तश्च भवति तथैव मनोऽपीति सर्वजनानुभूतिः, न हि मनः सर्वेन्द्रियैः सह सकृत् संयुज्यते सत्त्वरजस्तमोभिरवयवैश्च लक्ष्यते ।।७१।।

नित्यं स्यान्मनस्तस्य जीवात्मना सह नित्यसम्बद्धत्वान्मोक्षानन्दानुभूतिनिमित्तं भवेदित्याकांक्षायामुच्यते –

प्रकृतिपुरुषयोरन्यत् सर्वमनित्यम् ।।७२।।

(प्रकृतिपुरुषयो-अन्यत्) प्रकृतिपुरुषाभ्यां भिन्नम् (सर्वम्-अनित्यम्) सर्वं वस्तुजातं खल्वनित्यं न हि नित्यमस्ति, किं मन एवाननित्यमिति न किन्तु प्रकृतिपुरुषौ विहाय मन आदिकं सर्वमनित्यम् ।।७२।।

पूर्वपक्षी कहता है कि मन को नित्य मानलो उसका जीवात्मा के साथ नित्य समबन्ध मानलो और जब जीवात्मा मोक्ष में जाएगा तव मन को भी साथ में ले जाएगा और वहाँ मोक्ष आनन्द की अनुभूति का कारण बन जाएगा? ऐसे बात कहने पर सिद्धांती उत्तर देता है–

प्रकृतिपुरुषयोरन्यत् सर्वमनित्यम् ।।७२।।

सूत्रार्थ= प्रकृति और पुरुष से भिन्न जो भी वस्तुए है वे सब अनित्य हैं।

[(प्रकृतिपुरुषयो-अन्यत्) प्रकृतिपुरुषाभ्यां भिन्नम् (सर्वम्-अनित्यम्) सर्वं वस्तुजातं खल्वनित्यं न हि नित्यमस्ति] प्रकृति-पुरुष इन दो से भिन्न कोई भी वस्तु हो सब कि सब वस्तुएँ अनित्य हैं कोई भी नित्य नहीं हैं, **[किं मन एवाननित्यमिति न किन्तु प्रकृतिपुरुषौ विहाय मन आदिकं सर्वमनित्यम्]** मन न तो प्रकति है और न ही पुरुष है, इन दोनों से अलग है इसलिए अनित्य है और केवल मन ही अनित्य हो ऐसा नहीं है किन्तु प्रकृति पुरुष को छोड़कर प्रत्येक वस्तु अनित्य है ।।७२।।

भाग (टुकड़े अवयव) वाला जो भी पदार्थ होता है वह अनित्य होता है, प्रकृति पुरुष दोनों को नित्य बताया है क्योंकि दोनों अवयव रहित है। इस बात को दिखायेंगे–

न भागलाभो भोगिनो * निभागत्वश्रुतेः ।।७३।।

सूत्रार्थ= भोगी पदार्थों के भागों का लाभ नहीं हैं क्योंकि श्रुति में निर्भाग बताया गया है।

[(भोगिनः-भागलाभः-न) भोगोऽस्यास्तीति भोगी जीवात्मा तथा भोगोऽस्यामस्तीति भोगिनी प्रकृतिः] भोगी का अर्थ है जीवात्मा, भोग करने वाला है, जो भोग करता है वह जीवात्मा है भोग है जिसमें वो है भोग वाली भोगिनी प्रकृति परंतु प्रकृति भोग वाली है जीव को भोग देती रहती है जीवात्मा भोगता है, **[सूत्रे भोगिनः-एकशेषत्वं सामान्येनैकवचनं च]** है तो ये दो और सूत्र में एक वचन है-समास प्रक्रिया में एक शेष हो जाता है दो का एक बना देते हैं। सामान्य रूप से जाति वाचक होने से के वचन हो गया। **[भोगिनो**

सभागः पदार्थोऽनित्यः, प्रकृतिपुरुषौ न सभागावित्यपि दर्शयति -

न भागलाभो भोगिनो * निभागत्वश्रुतेः ।।७३।।

(भोगिनः-भागलाभः-न) भोगोऽस्यास्तीति भोगी जीवात्मा तथा भोगोऽस्यामस्तीति भोगिनी प्रकृतिः, सूत्रे भोगिनः-एकशेषत्वं सामान्येनैकवचनं च। भोगिनो भोगमनुतिष्ठतो भोक्तुस्तथा भोगवतो भोगाधिष्ठानस्य प्रकृत्याख्यस्याव्यक्तस्य भागलाभो भागसिद्धिः सावयवता नास्ति भोगस्यैव भागसिद्धिः सावयवता भवति न तु प्रकृतेः पुरुषस्य (निर्भागत्वश्रुतेः) जीवात्मनः प्रकृतेश्च निर्भागत्वश्रुतिदर्शनात् ''अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्'' (श्वेता० ४.५) मनस्तु सभागं सावयवमत एवानित्यं तस्यानित्यत्वान्मुक्तौ न तदानन्दानुभूतिसाधनं कल्पयितुं युज्यते ।।७४।।

एवम् -

भोगमनुतिष्ठतो भोक्तुस्तथा भोगवतो भोगाधिष्ठानस्य प्रकृत्याख्यस्याव्यक्तस्य भागलाभो भागसिद्धिः सावयवता नास्ति] जो भोगी है भोग का अनुष्ठान करता है भोग भोगता है, ऐसे भोक्ता का तथा भोग वाले पदार्थ का भोग वाले अधिष्ठान का प्रकृति नमक अव्यक्त पदार्थ का जो भोग देती रहती है उसमें भी अवयव टुकड़े नहीं हैं **[भोगस्यैव भागसिद्धिः सावयवता भवति]** जो भोग कार्य रूप होते हैं उन्ही में टुकड़े होते हैं अवयव होते हैं **[न तु प्रकृतेः पुरुषस्य]** प्रकृति और पुरुष की सावयवता नहीं है **[(निर्भागत्वश्रुतेः) जीवात्मनः प्रकृतेश्च निर्भागत्वश्रुतिदर्शनात्]** प्रकृति और जीवात्मा के निर्भागत्व की एक श्रुति देखी जाती है- **[''अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते अजामेंकां लोहितशुक्लकृष्णाम्'']** इस वचन में दोनों की ही चर्चा है- जो जन्म नहीं लेता वह एक है प्रकृति से प्रीति करता हुआ और उसका सेवन करता हुआ और जो एक प्रकृति है वह भी एक है और लाल-श्वेत-काले रंग वाली है **[(श्वेता० ४.५) मनस्तु सभागं सावयवमत एवानित्यं]** मन भाग सहित है उसमें बहुत टुकड़े हैं वह बनाया गया है और वह अनित्य है **[तस्यानित्यत्वान्मुक्तौ न तदानन्दानुभूतिसाधनं कल्पयितंग युज्यते]** वह अनित्य है इसलिए जब जीवात्मा मोक्ष में जाएगा तो मन यहीं टूट फुटकर नष्ट हो जाएगा और मुक्ति में आनंद की अनुभूति का साधन नहीं बन पाएगा इसलिए उसकी कल्पना मुक्ति में नहीं करनी चाहिए ।।७४।।

नानन्दाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मकत्वात्+ ।।७४।।

सूत्रार्थ=मुक्ति में आनन्द की अभिव्यक्ति नहीं होती अर्थात् आनन्द का प्रादुर्भाव नहीं होता आत्मा के आनंद स्वरूप धर्म से रहित होने से।

[(आनन्दाभिव्यक्तिः-मुक्तिः-न) आनन्दस्याभिव्यक्तिः प्रादुर्भावो मुक्तिर्नास्ति] जीवात्मा में कोई आनन्द हो और मोक्ष की स्थिति में वह प्रकट हो जाता हो, ऐसा नहीं है। **[(निर्धर्मकत्वात्) तस्यात्मन**

नानन्दाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मकत्वात्+ ।।७४।।

(आनन्दाभिव्यक्तिः-मुक्तिः-न) आनन्दस्याभिव्यक्तिः प्रादुर्भावो मुक्तिर्नास्ति (निर्धर्मकत्वात्) तस्यात्मन आनन्दरूपधर्मरहितत्वात् ।।७४।।

ननु भवतु मुक्तिरात्मनो विशेषगुणस्योच्छेदो येन स बध्यते । अत्रोच्यते -

न विशेषगुणोच्छित्तिस्तद्वत् ।।७५।।

(विशेषगुणोच्छित्तिः-न तद्वत्) विशेषगुणोच्छेदो मुक्तिरित्यपि न तद्वत् पूर्वोक्तान्निर्धर्मकत्वाद्धेतोः । यथा ह्यात्मन आनन्दो गुणो नास्ति यस्तस्य मुक्तौ प्रादुर्भवेत् तथैवात्मनो नैतादृशो गुणो यो मुक्तौ विनश्येत् तस्य तथाभूतगुणेन रहितत्वात्। मुक्तौ खलु न कश्चिद् गुण उपजायते न हीयते-आत्मन उपजनापायगुणरहितत्वात्।।७५।।

आनन्दरूपधर्मरहितत्वात्] क्योंकि आत्मा में ऐसा आनंद रूप कोई धर्म है ही नहीं।।७४।।

ऐसा मान लो कि जीवात्मा का अपना कोई विशेष गुण हों उसका छूट जाना मुक्ति मानलो? इस पर कहते हैं-

न विशेषगुणोच्छित्तिस्तद्वत् ।।७५।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा का मुक्ति में कोई विशेष गुण (स्वाभाविक धर्म) छुट्टा भी नहीं है, आत्मा में किसी उत्पन्न होने वाले या नष्ट होने वाले धर्म के न होने से।

[(विशेषगुणोच्छित्तिः-न तद्वत्) विशेषगुणोच्छेदो मुक्तिरित्यपि न तद्वत् पूर्वोक्तान्निर्धर्मकत्वाद्धेतोः] जीवात्मा का कोई अपना गुण हो वह नष्ट हो जाए उसके नष्ट होने को मुक्ति कहने लग जाएँ। ये भी मुक्ति का स्वरूप ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसके छूट जाने से जीवात्मा की मुक्ति मान लें, यदि कोई गुण स्वाभाविक हुआ तो वह छूटेगा नहीं। **[यथा ह्यात्मन आनन्दो गुणो नास्ति यस्तस्य मुक्तौ प्रादुर्भवेत् तथैवात्मनो नैतादृशो गुणो यो मुक्तौ विनश्येत् तस्य तथाभूतगुणेन रहितत्वात्]** जैसे आत्मा का आनन्द गुण अपना नहीं है जो उसकी मुक्ति में प्रकट हो जाता हो उसी प्रकार से आत्मा का ऐसा भी कोई गुण नहीं है जो मुक्ति में नष्ट हो जाता हो और उसके नष्ट होने पर ये कहा जाए कि इसकी मुक्ति हो गई। जीवात्मा ऐसे गुण से रहित है। **[मुक्तौ खलु न कश्चिद् गुण उपजायते न हीयते-आत्मन उपजनापायगुणरहितत्वात्]** मुक्ति में न तो कोई गुण नया उत्पन्न होता है और न ही नष्ट होता है, आत्मा नित्य वस्तु है और नित्य वस्तु में कोई गुण पैदा होता हो या नष्ट होता हो ऐसा नहीं है ।।७५।।

न विशेषगतिर्निष्क्रियस्य ।।७६।।

सूत्रार्थ=जो आत्मा निष्क्रिय है उसमें कुछ विशेष क्रिया परिणाम शुरू हो जाते हों और उसे मुक्ति माना

अथ -

न विशेषगतिर्निष्क्रियस्य ।।७६।।

(विशेषगतिः-न निष्क्रियस्य) संसारादूर्ध्व काचिद् विशिष्टा गतिर्मुक्तिर्न निष्क्रियस्यात्मनः। मुक्तिर्हि कैवल्यमात्मनः, गतिश्च लिंगशरीरादिकमपेक्ष्य भवति तदा सा स्थितिर्न कैवल्यस्थितिर्मुक्तिः ।।७६।।

पुनश्च -

नाकारोपरागोच्छित्तिः क्षणिकत्वादिदोषात् ।।७७।।

(आकारोपरागोच्छित्तिः-न) विषयाकारस्योपरागात् क्षणिकविज्ञानरूपे ह्यात्मनि बन्धो भवति, तस्य विषयोपरागस्योच्छेदो मुक्तिरित्यपि न (क्षणिकत्वादिदोषात्) मुक्तेः क्षणिकत्वमापद्येत तथोपायेऽपुरुषार्थत्वं क्षणान्तरे स्वतो बन्धनिवृत्तिप्रसंगश्चापद्येत तस्मात् ।।७७।।

तथा -

न सर्वोच्छित्तिरपुरुषार्थत्वादिदोषात् ।।७८।।

जाए तो वह ठीक नहीं।

[(विशेषगतिः-न निष्क्रियस्य) संसारादूर्ध्व काचिद् विशिष्टा गतिर्मुक्तिर्न निष्क्रियस्यात्मनः] संसार से उपर कोई गति हो उसका नाम मुक्ति हो निष्क्रिय आत्मा की ऐसी कोई गति हो तो इसका नाम भी मुक्ति नहीं। **[मुक्तिर्हि कैवल्यमात्मनः]** आत्मा का कैवल्य हो जाना (शरीर से अलग हो जाना) मुक्ति है, **[गतिश्च लिंगशरीरादिकमपेक्ष्य भवति]** गति लिंग शरीर (पुनर्जन्म की प्राप्ति सूक्ष्म शरीर) के आधार पर होती है **[तदा सा स्थितिर्न कैवल्यस्थितिर्मुक्तिः]** तब यदि सूक्ष्म शरीर के साथ गति हो रही है तो वह कैवल्य की स्थिति मुक्ति नहीं है।।७६।।

नाकारोपरागोच्छित्तिः क्षणिकत्वादिदोषात् ।।७७।।

सूत्रार्थ= भौतिक वस्तुओं का आसक्ति वाला सम्बंध बंधन का कारण माना जाए और उसके विनाश को मुक्ति माना जाए ये मान्यताएँ क्षणिकवाद (विज्ञानवाद आदि) में ठीक नहीं है।

[(आकारोपरागोच्छित्तिः-न) विषयाकारस्योपरागात् क्षणिकविज्ञानरूपे ह्यात्मनि बन्धो भवति] विषय आकार के उपराग (सम्बंध) से आत्मा को क्षणिक मानें अथवा विज्ञानरुप माने वस्तुरूप न मानें, ऐसा मानने पर इन पक्षों में विषयों के सम्बंध से बंधन होता है, **[तस्य विषयोपरागस्योच्छेदो मुक्तिरित्यपि न]** वस्तुओं का राग आसक्ति है वह बंधन का कारण माना जाए और फिर वह आसक्ति नाष्ट हो जाए और उसकी मुक्ति हो जाए, ये सारी व्यवस्थाएं क्षणिक विज्ञानपक्ष में सिद्ध नहीं होती **[(क्षणिकत्वादिदोषात्) मुक्तेः क्षणिकत्वमापद्येत]** उस पक्ष में ये दोष आएगा जब हर वस्तु क्षणिक है तो फिर मुक्ति भी क्षणिक हो जाएगी? **[तथोपायेऽपुरुषार्थत्वं क्षणान्तरे स्वतो बन्धनिवृत्तिप्रसंगश्चापद्येत तस्मात्]** उसका उपाय करना पुरुषार्थ करना निरर्थक होगा क्योंकि बंधन भी तो क्षणिक होगा उसका भी विनाश हो ही जाएगा, इसलिए क्षणिकवाद

(सर्वोच्छित्तिः-न) सर्वस्य विज्ञानस्वरूपस्यात्मनश्चापि खलूच्छेदो मुक्तिर्न युक्ता (अपुरुषार्थत्वादिदोषात्) नह्यात्मनाशः पुरुषार्थस्तथा निरवयवस्य चेतनस्य नाशप्रसंगदोषश्चापद्यते न हि चेतनस्य निरवयवस्य नाशेन भाव्यम् ।।७८।।

एवं शून्यमपि ।।७९।।

(शून्यम्-अपि-एवम्) एवं शून्यमपि मुक्तिर्न युक्ताऽपुरुषार्थत्वादिदोषात्। शून्यरूपायै मुक्त्यै पुरुषार्थस्य नैरर्थक्यं तथा ज्ञातुरात्मनः शून्यत्वे नाशप्रसक्तिः किन्तु तन्नाशासम्भवः ।।७९।।

अथ -

संयोगाश्च वियोगान्ता इति देशादिलाभोऽपि ।।८०।।

(देशादिलाभः-अपि न) विशेषदेशांगनासुखभोगादिलाभोऽपि मुक्तिर्न युक्ता (च) यतश्च

ठीक नहीं इनमें तो बंधन और मुक्ति की ठीक मान्यता सिद्ध नहीं होती ।।७७।।

तथा -

न सर्वोच्छित्तिरपुरुषार्थत्वादिदोषात् ।।७८।।

सूत्रार्थ= नित्य निरवयव चेतन जीवात्मा का सर्व विनाश भी मुक्ति नहीं है, ऐसा मानने पर पुरुषार्थ के व्यर्थ होने से।

[**(सर्वोच्छित्तिः-न) सर्वस्य विज्ञानस्वरूपस्यात्मनश्चापि खलूच्छेदो मुक्तिर्न युक्ता**] सभी ज्ञान स्वरूप हैं आत्मा भी ज्ञान स्वरूप हैं उन सबका उच्छेद (नाश) हो जावे और इसको मुक्ति मान लिया जावे ये भी मुक्ति का स्वरूप उचित नहीं है [**(अपुरुषार्थत्वादिदोषात्) नह्यात्मनाशः पुरुषार्थस्तथा**] और न ही आत्मा का नाश कर लेना मुक्ति है क्योंकि यह किसी भी पुरुष का प्रयोजन नहीं है [**निरवयवस्य चेतनस्य नाशप्रसंगदोषश्चापद्यते न हि चेतनस्य निरवयवस्य नाशेन भाव्यम्**] तथा आत्मा चेतन है निरवयव है उसके नाश का प्रसंग दोष आएगा, जबकि चेतन वस्तु निरवयव वस्तु का नाश हो ही नहीं सकता। इसलिए ये पक्ष भी ठीक नहीं है ।।७८।।

एवं शून्यमपि ।।७९।।

सूत्रार्थ=मुक्ति में सब कुछ शून्य हो जाए अर्थात कुछ भी न हो ऐसा भी ठीक नहीं है।

[**(शून्यम्-अपि-एवम्) एवं शून्यमपि मुक्तिर्न युक्ताऽपुरुषार्थत्वादिदोषात्**] सब कुछ शून्य मान लेना ये भी मुक्ति का सही स्वरूप नहीं है क्योंकि पुरुष का ये प्रयोजन नहीं की वह स्वयं को गायब कर दे। [**शून्यरूपायै मुक्त्यै पुरुषार्थस्य नैरर्थक्यं**] मुक्ति भी शून्य रूप हो वहाँ कुछ भी न हो, ये तो मुक्ति के लिए पुरुषार्थ की निरर्थकता है [**तथा ज्ञातुरात्मनः शून्यत्वे नाशप्रसक्तिः किन्तु तन्नाशासम्भवः**] ज्ञाता जीवात्मा भी शून्य हो जाएगा ऐसा मानने पर जीवात्मा के नाश का दोष आयेगा किन्तु जीवात्मा का नाश असंभव है । इसलिए यह शून्यवाद की मान्यता भी ठीक नहीं है ।।७९।।

अथ

(संयोगाःवियोगान्ताः-इति) बाह्यवस्तुसमागमाः खलु वियोगान्ताः सन्तीति हेतोः । उच्यते च ''संयोगाश्च वियोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्'' (वाल्मीकि०रा०अयो० १०५.१६) ।।८०।।

पुनः -

न भागियोगो भागस्य ।।८१।।

(भागस्य भागियोगःन) भागस्यांशस्यांशरूपजीवात्मनो भागिन्यंशिनि परमात्मनि योगः संयोगो लयो वा न मुक्तिर्युज्यते । संयोगो हि वियोगान्त इति हेतोस्तथा लये ह्यात्मनाशात्, न चाखण्डस्य परमात्मनो जीवात्मा तथाभूतो भागोंऽशः खण्डो यथा खण्डवत्यां पृथिव्यां खण्डाः पाषाणादयः संयुज्यन्ते विलीयन्ते च । जीवात्मा तु परमात्मन एकदेशवर्तित्वादंशस्तस्मिन् तस्य तथायोगस्तु बद्धस्यापि वर्तते हि ।।८१।।

संयोगाश्च वियोगान्ता इति देशादिलाभोऽपि ।।८०।।

सूत्रार्थ= किसी स्थान विशेष अथवा विशेष सुख की प्राप्ति मुक्ति नहीं है, जो संयोग से प्राप्त होगी उसका वियोग भी होता है।

[**(देशादिलाभः-अपि न) विशेषदेशांगनासुखभोगादिलाभोऽपि मुक्तिर्न युक्ता**] विशेष सुख भोगों की प्राप्ति भी मुक्ति नहीं है [**(च) यतश्च (संयोगाःवियोगान्ताः-इति) बाह्यवस्तुसमागमाः खलु वियोगान्ताः सन्तीति हेतोः**] क्योंकि जो बाह्य वस्तुएं प्राप्त होती हैं उनका संयोग होता है तो एक न एक दिन वियोग भी होता है। [**उच्यते च ''संयोगाश्च वियोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्'' (वाल्मीकि०रा०अयो० १०५.१६)**] क्योंकि शास्त्रों में बताया गया है- जो संयोग होते है वे अंत में वियोग में बदल जाते हैं और जो जिएगा एक दिन मरण को भी प्राप्त होगा ।।८०।।

पुनः -

न भागियोगो भागस्य ।।८१।।

सूत्रार्थ=जीवात्मा ब्रह्म का अंश हो और अंश होने से उसका विलय हो जाए। ये मुक्ति का स्वरूप नहीं है।

[**(भागस्य भागियोगःन) भागस्यांशस्यांशरूपजीवात्मनो भागिन्यंशिनि परमात्मनि योगः संयोगो लयो वा न मुक्तिर्युज्यते**] कोई जीवात्मा को परमात्मा का अंश मानता हो और भागी अंशी परमात्मा को मानता हो जैसे अंश का अंशी में लोप हो जाएगा ऐसे ही जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाए तथा इसका नाम मुक्ति मान लिया जाए, तो ये भी ठीक नहीं। [**संयोगो हि वियोगान्त इति हेतोस्तथा लये ह्यात्मनाशात्**] क्योंकि जिसका संयोग होगा उसका वियोग भी होगा और यदि जीवात्मा का ब्रह्म में लय माना जाए तो आत्मा का स्वरूप नष्ट हो जाएगा, [**न चाखण्डस्य परमात्मनो जीवात्मा तथाभूतो भागोंऽशः खण्डो**] और परमात्मा तो अखंड है जीवात्मा उसका कोई खण्ड तो है नहीं? [**यथा खण्डवत्यां पृथिव्यां खण्डाः पाषाणादयः संयुज्यन्ते विलीयन्ते च**] ऐसे अनेक खण्डों का समुदाय पृथ्वी है इसमें से टुकड़े टूटते भी रहते

अन्यच्च -

नाणिमादियोगोऽप्यवश्यम्भावित्वात्तदुच्छित्तेरितरयोगवत् ।।८२।।

(अणिमादियोगः-अपि न) अणिमादिप्राप्तिरपि न मुक्तिः "अणिमा भवत्यणुः, लघिमा लघुर्भवति, महिमा महान् भवति, प्राप्तिः, "प्राकाम्यमिच्छानभिघातः, वशित्वं भूतभौतिकेषु वशी भवति, ईशितृत्वम्, काम्यं यत्र कामावसायित्वम्" (योग०३.४५ व्यासः) कुतः (तदुच्छित्तेः-अवश्यम्भावित्वात्-इतरयोगवत्) तत्क्षयस्यावश्यम्भावित्वादन्ययोगस्य यथा वियोगः क्षयो भवति तथैवाणिमादियोगस्यापि वियोगेन क्षयेण भाव्यमेव ।।८२।।

तथैव -

नेन्द्रादिपदयोगोऽपि तद्वत् ।।८३।।

हैं और वापिस मिल भी जाते हैं (मिट्टी से ईंट बनाई ईंट से मकान जब मकान टूट-फूट गया तो मिट्टी में मिल गया)। [**जीवात्मा तु परमात्मन एकदेशवर्तित्वादंशस्तस्मिन् तस्य तथायोगस्तु बद्धस्यापि वर्तते हि**] जीवात्मा परमात्मा के एक देश में रहता है, एक भाग में रहने से गौण अंश में एक (देशवासी) कह दे, बद्ध आत्मा और मुक्त आत्मा दोनों ही जीवात्मा के एक देश में रहते हैं वे घुल-मिलकर एक नहीं हो जाते। ब्रह्म अलग है जीव अलग है।।८१।।

नाणिमादियोगोऽप्यवश्यम्भावित्वात्तदुच्छित्तेरितरयोगवत् ।।८२।।

सूत्रार्थ=अणिमा आदि सिद्धियों का प्राप्त होना भी मुक्ति नहीं है। इनका विनाश भी अवश्य ही होने से। संयोग और वियोग के समान।

[**(अणिमादियोगः-अपि न) अणिमादिप्राप्तिरपि न मुक्तिः** अणिमा आदि सिद्धियों का प्राप्त होना भी मुक्ति नहीं है "**अणिमा भवत्यणुः, लघिमा लघुर्भवति, महिमा महान् भवति, प्राप्तिः**] अणिमा में योगी छोटा हो जाता है, लघिमा में हल्का हो जाता है, महिमा में लंबा चौड़ा हो जाता है, प्राप्ति=किसी वस्तु को प्राप्त कर लेना, [**"प्राकाम्यमिच्छानभिघातः**] सारी इच्छाओं का पूरा हो जाना, [**वशित्वं भूतभौतिकेषु वशी भवति**] भूत और भौतिक पदार्थों को वश में कर लेना, [**ईशितृत्वम्**] सब भौतिक पदार्थों का मालिक हो जाना, [**काम्यं यत्र कामावसायित्वम्"**] स्वेच्छा से आवागमन कर लेना। इन सिद्धियों का प्राप्त हो जाना भी मुक्ति नहीं है [**(योग० ३.४५ व्यासः) कुतः (तदुच्छित्तेः-अवश्यम्भावित्वात्-इतरयोगवत्) तत्क्षयस्यावश्यम्भावित्वा-दन्ययोगस्य यथा वियोगः क्षयो भवति तथैवाणिमादियोगस्यापि वियोगेन क्षयेण भाव्यमेव**] क्योंकि इनका क्षय भी अवश्यंभावी है जैसे अन्य वस्तुओं का योग हुआ उनका क्षय वियोग

(इन्द्रादिपदयोगः-अपि न तद्वत्) इन्द्रबृहस्पत्यादिपदप्राप्तिरपि मुक्तिर्न युक्ता योगस्य वियोगधर्मत्वात् प्राप्तेः क्षयधर्मत्वात् ।।८३।।

इन्द्रस्तु यस्येन्द्रियाणि लिंगानि स खल्वहमात्मा "इन्द्रियमिन्द्रलिंगं..." (अष्टा० ५.२.९३) यतस्तस्मात् -

न भूतप्रकृतित्वमिन्द्रियाणामाहंकारिकत्वश्रुतेः ।।८४।।

(इन्द्रियाणां-भूतप्रकृतित्वं न) इन्द्रियाणि भूतप्रकृतीनि न, भूतेभ्यः पृथिव्यादि- स्थूलभूतेभ्यो नोत्पन्नानि। तेषाम् (आहंकारिकत्वश्रुतेः) इन्द्रियाणामाह१ारिकत्वमह१ारादुत्पत्तिः श्रूयते न स्थूलभूतेभ्यः "एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी" (मुण्डको० २.१.३) अत्रेन्द्रियेभ्यः पश्चात् स्थूलभूतानामुत्पत्तिस्तथेन्द्रियाणामुत्पत्तिस्तु तेभ्यः पूर्वमेव। तस्मादिन्द्रियाणि

हो जाता है वैसे ही अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति हुई तो उसका भी वियोग निश्चित रूप से होगा ही ।।८२।।

नेन्द्रादिपदयोगोऽपि तद्वत् ।।८३।।

सूत्रार्थ= इन्द्र, ब्रहस्पति आदि पद की प्राप्ति हो जाना भी मुक्ति नहीं है। संयोग और वियोग के समान।

[**(इन्द्रादिपदयोगः-अपि न तद्वत्) इन्द्रबृहस्पत्यादिपदप्राप्तिरपि मुक्तिर्न युक्ता योगस्य वियोगधर्मत्वात् प्राप्तेः क्षयधर्मत्वात्**] इंद्र-ब्रहस्पति आदि पद की प्राप्ति हो जाए ये भी मुक्ति नहीं है, जो भी उपाधि प्राप्त होगी एक न एक दिन छूट जाएगी ।।८३।।

इंद्र तो वह है जिसकी इंद्रियाँ पहचान के लक्षण हैं वह है जीवात्मा जिसको "मैं" नाम से बोला जाता है । (ये भूमिका सटीक नहीं है)

न भूतप्रकृतित्वमिन्द्रियाणामाह१ारिकत्वश्रुतेः ।।८४।।

सूत्रार्थ= इंद्रियों की उत्पत्ति पाँच महाभूतों से नहीं हुई है, इनकी उत्पत्ति अहंकार से सुनायी देने से।

[**(इन्द्रियाणां-भूतप्रकृतित्वं न) इन्द्रियाणि भूतप्रकृतीनि न** इंद्रियों का उपादान कारण पंचमहाभूत नहीं है, **भूतेभ्यः पृथिव्यादिस्थूलभूतेभ्यो नोत्पन्नानि**] ये इंद्रियाँ पृथ्वी आदि पाँच स्थूलभूतों से उत्पन्न नहीं हुई। [**तेषाम् (आहंकारिकत्वश्रुतेः) इन्द्रियाणामाहंकारिकत्वमहंकारादुत्पत्तिः श्रूयते न स्थूलभूतेभ्यः**] उन इंद्रियों का अहंकारीकत्व सुनाई देता है अर्थात् अहंकार से उनकी उत्पत्ति सुनाई देती है स्थूल भूतों से नहीं [**"एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी"**] (ये प्रमाण इस प्रसंग में यहाँ ठीक नहीं बैठता) [**(मुण्डको० २.१.३) अत्रेन्द्रियेभ्यः पश्चात् स्थूलभूतानामुत्पत्तिस्तथेन्द्रियाणामुत्पत्तिस्तु तेभ्यः पूर्वमेव**] (ये हेतु भी ठीक नहीं बैठता)।[**तस्मादिन्द्रियाणि**

स्थूलभूतेभ्यो नोत्पन्नानि। तथा कृत्वैव सांख्यदर्शनेऽत्र ''सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि...'' (सांख्य० १.६१) अत्राहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि तथोभयमिन्द्रियमिति गणद्वयस्योत्पत्तिर्दर्शिता सांख्यमते पञ्चतन्मात्रेभ्यः पश्चादिन्द्रियाणां निर्देशात्तानीन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्रेभ्यः पश्चादुत्पन्नानि मन्तुं शक्यन्ते, श्रुतौ तन्मात्राणां निर्देशो नास्ति पञ्चभूतानामुत्पत्तिर्दर्शिता ततश्च पूर्वमिन्द्रियाणाम्, इत्थं स्थूलभूतेभ्य इन्द्रियाणामुत्पत्तिकल्पना तूभयत्रापि न युज्यते ।।८४।।

अथ च तत्रैव मुक्तिविषये -

स्थूलभूतेभ्यो नोत्पन्नानि] इसलिए इंद्रियाँ स्थूलभूत से उत्पन्न नहीं हुई। **[तथा कृत्वैव सांख्यदर्शनेऽत्र ''सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि...'']** इसी कारण से साख्यदर्शन में पहले भी कही जा चुकी है - **[(सांख्य० १.६१) अत्राहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि तथोभयमिन्द्रियमिति गणद्वयस्योत्पत्तिर्दर्शिता सांख्यमते]** यहाँ इस सूत्र में अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ और दोनों प्रकार की इंद्रियों का समुदाय उत्पन्न हुआ ये सांख्यमत में प्रदर्शित किया है **[पञ्चतन्मात्रेभ्यः पश्चादिन्द्रियाणां निर्देशात्तानीन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्रेभ्यः पश्चादुत्पन्नानि मन्तुं शक्यन्ते]** पाँच तन्मात्राओं के बाद इंद्रियों का निर्देश होने से, इंद्रियों के बाद पाँच तन्मात्राओं की उत्पत्ति मानने में शंका है (इन सबकी १६ पदार्थों की उत्पत्ति एक साथ हो सकती है), **[श्रुतौ तन्मात्राणां निर्देशो नास्ति पञ्चभूतानामुत्पत्तिर्दर्शिता ततश्च पूर्वमिन्द्रियाणाम्]** श्रुति में तन्मात्राओं का निर्देश नहीं है फिर पंचभूतों की उत्पत्ति दिखाई गई है और भूतों से पहले इंद्रियों की उत्पत्ति दिखाई गई है, **[इत्थं स्थूलभूतेभ्य इन्द्रियाणामुत्पत्तिकल्पना तूभयत्रापि न युज्यते]** इस प्रकार से स्थूलभूतों से इंद्रियों की कल्पना ये दोनों ही स्थलों पर उचित नहीं है।।८४।।

अथ च तत्रैव मुक्तिविषये - अब मुक्ति विषय में आगे चर्चा करते हैं-

न षट्पदार्थनियमस्तद्बोधान्मुक्तिः ।।८५।।

सूत्रार्थ=छः पदार्थों के ज्ञान से ही मोक्ष होता हो ऐसा अनिवार्य नियम नहीं है। अपितु प्रकृति पुरुष का ज्ञान होना अनिवार्य है।

[(षट्पदार्थनियमः-न) मुक्तिविषये षट्पदार्थानां नियमो नास्ति। यत् (तद्बोधात्-मुक्तिः) तेषां षट्पदार्थानां बोधादेव मुक्तिर्भवति] मुक्ति के विषय में छः पदार्थों का नियम नहीं है। कि उन छः पदार्थों के जानने से ही मुक्ति हो ऐसा नहीं है। **[भवतु षट्पदार्थानामपि बोधस्यापेक्षा मुक्तौ]** होवे छः पदार्थों के ज्ञान की अपेक्षा मुक्ति में **[परन्तु प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकस्यानिवार्यत्वमस्ति]** परंतु प्रकृति पुरुष के विवेक की अनिवार्यता है तभी मुक्ति होगी। **[न हि षट्पदार्थबोधस्य नियमो मुक्तौ]** मुक्ति के लिए छः

न षट्पदार्थनियमस्तद्बोधान्मुक्तिः ।।८५।।

(षट्पदार्थनियमः-न) मुक्तिविषये षट्पदार्थानां नियमो नास्ति। यत् (तद्बोधात्-मुक्तिः) तेषां षट्पदार्थानां बोधादेव मुक्तिर्भवति। भवतु षट्पदार्थानामपि बोधस्यापेक्षा मुक्तौ परन्तु प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकस्यानिवार्यत्वमस्ति। न हि षट्पदार्थबोधस्य नियमो मुक्तौ। अत्र नियमशब्दो न सर्वथा तत्पक्षनिराकरणाय किन्तु प्रतिबन्धाभाव- दर्शनार्थः, भवतु सोऽपि पक्षः।यथाऽन्यत्र ''न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात्''(सांख्य० ४.१०३) भवतु स्थूलशरीरमपि परन्तु सूक्ष्मशरीरमपि त्वनिवार्यमस्ति। तथा च ''न बाह्यबुद्धिनियमो वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतिवीरुधादीनामपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत्'' (सांख्य० ५.१२१) भवतु बाह्यबुद्ध्याऽपि भोगः किन्तु तत्रान्तर्बुद्धेः खल्वप्यनिवार्यत्वमस्ति ।।८५।।

पदार्थों को जानना अनिवार्य नहीं है कि इनके जानने से ही मोक्ष होगा। [**अत्र नियमशब्दो न सर्वथा तत्पक्षनिराकरणाय किन्तु प्रतिबन्धाभावदर्शनार्थः, भवतु सोऽपि पक्षः**] यहाँ इस सूत्र में नियम शब्द से सर्वथा उस पक्ष का खंडन करने के लिए नहीं है, किन्तु प्रतिबंध का भाव दिखाना चाहते हैं, छः पदार्थों को भी जान ले कोई बात नहीं। [**यथाऽन्यत्र ''न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात्''(सांख्य० ४.१०३)**] जैसा कि एक अन्य सूत्र में भी कहा-केवल स्थूल शरीर ही हो ऐसा नियम नहीं है, सूक्ष्म शरीर भी विद्यमान है [**भवतु स्थूलशरीरमपि परन्तु सूक्ष्मशरीरमपि त्वनिवार्यमस्ति**] जीवात्मा के कर्म करने के लिए भले ही स्थूल शरीर हो परंतु सूक्ष्म शरीर भी अति अनिवार्य है। [**तथा च ''न बाह्यबुद्धिनियमो वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतिवीरुधादीनामपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत्''(सांख्य० ५.१२१)**] और ऐसे ही प्रमाण दिया- सुख-दुःख भोगने के लिए बाह्य अनुभूतियाँ हो ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि वृक्ष लता गुल्म औषधि वनस्पति वीरुध आदि भी जीवात्माओं का भोगायतन (शरीर) है, जैसे पहले छः प्रकार के शरीर बताए गए [**भवतु बाह्यबुद्ध्याऽपि भोगः किन्तु तत्रान्तर्बुद्धेः खल्वप्यनिवार्यत्वमस्ति**] भले ही बाह्य बुद्धि से भोग होता हो किन्तु आंतरिक अनुभूति होना अनिवार्य है, जैसे वृक्ष आदि में।।८५।।

तथा -

षोडशादिष्वप्येवम् ।।८६।।

सूत्रार्थ= सोलह पदार्थों के ज्ञान से ही मोक्ष होता हो ऐसा भी नियम नहीं है।

[**(षोडशादिषु-अपि-एवम्) षोडशादिषु पदार्थेषु खल्वपीत्थं मन्तव्यं यन्न षोडशादिपदार्थबोधादेव मुक्तिः**] सोलह आदि पदार्थों के जानने से ही मुक्ति हो ऐसा भी नहीं है, [**भवतु तद्बोधादपि मुक्तिः परन्तु न नियमः प्रतिबन्धः**] भले ही सोलह पदार्थों के जानने से मोक्ष हो जाता हो उसका विरोध नहीं है, परंतु ऐसा नहीं है कि सोलह ही जानोगे तभी मुक्ति होगी, [**प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकस्तु खल्वनिवार्यो मुक्तौ**] मुक्ति के लिए प्रकृति पुरुष का विवेक अनिवार्य है, इसके बिना तो नहीं होगा ।।८६।।

तथा -

षोडशादिष्वप्येवम् ।।८६।।

(षोडशादिषु-अपि-एवम्) षोडशादिषु पदार्थेषु खल्वपीत्थं मन्तव्यं यन्न षोडशादिपदार्थबोधादेव मुक्तिः, भवतु तद्बोधादपि मुक्तिः परन्तु न नियमः प्रतिबन्धः, प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकस्तु खल्वनिवार्यो मुक्तौ ।।८६।।

मुक्तौ प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकोऽनिवार्यत्वेनापेक्ष्यते तौ हि नित्यौ स्तः, पुरुषश्चेतनः प्रकृतिर्जडा सा जगदुपादानकारणं तस्मात्तयोर्विवेकापेक्षा, अतो नान्यस्य कार्यभूतस्यैव बोधे नियमो मुक्तये । एवमणूनां तन्मात्राणां बोधस्यापि नियमो मुक्तौ न यतः -

नाणुनित्यता तत्कार्यत्वश्रुतेः ।।८७ ।।

मुक्ति में प्रकृति पुरुष का विवेक अनिवार्य है और वे प्रकृति पुरुष दोनों ही नित्य हैं, पुरुष चेतन है प्रकृति जड़ है और वह जगत का उपादान कारण है इसलिए इन दोनों के विवेक की आवश्यकता है, इसलिए अन्य कार्य भूत पदार्थ के जानने की आवश्यकता मुक्ति के लिए नहीं है। इस प्रकार से अणुओं का तन्मात्राओं का ज्ञान करने कि आवश्यकता नहीं है मुक्ति के लिए क्योंकि -

नाणुनित्यता तत्कार्यत्वश्रुतेः ।।८७ ।।

सूत्रार्थ= अणु नित्य नहीं है, उनकी उत्पत्ति सुनाई देने से।

[(अणुनित्यता न) अणुशब्दोऽत्र पृथिवीतन्मात्रजलतन्मात्रादिपरः] सूत्र में जो अणु शब्द आया है ये तन्मात्राओं के संदर्भ में है, पृथ्वी तन्मात्रा, जल तन्मात्रा आदि **[''पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मोविषयः]** पार्थिव अणु का सूक्ष्म विषय है गंध तन्मात्रा **[आप्यस्य रसतन्मात्रं]** जल का सूक्ष्म विषय रस तन्मात्रा **[तैजसस्य रूपतन्मात्रं]** अग्नि का उपदान कारण रूप तन्मात्रा **[वायव्यस्य स्पर्शतन्मात्रमाकाशस्य शब्दतन्मात्रम् (योग० १.४५ व्यासः)]** वायु के अणु का सूक्ष्म विषय स्पर्श तन्मात्रा और आकाश का शब्द तन्मात्रा है'' **[अणूनां तन्मात्राणां नित्यता नास्ति]** अणु रूप तन्मात्राओं की नित्यता नहीं है **[(तत्कार्यत्वश्रुतेः) तेषामणूनां तन्मात्राणां कार्यत्वं श्रुयते]** उन अणु रुपी तन्मात्राओं का कार्य सुनाई देता है **[''इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्। इन्द्रे ह विश्वा भुवनानियेमिरे इन्द्रे सुवानास इन्दवः।'' (अथर्व० २०.११६.४)] अत्र 'सुवानास इन्दवः' उत्पद्यमाना अणवः** इस मंत्र में दो शब्द है 'सुवानास इन्दवः', उत्पन्न होते हुए अणु। तथा **[''अण्वो मात्रा विनाशिन्यो दशार्धानां च याः स्मृताः। ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः'' (मनु० १.२७)]** तन्मात्राएँ सूक्ष्म है अणु है उनका विनाश होता है दश की आधी पाँच मानी जाती हैं । उन्हीं तन्मात्राओं के साथ-साथ ये सारा जगत उत्पन्न होता है क्रम से ।।८७।।

(अणुनित्यता न) अणुशब्दोऽत्र पृथिवीतन्मात्रजलतन्मात्रादिपरः "पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मोविषयः आप्यस्य रसतन्मात्रं तैजसस्य रूपतन्मात्रं वायव्यस्य स्पर्शतन्मात्रमाकाशस्य शब्दतन्मात्रम्" (योग० १.४५ व्यासः) अणूनां तन्मात्राणां नित्यता नास्ति (तत्कार्यत्वश्रुतेः) तेषामणूनां तन्मात्राणां कार्यत्वं श्रूयते "इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्। इन्द्रे ह विश्वा भुवनानियेमिरे इन्द्रे सुवानास इन्दवः।" (अथर्व० २०.११६.४) अत्र 'सुवानास इन्दवः' उत्पद्यमाना अणवः। तथा "अण्वो मात्रा विनाशिन्यो दशार्धानां च याः स्मृताः। ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः" (मनु० १.२७) ।।८७।।

अत एव -

न तन्निर्भागत्वं कार्यत्वात् ।।८८।।

(तन्निर्भागत्वं कार्यत्वात्-न) तेषामणूनां तन्मात्राणां कार्यत्वात् निर्भागत्वं भागराहित्यं मूलत्वं

न तन्निर्भागत्वं कार्यत्वात् ।।८८।।

सूत्रार्थ= तन्मात्राएँ अवयव रहित नहीं है, कार्य द्रव्य होने से।

[(तन्निर्भागत्वं कार्यत्वात्-न) तेषामणूनां तन्मात्राणां कार्यत्वात् निर्भागत्वं भागराहित्यं मूलत्वं जगतो मूलकारणत्वं नास्ति] उन अणुओं का अर्थात तन्मात्राओं का कार्यरूप होने से अवयव रहित हो ऐसा नहीं है, वह जगत का मूल कारण नहीं है, **[तस्मात् प्रकृतिवत् तेषां बोधस्य मुक्तौ न मुख्यत्वं विज्ञेयम्]** इसलिए प्रकृति के समान मोक्ष प्राप्ति में उनके ज्ञान की मुख्यता ऐसा नहीं है जैसे प्रकृति को जानना आवश्यक है ।।८८।।

आप कह रहे है प्रकृति पुरुष को जानना आवश्यक है मोक्ष प्राप्ति हेतु, परंतु प्रश्न ये है प्रकृति और पुरुष दोनों ही रूप वाले नहीं है फिर उनका प्रत्यक्ष कैसे होगा? इसका उत्तर देते हैं-

न रूपनिबन्धनात् प्रत्यक्षत्वनियमः ।।८९।।

सूत्रार्थ= रूप गुण के कारण से ही प्रत्यक्ष होने का नियम नहीं है, रूप रहित ईश्वर आदि पदार्थों का भी प्रत्यक्ष होने से।

[(रूपनिबन्धनात् प्रत्यक्षत्वनियमः-न) रूपनिमित्तात् प्रत्यक्षत्वस्य नियमो नास्ति] रूप के निमित्त ही प्रत्यक्ष होता हो ऐसा कोई नियम नहीं है **[यद् रूपवदेव वस्तु प्रत्यक्षं भवति रूपरहितं नेति प्रतिबन्धो नास्ति सांख्यप्रत्यक्षे]** सांख्य की मान्यता में प्रत्यक्ष रूप वाली वस्तु भी प्रत्यक्ष होती है रूप रहित भी होती है केवल रूप वाली ही हो ऐसा कोई नियम नहीं है, **[भवतु रूपवदपि प्रत्यक्षं किन्तु रूपरहितमपि प्रत्यक्षं भवति तस्य सांख्यप्रत्यक्षलक्षणान्तर्गतत्वात्]** रूप वाली वस्तु का भी प्रत्यक्ष होवे किन्तु रूप रहित वस्तु का भी प्रत्यक्ष होता है क्योंकि वह सांख्य के प्रत्यक्ष लक्षण के अंतर्गत आती है। **[सांख्यप्रत्यक्षे नहीन्द्रियार्थसम्बन्धजनितं ज्ञानमेव प्रत्यक्षं]** सांख्य के प्रत्यक्ष में केवल उतना ही ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं माना जाता जो इंद्रियार्थ संबंध से प्रत्यक्ष हुआ हो **[किन्तु "यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम्" (सांख्य०**

जगतो मूलकारणत्वं नास्ति, तस्मात् प्रकृतिवत् तेषां बोधस्य मुक्तौ न मुख्यत्वं विज्ञेयम् ।।८८।।

भवतु सांख्यमते प्रकृतिपुरुषसाक्षात्कारो मोक्षहेतुः परन्तु प्रकृतिपुरुषौ न रूपवन्तौ पुनस्तयोः कथं प्रत्यक्षत्वमित्यत्रोच्यते -

न रूपनिबन्धनात् प्रत्यक्षत्वनियमः ।।८९।।

(रूपनिबन्धनात् प्रत्यक्षत्वनियमः-न) रूपनिमित्तात् प्रत्यक्षत्वस्य नियमो नास्ति, यद् रूपवदेव वस्तु प्रत्यक्षं भवति रूपरहितं नेति प्रतिबन्धो नास्ति सांख्यप्रत्यक्षे, भवतु रूपवदपि प्रत्यक्षं किन्तु रूपरहितमपि प्रत्यक्षं भवति तस्य सांख्यप्रत्यक्षलक्षणान्तर्गतत्वात् । सांख्यप्रत्यक्षे नहीन्द्रियार्थसम्बन्धजनितं

१.८९)] किन्तु सांख्य में तो ये कहा गया है कि-किसी भी वस्तु के संबंध से हो वह उस वस्तु के स्वरूप को बताए वही प्रत्यक्ष है **[अत्र केवलमिन्द्रियसम्बन्धसिद्धमेव न किन्तु यत्सम्बन्धसिद्धमुक्तं प्रत्यक्षं]** यहाँ केवल इंद्रिय के संबंध से ज्ञान की सिद्धि नहीं कहा बल्कि ये कहा जिस किसी भी साधन से सिद्ध हो वह प्रत्यक्ष है **[तच्चेन्द्रियैर्मनसा स्वात्मना च सम्बन्धसिद्धमपि भवति]** वह प्रत्यक्ष इंद्रियों से भी मन से भी आत्मा का संबंध होने से सिद्ध होता है **[तथाकृत्वैव ''योगिनामाबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः''(सांख्य० १.९०)]** इसीलिए योगियों का आंतरिक प्रत्यक्ष स्वीकार होने से, प्रत्यक्ष लक्षण में कोई दोष नहीं है **[''लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः'' (सांख्य० १.९१) इति सूत्राभ्यां तत्प्रत्यक्षस्य विस्तृतस्वरूपं दर्शितं]** इसी कारण से इन दो सूत्रों के द्वारा विस्तृत स्वरूप दिखलाया गया था **[तेनेश्वरप्रत्यक्षत्वं सूक्ष्मवस्तुप्रत्यक्षत्वमपि भवति]** इन चर्चाओं से ये सिद्ध होता है कि ईश्वर का भी प्रत्यक्ष होता है भले ही रूप न हो, **[तत्प्रत्यक्षात् खलु मोक्षलाभो युक्तः]** उसका प्रत्यक्ष होने से मोक्ष लाभ की प्राप्ति उचित है। **[एवमेवाणूनां तन्मात्राणां कार्यत्वप्रत्यक्षमपि भवति]** इस प्रकार से अणुओं का तन्मात्राओं का कार्यत्व प्रत्यक्ष हो जाता है ।।८९।।

कार्य द्रव्यों के स्थूल और सूक्ष्म होने से उनका परिमाण भी दो प्रकार का है, उसका ज्ञान कराने के लिए दो प्रकार का परिमाण सांख्यदर्शन में पर्याप्त है । इस बात को अब कहते हैं-

न परिमाणचातुर्विध्यं द्वाभ्यां तद्योगात् ।।९०।।

सूत्रार्थ= सांख्यदर्शन में चार प्रकार के परिमाण मानने की आवश्यकता नहीं है, दो परिमाणों से ही कार्य सिद्ध होने से।

[(परिमाणचातुर्विध्यं न) सांख्यमते कार्यमात्रस्य परिमाणचातुर्विध्यम् 'अणुमहद्ध्रस्वदीर्घत्वम्' न स्वीक्रियते नापेक्ष्यते] वैशेषिक दर्शन में चार प्रकार का परिमाण बताया है अणु, महद्, ह्रस्व और दीर्घ । सांख्यमत में कार्य द्रव्य के चार प्रकार के परिमाण मानने की आवश्यकता नहीं है, ज्यादा की अपेक्षा नहीं है **[(द्वाभ्यां तद्योगात्) यतो ह्यणुमहद्भ्यां परिमाणाभ्यां तद्योगस्तयोः सूक्ष्मस्थूलयोः सामान्यविशेषयोः***

ज्ञानमेव प्रत्यक्षं किन्तु ''यत्सम्बन्धसिद्धं तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम्'' (सांख्य० १.८९) अत्र केवलमिन्द्रियसम्बन्धसिद्धमेव न किन्तु यत्सम्बन्धसिद्धमुक्तं प्रत्यक्षं तच्चेन्द्रियैर्मनसा स्वात्मना च सम्बन्धसिद्धमपि भवति तथाकृत्वैव ''योगिनामाबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः'' (सांख्य० १.९०) ''लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वाऽदोषः'' (सांख्य० १.९१) इति सूत्राभ्यां तत्प्रत्यक्षस्य विस्तृतस्वरूपं दर्शितं तेनेश्वरप्रत्यक्षत्वं सूक्ष्मवस्तुप्रत्यक्षत्वमपि भवति, तत्प्रत्यक्षात् खलु मोक्षलाभो युक्तः ।एवमेवाणूनां तन्मात्राणां कार्यत्वप्रत्यक्षमपि भवति ।।८९।।

कार्याणां स्थूलसूक्ष्मभावेन द्विविधत्वात् तेषां परिमाणस्यापि द्वैविध्यमेव तद्बोधाय सांख्ये पर्याप्तमित्युच्यते -

---

कार्ययोर्योगो युक्तत्वं सम्भवःपर्याप्तत्वमस्ति अणु] और महद् ये दो परिमाण हैं इन दो परिमाणों से स्थूल और सूक्ष्म, सामान्य और विशेष सब पदार्थों का कार्य योग हो जाता है।।९०।।

सामान्य और विशेष इन दोनों कार्यों में से जो विशेष पदार्थ हैं इनकी तो स्वतः उपलब्धि हो जाती है परंतु सामान्य की उपलब्धि कैसे होगी? इस पर कहते हैं-

अनित्यत्वेऽपि स्थिरता योगात् प्रत्यभिज्ञानं सामान्यस्य ।।९१।।

सूत्रार्थ= तन्मात्राओं के अनित्य होने पर भी पृथ्वी आदि महाभूतों में तन्मात्राएं स्थिरता पूर्वक विद्यमान रहने से पाँच महाभूतों को देखकर इनमें विद्यमान तन्मात्राओं का ज्ञान हो जाता है।

[(सामान्यस्य-अनित्यत्वे-अपि) सामान्यं तन्मात्रं यद्यप्यनित्यं कार्यरूपमस्ति, तथापि (स्थिरतायोगात्) विशेषेषु पृथिव्यादिषु कार्येषु तस्य स्थिरतायोगः सम्बन्धोऽस्ति तेषु स्थिरत्वेन विद्यते] सामान्य तन्मात्रा यद्यपि है तो वो अनित्य है कार्य रूप है, फिर भी विशेष पृथ्वी आदि कार्यों में उसका स्थिरता योग का विशेष संबंध है, उनका भूतों में तन्मात्राओं का स्थिर संबंध है, **[तस्मात् (प्रत्यभिज्ञानम्) विशेषं कार्यं दृष्ट्वा तथाभूतस्य सामान्यस्य कारणसामान्यस्य प्रत्यभिज्ञानं स्मृत्या ज्ञानं तु भवत्येव]** स्मृति से ज्ञान हो जाएगा, हर कार्य वस्तु में उसका कारण द्रव्य विद्यमान होता ही है, स्थूल भूतों में भी तन्मात्रा है इस प्रकार से स्मृति से भी ज्ञान हो जाएगा इसको ''प्रत्यभिज्ञानम''**(सांख्य० १.९०)** कहते हैं ।।९१।।

न तदपलापस्तस्मात् ।।९२।।

सूत्रार्थ= पृथ्वी आदि पाँच महाभूतों में विद्यमान कारण द्रव्यों तन्मात्राओं की सत्ता का खण्डन नहीं हो सकता है।

[(तस्मात् तदपलापः-न) तस्मात् तस्य सामान्यस्य तन्मात्रस्य पृथिव्यादिषु विशेषेषु कार्येषु वर्तमानस्यापलापोऽकथनमन्यथा कथनं न सम्भवति] इसलिए उस तन्मात्रा (सामान्य) का पृथ्वी आदि विशेष कार्यों में विद्यमान है जो उसका खण्डन विरोध अथवा अन्यथा कथन संभव नहीं है।।९२।।

न परिमाणचातुर्विध्यं द्वाभ्यां तद्योगात् ।।९०।।

(परिमाणचातुर्विध्यं न) सांख्यमते कार्यमात्रस्य परिमाणचातुर्विध्यम् 'अणुमहद्ध्रस्वदीर्घत्वम्' न स्वीक्रियते नापेक्ष्यते (द्वाभ्यां तद्योगात्) यतो ह्यणुमहद्भ्यां परिमाणाभ्यां तद्योगस्तयोः सूक्ष्मस्थूलयोः सामान्यविशेषयोः* कार्ययोर्योगो युक्तत्वं सम्भवः-पर्याप्तत्वमस्ति ।।९०।।

सामान्यविशेषयोः कार्ययोर्विशेषस्य तु स्वत उपलब्धिर्भवति हि सामान्यस्य कथं स्यादित्युच्यते -

अनित्यत्वेऽपि स्थिरता योगात् प्रत्यभिज्ञानं सामान्यस्य ।।९१।।

(सामान्यस्य-अनित्यत्वे-अपि) सामान्यं तन्मात्रं यद्यप्यनित्यं कार्यरूपमस्ति, तथापि (स्थिरतायोगात्) विशेषेषु पृथिव्यादिषु कार्येषु तस्य स्थिरतायोगः सम्बन्धोऽस्ति तेषु स्थिरत्वेन विद्यते,

---

अथ च -

नान्यनिवृत्तिरूपत्वं भावप्रतीतेः ।।९३।।

सूत्रार्थ= पृथ्वी आदि भूतों के नष्ट हो जाने का नाम तन्मात्रा का स्वरूप नहीं है, क्योंकि उसका अस्तित्व प्रमाणों से सिद्ध होता है।

[(अन्यनिवृत्तिरूपत्वं न भावप्रतीतेः) अन्यत् तन्निवृत्तिरूपमन्यनिवृत्तिरूपं तस्य भावोऽन्यनिवृत्तिरूपत्वम्] उस अन्य के स्वरूप की निर्वृत्ति हो जाना अन्य वृति का भाव बता रहे हैं अन्यवृति। **[विशेषात् कार्यात् पृथिव्यादेरन्यत्]** विशेष कार्य से जो पृथ्वी आदि से जो भिन्न है वह अन्यत है, **[तस्य विशेषस्य कार्यस्य पृथिव्यादिकस्य निवृत्तिरूपमभावरूपं सामान्यं स्यादिति न यतो भावप्रतीतेः]** उसका विशेष कार्य का पृथ्वी आदि का निवृत्ति हो जाना अभावरूप हो जाना ऐसा तन्मात्रा का स्वरूप नहीं है क्योंकि उसका अस्तित्व सिद्ध होता है, **[तस्य भावप्रत्ययाद् भावात्मकतया भासनात्]** उसका भाव के रूप में ज्ञान होने से भावात्मक रूप से उसकी प्रतीति होने से, **[स्थूलं सूक्ष्मीभूतं सामान्यं सदपि भावात्मकत्वेनावतिष्ठते तस्याणुपरिमाणत्वात्]** जो स्थूल वस्तु है वह सूक्ष्म होकर के भी विशेष से वह सामान्य हो गयी इतना होने पर भी वह सत्तारूप में रहती है उसका परिमाण छोटा हो जाता है।।९३।।

विशेष कार्य द्रव्यों में परस्पर समानता है रूप सामान्य है एक जैसे हैं।

न तत्त्वान्तरं सादृश्यं प्रत्यक्षोपलब्धेः निजशक्त्यभिव्यक्तिर्वा वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेः ।।९४-९५।।

सूत्रार्थ= सादृश नाम की जो वस्तु है वह दो वस्तुओं से भिन्न कोई तीसरी वस्तु नहीं है प्रत्यक्ष दो ही पदार्थ दिख रहे हैं। अथवा किसी पदार्थ के अपने स्वरूप की अभिव्यक्ति का नाम ही सादृश है, वह विशेष रूप से उपलब्ध होने से।

[(सादृश्यं तत्त्वान्तरं न प्रत्यक्षोपलब्धेः) विशेषेषु कार्येषु पृथिव्यादिषु पार्थिवादिषु वा

तस्मात् (प्रत्यभिज्ञानम्) विशेषं कार्यं दृष्ट्वा तथाभूतस्य सामान्यस्य कारणसामान्यस्य प्रत्यभिज्ञानं स्मृत्या ज्ञानं तु भवत्येव ॥९१॥

न तदपलापस्तस्मात् ॥९२॥

(तस्मात् तदपलापः-न) तस्मात् तस्य सामान्यस्य तन्मात्रस्य पृथिव्यादिषु विशेषेषु कार्येषु वर्तमानस्यापलापोऽकथनमन्यथा कथनं न सम्भवति ॥९२॥

अथ च -

नान्यनिवृत्तिरूपत्वं भावप्रतीतेः ॥९३॥

(अन्यनिवृत्तिरूपत्वं न भावप्रतीतेः) अन्यत् तन्निवृत्तिरूपमन्यनिवृत्तिरूपं तस्य भावोऽन्यनिवृत्तिरूपत्वम्। विशेषात् कार्यात् पृथिव्यादेरन्यत्, तस्य विशेषस्य कार्यस्य पृथिव्यादिकस्य निवृत्तिरूपमभावरूपं सामान्यं स्यादिति न यतो भावप्रतीतेः, तस्य भावप्रत्ययाद् भावात्मकतया भासनात्,

---

यत्सामान्याभासं सादृश्यमस्ति] विशेष कार्यों में पृथ्वी आदि में या पार्थिव आदि पदार्थों में जो समानता है सादृशता है **[तत्सांख्यमते तत्त्वान्तरं नास्ति न तत्सामान्यनाम्ना तत्त्वान्तरं मन्यते]** वह सांख्यदर्शन की मान्यता में कोई अलग वस्तु नहीं है वह सामान्य नाम से कोई तीसरी वस्तु नहीं मानी जाती। **[कुतः प्रत्यक्षोपलब्धेः]** क्योंकि प्रत्यक्ष दिखने से, **[प्रत्यक्षं विशेषस्य कार्यस्य पृथिव्यादिकस्य पार्थिवादिकस्य वा रूपसामान्यस्योपलब्धिर्भवति न विशेषात् पृथक् सत्ता तत्समाना काचिदस्ति]** जो प्रत्यक्ष विशेष कार्य है पृथ्वी आदि और पार्थिव पदार्थ इन सब में जो रूप की समानता दिखती है, उस सादृश की पृथक सत्ता नहीं है, **[एकेन विशेषेण कार्यरूपेण सदृशोऽन्यो विशेषः कार्यरूपो रूपसामान्यगतः प्रत्यक्षमुपलभ्यते]** एक विशेष कार्य रूप पदार्थ के साथ उसके जैसा दूसरा विशेष कार्य रूप द्रव्य की रूप समानता दिखती है प्रत्यक्ष, **[न विशेषात् कार्यरूपाद् भिन्नः पदार्थः]** उस कार्य रूप विशेष पदार्थ दो से भिन्न तीसरी कोई वस्तु नहीं दिखती, **[यथा स स्थूलत्वकठोरत्वजडत्वरूपादिमान् तथैव द्वितीयोऽपि विशेषः पदार्थः]** जैसे वह एक पदार्थ स्थूल कठोर जड़ रूप आदि गुण वाला है वैसा ही दूसरा पदार्थ भी होता है।

[(वा) अथवा विशेषेषु कार्येषु पृथिव्यादिषु पार्थिवादिषु च यत्सामान्याभासं रूपसामान्यं सादृश्यमस्ति] अथवा इसको दूसरे प्रकार से समझें- विशेष कार्यों में पृथ्वी आदि और पार्थिव आदि में जो समानता प्रतीत होती है रूप की जो समानता है वह सादृश है **[(निजशक्त्यिभिव्यक्तिः) तस्य तस्य विशेषस्य कार्यस्य पृथिव्यादेः पार्थिवादिकस्य च निजशक्तरभिव्यक्तिरेव सा हि तत्स्वरूपेषु सदृशभावेन वर्तते]** उस उस विशेष कार्य पदार्थ की पृथ्वी आदि की अथवा पार्थिव आदि की वह अपने स्वरूप की अभिव्यक्ति मात्र है वह उसकी अपने अपने स्वरूप में सादृश प्रदर्शित हो रही है **[(वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेः) विशिष्टं विशिष्टं कार्यं प्रति तस्या अभिव्यक्तेरुपलब्धिर्भवतीति हेतोर्विशेषस्य कार्यस्य निजशक्त्यभिव्यक्तिरेव सादृश्यं न तत्त्वान्तरम्]** विशेष विशेष कार्य के प्रति उस अभिव्यक्ति की उपलब्धि हो रही है इस कारण से विशेष कार्य की अपने स्वरूप की अभिव्यक्ति ही सादृश है कोई अलग

स्थूलं सूक्ष्मीभूतं सामान्यं सदपि भावात्मकत्वेनावतिष्ठते तस्याणुपरिमाणत्वात् ।।९३।।

यत्खलु विशेषेषु कार्येषु परस्परं सामान्याभासं रूपसामान्यं सादृश्यं तत् -

न तत्त्वान्तरं सादृश्यं प्रत्यक्षोपलब्धेः निजशक्त्यभिव्यक्तिर्वा वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेः ।।९४-९५।।

(सादृश्यं तत्त्वान्तरं न प्रत्यक्षोपलब्धेः) विशेषेषु कार्येषु पृथिव्यादिषु पार्थिवादिषु वा यत्सामान्याभासं सादृश्यमस्ति तत्सांख्यमते तत्त्वान्तरं नास्ति न तत्सामान्यनाम्ना तत्त्वान्तरं मन्यते। कुतः प्रत्यक्षोपलब्धेः, प्रत्यक्षं विशेषस्य कार्यस्य पृथिव्यादिकस्य पार्थिवादिकस्य वा रूपसामान्यस्योपलब्धिर्भवति न विशेषात् पृथक् सत्ता तत्समाना काचिदस्ति, एकेन विशेषेण कार्यरूपेण सदृशोऽन्यो विशेषः कार्यरूपो रूपसामान्यगतः प्रत्यक्षमुपलभ्यते, न विशेषात् कार्यरूपाद् भिन्नः पदार्थः, यथा स स्थूलत्वकठोरत्वजडत्वरूपादिमान् तथैव द्वितीयोऽपि विशेषः पदार्थः (वा) अथवा विशेषेषु

भिन्न पदार्थ की नहीं।।९४-९५।।

सामान्य का विचार पूरा हो गया, अब संबंध के विषय में विचार आरंभ होता है। पहले संज्ञासंज्ञि के संबंध के विषय में कहते हैं-

न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽपि ।।९६।।

सूत्रार्थ=

[(संज्ञासंज्ञिसम्बन्धः-अपि न) तत्त्वान्तरमिति वर्तते] संज्ञासंज्ञि संबंध भी उन दो वस्तुओं से भिन्न तीसरी वस्तु नहीं है। **[संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽपि तत्त्वान्तरं नास्ति]** नाम और वस्तु के संबंध से भिन्न नहीं है। **[संज्ञा वाचको ध्वन्यात्मकत्वेन]** संज्ञा कहते हैं वाचक को जो ध्वनि के रूप में शब्द बोलते हैं, **[संज्ञीवाच्यो वस्त्वात्मकत्वेन भवति]** संज्ञि वो वाच्य है वस्तु के स्वरूप में है, **[ताभ्यां वाच्यवाचकाभ्यां भिन्न उपलब्धसत्ताको न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽस्ति]** वाचक और वाच्य इन दो के उपलब्ध होने से अलग तीसरा संबंध नामक पदार्थ सत्ता वाला पदार्थ उपलब्ध नहीं हो रहा **[किन्तु तयोः संज्ञासंज्ञिनोरेवान्तर्वर्तमानाऽर्थशक्तिरेवसम्बन्धोऽस्ति न हि ताभ्यां पृथक्स्वरूपवान्]** किन्तु उन दोनों संज्ञा और संज्ञि इनके अंदर वर्तमान रहने वाली जो अर्थ शक्ति है वही इस संबंध के रूप में है । वह इन दोनों पदार्थों से लगा स्वरूप वाली नहीं है ।।९६।।

न सम्बन्धनित्यतोभयानित्यत्वात् ।।९७।।

सूत्रार्थ= वाचक और वाच्य में जो सम्बंध है वह नित्य नहीं है। दोनों के अनित्य होने से।

[(सम्बन्धनित्यता न-उभयानित्यत्वात्) एतादृशस्य वाच्यवाचकयोर्मध्ये वर्तमानस्यापि

कार्येषु पृथिव्यादिषु पार्थिवादिषु च यत्सामान्याभासं रूपसामान्यं सादृश्यमस्ति (निजशक्त्यिभिव्यक्तिः) तस्य तस्य विशेषस्य कार्यस्य पृथिव्यादेः पार्थिवादिकस्य च निजशक्तरभिव्यक्तिरेव सा हि तत्स्वरूपेषु सदृशभावेन वर्तते (वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेः) विशिष्टं विशिष्टं कार्यं प्रति तस्या अभिव्यक्तेरुपलब्धिर्भवतीति हेतोर्विशेषस्य कार्यस्य निजशक्त्यभिव्यक्तिरेव सादृश्यं न तत्त्वान्तरम् ।।९४-९५।।

गतः सामान्यविचारोऽथ सम्बन्धविषये विचारः प्रवर्तते तत्र प्रथमं संज्ञासंज्ञिसम्बन्धविषये -

न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽपि ।।९६।।

(संज्ञासंज्ञिसम्बन्धः-अपि न) तत्त्वान्तरमिति वर्तते। संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽपि तत्त्वान्तरं नास्ति। संज्ञा वाचको ध्वन्यात्मकत्वेन, संज्ञीवाच्यो वस्त्वात्मकत्वेन भवति, ताभ्यां वाच्यवाचकाभ्यां भिन्न उपलब्धसत्ताको न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽस्ति किन्तु तयोः संज्ञासंज्ञिनोरेवान्तर्वर्तमानाऽर्थशक्तिरेवसम्बन्धोऽस्ति न हि ताभ्यां पृथक्स्वरूपवान् ।।९६।।

पुनश्चैतादृशसम्बन्धस्यापि -

न सम्बन्धनित्यतोभयानित्यत्वात् ।।९७।।

सम्बन्धस्य नित्यता नास्ति तयोरुभययोर्वाच्यवाचकयोरनित्यत्वात्] इस प्रकार के वाच्य और वाचक के मध्य जो सम्बंध है उस सम्बंध की नित्यता नहीं है उन वाच्य वाचक के अनित्य होने से, **[यतो वाच्यवाचकौ नित्यौ न स्तः]** क्योंकि वस्तु और नाम दोनों ही नित्य नहीं है। **[विशेषस्य कार्यस्य वाच्यस्य न नित्यत्वमतस्तद्वाचकस्यापि न नित्यत्वं]** विशेष कार्य का जो वाच्य रूप है उसका नित्यत्व नहीं है और उसका वाचक भी अनित्य है वह भी नित्य नहीं है **[पुनस्तयोर्मध्ये वर्तमानस्य सम्बन्धस्यापि न नित्यत्वम्]** फिर उनमें मध्य रहने वाला सम्बंध भी नित्य नहीं रहेगा।।९७।।

नाजः * सम्बन्धो धर्मिग्राहकप्रमाणबाधात् ।।९८।।

सूत्रार्थ= प्रकृति और पुरुष में स्वाभाविक सम्बंध नहीं है, प्रकृति पुरुष के स्वाभाविक सम्बंध को सिद्ध करने वाला धर्मी प्रमाण के खंडित होने से।

[(आजः सम्बन्धः-न) अजयोः प्रकृतिपुरुषयोर्वर्तमानः सम्बन्धः खल्वाजो नैसर्गिकः स्वाभाविकः सम्बन्धो न सांख्यसिद्धान्ते स्वीक्रियते] जो कभी जन्म नहीं लेंगे वह हैं प्रकृति और पुरुष (जीव और ईश्वर)। इनका जो वर्तमान सम्बंध है वह आजः, नैसर्गिक, स्वाभाविक सम्बंध है। सांख्य मत में इनका स्वाभाविक सम्बंध स्वीकार नहीं किया जाता। (प्रकृति जीव और ईश्वर इन तीनों में यद्यपि संबंध तो है किन्तु ''प्रकृति भोग्य वस्तु है, जीवात्मा भोक्ता है, परमात्मा भोग की व्यवस्था करता है'' ये कारण पूर्वक है स्वाभाविक नहीं है)।**[यतः (धर्मिग्राहकप्रमाणबाधात्) सम्बन्धो धर्मः, सम्बन्धो धर्मोऽस्यास्तीति स धर्मी**

(सम्बन्धनित्यता न-उभयानित्यत्वात्) एतादृशस्य वाच्यवाचकयोर्मध्ये वर्तमानस्यापि सम्बन्धस्य नित्यता नास्ति तयोरुभययोर्वाच्यवाचकयोरनित्यत्वात्, यतो वाच्यवाचकौ नित्यौ न स्तः। विशेषस्य कार्यस्य वाच्यस्य न नित्यत्वमतस्तद्वाचकस्यापि न नित्यत्वं पुनस्तयोर्मध्ये वर्तमानस्य सम्बन्धस्यापि न नित्यत्वम् ।।९७।।

अथ नैसर्गिकसम्बन्धविषये -

नाजः * सम्बन्धो धर्मिग्राहकप्रमाणबाधात् ।।९८।।

(आजः सम्बन्धः-न) अजयोः प्रकृतिपुरुषयोर्वर्तमानः सम्बन्धः खल्वाजो नैसर्गिकः स्वाभाविकः सम्बन्धो न सांख्यसिद्धान्ते स्वीक्रियते। यतः (धर्मिग्राहकप्रमाणबाधात्) सम्बन्धो धर्मः, सम्बन्धो धर्मोऽस्यास्तीति स धर्मी सम्बन्धधर्मी तौ धार्मिणौ तयोरजयोर्धर्मिणोः प्रकृतिपुरुषयोर्धर्मिणोर्ग्राहकप्रमाणस्य

सम्बन्धधर्मी] क्योंकि धर्म है सम्बंध, सम्बंध धर्म है जिसका वह है सम्बंध धर्मी **[तौ धार्मिणौ तयोरजयोर्धर्मिणोः प्रकृतिपुरुषयोर्धर्मिणोर्ग्राहकप्रमाणस्य बाधनात्]** वे धर्मी (प्रकृति और पुरुष) उन धर्मियों के, उनको स्वाभाविक सिद्ध कराने वाला प्रमाण खंडित होने से **[तयोर्धर्मित्वेन सम्बन्धधर्मित्वेन ग्राहकं प्रमाणं बाध्यते]** प्रकृति पुरुष को धर्मी के रूप में स्वाभाविक सम्बंध धर्मी के रूप में ग्रहण करने वाला ज्ञान कराने वाला प्रमाण खंडित हो जाता है, इसलिए इनमें कोई स्वाभाविक सम्बंध नहीं है। **[न तथाभूतौ प्रकृतिपुरुषौ प्रमाणं साधयितुं समर्थम्]** प्रकृति पुरुष को उस प्रकार का स्वाभाविक सम्बंध सिद्ध करने वाला कोई भी प्रमाण सिद्ध नहीं है। **[यतः प्रकृतिस्तु जड़ाऽचेतना च न सा पुरुषेण सह सम्बन्धस्थापनाय स्वतन्त्रा समर्था च तस्या जडत्वादचेतनत्वात्]** क्योंकि प्रकृति तो जा् वस्तु है अचेतन है वह पुरुष के साथ सम्बंध स्थापित करने में स्वतंत्र नहीं है समर्थ नहीं है और उसके जड़ होने से। **[पुरुषश्च नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः प्रकृत्या सह सम्बन्धस्थापनाय नाभिलाषवान् तस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वात्]** पुरुष (ईश्वर) नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला है वह प्रकृति के साथ सम्बंध जोड़ने की कोई अभिलाषा नहीं रखता क्योंकि वह तो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव वाला है, **[तथा पुरुषो जीवात्मा न स्वभावतो बद्ध इति पूर्वतः प्रतिपादितत्वात् स्वभावतोऽपि प्रकृत्या सह तस्य सम्बन्धो न घटते]** तथा जीव और प्रकृति का स्वाभाविक सम्बंध होता तो वह बद्ध होता किन्तु वह स्वभाव से बद्ध नहीं है इसका पहले ही खंडन कर चुके हैं, इसलिए प्रकृति और जीव का भी स्वाभाविक सम्बंध नहीं घटता। **[इत्थं सम्बन्धधर्मी न पुरुषस्तथा न सम्बन्धधर्मिणी प्रकृतिः]** इस प्रकार से सम्बंध धर्म वाला न तो कोई पुरुष है और न ही सम्बंध धर्म वाली प्रकृति है, **[तयोः सम्बन्धधर्मित्वेन प्रमाणं न प्रवर्तते किन्तु बाध्यतेऽतो नैसर्गिकसम्बन्धो यद्वा स्वाभाविकसम्बन्धोऽपि न सांख्यसिद्धान्ते मन्यते]** इसलिए प्रकृति पुरुष को स्वाभाविक सम्बंध वाला धर्मी सिद्ध करने वाला कोई भी प्रमाण सिद्ध नहीं होता अतः स्वाभाविक सम्बंध अथवा नैसर्गिक सम्बंध संख्या सिद्धान्त में नहीं माना जाता। **[विज्ञानभिक्षुभाष्ये 'नाजः' इत्यस्य स्थाने 'नातः' पाठःकल्पितः स न युक्तः]** इस सूत्र के विज्ञानभिक्षु भाष्य में ''नाजः'' के स्थान पर ''नातः'' का पाठ कल्पित किया है जो उचित नहीं है। **[सम्बन्धविचारप्रसंगस्तत्र संज्ञासंज्ञी सम्बन्धः पूर्वं गतः]** यहाँ सम्बंध का विचार प्रसंग चल रहा है और उस संदर्भ में पहले संज्ञासंज्ञी का प्रसंग पूरा

बाधनात् तयोर्धर्मित्वेन सम्बन्धधर्मित्वेन ग्राहकं प्रमाणं बाध्यते। न तथाभूतौ प्रकृतिपुरुषौ प्रमाणं साधयितुं समर्थम्। यतः प्रकृतिस्तु जडाऽचेतना च न सा पुरुषेण सह सम्बन्धस्थापनाय स्वतन्त्रा समर्था च तस्या जडत्वादचेतनत्वात्। पुरुषश्च नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः प्रकृत्या सह सम्बन्धस्थापनाय नाभिलाषवान् तस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वात्, तथा पुरुषो जीवात्मा न स्वभावतो बद्ध इति पूर्वतः प्रतिपादितत्वात् स्वभावतोऽपि प्रकृत्या सह तस्य सम्बन्धो न घटते। इत्थं सम्बन्धधर्मी न पुरुषस्तथा न सम्बन्धधर्मिणी प्रकृतिः, तयोः सम्बन्धधर्मित्वेन प्रमाणं न प्रवर्तते किन्तु बाध्यतेऽतो नैसर्गिकसम्बन्धो यद्वा स्वाभाविकसम्बन्धोऽपि न सांख्यसिद्धान्ते मन्यते। विज्ञानभिक्षुभाष्ये 'नाजः' इत्यस्य स्थाने 'नातः' पाठःकल्पितः स न युक्तः। सम्बन्धविचारप्रसंगस्तत्र संज्ञासंज्ञी सम्बन्धः पूर्वं गतः, अग्रे समवायसम्बन्धविचारः प्रवर्तिष्यमाणोऽस्ति, अत्र खल्वाजः सम्बन्धो नैसर्गिको नित्यः सम्बन्धो विचार्यते ।।९८।।

समवायसम्बन्धे च -

न समवायोऽस्ति प्रमाणाभावात् ।।९९।।

(समवायः न-अस्ति) सांख्यसिद्धान्ते समवायसम्बन्धस्तत्त्वान्तरं न मन्यते (प्रमाणाभावात्) तत्साधनप्रमाणाभावात् ।।९९।।

हो गया, [**अग्रे समवायसम्बन्धविचारः प्रवर्तिष्यमाणोऽस्ति**] और अगले सूत्र में समवाय सम्बंध का विचार आने ही वाला है, [**अत्र खल्वाजः सम्बन्धो नैसर्गिको नित्यः सम्बन्धो विचार्यते**] इसलिए इस सूत्र में जिस सम्बंध पर चर्चा हो रही है वह यही सम्बंध होना चाहिए स्वाभाविक सम्बन्ध नैसर्गिक सम्बंध नहीं है ।।९८।।

समवाय सम्बंध दो नित्य वस्तुओं में होता है जो हमेशा जुड़ के रहती हैं ।

न समवायोऽस्ति प्रमाणाभावात् ।।९९।।

सूत्रार्थ= समवाय नित्य सम्बन्ध भी सांख्यमत में गुण और गुणी आदि से तत्वांतर तीसरा पदार्थ नहीं है, प्रमाण के अभाव होने से।

[**(समवायः न-अस्ति) सांख्यसिद्धान्ते समवायसम्बन्धस्तत्त्वान्तरं न मन्यते (प्रमाणाभावात्) तत्साधनप्रमाणाभावात्**] सांख्यमत में समवाय सम्बंध तत्वांतर नहीं माना जाता क्योंकि उसको अलग सिद्ध करने वाले साधन प्रमाण के अभाव होने से ।।९९।।

प्रमाण का अभाव कैसे है इसको बताते हैं-

उभयत्राप्यन्यथासिद्धेर्न प्रत्यक्षमनुमानं वा ।।१००।।

सूत्रार्थ= कार्य में कार्यपन और कारण में कारणपन स्वतः सिद्ध होने से समवाय संबंध को कार्य कारण से तत्वांतर सिद्ध करने में ना कोई प्रत्यक्ष प्रमाण है न कोई अनुमान प्रमाण है।

कथं प्रमाणाभाव इत्युच्यते -

उभयत्राप्यन्यथासिद्धेर्न प्रत्यक्षमनुमानं वा ।।१००।।

(उभयत्र-अपि) कार्यकारणयोरपि सांख्यसिद्धान्ते सत्कार्यवादे कारणस्य कार्याभिव्यक्तिधर्मवत्त्वात् कारणत्वं कार्यस्य कारणानुवर्तिधर्मित्वात् कार्यत्वं खलु (अन्यथासिद्धेः) प्रमाणमन्तरा-स्वतः सिद्धं स्वरूपतः सिद्धमस्ति। तस्मात् (प्रत्यक्षम्-अनुमानं वा न) तत्र प्रत्यक्षमथवाऽनुमानं प्रमाणं कार्यकारणाभ्यां भिन्नस्य समवायाख्यस्य तत्त्वान्तरत्वसाधकं न भवति, कार्ये भवति कारणं प्रत्यक्षं कारणाच्च कार्यस्य भवति खल्वनुमानं परन्तु ताभ्यां प्रत्यक्षानुमानाभ्यां तयोः कार्यकारणयोः समवायस्ताभ्यां कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरं सांख्यसिद्धान्ते नापेक्ष्यते न मन्यते न सिध्यति ।।१००।।

कारणस्य कारणत्वं कार्यस्य कार्यत्वं भवतु स्वरूपतः, ताभ्यां कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरं

[**(उभयत्र-अपि) कार्यकारणयोरपि सांख्यसिद्धान्ते सत्कार्यवादे कारणस्य कार्याभिव्यक्तिधर्मवत्त्वात् कारणत्वं कार्यस्य कारणानुवर्तिधर्मित्वात् कार्यत्वं खलु (अन्यथासिद्धेः) प्रमाणमन्तरा-स्वतः सिद्धं स्वरूपतः सिद्धमस्ति**] कार्य और कारण दोनों का ही सांख्य सिद्धान्त में सत्कार्यवाद (जो कार्य है वह अपने कारण में पहले से विद्यमान होता है) में कोई भी कार्य अपनी अभिव्यक्ति से पूर्व विद्यमान था (सांख्य और योग दोनों सत्कार्यवाद को मानते हैं, न्याय और वैशेषिक का असत्कार्यवाद है- विरोध नहीं है प्रस्तुतिकरण का अंतर है) कारण कार्य की अभिव्यक्ति करता है कार्य कारण की अनुवर्ति करता है उसका यह धर्म है, इस प्रकार से कारण और कार्य दोनों अपने स्वरूप से सिद्ध हैं। [**तस्मात् (प्रत्यक्षम्-अनुमानं वा न) तत्र प्रत्यक्षमथवाऽनुमानं प्रमाणं कार्यकारणाभ्यां भिन्नस्य समवायाख्यस्य तत्त्वान्तरत्वसाधकं न भवति**] इसलिए वहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण या अनुमान प्रमाण कार्य कारण से भिन्न समवाय नामक किसी पदार्थ को सिद्ध करने वाला कोई अलग से प्रमाण सिद्ध नहीं होता, [**कार्ये भवति कारणं प्रत्यक्षं कारणाच्च कार्यस्य भवति खल्वनुमानं**] कार्य में कारण प्रत्यक्ष ही दिखता है और कारण से कार्य का अनुमान हो जाता है [**परन्तु ताभ्यां प्रत्यक्षानुमानाभ्यां तयोः कार्यकारणयोः समवायस्ताभ्यां कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरं सांख्यसिद्धान्ते नापेक्ष्यते न मन्यते न सिध्यति**] परंतु प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण के माध्यम से कार्य और कारण से जो समवाय संबंध है वो इन दोनों से भिन्न तीसरा पदार्थ है, ये सांख्यदर्शन में स्वीकार नहीं किया जाता क्योंकि प्रमाण से सिद्ध नहीं हो रहा ।।१००।।

[**कारणस्य कारणत्वं कार्यस्य कार्यत्वं भवतु स्वरूपतः**] कारण का कारणत्व और कार्य का कार्यत्व स्वरूप से होवे, [**ताभ्यां कार्यकारणाभ्यां तत्त्वान्तरं समवायसम्बन्धो न स्यात्**] कार्य और कारण समवाय से तीसरी वस्तु अलग न होवे [**परन्तु कारणात् कार्याभिव्यक्तिः क्रियया भवति**] परंतु कारण से

समवायसम्बन्धो न स्यात् परन्तु कारणात् कार्याभिव्यक्तिः क्रियया भवति किं सा क्रियाऽनुमानगम्या मन्तव्या? यथा बीजादङ्कुरस्योत्पादनक्रियाऽनुमेया, इत्याकांक्षायामुच्यते –

नानुमेयत्वमेव क्रियया नेदिष्ठस्य तत्तद्वतोरेवापरोक्षप्रतीतेः ।।१०१।।

(क्रियायाः-अनुमेयत्वम्-एव न) क्रियायाः खल्वनुमेयत्वमेव न मन्तव्यं किन्तु प्रत्यक्षत्वमपि भवति, यतः (नेदिष्ठस्य तत्तद्वतोः-एव-अपरोक्षप्रतीतेः) निकटस्थस्य जनस्य क्रियाक्रियावतोः-क्रियायाःक्रियावतश्चैव प्रत्यक्षज्ञानाद्। यः खलु देशकालदृष्ट्या निकटस्थो भवति स क्रियां क्रियावति प्रत्यक्षमपि पश्यति, गच्छति पुरुषे गमनक्रियां पच्यमाने ह्योदने पचनक्रियां मृत्तिकातो निर्मायमाणे हि घटे निर्माणक्रियां साक्षात्पश्यति हि। देशकालव्यवहिता क्रिया खल्वनुमेया भवति ।।१०१।।

यत्र ह्यनुमेया क्रिया भवति तत्र कार्यात् कारणस्याप्यनुमानम्, तद्यथा –

न पाञ्चभौतिकं शरीरं बहूनामुपादानायोगात् ।।१०२।।

(शरीरं पाञ्चभौतिकं न) शरीरं पाञ्चभौतिकं नास्ति, पञ्चभूतेभ्यो नोत्पन्नम् । यतः (बहूनाम्-

---

जो कार्य की अभिव्यक्ति होती है वह क्रिया से होता है (जब तक कारण द्रव्य में क्रिया न हो तो कार्य नहीं बनता) [**किं सा क्रियाऽनुमानगम्या मन्तव्या**] क्या वह क्रिया हो रही है उसे अनुमान से नहीं मानें? [**यथा बीजादङ्कुरस्योत्पादनक्रियाऽनुमेया**] जैसे बीज बोया उसके अंदर अंदर क्रिया उत्पादन की क्रिया होती है वह अनुमान से जानने योग्य है, **इत्याकांक्षायामुच्यते** – इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं–

नानुमेयत्वमेव क्रियया नेदिष्ठस्य तत्तद्वतोरेवापरोक्षप्रतीतेः ।।१०१।।

सूत्रार्थ= क्रिया सब जगह पर अनुमान प्रमाण से ही जानने योग्य नहीं होती, क्रिया और क्रिया वाले पदार्थ के निकट स्थित व्यक्ति को क्रिया का प्रत्यक्ष ज्ञान होने से।

[**(क्रियायाः-अनुमेयत्वम्-एव न) क्रियायाः खल्वनुमेयत्वमेव न मन्तव्यं किन्तु प्रत्यक्षत्वमपि भवति**] क्रिया सब जगह अनुमेय हो ऐसा नहीं मानना चाहिए किन्तु अनेक स्थानों पर क्रिया प्रत्यक्ष भी होती है, [**यतः (नेदिष्ठस्य तत्तद्वतोः-एव-अपरोक्षप्रतीतेः) निकटस्थस्य जनस्य क्रियाक्रियावतोः-क्रियायाःक्रियावतश्चैव प्रत्यक्षज्ञानाद्**] निकट में विद्यमान जो मनुष्य है जहां-जहां क्रिया चल रही है उस क्रिया और क्रिया वाले पदार्थ के निकट जो व्यक्ति उपस्थित है वह क्रिया को प्रत्यक्ष देखता है। [**यः खलु देशकालदृष्ट्या निकटस्थो भवति स क्रियां क्रियावति प्रत्यक्षमपि पश्यति**] जो देश काल की दृष्टि से निकटस्थ होता है (जहां क्रिया हो रही है) ऐसे में वह क्रिया को भी देखता है और क्रिया वाले पदार्थ में प्रत्यक्ष भी देखता है, [**गच्छति पुरुषे गमनक्रियां पच्यमाने ह्योदने पाचनक्रियां मृत्तिकातो निर्माणमाणे हि घटे निर्माणक्रियां साक्षात्पश्यति हि**] व्यक्ति के चलने में गमन क्रिया दिखती है, भात पकाने में पकाने की क्रिया दिखती है ऐसे ही मिट्टी से घड़ा बनाते समय क्रिया प्रत्यक्ष होती है, इस प्रकार से निकटस्थ व्यक्ति साक्षात क्रिया को देखता है। [**देशकालव्यवहिता क्रिया खल्वनुमेया भवति**] देश काल से छिपी हुई जो क्रिया होती है वह अनुमेंय होती है ।।१०१।।

उपादानयोगात्) बहूनां भूतानामेकस्मिन् कार्ये कार्याभिव्यक्तौ खलूपादानत्वयोगः परिणम्यमानयुक्तता नास्ति। अत्र वक्तव्यम् - तृतीयाध्याये ''पाञ्चभौतिको देहः'' १७, चातुर्भौतिकमित्येके १८, ऐकभौतिकमित्यपरे १९ ''इत्यत्र सूत्रत्रये शरीरस्य कारणविचारणायां चातुर्भौतिकविचारे 'एके' ऐकभौतिकविचारे 'अपरे' शब्दाभ्यां भिन्नमतप्रकाशनं कृतं किन्तु ''पाञ्चभौतिको देहः'' १० इति सूत्रे नान्यमतप्रकाशनसंकेतः, इत्थं तु खलु तत्र पाञ्चभौतिकं शरीरमिति सांख्यमतं मनाक् कल्पयितुं शक्यते परन्तु ''न पाञ्चभौतिकं शरीरं बहूनामुपादानायोगात्'' अत्र प्रस्तुतसूत्रे पाञ्चभौतिकत्वं शरीरस्य निराक्रियते पुनः सांख्यमतं शरीरस्योपादानत्वे किमिति प्रश्नः समुपतिष्ठते तत्र चातुर्भौतिकत्वं तथैकभौतिकत्वं तु न

यत्र ह्यनुमेया क्रिया भवति तत्र कार्यात् कारणस्याप्यनुमानम्, तद्यथा - जहां क्रिया अनुमान से जानने योग्य हो वहाँ कार्य से कारण का भी अनुमान हो जाता है। जैसे कि-

न पाञ्चभौतिकं शरीरं बहूनामुपादानायोगात् ।।१०२।।

सूत्रार्थ=शरीर पाँच महाभूतों से समान मात्रा में नहीं बना है बहुत से कारण द्रव्य समान मात्रा में मिलकर किसी कार्य द्रव्य को ठीक प्रकार से उत्पन्न करने में असमर्थ होने से।

[(शरीरं पाञ्चभौतिकं न) शरीरं पाञ्चभौतिकं नास्ति, पञ्चभूतेभ्यो नोत्पन्नम्] शरीर पंचभौतिक नहीं है, पाँच महाभूतों से उत्पन्न नहीं हुआ। **[यतः क्योंकि (बहूनाम्-उपादानयोगात्) बहूनां भूतानामेकस्मिन् कार्ये कार्याभिव्यक्तौ खलूपादानत्वयोगः परिणम्यमानयुक्तता नास्ति]** पाँच भूत समान मात्र में उपादान नहीं हैं। अत्र वक्तव्यम् यहाँ समीक्षा कर रहे हैं **[- तृतीयाध्याये ''पाञ्चभौतिको देहः'' १७, चातुर्भौतिकमित्येके १८, ऐकभौतिकमित्यपरे १९ ''इत्यत्र सूत्रत्रये शरीरस्य कारणविचारणायां चातुर्भौतिकविचारे 'एके' ऐकभौतिकविचारे 'अपरे' शब्दाभ्यां भिन्नमतप्रकाशनं कृतं]** तृतीय अध्याय में जो तीन सूत्र आए थे, इन तीन सूत्रों में जब शरीर के कारणों का विचार चल रहा था ''कि शरीर कितने और किन-किन कारणों से बना है'' उस प्रसंग में जब ये कहा था कि ''चातुर्भौतिकमित्येके'' कुछ लोग ऐसा मानते हैं, ''ऐकभौतिकमित्यपरे'' और कुछ ऐसा भी मानते हैं, ये अन्यों का मत प्रकाशित किया **[किन्तु ''पाञ्चभौतिको देहः'' १० इति सूत्रे नान्यमतप्रकाशनसंकेतः]** किन्तु ''पाञ्चभौतिको देहः'' इस सूत्र में किसी अन्य के मत प्रकाशन नहीं है, **[इत्थं तु खलु तत्र पाञ्चभौतिकं शरीरमिति सांख्यमतं मनाक् कल्पयितुं शक्यते]** इस प्रकार से वहाँ पंचभौतिक है शरीर ये सांख्य का अपना मत है, ये स्वाभाविक रूप से कल्पित किया जा सकता है **[परन्तु ''न पाञ्चभौतिकं शरीरं बहूनामुपादानायोगात्'' अत्र प्रस्तुतसूत्रे पाञ्चभौतिकत्वं शरीरस्य निराक्रियते]** परंतु प्रस्तुत प्रसंग में पंचभौतिक शरीर का खंडन किया जा रहा है **[पुनः सांख्यमतं शरीरस्योपादानत्वे किमिति प्रश्नः समुपतिष्ठते]** फिर सांख्य का अपना मत क्या है[ये प्रश्न उपस्थित होता है **[तत्र चातुर्भौतिकत्वं तथैकभौतिकत्वं तु न सांख्यमतं कल्पयितुं युज्यते]** इस प्रकरण में शरीर चार भूतों से बना है एक भूत से बना है ये तो सांख्य का अपना मत कल्पित नहीं किया जा सकता है **['एके' 'अपरे' शब्दाभ्यां भिन्नमतप्रदर्शनात्]** 'एके'' अपरे' शब्दो से भिन्न मत को प्रदर्शित किया है। **[शरीरमनेकभूतेभ्यो निष्पन्नमिति**

सांख्यमतं कल्पयितुं युज्यते 'एके' 'अपरे' शब्दाभ्यां भिन्नमतप्रदर्शनात्। शरीरमनेकभूतेभ्यो निष्पन्नमिति सांख्यमतं तु ध्वन्यते ''न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः'' (सांख्य० ३.२०) यथा विज्ञानभिक्षुभाष्येऽपि ''भूतेषु पृथक् पृथक् कृतेषु चैतन्यादर्शनाद् भौतिकस्य देहस्य न स्वाभाविकं चैतन्यम्''। सूत्रे 'प्रत्येकादृष्टेः' पदेन शरीरमनैकभौतिकं तु सिद्धं भवति हि तत्र। अत्रोच्यते न पाञ्चभौतिकं शरीरम्। उभयप्रकरणालोचनया शरीरस्य कारणविषये सांख्यमतमस्तीदं यत्-शरीरमभिनिष्पन्नं तु पञ्चभूतेभ्यः ''पाञ्चभौतिको देहः'' इति कथनात् परन्तु तत्र पञ्चसु भूतेषु पादानत्वं परिणम्यमानत्वं न पञ्चभूतानाम् ''बहूनामुपादानत्वायोगात्'' तर्ह्येकस्य भूतस्योपादानत्वं परिणम्यमानत्वं भवति शरीररूपे कस्यैकस्येति प्रश्ने तु पृथिव्या एवोपादनत्वं परिणम्यमानत्वमस्ति तत्रान्येषां तूपष्टम्भकत्वं सहकारित्वमनिवार्यमेवेति सांख्यमतम्। उक्तं यथाऽतोग्रे हि ''सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात् तद्व्यपदेशः पूर्ववत्'' (११२) पृथिवी ह्यसाधारणकारणं

सांख्यमतं तु ध्वन्यते] शरीर अनेक भूतों से उत्पन्न हुआ है ये तो दूसरे स्त्रोत से पता चलता है [**''न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः'**] शरीर में जो चेतनता है वह स्वाभाविक नहीं है प्रत्येक भूत को जाँचने से' [**(सांख्य० ३.२०) यथा विज्ञानभिक्षुभाष्येऽपि ''भूतेषु पृथक् पृथक् कृतेषु चैतन्यादर्शनाद्[भौतिकस्य देहस्य न स्वाभाविकं चैतन्यम्''**] जैसे विज्ञानभिक्षु भाष्य में भी ये कहा गया है -भूतो को अलग अलग जाँचने पर चेतनता दिखाई नहीं दी। सब में चेतनता का अभाव होने से भौतिक देह में स्वाभाविक चेतना नहीं है। [**सूत्रे 'प्रत्येकादृष्टेः' पदेन शरीरमनैकभौतिकं तु सिद्धं भवति हि तत्र**] उस सूत्र में 'प्रत्येकादृष्टेः' इस शब्द से ''शरीर अनेक भूतों से बना है'' ये तो सिद्ध हो ही रहा है। [**अत्रोच्यते न पाञ्चभौतिकं शरीरम्**] यहाँ कहा कि पाँच भूतो से शरीर नहीं बना। [**उभयप्रकरणालोचनया शरीरस्य कारणविषये सांख्यमतमस्तीदं यत्-शरीरमभिनिष्पन्नं तु पञ्चभूतेभ्यः ''पाञ्चभौतिको देहः'' इति कथनात्**] दोनों प्रकरणों को देखकर शरीर उत्पन्न तो हुआ है पंचभूतों से ये तो तीसरे अध्याय से सिद्ध हो रहा है [**परन्तु तत्र पञ्चसु भूतेषु पादानत्वं परिणम्यमानत्वं न पञ्चभूतानाम्**] परंतु वहाँ पांचों भूतों का उपादान होना और उसका परिणाम होना ये सटीक नहीं लगता ''**बहूनामुपादानत्वायोगात्**'' इस सूत्र में ये कहा कि सारे के सारे उपादान नहीं हो सकते [**तर्ह्येकस्य भूतस्योपादानत्वं परिणम्यमानत्वं भवति शरीररूपे कस्यैकस्येति प्रश्ने तु पृथिव्या एवोपादनत्वं परिणम्यमानत्वमस्ति**] फिर एक भूत का ही उपादान होना चाहिए उसी के परिणाम से ये सारा शरीर बना है । शरीर में किस एक भूत का उपादानत्व है? पृथ्वी का ही उपादानत्व सिद्ध होता है उसी का ये परिणाम है [**तत्रान्येषां तूपष्टम्भकत्वं सहकारित्वमनिवार्यमेवेति सांख्यमतम्**] वहाँ अन्य भूतों का थोड़ा-थोड़ा सहयोग है और मुख्य उपादानत्व एक है यह सांख्य का मत है। [**उक्तं यथाऽतोग्रे हि ''सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात् तद्व्यपदेशः पूर्ववत्''**] जैसा कि यहाँ आगे भी कहा है- सभी शरीरों में पृथ्वी उपादान है, विशेष होने से शेष कथन पूर्व के समान है [**(११२) पृथिवी ह्यसाधारणकारणं विशेषकारणं प्रधानकारणमुपादानकारणमन्यानि भूतानि तु साधारणकारणानि गौणकारणानि सहकारिकारणानीत्यर्थः**] पृथ्वी मुख्य कारण है असाधारण कारण है विशेष कारण है प्रधान कारण है उपादान कारण है अन्य साधारण सहयोगी कारण हैं, [**यथा घटस्योपादानकारणं मृत्तिका तत्र पिण्डीकरणे जलम्**] जैसे घड़े का उपादान कारण मिट्टी है उसको पिंडी बनाने में सहयोगी जल है, **पाकेऽग्निः** घड़े को पकाने के लिए अग्नि का सहयोग,

विशेषकारणं प्रधानकारणमुपादानकारणमन्यानि भूतानि तु साधारणकारणानि गौणकारणानि सहकारिकारणानीत्यर्थः, यथा घटस्योपादानकारणं मृत्तिका तत्र पिण्डीकरणे जलम्, पाकेऽग्निः, गतिव्यवहारे वायुः, अवकाशप्रदाने चाकाशः सहकारिकारणानि सन्ति। आहारनियमादपि तथैव प्रतीयते शरीरस्य स्थविष्ठत्वे स्थिरत्वे वृद्धौ च पार्थिव आहार एव प्राधान्येनापेक्ष्यते जलाग्निवाय्वाकाशानां सम्पर्कोऽपि सूक्ष्मभावेन निमित्तं भवति ।।१०२।।

बाह्यस्थूलशरीरान्तरे सूक्ष्मशरीरमप्यस्तीत्याह -

न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात् ।।१०३।।

(स्थूलम्-इति नियमः-न) स्थूलशरीरमेवास्तीति नियमः सिद्धान्तो न, यतः (आतिवाहिकस्य-अपि विद्यमानत्वात्) अतिवाहे-देहाद् देहान्तरप्राप्तौ निमित्तं यत् तदातिवाहिकं सूक्ष्मशरीरं तस्यापि विद्यमानत्वमस्ति, नहि निराश्रयो जीवात्मा देहाद् देहान्तरं गन्तुमर्हः। उक्तं लिंगशरीरम् ''तदेव सक्तः सह

गतिव्यवहारे वायुः उठान लाना ले जाना में गति का व्यवहार वायु से है, [**अवकाशप्रदाने चाकाशः सहकारिकारणानि सन्ति**] घड़े को टिकाने के लिए आकाश का सहयोग होता है। [**आहारनियमादपि तथैव प्रतीयते शरीरस्य स्थविष्ठत्वे स्थिरत्वे वृद्धौ च पार्थिव आहार एव प्राधान्येनापेक्ष्यते**] शरीर को आहार आदि का भी सहयोग प्रतीत होता है उसे स्थूल बनाने में स्थिर रखने में वृद्धि कराने पार्थिव आहार की ही प्रधानता होती है [**जलाग्निवाय्वाकाशानां सम्पर्कोऽपि सूक्ष्मभावेन निमित्तं भवति**] जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि का संपर्क सहयोग सूक्ष्म रूप से होता है। उसका कोई विरोध नहीं है।।१०२।।

बाह्य स्थूल शरीर के अन्दर एक सूक्ष्म शरीर भी है। इस बात को अगले सूत्र से कहते हैं-

न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात् ।।१०३।।

सूत्रार्थ=केवल स्थूल शरीर ही हो ऐसा नियम नहीं है, सूक्ष्म शरीर के भी विद्यमान रहने से।

[**(स्थूलम्-इति नियमः-न) स्थूलशरीरमेंवास्तीति नियमः सिद्धान्तो न**] स्थूल शरीर ही हो ऐसा कोई नियम व सिद्धान्त नहीं है, [**यतः क्योंकि (आतिवाहिकस्य-अपि विद्यमानत्वात्) अतिवाहे-देहाद् देहान्तरप्राप्तौ निमित्तं यत् तदातिवाहिकं सूक्ष्मशरीरं तस्यापि विद्यमानत्वमस्ति**] एक शरीर को छोडकर दूसरे शरीर की प्राप्ति में जो निमित्त बनता है वह आतिवाहिक (सूक्ष्म शरीर) है। वह सूक्ष्म शरीर की भी विद्यमानता है, [**नहि निराश्रयो जीवात्मा देहाद् देहान्तरं गन्तुमर्हः**] बिना आश्रय के आधार के जीवात्मा एक शरीर से दूसरे शरीर तक नहीं जा सकता। [**उक्तं लिंगशरीरम्** शास्त्रों में लिंग (सूक्ष्म) शरीर की चर्चा आती है- **''तदेव सक्तः सह कर्मणैति लिंग मनो यत्र निषक्तमस्य'' (बृह० ४.४.६)** ''उसी से आसक्त हुआ जुड़ा हुआ कमो५ के साथ जाता है जो लिंग शरीर रूपी मन है वह जिस वस्तु में जीवात्मा का मन आसक्त है वहाँ ले जाता है''।।१०३।।

कर्मणैति लिंग मनो यत्र निषक्तमस्य'' (बृह० ४.४.६) ।।१०३।।

शरीरे हीन्द्रियाणि सन्ति, तानि प्राप्तं स्वस्वविषयं प्रकाशयन्ति यद्वाऽप्राप्तं प्रकाशयन्ति, दृश्यते खलूभयं प्राप्तप्रकाशनमप्राप्तप्रकाशनं च तेषाम्। यथा श्रोत्रं प्राप्तं समीपस्थं शब्दमपि प्रकाशयति दूरस्थमप्राप्तमपि प्रकाशयति, तथा नेत्रं प्राप्तं समीपस्थं रूपमपि प्रकाशयति दूरस्थमप्राप्तमाकाशीयं नक्षत्रतारकमपि प्रकाशयति तदत्र कः सिद्धान्तः। अत्रोच्यते -

नाप्राप्तप्रकाशकत्वमिन्द्रियाणामप्राप्तेः सर्वप्राप्तेर्वा ।।१०४।।

(इन्द्रियाणाम्-अप्राप्तप्रकाशकत्वं न) इन्द्रियाणि न ह्यप्राप्तं प्रकाशयन्ति, यच्चाप्राप्तं दूरस्थं शब्दं रूपं वा प्रकाशयन्तीति प्रतीयते तन्न तथा, किन्तु तदपि विषयजातं प्राप्तमेव प्रकाशयन्तीति निश्चयः,

---

[**शरीरे हीन्द्रियाणि सन्ति, तानि प्राप्तं स्वस्वविषयं प्रकाशयन्ति यद्वाऽप्राप्तं प्रकाशयन्ति** शरीर में इंद्रियाँ हैं, वे अपने-अपने विषय का ज्ञान कराती हैं, वे इंद्रियाँ क्या बिना जुड़े ही ज्ञान प्राप्त कराती हैं, **दृश्यते खलूभयं प्राप्तप्रकाशनमप्राप्तप्रकाशनं च तेषाम्**] पूर्वपक्षी कहता है- दोनों ही प्रकार से देखा जाता है कभी इंद्रिया विषयों से जुड़कर ज्ञान कराती है और कभी अपने विषयों से जुड़े बिना ही ज्ञान प्राप्त कराती हैं। [**यथा श्रोत्रं प्राप्तं समीपस्थं शब्दमपि प्रकाशयति दूरस्थमप्राप्तमपि प्रकाशयति**] जैसे कान समीप वाले शब्दों का भी ज्ञान कराता है और दूर के शब्द का भी ज्ञान कराता है, [**तथा नेत्रं प्राप्तं समीपस्थं रूपमपि प्रकाशयति दूरस्थमप्राप्तमाकाशीयं नक्षत्रतारकमपि प्रकाशयति तदत्र कः सिद्धान्तः**] वैसे ही नेत्र समीप के दृश्यों को भी दिखाता है और दूर स्थित आकाश में नक्षत्र तारागण को भी दिखाता है। इसमें सिद्धान्त क्या है?। **अत्रोच्यते** - इसके उत्तर में कहते हैं-

नाप्राप्तप्रकाशकत्वमिन्द्रियाणामप्राप्तेः सर्वप्राप्तेर्वा ।।१०४।।

सूत्रार्थ= इंद्रियाँ अपने विषयों से संबंद्ध हुए बिना विषयों का ज्ञान नहीं कराती हैं अन्यथा किसी भी विषय का ज्ञान न हो या सभी विषयों का ज्ञान हो जाए।

[**(इन्द्रियाणाम्-अप्राप्तप्रकाशकत्वं न) इन्द्रियाणि न ह्यप्राप्तं प्रकाशयन्ति**] सिद्धांती कहता है- जो इंद्रियों से अप्राप्त विषय है उनका प्रकाश नहीं कराती, [**यच्चाप्राप्तं दूरस्थं शब्दं रूपं वा प्रकाशयन्तीति प्रतीयते तन्न**] तथा और जो अप्राप्त दूरस्थ शब्द और रूप है जो आपको प्रकाशित हो रहा था वह ऐसा नहीं है, [**किन्तु तदपि विषयजातं प्राप्तमेव प्रकाशयन्तीति निश्चयः**] किन्तु विना विषयों के अप्राप्ति के कोई भी विषय का प्रकाश नहीं होता, [**इन्द्रियाणामतीन्द्रियत्वात् तदुक्तं पूर्वम्**] इंद्रियों के अतींद्रिय होने से ऐसा पूर्व ही कहा था ''**अतीन्द्रियमिन्द्रियं...**'' **(सांख्य० २.२३)** (ऋषियों का विचार सिद्धान्त यह है नेत्र इंद्रिय की किरणें विषय तक जाती है उसका चित्र रूपदर्शन करके आती है और हमें मन के माध्यम से ज्ञान कराती है आधुनिक विज्ञान की मान्यता है- बाहर से लाइट किरण आती हैं आँख के

इन्द्रियाणामतीन्द्रियत्वात् तदुक्तं पूर्वम् ''अतीन्द्रियमिन्द्रियं...''(सांख्य० २.२३) न हि शरीरसंसक्तानि गोलकानीन्द्रियाणि, तस्मात् प्राप्तं हि विषयं प्रकाशयन्तीन्द्रियाणि तेषां शक्तिस्वरूपत्वात् (अप्राप्तेः सर्वप्राप्तेः वा) यदि प्राप्तं न प्रकाशयेयुरिन्द्रियाणि तदा कस्मिंश्चिद् देशे काले वा प्राप्तस्य शब्दस्य रूपादिकस्य वा तस्मिन् देशे काले चाप्राप्तिर्भवेत्, भवति हि प्राप्तस्य प्राप्तिः। अथवा सर्वप्राप्तिर्भवेत् सर्वस्मिन् देशे काले च सर्वस्य विषयस्य प्राप्तिर्भवेत्, न च तथा भवति। तस्मात् प्राप्तप्राकाशकत्वमिन्द्रियाणआमिति सिद्धान्तः ।।१०४।।

ननु चेदिन्द्रियाणि प्राप्तं प्रकाशयन्ति तर्हि चक्षुस्तु तैजसं भवेद् यद् दूरस्थं नक्षत्रादिकं प्रति सर्पति तत्प्राप्तुं तैजस एव पदार्थ किरणरूपेण दूरमपसरति पुनराहंकारिकत्वमिन्द्रियाणामिति कथम्। अत्रोच्यते -

---

निकट फिर आँख देखती है फिर मस्तिष्क तक पहुंचाती फिर ज्ञान होता है) [**न हि शरीरसंसक्तानि गोलकानीन्द्रियाणि**] शरीर के साथ जो जुड़े है वह इंद्रियों के गोलक हैं इंद्रिय नहीं हैं इंद्रिय तो गोलक के अन्दर होती हैं, [**तस्मात् प्राप्तं हि विषयं प्रकाशयन्तीन्द्रियाणि तेषां शक्तिस्वरूपत्वात्**] इसलिए इंद्रिय अपने विषय को प्राप्त होती हैं उनकी शक्ति अधिक है उससे वह वस्तु अथवा विषय के स्वरूप का ज्ञान कराती हैं [**(अप्राप्तेः सर्वप्राप्तेः वा) यदि प्राप्तं न प्रकाशयेयुरिन्द्रियाणि तदा कस्मिंश्चिद् देशे काले वा प्राप्तस्य शब्दस्य रूपादिकस्य वा तस्मिन् देशे काले चाप्राप्तिर्भवेत्**] यदि प्राप्त का प्रकाश इंद्रियाँ न करें तब किसी भी देश व काल में कान में आए हुए शब्द का या आँख तक पहुंचे रूप का उस देश या काल में ज्ञान प्राप्ति नहीं होगा, [**भवति हि प्राप्तस्य प्राप्तिः**] इंद्रियों का जिन जिन से संबंध जुड़ेगा उन उनका ज्ञान होता है। [**अथवा सर्वप्राप्तिर्भवेत् सर्वस्मिन् देशे काले च सर्वस्य विषयस्य प्राप्तिर्भवेत्, न च तथा भवति**] यदि बिना विषयों से जुड़े किसी भी विषय का ज्ञान मान लिया जाए तो सभी देशों सभी कालों में हर वस्तु दिखेगी प्रत्येक विषय का प्रत्यक्ष होने लग जाएगा,और ऐसा तो होता नहीं। [**तस्मात् प्राप्तप्राकाशकत्वमिन्द्रियणामिति सिद्धान्तः**] इसलिए इंद्रियाँ जिन जिन विषयों से जुड़ेंगी उन्हीं-उन्हीं विषयों का ज्ञान कराएंगी जिनसे नहीं जुड़ेंगी उनका ज्ञान नहीं कराएंगी यही सिद्धान्त है ।।१०४।।

प्रश्न है यदि इंद्रियाँ अपने विषय से सम्बद्ध हो कर के ही ज्ञान प्राप्त कराती हैं, फिर तो चक्षु आग्नेय होना चाहिए क्योंकि वह दूर नक्षत्र आदि तक सरकेगा फिर वापिस आकर ज्ञान प्राप्त कराएगा तेजस का (ये आग्नेय तत्व होना चक्षु क्योंकि अग्नि फैलती है), क्योंकि तेजस पदार्थ जो आग्नेय तत्व है वह किरण के रूप में दूर तक फैलता है। फिर इंद्रियाँ अहंकार से बनी हैं ये कथन कैसे हुआ? इस पर कहते हैं-

न तेजोऽपसर्पणात् तैजसं चक्षुर्वृत्तितस्तत्सिद्धेः ।।१०५।।

सूत्रार्थ= अग्नि के गतिशील होने से चक्षु इंद्रियो को भी आग्नेय =अग्नि से उत्पन्न (तेजस) नहीं मानना चाहिए। चक्षु इंद्रियों की गति अपनी शक्ति से होती है।

[**(तेजोऽपसर्पणात्) तेजसोऽपसर्पणं तेजोऽपसर्पणमिति षष्ठीसमासः**] ये षष्ठी तत्पुरुष समास है, अग्नि का फैलना दूर तक जाना। [**तेजोविषयकमपसर्पणं भवति**] तेज का विषय है फैलना, [**अपसर्पणं**

न तेजोऽपसर्पणात् तैजसं चक्षुर्वृत्तितस्तत्सिद्धेः ।।१०५।।

(तेजोऽपसर्पणात्) तेजसोऽपसर्पणं तेजोऽपसर्पणमिति षष्ठीसमासः। तेजोविषयकमपसर्पणं भवति, अपसर्पणं तेजो धर्मस्तस्मात् (तैजसं चक्षुः-न) चक्षुस्तैजसं न मन्तव्यं यतः (वृत्तितः-तत्सिद्धेः) चक्षुषो वृत्तिद्वारेण दूरस्थं विषयं प्रत्यपसर्पणं भवति। भवन्ति हीन्द्रियाणां वृत्तयो याभिरिन्द्रियाणि दूरस्थमपि विषयं प्राप्नुवन्ति तत्समीपं सर्पन्ति, मनोऽपि त्वतैजसं सद् दूरमपसर्पति वृत्तिद्वारेण, सांख्यसिद्धान्ते मनोवदिन्द्रियाणामपि वृत्तयः स्वीक्रियन्ते, यथा मनसो वृत्तयस्तथेन्द्रियाणामपि वृत्तयो भवन्तीत्युक्तं हि पूर्वम् ''क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः'' (सांख्य० २.३२) ।।१०५।।

इन्द्रियाणां वृत्तिभिर्विषयप्राप्तिरुच्यते, वृत्तिसिद्धिः कथं भवतीत्युच्यते -

प्राप्तार्थप्रकाशलिंगाद् वृत्तिसिद्धिः ।।१०६।।

(प्राप्तार्थप्रकाशलिंगात्-वृत्तिसिद्धिः) प्राप्तमर्थ प्रकाशयन्ति ज्ञापयन्तीति लिंगमनुमानं वृत्तिसिद्धौ

तेजो धर्मस्तस्मात् (तैजसं चक्षुः-न) चक्षुस्तैजसं न मन्तव्यं] फैलना अग्नि का धर्म है इतने मात्र से ये भी नहीं समझ लेना चाहिए कि चक्षु भी तेजस है **[यतः (वृत्तितः-तत्सिद्धेः) चक्षुषो वृत्तिद्वारेण दूरस्थं विषयं प्रत्यपसर्पणं भवति]** क्योंकि चक्षु वृत्ति के द्वारा दूर तक के विषय तक फैलता है। **[भवन्ति हीन्द्रियाणां वृत्तयो याभिरिन्द्रियाणि दूरस्थमपि विषयं प्राप्नुवन्ति तत्समीपं सर्पन्ति]** इंद्रियों की अपनी-अपनी वृत्तियाँ होती हैं उन व्रत्तियों के द्वारा इंद्रियाँ दूर-दूर तक फैलती है और विषय को प्राप्त करती हैं उसके पास तक सरक के जाती हैं, **[मनोऽपि त्वतैजसं सद् दूरमपसर्पति वृत्तिद्वारेण]** मन भी अतेजस होता हुआ वृत्ति के द्वारा अलग अलग इंद्रियों के समीप जाता ज्ञान प्राप्त करता है, **[सांख्यसिद्धान्ते मनोवदिन्द्रियाणामपि वृत्तयः स्वीक्रियन्ते]** सांख्यदर्शन के सिद्धान्त में मन के समान इंद्रियों की भी वृत्तियाँ स्वीकार की जाती हैं (यहाँ इंद्रियों की वृत्ति से अर्थ है इंद्रियों का स्वभाव-शक्ति), **[यथा मनसो वृत्तयस्तथेन्द्रियाणामपि वृत्तयो भवन्तीत्युक्तं हि पूर्वम् ''क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः'' (सांख्य० २.३२)]** जैसे मन की पाँच व्रत्तियाँ होती हैं ऐसे ही इंद्रियों की भी अपनी अपनी व्रत्तियाँ होती हैं, जैसा कि दूसरे अध्याय में कहा ही था- इंद्रियों कि वृत्तियाँ है वह क्रम से भी होती हैं और अक्रम से भी।।१०५।।

विषयों का प्राप्ति इंद्रियों की वृत्ति से होती है। इंद्रियों की वृत्ति सिद्धि कैसे होती है? फैलती कैसे हैं? इस विषय को कहते हैं-

प्राप्तार्थप्रकाशलिंगाद् वृत्तिसिद्धिः ।।१०६।।

सूत्रार्थ= क्योंकि इंद्रियां विषय से सम्बद्ध होकर के ही ज्ञान प्राप्त कराती हैं इस प्रमाण से चंद्रमा का ज्ञान यहीं बैठे-बैठे हो रहा है इससे सिद्ध हो रहा है चंद्रमा और चक्षु इंद्रियों का सन्निकर्ष हो चुका है।

[(प्राप्तार्थप्रकाशलिंगात्-वृत्तिसिद्धिः) प्राप्तमर्थ प्रकाशयन्ति ज्ञापयन्तीति लिंगमनुमानं वृत्तिसिद्धौ यन्त्रस्य तारमिव] इंद्रियाँ प्राप्त हुए विषय का ही ज्ञान प्राप्त कराती हैं ये लिंग का अनुमान प्रमाण है वृत्ति सिद्धि में, जैसे यंत्र का तार से जुड़ाव-मेल-सम्बद्ध होता है।।१०६।।

यन्त्रस्य तारमिव ।।१०६।।

अथ किंस्वरूपा सेत्युच्यते –

भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः सम्बन्धार्थं सर्पतीति ।।१०७।।

(भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः) सा खल्विन्द्रियवृत्तिः, इन्द्रियस्य न भागोंऽशो न च गुणो रूपादिवत् किन्तु भागगुणाभ्यां वस्त्वन्तरं भिन्नं वस्तु। यतः (सम्बन्धार्थं सर्पति-इति) दूरस्थमपि विषयं प्रति सम्बन्धार्थं सर्पतीति हेतोः, इन्द्रियं विहाय तद्भागो गुणो वा न दूरं सर्पितुं शक्तस्तत्स्थत्वाद् वृत्तिस्तु विद्युत्तरंगवद् दूरमपि सर्पति ।।१०७।।

ननु वृत्तिरिन्द्रियाणां भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं तर्हि सा विशिष्टा क्रिया हि स्यात् पुनः क्रिया भवति द्रव्याश्रिता द्रव्ये हि व्यापृता न ततो बहिर्गमनशीलेति विप्रतिपत्तिर्निराक्रियते –

न द्रव्ये नियमस्तद्योगात् ।।१०८।।

अब वह वृत्ति कैसे स्वरूप वाली होती है। इस विषय में कहते हैं-

भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः सम्बन्धार्थं सर्पतीति ।।१०७।।

सूत्रार्थ=वृत्ति इंद्रियों का भाग और गुण दोनों ही नहीं है अपितु इनसे भिन्न स्वरूप वाली है। विषय से सम्बंध जोड़ने के लिए सरकती फैलती है।

[**(भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः) सा खल्विन्द्रियवृत्तिः, इन्द्रियस्य न भागोंऽशो न च गुणो रूपादिवत् किन्तु भागगुणाभ्यां वस्त्वन्तरं भिन्नं वस्तु**] वह जो इंद्रिय वृत्ति है, वह इंद्रिय का कोई भाग या अंश नहीं है और न ही रूपादि गुण है, किन्तु भाग और गुण इन दोनों से भिन्न वस्तु है। [**यतः (सम्बन्धार्थं सर्पति-इति) दूरस्थमपि विषयं प्रति सम्बन्धार्थं सर्पतीति हेतोः**] क्योंकि वह वृत्ति दूर स्थित विषय के साथ सम्बंध जोड़ने जाती है, [**इन्द्रियं विहाय तद्भागो गुणो वा न दूरं सर्पितुं शक्तस्तत्स्थत्वाद् वृत्तिस्तु विद्युत्तरंगवद् दूरमपि सर्पति**] इंद्रिय का भाग अंश या गुण इंद्रिय को छोड़कर दूर नहीं जा सकती, वृत्ति तो विद्युत तरंग के समान दूर जाती है जब दूर जाती है तो गुण अकेला नहीं जाता द्रव्य भी जाता है ।।१०७।।

प्रश्न है कि वृत्ति इंद्रिय के भाग और गुण दोनों से अलग स्वरूप वाली है फिर वह विशेष क्रिया वाली होनी चाहिए? जो क्रिया होती है वह द्रव्य में आश्रित होती है संयुक्त होती है, उससे बाहर तो वह जाती नहीं। इससे विरोधाभास आता है। इसका निराकरण करते हैं-

न द्रव्ये नियमस्तद्योगात् ।।१०८।।

सूत्रार्थ= चक्षु द्रव्य में यह नियम है कि वह सदा एक ही स्थान पर रहे उसमें संकोच विकास आदि धर्म का योग होने से वह दूर भी जाता है।

(इस सूत्र का भाष्य ठीक नहीं है)

(द्रव्ये नियमः-न) द्रव्ये हि क्रियाऽवतिष्ठेतेति नियमो नास्ति, द्रव्येऽप्यवतिष्ठते व्याप्रियते क्रिया। किन्तु (तद्योगात्) द्रव्ययोगात् तद्बहिरपि दूरं क्रियाऽपसर्पति यथा सूर्यस्य तापक्रिया सूर्येऽपि स्थिता सती दूरं दूरतरं दूरतमं चापसर्पति तथेन्द्रियाणां वृत्तिरूपा विशिष्टा क्रिया दूरमप्यपसर्पति ।। अन्यो व्याख्यामार्गः - (द्रव्ये नियमः-न) क्रियाया द्रव्ये नियमो नास्ति, भवतु द्रव्ये क्रिया परन्तु यत्र द्रव्यत्वं तत्रैव क्रियेति नियमो न, किन्तु (तद्योगात्) क्रियायोगाद् द्रव्यत्वं भवति तेन क्रिया द्रव्यात् पृथगपि व्याप्रियते हि, उदाहरणं तु पूर्ववदेव यथा वाऽग्नेर्धूमगतिस्ततः पृथगपि प्रतीयते ।। अथवा -

द्रव्ये हि क्रिया भवति तद्वृत्तौ कथमपसर्पणक्रियेत्यत्रोच्यते -

(द्रव्ये नियमः-न) द्रव्ये क्रियाया नियमो न, भवतु द्रव्येऽपि क्रिया परन्तु (तद्योगात्) क्रियायोगाद् वृत्तौ विद्युत्तरंगवत् क्रियेति निश्चयः, यतो दूरस्थमपि विषयं प्राप्नोतीन्द्रियं स्ववृत्त्या क्रियावत्या तस्मान्न दोषः ।।१०८।।

इस तरह की जो इंद्रियाँ है, इनके विषय में कहते हैं-

न देशभेदेऽप्यन्योपादानताऽस्मदादिवन्नियमः ।।१०९।।

सूत्रार्थ= मनुष्य को छोड़कर पशु-पक्षियों में भी इंद्रियों का उपादान अहंकार से भिन्न नहीं है। जैसे हमारी इंद्रियाँ अहंकार से बनी वैसे ही औरों की भी बनी।

[(देशभेदेऽ-अपि) शरीरभेदेऽपि मनुष्येतरशरीरेऽपि (अन्योपादानता न)। इन्द्रियाणां वृत्तिमतामहंकारातिरिक्तस्य भूतस्योपादानत्वं नास्ति किन्तु] शरीर भेद होने पर भी अर्थात मनुष्य शरीर से भिन्न शरीरों में जो इंद्रियाँ है जो कि वृत्ति वाली हैं उन इंद्रियों का भी उपदान अहंकार ही है कोई अहंकार से अलगा द्रव्य उसका उपादान नहीं है, किन्तु **[(अस्मदादिवत्-नियमः) अस्माकमिन्द्रियाणां यथाऽहंकार उपादानं तथैव तत्रापीन्द्रियाणामहंकारोपादानत्वनियमः]** जैसे मनुष्यो की इंद्रियों का उपादान अहंकार है वैसे ही पशु-पक्षियों की इंद्रियों का उपादान कारण भी अहंकार ही है।१०९।।

किन्तु -

निमित्तव्यपदेशात् तद्व्यपदेशः ।।११०।।

सूत्रार्थ= जो इंद्रियों को भौतिक नाम से कहा गया है उसका कथन इस दृष्टि से है कि पंचमहाभूत इंद्रियों के सहयोगी कारण है इससे इंद्रियों को पंचभौतिक कहा गया है।

[(निमित्तव्यपदेशात्) इन्द्रियाणामुपष्टम्भकत्वनिमित्तानि भूतानि तथाविधनिमित्तव्यपदेशात्] इंद्रियों के कार्य व्यवहार में सहयोग देने वाले पंचभूतादि हैं इस प्रकार का निमित्त कथन होने से **[(तद्व्यपदेशः) भूतव्यपदेशो भवतु भौतिकानीन्द्रियाणीति]** पाँच भूत इंद्रियों के कार्य करने में सहयोगी है इसलिए इंद्रियों को पंचभौतिक कह दिया, **[यथा दर्शनानन्तरे ''घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः'']** जैसा कि अन्य दर्शन में भी बताया है -नासिका, रसना, आँख, त्वचा, कान ये पांचों इंद्रियाँ भूतों से सहायता लेती हैं। **[(न्याय० १.१.१२) भवति हि निमित्ततोऽपि व्यपदेशस्तद्यथा ''अन्नमयं हि सोम्य मनः'' (छान्दो० ६.५.४) यथा वा ''यज्ञाद् भवति पर्जन्यः'' (गीता० ३.१४)]** इंद्रियाँ भूतों से नहीं ~~बनी पाँच भूतों से~~

तथाविधानां वृत्तिगतामिन्द्रियाणाम् -

न देशभेदेऽप्यन्योपादानताऽस्मदादिवन्नियमः ।।१०९।।

(देशभेदेऽ-अपि) शरीरभेदेऽपि मनुष्येतरशरीरेऽपि (अन्योपादानता न) । इन्द्रियाणां वृत्तिमतामहंकारातिरिक्तस्य भूतस्योपादानत्वं नास्ति किन्तु (अस्मदादिवत्-नियमः) अस्माकमिन्द्रियाणां यथाऽहंकार उपादानं तथैव तत्रापीन्द्रियाणामहंकारोपादानत्वनियमः ।।१०९।।

किन्तु -

निमित्तव्यपदेशात् तदव्यपदेशः ।।११०।।

(निमित्तव्यपदेशात्) इन्द्रियाणामुपष्टम्भकत्वनिमित्तानि भूतानि तथाविधनिमित्तव्यपदेशात् (तद्व्यपदेशः) भूतव्यपदेशो भवतु भौतिकानीन्द्रियाणीति, यथा दर्शनानन्तरे "घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः" (न्याय० १.१.१२) भवति हि निमित्ततोऽपि

सहयोग लेने के कारण भौतिक कहा जाता है। जैसे कि छंदोग्य उपनिषद् में कहा- हे सोम्य - मन अन्नमय है, अथवा ऐसे ही एक और उदाहरण है - यज्ञ से बादल बनता है ।।११०।।

इंद्रियाँ अहंकार से बनी है भिन्न-भिन्न शरीरों में सब जगह ऐसा आपने कहा। अब शरीरों का भेद दिखलाया जाएगा-

ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जं सांकल्पिकसांसिद्धिकं चेति न नियमः ।।१११।।

सूत्रार्थ= उष्मज, अंडज, जरायुज, उद्भिज्ज, सांकल्पिक और सांसिद्धिक ये छः प्रकार के शरीर होते हैं। परंतु छः ही प्रकार के हों ऐसा नियम नहीं है।

[(ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जम्) ऊष्मजं स्वेदजं दंशादिशरीरम्] भाप-पसीने-ऊष्मा से डांस पिस्सू जुआँ आदि के शरीर होते हैं, **[अण्डजं पक्षिसरीसृपशरीरम्]** दूसरे प्रकार के शरीर जो अंडे से पैदा होते हैं जैसे पक्षी, सरकने वाले सर्प आदि, **[जरायुजं मनुष्यादिगर्भादुत्पन्नं शरीरम्]** जरायुज= गरम थैली से उत्पन्न जो शरीर हैं वह तीसरे प्रकार के होते हैं जैसे मनुष्य, पशु आदि, **[उद्भिज्जं भूमेरुद्भेदनाज्जातं वृक्षादिकम् (सांकल्पिकसांसिद्धिकं च) चकारोऽप्यर्थः]** चौथे उद्भिज्ज जमीन को भेद कर फाड़कर पैदा होने वाले शरीर हैं जैसे- वृक्ष वनस्पति। "च" चकार शब्द जो सूत्र में है वह अपि अर्थ में हैं। **[सांकल्पिकं प्रारम्भसृष्टावार्षं शरीरमग्न्यादीनां वेदप्रकाशकमहर्षीणाम्]** प्रारम्भिक सृष्टि में ईश्वर ने सबको उत्पन्न किया पशु-पक्षी-वृक्ष वनस्पति और मनुष्य भी पैदा किए उनमें जो वेद प्रकाशक अग्नि, वायु आदि चार ऋषि हुए उनके वेदों का ज्ञान प्रकाश किया उनका शरीर संकल्प प्रधान होने के कारण वह सांकल्पिक शरीर वाले हुए, **सांसिद्धिकं स्वतः सिद्धं नैसर्गिकमादिसृष्टामवथुनसम्भवं शरीरमपि** सांसिद्धिक स्वाभाविक जो स्वयं पैदा हुए आदि सृष्टि में जो

व्यपदेशस्तद्यथा "अन्नमयं हि सोम्य मनः" (छान्दो० ६.५.४) यथा वा "यज्ञाद् भवति पर्जन्यः" (गीता०३.१४) ।।११०।।

इन्द्रियाणामाहंकारिकत्वं शरीरभेदेऽप्युक्तमथेदानीं स शरीरभेदः प्रदर्श्यते यच्छरीरम् -

ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जं सांकल्पिकसांसिद्धिकं चेति न नियमः ।।१११।।

(ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जम्) ऊष्मजं स्वेदजं दंशादिशरीरम्, अण्डजं पक्षिसरीसृपशरीरम्, जरायुजं मनुष्यादिगर्भादुत्पन्नं शरीरम्, उद्भिज्जं भूमेरुद्भेदनाज्जातं वृक्षादिकम् (सांकल्पिकसांसिद्धिकं च) चकारोऽप्यर्थः। सांकल्पिकं प्रारम्भसृष्टावार्षं शरीरमग्न्यादीनां वेदप्रकाशकमहर्षीणाम्, सांसिद्धिकं स्वतः सिद्धं नैसर्गिकमादिसृष्टामवथुनसम्भवं शरीरमपि, सांकल्पिकसांसिद्धिकभेदद्वयेनापि शरीरं भवतीत्यर्थः। सांसिद्धिकं स्वतः सिद्धं नैसर्गिकम्, यथा "न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः"

अमैथुनी सृष्टि हुई वे शरीर हैं, **सांकल्पिकसांसिद्धिकभेदद्वयेनापि शरीरं भवतीत्यर्थः** चार प्रकार के शरीर तो होते ही हैं दो और शरीर होते हैं एक सांकल्पिक दूसरा सांसिद्धिक, इस तरह छः प्रकार के शरीर हुए। सांसिद्धिकं स्वतः सिद्धं नैसर्गिकम् सांसिद्धिक वे हैं जो नैसर्गिक हैं स्वाभाविक है, [**यथा "न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः"**] शरीर में जो चेतना है वह स्वाभाविक नहीं है, एक एक भूत को जांच लिया चेतना भूतों में नहीं है [**(सांख्य० ३.२०) परन्तु (इति नियमः-न) इति षाड्विध्यस्य नियमो नास्ति**] परंतु ये छः प्रकार के शरीर सदा रहेंगे ऐसा नियम नहीं है [**सर्वदा सर्वत्र षड्विधानि शरीराणि भवेयुः**] सदा सर्वदा सभी जगह छः-छः प्रकार के शरीर मिलेंगे ऐसा नहीं है, [**सांकल्पिकसांसिद्धिके तु खल्वारम्भसृष्टावेव भवतः**] दो प्रकार के शरीर सांकल्पिक और सांसिद्धिक तो सृष्टि के आरम्भ में ही होते हैं। [**चातुर्विध्यस्यैव प्रवर्तनं तथैव प्रतिपादनमन्यत्र शास्त्रे न विरुध्यते**] चार पाकर के शरीर सृष्टि में चलते ही रहते हैं उनकी परंपरा चलती रहती है, ऐसा प्रतिपादन यहाँ भी है और अन्य शास्त्रों में भी है इसका विरोध नहीं है ।।१११।।

तत्र -

सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात् तद्व्यपदेशः पूर्ववत् ।।११२।।

सूत्रार्थ= सभी छः प्रकार के शरीरों में पृथ्वी मुख्य उपादान है विशेष होने से। ये शेष चार भूत इसमें सहयोगी हैं इसलिए पंचभौतिक कहा। सभी छः प्रकार के शरीरों में पृथ्वी मुख्य उपादान है विशेष होने से। ये शेष चार भूत इसमें सहयोगी हैं इसलिए पंचभौतिक कहा।

[**(सर्वेषु पृथिवी-उपादानम्) सर्वेषु षड्विधशरीरेषु पृथिवी खलूपादानं भवति**] सभी छः प्रकार के शरीरों में पृथ्वी उपादान कारण है [**(असाधारण्यात्) वैशेष्याद् विशिष्टत्वात् पृथिव्याः**] इन सभी पांचों तत्वों में पृथ्वी विशेष है उसकी विशिष्टता होने से, [**अत एव षड्विधमपि शरीरं पार्थिवम्**] अतएव ये छः प्रकार के शरीर पार्थिव हैं। [**अथ साधारण्यात् (तद्व्यपदेशः पूर्ववत्) पाञ्चभौतिकव्यपदेशः "पाञ्चभौतिको देहः"**] शेष जो चार तत्व है वह साधारण सहयोगी हैं, इसलिए उनको साथ जोड़ करके ये कथन किया कि शरीर पंचभौतिक है [**(सांख्य० ३.१७) पूर्ववद् भवति "निमित्तव्यपदेशाद् तद्व्यपदेशः"**

(सांख्य०३.२०) परन्तु (इति नियमः-न) इति षाड्विध्यस्य नियमो नास्ति सर्वदा सर्वत्र षड्विधानि शरीराणि भवेयुः, साल्पिकसांसिद्धिके तु खल्वारम्भसृष्टावेव भवतः। चातुर्विध्यस्यैव प्रवर्तनं तथैव प्रतिपादनमन्यत्र शास्त्रे न विरुध्यते ।।१११।।

तत्र -

सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात् तदव्यपदेशः पूर्ववत् ।।११२।।

(सर्वेषु पृथिवी-उपादानम्) सर्वेषु षड्विधशरीरेषु पृथिवी खलूपादानं भवति (असाधारण्यात्) वैशेष्याद् विशिष्टत्वात् पृथिव्याः, अत एव षड्विधमपि शरीरं पार्थिवम्। अथ साधारण्यात् (तद्व्यपदेशः पूर्ववत्) पाञ्चभौतिकव्यपदेशः ''पाञ्चभौतिको देहः'' (सांख्य०३.१७) पूर्ववद् भवति ''निमित्तव्यपदेशाद् तद्व्यपदेशः'' (११०) इति पूर्वोक्तसूत्रप्रकारात् पञ्चभूतनिमित्तत्वात् पञ्चभूतानि शरीरस्य निमित्तानि तु सन्त्युपष्टम्भकत्वात्तेषां तस्मादेव पाञ्चभौतिको देह उच्यते तत्रोपादानत्वं तु पृथिव्या

---

(११०) इति पूर्वोक्तसूत्रप्रकारात् पञ्चभूतनिमित्तत्वात्] ये पूर्ववत कथन है **[पञ्चभूतानि शरीरस्य निमित्तानि तु सन्त्युपष्टम्भकत्वात्तेषां]** उन पाँच भूतों के सहयोगी होने से इस कारण से शरीर को पाँच भौतिक कहा है **तस्मादेव पाञ्चभौतिको देह उच्यते तत्रोपादानत्वं तु पृथिव्या एव** इसी कारण से शरीर को पंचभौतिक कहा है क्योंकि पाँच भूतों का सहयोग है इन में पृथ्वी उपादान है ।।११२।।

इंद्रियों की उत्पत्ति अहंकार से बताई शरीर पार्थिव है पृथ्वी उसका उपादान कारण है और शरीर को जो पाँच भौतिक कहा वह भी सहयोगी होने के कारण से । उन पाँच भूतों का सद्भाव सत्ता होने से फिर इनमें प्राण का क्या स्वरूप है? उसके विषय में कहेंगे-

न देहारम्भकस्य प्राणत्वमिन्द्रियशक्तिः तस्तत्सिद्धेः ।।११३।।

सूत्रार्थ= देह का जो आरंभक है=वायु वो प्राण नहीं है। क्योंकि प्राण का स्वरूप इंद्रिय शक्ति से सिद्ध होता है अर्थात् जो इंद्रियों को शक्ति देने वाला तत्व है वह प्राण है।

[(देहारम्भकस्य प्राणत्वं न) देहारम्भकस्योपादानत्वेन पृथिवीरूपभूतस्य निमित्तत्वेन भूतपञ्चकस्य तन्मध्यादेकस्य वायोर्वा प्राणत्वं प्राणरूपे परिणम्यमानत्वं नास्ति] देह के आरंभ का उपादान पृथ्वी तत्व है उस पृथ्वी रूप भूत का और निमित रूप में चार भूत और जोड़ लेंगे तो पाँच भूतों का जो समुदाय है उस समुदाय के बीच में से एक वायु का प्राण स्वरूप नहीं है। **[वायुना प्राणः सन्दिह्यते तथा कृत्वैव वेदान्तदर्शनेऽपि प्राणस्य वायुविकारत्वं निषिध्यते]** वायु शब्द से प्राण का संदेह होता है यही सोच करके लोगों को संशय न हो इसलिए वेदांतदर्शन में कहा कि प्राण को वायु का विकार मत समझना **[''श्रेष्ठः प्राणः न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्''(वेदान्त० २.४.८-९)]** प्राण को वायु कि क्रिया न समझें प्राण का उपदेश अलग है **[किन्तु (इन्द्रियशक्तितःतत्सिद्धेः) इन्द्रियाणां शक्तितः प्राणसिद्धिरर्थादिन्द्रियाणां शक्तिः शक्तिरूपः शक्तिप्रदः प्राणः]** किन्तु सत्य यह है कि इंद्रियों की शक्ति से प्राण की सिद्धि होती है अर्थात् प्राण वह है जो इंद्रियों को कार्य करने कि शक्ति प्रदान करता है। **[उच्यते यथा'' प्राणः...या ते तनुर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या चक्षुषि या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः'' (प्रश्नो०**

एव ।।११२।।

इन्द्रियाणामुत्पत्तिरहंकारादुक्ता शरीरं च पार्थिवं तस्य पृथिव्युपादानकत्वात् तथा पाञ्चभौतिकं शरीरं निमित्तव्यपदेशात् तत्र पञ्चभूतनिमित्तसद्भावात् पुनः प्राणः किंस्वरूपः किम्प्रकृतिकश्चेत्यत्रोच्यते -

न देहारम्भकस्य प्राणत्वमिन्द्रियशक्तितस्तत्सिद्धेः ।।११३।।

(देहारम्भकस्य प्राणत्वं न) देहारम्भकस्योपादानत्वेन पृथिवीरूपभूतस्य निमित्तत्वेन भूतपञ्चकस्य तन्मध्यादेकस्य वायोर्वा प्राणत्वं प्राणरूपे परिणम्यमानत्वं नास्ति। वायुना प्राणः सन्दिह्यते तथा कृत्वैव वेदान्तदर्शनेऽपि प्राणस्य वायुविकारत्वं निषिध्यते ''श्रेष्ठः प्राणः न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्'' (वेदान्त० २.४.८-९) किन्तु (इन्द्रियशक्तितःतत्सिद्धेः इन्द्रियाणां शक्तितः प्राणसिद्धिरर्थादिन्द्रियाणां शक्तिः

२.१२) अत एवेन्द्रियाणि प्राणा उच्यन्ते ''अथ ह प्राणा अहंश्रेयसि व्यूदिरे...सा ह वागुच्चक्राम... चक्षुर्होच्चक्राम...श्रोत्रं होच्चक्राम'' (छान्दो० ५.१.६-७) इन्द्रियाणि हि न भौतिकानि तान्याहंकारिकाणि तस्मात् प्राणो न भौतिकोऽपित्वभौतिकः सः, उच्यते हि भूतेभ्यः पूर्वं तस्योत्पत्तिः ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी'' (मुण्डको० २.१.३) (यहाँ तक का अर्थ प्रसंग विरोध होने से छोड़ दिया)] [**स एष इन्द्रियशक्तिप्रदः प्राणोऽभौतिको जीवात्मनो जीवनधर्मः**] ये जो इंद्रियों को शक्ति देने वाला प्राण है वह अभौतिक है यह जीवात्मा की वह शक्ति है जिससे जीवन धारण होता है। [**उक्तं हि ''आत्मन एष प्राणो जायते''(प्रश्नो० ३.३)**] प्रश्नोपनिषद् में कहा कि - आत्मा से ही प्राण उत्पन्न होता है अर्थात आत्मा की ही एक शक्ति है [**यदा हि जीवात्मा शरीरे प्रविशति तदैव प्राणोऽपि प्रादुर्भवति**] जब जीवात्मा शरीर में प्रवेश करता है तभी प्राणों का प्रादुर्भाव होता है, [**उत्क्रान्ते जीवात्मनि प्राणोऽप्युत्क्रामति**] जब जीवात्मा शरीर छोड़ के चला जाता है तब प्राण भी शरीर छोड़ जाता है [**''तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमुत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा इन्द्रियाणि अनूत्क्रामन्ति'' (बृह० ४.४.२)**] जब आत्मा शरीर से निकलता है तब प्राण भी आत्मा के पीछे-पीछे निकल आता है और प्राणों के शरीर से निकालने पर सारे प्राण इंद्रियाँ भी प्राण के पीछे-पीछे निकल आते हैं। [**अनिरूद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च सूत्रविरुद्धं व्याख्यानं कृतम्**] अनिरुद्ध वृत्ति में और विज्ञानभिक्षु भाष्य में इस सूत्र की उल्टी विरुद्ध व्याख्या की है। [**सूत्रे तु देहारम्भकस्य प्राणत्वनिषेधः**] सूत्र में तो देह का आरंभ करने वाले वायु का प्राण रूप में निषेध किया था [**किन्तु तत्र प्राणस्य देहारम्भकत्वनिषेधः कल्पितः**] किन्तु वहाँ प्राण को देह के आरंभकत्व का निषेध किया जो ठीक नहीं [**''देहे प्राणदर्शनात् तस्य देहारम्भकत्वशंकामपनयति''**] देह में प्राण देखे जाने से उसका देहारंभकत्व होने की शंका को सूत्रकार ने दूर किया [**(अनिरुद्धः) ''प्राणस्य देहारम्भकत्वनिरसनम्'' (विज्ञानभिक्षुः)**] प्राण वायु नहीं है।।११३।।

[**प्राणस्याभौतिकत्वे जीवात्मधर्मत्वे सति भवति जीवात्मना सहैव तस्यापि शरीरे प्रवेशः**] प्राण के अभौतिक होने पर जीवात्मा का धर्म मानने पर जब जीवात्मा शरीर में प्रवेश करेगा, तब साथ में प्राण भी

शक्तिरूपः शक्तिप्रदः प्राणः । उच्यते यथा'' प्राणः...या ते तनुर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या चक्षुषि या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः'' (प्रश्नो० २.१२) अत एवेन्द्रियाणि प्राणा उच्यन्ते ''अथ ह प्राणा अहंश्रेयसि व्यूदिरे...सा ह वागुच्चक्राम... चक्षुर्होच्चक्राम...श्रोत्रं होच्चक्राम'' (छान्दो० ५.१.६-७) इन्द्रियाणि हि न भौतिकानि तान्याहश्रिकाणि तस्मात् प्राणो न भौतिकोऽपित्वभौतिकः सः, उच्यते हि भूतेभ्यः पूर्वं तस्योत्पत्तिः ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी'' (मुण्डको० २.१.३) स एष इन्द्रियशक्तिप्रदः प्राणोऽभौतिको जीवात्मनो जीवनधर्मः । उक्तं हि''आत्मन एष प्राणो जायते'' (प्रश्नो०३.३) यदा हि जीवात्मा शरीरे प्रविशति तदैव प्राणोऽपि प्रादुर्भवति, उत्क्रान्ते जीवात्मनि प्राणोऽप्युत्क्रामति''तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमुत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा इन्द्रियाणि अनूत्क्रामन्ति'' (बृह० ४.४.२) । अनिरूद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च सूत्रविरुद्धं व्याख्यानं कृतम् । सूत्रे तु देहारम्भकस्य प्राणत्वनिषेधः किन्तु तत्र प्राणस्य देहारम्भकत्वनिषेधः कल्पितः ''देहे प्राणदर्शनात्

प्रवेश करेगा, [**प्राणो हि भोक्तुर्जीवात्मनोऽधिष्ठानमाश्रयो वा**] प्राण ही जीवात्मा का भोक्ता अधिष्ठान है आश्रय है [**यथा वेदान्तदर्शने निर्दिष्टम् ''प्राणवता शब्दात्''**] जैसा कि वेदान्त दर्शन में निर्दिष्ट किया है- प्राण वाले जीवात्मा के साथ (ये शब्द प्रमाण है कि भोग जीवात्मा करता है) [**(वेदान्त० २.४.१५) तदा तस्य प्राणस्य शरीरे विशिष्टं कार्य प्रदर्श्यते -**] तब प्राण का शरीर में क्या विशेष कार्य है ये बताया जा रहा है-

भोक्तुरधिष्ठानाद् भोगायतननिर्माणमन्यथा पूतिभावप्रसक्तिः (प्रसक्तेः?) ।।११४।।

सूत्रार्थ=भोक्ता=जीवात्मा का अधिष्ठान वो प्राण, जीवात्मा के साथ प्राण शक्ति आएगी उसकी सहायता से शरीर का निर्माण होगा अन्यथा पूतिभाव= रज वीर्य सड़ जाएगा और शरीर का निर्माण नहीं होगा।

[**(भोक्तुः-अधिष्ठनात्) भोक्तुर्जीवात्मनोऽधिष्ठानादाश्रयभूतात् प्राणात् प्राणसञ्चाराज्जीवनसञ्चारात् (भोगायतननिर्माणम्) भोगायतनस्य शरीरस्य निर्माणं भवति, शरीरं हि भोगायतनम्**] भोक्ता जीवात्मा का अधिष्ठान आश्रय भूत होने से प्राण, प्राणों का संचार होने से अर्थात जीवन संचार होने से भोगायतन शरीर का निर्माण होता है शरीर ही भोग का आधार है जिसमें बैठकर जीवात्मा सुख-दुःख भोगता है [**(अन्यथा पूतिभावप्रसक्तिः) अन्यथा शुक्रशोणितयोस्तन्निष्पन्नशरीरपिण्डस्य च पूतित्वं गलितत्वं प्रसज्यते शववद्दूषितं भवेत् तन्निर्माणं न स्यादित्यर्थः**] यदि प्रारम्भ से ही आत्मा का शरीर में प्रवेश न माने तो (गर्भ रहने के दो महीने बाद माने तो) शुक्रशोणित हो जाएगा, शरीर निष्क्रिय हो जाएगा जो भ्रूंण है पिंड है वह नष्ट हो जाएगा गल जाएगा शवदूषित हो जाएगा फिर शरीर का निर्माण नहीं हो सकेगा।।११४।।

प्रश्न है- प्राण तो शरीर में जीवात्मा के साथ ही प्रवेश करता है, फिर प्राण उसका अधिष्ठान कैसे मान लिया गया? और वह जीवात्मा अपने चेतन स्वरूप से शरीर में जीवन का संचार कर ही देगा। फिर प्राण को अधिष्ठान मानने कि क्या आवश्यकता है?

अत्रोच्यते - इसका उत्तर देते हैं-

तस्य देहारम्भकत्वशंकामपनयति" (अनिरुद्धः) "प्राणस्य देहारम्भकत्वनिरसनम्" (विज्ञानभिक्षुः) ।।११३।।

प्राणस्याभौतिकत्वे जीवात्मधर्मत्वे सति भवति जीवात्मना सहैव तस्यापि शरीरे प्रवेशः, प्राणो हि भोक्तुर्जीवात्मनोऽधिष्ठानमाश्रयो वा यथा वेदान्तदर्शने निर्दिष्टम् "प्राणवता शब्दात्" (वेदान्त० २.४.१५) तदा तस्य प्राणस्य शरीरे विशिष्टं कार्यं प्रदर्श्यते -

भोक्तुरधिष्ठानाद् भोगायतननिर्माणमन्यथा पूतिभावप्रसक्तिः (प्रसक्तेः ?) ।।११४।।

(भोक्तुः-अधिष्ठानात्) भोक्तुर्जीवात्मनोऽधिष्ठानादाश्रयभूतात् प्राणात् प्राणसञ्चाराज्जीवनसञ्चारात् (भोगायतननिर्माणम्) भोगायतनस्य शरीरस्य निर्माणं भवति, शरीरं हि भोगायतनम् (अन्यथा पूतिभावप्रसक्तिः) अन्यथा शुक्रशोणितयोस्तन्निष्पन्नशरीरपिण्डस्य च पूतित्वं गलितत्वं प्रसज्यते शववद्दूषितं भवेत् तन्निर्माणं न स्यादित्यर्थः ।।११४।।

भृत्यद्वारा स्वाम्याधिष्ठितिर्नैकान्तात् ।।११५।।

सूत्रार्थ=सेवक के द्वारा ही स्वामी का अधिष्ठान अधिकार बनता है तभी वह स्वामी कहलाता है । इसलिए अकेला स्वामी जीवात्मा नहीं है।

[(स्वाम्यधिष्ठितिः-भृत्यद्वारा-एकान्तात्-न) जीवात्मा स्वामी प्राणस्तदधीनो भृत्यः] जीवात्मा स्वामी है प्राण उसके अधीन है भृत्य के समान, **[यथा हीन्द्रियाणि जीवात्मनो भृत्यरूपाणि तानि स्वस्वैकैकविषयप्रदर्शनकार्यं परिपालयन्ति तथैव प्राणस्तस्य भृत्यरूपः शरीरे जीवनसञ्चारकार्यं सम्पादयति]** जैसे इंद्रिय जीवात्मा के सेवक हैं वे अपने-अपने एक एक विषय का प्रदर्शन करने के कार्य का पालन करती हैं वैसे ही प्राण भी उसका भृत्य रूप है वह शरीर में जीवन संचार के कार्य को संपादित करेगा **[यतः स्वामिनोऽधिष्ठातृत्वं भृत्यद्वारा हि भवति]** क्योंकि जो स्वामी कहलाता है उसका कोई न कोई सेवक तो होना ही चाहिए तो प्राण आदि जीवात्मा के सेवक हैं **[न साक्षात् तस्माज्जीवनसञ्चारः प्राणस्यैव कार्यं न जीवात्मनः, तस्मान्न दोषः]** इसलिए शरीर में जीवन संचार करना ये प्राण का ही कार्य है सीधे जीवात्मा का नहीं। इसलिए इसमें कोई दोष नहीं है।।११५।।

परंतु जब जीवात्मा बाह्य भोग त्याग देता है तब वह किस अवस्था में चला जाता है? क्या उसका स्वरूप होता है? इस आकांक्षा पर कहते हैं-

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ।।११६।।

सूत्रार्थ= तीन अवस्थाओं में जीवात्मा ब्रह्म के तुल्य होता है, समाधि-सुषुप्ति और मोक्ष में।

[(समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु) जीवात्मा भोक्तृभावाद्वियुक्तः समाधौ सुषुप्तौ मोक्षे चावतिष्ठते] जब जीवात्मा बाह्य स्थूल भोग से विमुक्त हो जाता है तब वह समाधि में सुषुप्ति में या मोक्ष में रहता है **[तदा स**

ननु प्राणस्तु शरीरे प्रविशति जीवात्मना साकमेव पुनः प्राणः कथं तस्याधिष्ठानं कल्प्यते स एव जीवात्मा स्वचैतन्यस्वरूपेण शरीरे जीवनसञ्चारं कुर्यात् ।

अत्रोच्यते -

भृत्यद्वारा स्वाम्याधिष्ठितिर्नैकान्तात् ।।११५।।

(स्वाम्यधिष्ठितिः-भृत्यद्वारा-एकान्तात्-न) जीवात्मा स्वामी प्राणस्तदधीनो भृत्यः, यथा हीन्द्रियाणि जीवात्मनो भृत्यरूपाणि तानि स्वस्वैकैकविषयप्रदर्शनकार्यं परिपालयन्ति तथैव प्राणस्तस्य भृत्यरूपः शरीरे जीवनसञ्चारकार्यं सम्पादयति यतः स्वामिनोऽधिष्ठातृत्वं भृत्यद्वारा हि भवति न साक्षात् तस्माज्जीवनसञ्चारः प्राणस्यैव कार्यं न जीवात्मनः, तस्मान्न दोषः ।।११५।।

समाहितः सुषुप्तो मुक्तो वा भवति] तब वह समाहित होकर एकाग्रचित होकर सुषुप्ति या मोक्ष में चला जाता है, [**तदा तस्य (ब्रह्मरूपता) ब्रह्मगुणसमापन्नता भवति**] तब जीवात्मा के ब्रह्म गुण की समानता होती है, **सांसारिकसुखदुःखे न तदा भवतः** उस समय जीवात्मा को सांसरिक सुख-दुःख नहीं होते (यहाँ यह पंक्ति मोक्ष की दृष्टि में ही ठीक है सुषुप्ति समाधि में नहीं)। [**अत्र विज्ञानभिक्षुभाष्ये ब्रह्मरूपताविषये लिखितं यत् ''अस्मच्छास्त्रे ब्रह्मशब्द औपाधिकपरिच्छेदमालिन्यादिरहितपरिपूर्णचेतनसामान्यवाचीति विवेक्तव्यम्''**] यहाँ इस सूत्र के विज्ञान भिक्षु भाष्य में ब्रह्म रूपता के विषय में लिखा है-हमारे शास्त्र में जो ब्रह्म शब्द है उस उपाधि की मलिनता से रहित हुआ, अंतःकरण आदि के संयोग से जो दोष आ जाते हैं उनसे जब व्यक्ति छुट जाता है, तब वह अपने शुद्ध स्वरूप में आ जाता है, यह ब्रह्म शब्द का विवेचन है [**(विज्ञानभिक्षुः) भवत्विदं विज्ञानभिक्षुमतं न तु सांख्यसूत्रकारमतम्**] विज्ञानभिक्षु ने जो ऐसी बात कही है यह उसका अपना मत हो सकता है, सांख्यसूत्रकार ने तो ऐसा कहा नहीं, [**न हि सांख्यसूत्रमेंतादृशमुपलभ्यते यस्मिन् ब्रह्मलक्षणं सूचितं भवेत्**] सांख्य सूत्र कोई भी ऐसा उपलब्ध नहीं होता जिसमें इस तरह का ब्रह्म का लक्षण बताया गया हो, [**यदि ह्यनेन सूत्रेण लक्ष्यमिदं स्यात्**] यदि इस सूत्र से ये कहना चाहते होते [**तर्हि ''समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु स्वरूपता'' इति सूत्रेण भाव्यम्**] तो ऐसा कहते कि -समाधि सुषुप्ति और मोक्ष में ब्रह्म की स्वरूपता होती है, [**'ब्रह्मरूपता' इत्यस्य स्थाने 'स्वरूपता' पदं स्यात्**] ब्रह्मरूपता इस शब्द के स्थान पर स्वरूपता शब्द होना चाहिए था। [**परन्तु पश्यति त्वाचार्यो न तदानीं ब्रह्मता स्वरूपता भवतीति कृत्वा 'ब्रह्मरूपता' इति पदेन वर्णयति**] परंतु सूत्रकार आचार्य कपिल मुनि इस बात को भली प्रकार समझते हैं कि उन तीन अवस्थों में जीवात्मा स्वरूप नहीं हो जाता । इसलिए उन्होने ब्रह्मरूपता इस पद का वर्णन किया है। [**अनिरुद्धवृत्त्याऽपि विज्ञानभिक्षुमतं न पुष्यते किन्तु खण्ड्यते ''ब्रह्मणा सह तुल्यरूपता''**] अनिरुद्ध के द्वारा भी विज्ञानभिक्षु का मत पुष्ट नहीं होता बल्कि खण्डन करता है ''उस समय जीवात्मा कि ब्रह्म के समान तुल्य रूपता हो जाती है'' [**(अनिरुद्धः) लोकेऽपि प्रत्यक्षमुपलभ्यते यत् सुषुप्तौ पुरुषस्य चैतन्यं न प्रतिभासते तदानीं तु स स्वचैतन्यानिभिज्ञः सन् ब्रह्मणि निमग्नो ब्रह्मतुल्यो निष्प्रपञ्चो भवति**] लौकिक प्रत्यक्ष में भी जब पुरुष सोता है तब वह बाह्य व्यवहारों से पृथक् हो जाता है (बाहर क्या हो रहा है? इससे अनभिज्ञ रहता है) वह ईश्वर में निमग्न रहता है या प्रगाड़ निद्रा में सोया हुआ है वह प्रपंच रहित हो जाता है। [**अथ स्वस्मिन् शास्त्रे यद्विषये**

परन्तु यदा जीवात्मा भोक्तृत्वं त्यजति तदा स कस्यामवस्थायां किं रूपोऽवतिष्ठत इत्याकांक्षायामुच्यते –

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ।।११६।।

(समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु) जीवात्मा भोक्तृभावाद्वियुक्तः समाधौ सुषुप्तौ मोक्षे चावतिष्ठते तदा स समाहितः सुषुप्तो मुक्तो वा भवति, तदा तस्य (ब्रह्मरूपता) ब्रह्मगुणसमापन्नता भवति, सांसारिकसुखदुःखे न तदा भवतः। अत्र विज्ञानभिक्षुभाष्ये ब्रह्मरूपताविषये लिखितं यत् ''अस्मच्छास्त्रे ब्रह्मशब्द औपाधिकपरिच्छेदमालिन्यादिरहितपरिपूर्णचेतनसामान्यवाची न तु ब्रह्ममीमांसायामिवैश्वर्योपलक्षितपुरूषमात्रवाचीति विवेक्तव्यम्'' (विज्ञानभिक्षुः) भवत्विदं विज्ञानभिक्षुमतं न तु सांख्यसूत्रकारमतम्, न हि सांख्यसूत्रमेतादृशमुपलभ्यते यस्मिन् ब्रह्मलक्षणं सूचितं भवेत्, यदि ह्यनेन सूत्रेण लक्ष्यमिदं स्यात् तर्हि ''समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु स्वरूपता'' इति सूत्रेण भाव्यम्, 'ब्रह्मरूपता' इत्यस्य स्थाने 'स्वरूपता' पदं स्यात्। परन्तु पश्यति त्वाचार्यो न तदानीं ब्रह्मता स्वरूपता भवतीति कृत्वा 'ब्रह्मरूपता' इति पदेन वर्णयति। अनिरुद्धवृत्त्याऽपि विज्ञानभिक्षुमतं न पुष्यते किन्तु खण्ड्यते

परिभाषा लक्षणं वा न क्रियते तत्र शास्त्रान्तरे कृता परिभाषा लक्षणं वाऽभिप्रेयते] यदि अपने शास्त्र में किसी वस्तु के विषय में परिभाषा लक्षण नहीं किया तो उससे जो मिलता जुलता शास्त्र है उसमें जो लक्षण किया गया है वह स्वीकार्य होता है, ऐसी शास्त्रों की पद्धति है (यदि सांख्य में सीधा-सीधा ईश्वर के विषय में नहीं कहा तो सांख्य का योग समान शास्त्र है उसमें ईश्वर का कथन पर्याप्त किया है)। **अतोऽयुक्तं विज्ञानभिक्षुमतम्** अतः विज्ञानभिक्षु का मत ठीक नहीं है।।११६।।

ब्रह्म रूपता तो तीनों अवस्थों में है, इन तीनों अवस्थों में परस्पर क्या भेद है ये प्रदर्शित करते हैं-

द्वयोः सबीजत्वमन्यस्य तद्धतिः ।।११७।।

सूत्रार्थ= दो अवस्थाओं में भोग का संस्कार बचा रहता है, जबकि तीसरी में उसका विनाश हो जाता है।

[(द्वयोः सबीजत्वम्) द्वयोः प्राथमिकयोः समाधिसुषुप्त्योर्भोक्तृभावस्य स बीजत्वमस्ति सशरीरत्वात् तयोरवस्थयोः] प्राथमिक दो अवस्थाओं में समाधि और सुषुप्ति में भोक्तृभाव (भोक्तपन) का उसमें कारण (संस्कार) विद्यमान है, क्योंकि ये दोनों अवस्थाए शरीर सहित है, **[पुनर्व्युत्थाने जागरणे च भोगमनुवर्तते हि जीवात्मा, तस्य तदा सशरीरत्वात्]** फिर जब समाधि छोड़कर व्युत्थान अवस्था में और सुषुप्ति छोड़कर जागृत अवस्था में आएगा इन दो स्थितियों में वह भोग का अनुवर्तन करता ही है, क्योंकि तब वह सशरीर है, **[परन्तु (अन्यस्य तद्धतिः) समाधिसुषुप्तिभ्यामन्यस्य मोक्षस्य भोक्तृत्वबीजभावनाशो भवति]** परंतु समाधि और सुषुप्ति से जो तीसरी अवस्था है मोक्ष की, उसमें भोगने का जो संस्कार है उसका नाश हो जाता है **[तत्र जीवात्मनोऽशरीरत्वादेष तत्र भेदः]** ।।११७।।

समाधि और सुषुप्ति तो साक्षात दिखती है वह शरीर रूप में बैठा है परंतु मोक्ष तो दिखता नहीं है, फिर

"ब्रह्मणा सह तुल्यरूपता" (अनिरुद्धः) लोकेऽपि प्रत्यक्षमुपलभ्यते यत् सुषुप्तौ पुरुषस्य चैतन्यं न प्रतिभासते तदानीं तु स स्वचैतन्यानिभिज्ञः सन् ब्रह्मणि निमग्नो ब्रह्मतुल्यो निष्प्रपञ्चो भवति। अथ स्वस्मिन् शास्त्रे यद्विषये परिभाषा लक्षणं वा न क्रियते तत्र शास्त्रान्तरे कृता परिभाषा लक्षणं वाऽभिप्रेयते। अतोऽयुक्तं विज्ञानभिक्षुमतम् ।।११६।।

तत्र ब्रह्मरूपतायास्तिसृषु खल्ववस्थासु भेदः प्रदर्श्यते -

द्वयोः सबीजत्वमन्यस्य तद्धतिः ।।११७।।

(द्वयोः सबीजत्वम्) द्वयोः प्राथमिकयोः समाधिसुषुप्त्योर्भोक्तृभावस्य बीजत्वमस्ति सशरीरत्वात् तयोरवस्थयोः, पुनर्व्युत्थाने जागरणे च भोगमनुवर्तते हि जीवात्मा, तस्य तदा सशरीरत्वात्, परन्तु (अन्यस्य तद्धतिः) समाधिसुषुप्तिभ्यामन्यस्य मोक्षस्य भोक्तृत्वबीजभावनाशो भवति तत्र जीवात्मनोऽशरीरत्वादेष तत्र भेदः ।।११७।।

मोक्ष को क्यूँ माने?

द्वयोरिव त्रयस्यापि दृष्टत्वान्न तु द्वौ ।।११८।।

सूत्रार्थ= दो जैसी अवस्थाओं (समाधि और सुषुप्ति) में इनके जैसे तीसरी अवस्था (मोक्ष) भी शास्त्रों में देखे जाने, से केवल दो से कल्याण नहीं होगा।

[(द्वयोः-इव त्रयस्य-अपि दृष्टत्वात्) समाधिसुषुप्त्योरिव तृतीयस्य मोक्षस्यापि भवतु कृतकृत्यता] समाधि और सुषुप्ति के समान जो तीसरी अवस्था है, मोक्ष उसी में कृतकृत्यता होती है। **['त्रयस्येत्यार्षप्रयोगः'** "त्रयस्य शब्द को अशुद्ध समझें अपितु आर्ष प्रयोग है" **[दृष्टत्वाच्छास्त्रदृष्टत्वात् खलु** सूत्र में दृष्टत्त्वाद शब्द भी है इसका अधिकतर अर्थ किया जाता है "प्रत्यक्ष देखे जाने से" परंतु मोक्ष तो प्रत्यक्ष दिखता नहीं इसलिए अर्थ बदलेगा- "शास्त्र में देखे जाने से" शास्त्र में लिखा है कि मोक्ष होता है **[(न तु द्वौ) न तु द्वे एव तृतीयो मोक्षोऽपि भवति]** मोक्ष की चर्चा शास्त्र में देखे जाने से दो ही अवस्था न समझें तीसरी अवस्था मोक्ष को भी समझें **[तथा च मोक्षवद् दुःखातीते न ते द्वे समाधिसुषुप्ती समे वा कृतकृत्यतायाम्]** तथा मोक्ष के समान दुख पूरी तरह से हट जाना इन दो अवस्थाओं समाधि सुषुप्ति में नहीं होती, इनमें दुःख से छूटने की कृतकृत्यता नहीं होगी, **[तस्मान्न ताभ्यां कृतकृत्यता तथा शास्त्रं च]** इसीलिए इन दो से पूरी सफलता नहीं मानी जाएगी, जब तक मोक्ष न मिल जाए और ऐसा ही शास्त्र भी कहता है **["तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"(यजु० ३१.१८)]** परमात्मा को जानकार ही जीवात्मा मृत्यु को पार कर सकता है, और कोई रास्ता नहीं है मोक्ष प्राप्ति के लिए **["यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति"(मुण्डको० ३.३.३)]** जब देखने वाला (जीवात्मा) देखता है चमकीले वर्ण वाले को जो जगत का बनाने वाला है स्वामी है सर्वत्र व्यापक है जो वेद का ज्ञान देने वाला है। तब वह विद्वान व्यक्ति पुण्य पाप दोनों को छोड़कर सब दोषो से रहित होकर परम समता को प्राप्त हो जाता है। **["भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य**

समाधिसुषुप्ती तु प्रत्यक्षं दृश्यते तयोः शरीरे वर्तमानत्वात् परन्तु मोक्षस्तु न दृश्यते तयोरेव भवतु कृतकृत्यता । अत्रोच्यते -

द्वयोरिव त्रयस्यापि दृष्टत्वान्न तु द्वौ ।।११८।।

(द्वयोः-इव त्रयस्य-अपि दृष्टत्वात्) समाधिसुषुप्त्योरिव तृतीयस्य मोक्षस्यापि भवतु कृतकृत्यता ।'त्रयस्येत्यार्षप्रयोगः' दृष्टत्वाच्छास्त्रदृष्टत्वात् खलु (न तु द्वौ) न तु द्वे एव तृतीयो मोक्षोऽपि भवति तथा च मोक्षवद् दुःखातीते न ते द्वे समाधिसुषुप्ती समे वा कृतकृत्यतायाम्, तस्मान्न ताभ्यां कृतकृत्यता तथा शास्त्रं च "तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" (यजु०३१.१८) "यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" (मुण्डको०३.३.३) "भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति" (केनो० २.१३) "तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये" (छान्दो० ६.१४.२) ।।११८।।

धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति"(केनो० २.१३)] ज्ञानी जन प्रत्येक वस्तु में ईश्वर का चिंतन करके इस संसार को छो(ड़)कर के मोक्ष को प्राप्त करते हैं [**"तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये"(छान्दो० ६.१४.२)**] उसका मोक्ष होने में केवल उतनी ही देर है जितनी कि शरीर छोड़ने में।।११८।।

[**सुषुप्तिसमाधिमोक्षेषु मोक्षस्योत्कृष्टतमत्वमुक्तं तस्य च ताभ्यां भेदोऽपि दर्शितः**] समाधि सुषुप्ति और मोक्ष में से मोक्ष सबसे उत्तम है, ऐसा बताया गया है और उसका (मोक्ष) भेद भी दिखलाया, [**अधुना सुषुप्तिसमाध्योः समाधेरुत्कृष्टतरत्वमुच्यते**] अब समाधि और सुषुप्ति की तुलना करते हैं जिसमें समाधि उत्कृष्ट है [**सुषुप्तितः समाधिवैशिष्ट्यं प्रदर्श्यते**] सुषुप्ति की अपेक्षा समाधि की विशेषता प्रदर्शित करते हैं [**यदभ्यासवैराग्याभ्यां लब्धसमाधिर्भवति जीवन्मुक्तो जीवन् सन् मुक्तो न तु नितान्तमुक्तस्तस्य सशरीरत्वात्**] जो अभ्यास और वैराग्य से समाधि प्राप्त होती है, जिससे वह जीवन मुक्त हो जाता है, किन्तु नितांत मुक्त नहीं होगा शरीर धारण करने से, [**स च चरमदेहो यावद्देहस्तावद्दोपयोगः क्लेशकर्मयागवान् भोगारूढश्चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरो नानर्थभाग् भवति**] और वह चरम देह वाला है, जब तक शरीर रहेगा तब तक दोष-उपयोग चलता रहेगा, क्लेश से जुड़ता रहेगा कर्म करता रहेगा भोगारूढ़ रहेगा चक्रभ्रमणवत (जैसे कुम्हार का चाक थोड़ी देर के लिए घूमता रहता है) जब तक शरीर रहेगा तब तक भोगुपभोग होता रहेगा किन्तु उससे कोई अनर्थ का भागी नहीं होता [**"तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये"(छान्दो० ६.१४.२)**] उसको उतनी ही देर है मोक्ष में जबतक उसका शरीर न छुट जाए [**इत्येवाह -**] इस बात को आगे कहते हैं-

वासनयाऽनर्थख्यापनं* दोषयोगेऽपि न निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम् ।।११९।।

सूत्रार्थ= इन संस्कारों से अनर्थ का दर्शन होता है, जो जीवन मुक्त है उसको सामान्य खाना पीना आदि व्यवहार चलता रहता है उसको और क्लेश नहीं घेरते दोष नहीं लगता क्योंकि उसकी वासनाएं नष्ट हो चुकी होती हैं । वासनाओं के नष्ट होने से पुनर्जन्म को देने वाले पाप पुण्य नहीं लगते।

[**(वासनया-अनर्थख्यापनम्) वासनया खल्वनर्थप्रदर्शनं भवति**] वासना (संस्कारों) से अनर्थ

सुषुप्तिसमाधिमोक्षेषु मोक्षस्योत्कृष्टतमत्वमुक्तं तस्य च ताभ्यां भेदोऽपि दर्शितः, अधुना सुषुप्तिसमाध्योः समाधेरुत्कृष्टतरत्वमुच्यते सुषुप्तितः समाधिवैशिष्ट्यं प्रदर्श्यते यदभ्यासवैराग्याभ्यां लब्धसमाधिर्भवति जीवन्मुक्तो जीवन् सन् मुक्तो न तु नितान्तमुक्तस्तस्य सशरीरत्वात्, स च चरमदेहो यावद्देहस्तावद्देहोपयोगः क्लेशकर्मयागवान् भोगारूढश्चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरो नानर्थभाग् भवति ''तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये'' (छान्दो० ६.१४.२) इत्येवाह -

वासनयाऽनर्थख्यापनं* दोषयोगेऽपि न निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम् ।।११९।।

(वासनया-अनर्थख्यापनम्) वासनया खल्वनर्थप्रदर्शनं भवति, अभ्यासवैराग्याभ्यां लब्धसमाधिकस्य चरमदेहस्य जीवन्मुक्तस्य वासनानावतिष्ठते तस्य चरमदेहस्य वासनाऽभावात् (दोषयोगे-अपि न) क्लेशकर्मयोगे भोगारूढस्यापि नानर्थप्रदर्शनं भवति, यतस्तथाभूतस्य चरमदेहस्य योगिनः पुण्यपापकर्मजातिर्न विद्यते, उक्तं हि ''अशुक्लकृष्णा संन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरमदेहानामिति'' (योग० ४.७ व्यासः) (निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम्) दोषाणां क्लेशकर्मादीनां निमित्तं वासना वासनया

का प्रदर्शन होता है, [**अभ्यासवैराग्याभ्यां लब्धसमाधिकस्य चरमदेहस्य जीवन्मुक्तस्य वासनानावतिष्ठते**] अभ्यास और वैराग्य से जिसने समाधि को प्राप्त कर लिया है वह चरम देह बाला जीवन मुक्तावस्था वाले में वासनाएं नहीं टहरती [**तस्य चरमदेहस्य वासनाऽभावात्**] उस चरम देह वाले की वासनाओं का अभाव होने से [**(दोषयोगे-अपि न) क्लेशकर्मयोगे भोगारूढस्यापि नानर्थप्रदर्शनं भवति**] क्लेश कर्म आदि से युक्त होने भोगारूढ़ होने पर भी उसका अनर्थ नहीं होगा, [**यतस्तथाभूतस्य चरमदेहस्य योगिनः पुण्यपापकर्मजातिर्न विद्यते**] क्योंकि इस प्रकार चरम देह वाले व्यक्ति योगी की कर्म जाती पाप पुण्य वाली नहीं होती, [**उक्तं हि ''अशुक्लकृष्णा संन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरमदेहानामिति''(योग० ४.७ व्यासः)**] जो सन्यासी होते हैं रागद्वेष आदि क्लेश जिनके नष्ट हो चुके हैं और अंतिम देह वाले हैं उनके पाप-पुण्य वाले कर्म नहीं होते [**(निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम्) दोषाणां क्लेशकर्मादीनां निमित्तं वासना वासनया हि ते प्रवर्धन्ते**] जो दोष हैं क्लेश कर्मादि का जो निमित्त है वह वासना है, वासना से ही क्लेश आगे बढ़ते हैं [**वासनारूपस्य निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वं मोक्षे भवति**] वासनाएं प्रधान रूप से पुनर्जन्म का कारण होती है उनके नष्ट होने पर मोक्ष हो जाता है, [**वासनारूपनिमित्ताभावात्तस्यालब्धसमाधिकस्य जीवन्मुक्तस्य नानर्थदर्शनं भवति**] वासनारूप निमित्त के नष्ट हो जाने पर समाधि प्राप्त व्यक्ति जो जीवन मुक्त हो चुका है उसे अनर्थ का दर्शन नहीं करना पड़ता है, [**सुषुप्तिगतस्य तु सुषुप्तेरनन्तरं भवत्येवानर्थदर्शनं वासनाया विद्यमानत्वात्**] जो सुषुप्त अवस्था में जब जागृत वास्ता में आएगा तो वासनाएं तो उसमें विद्यमान हैं वह तो अनर्थ का दर्शन करेगा ही। [**तस्मात् सुषुप्तितः समाधिरुत्कृष्टतरा तत्र ब्रह्मसम्पत्तिश्चाप्युत्कृष्टतरा सस्वात्मबोधा**] इसलिए सुषुप्ति से समाधि उत्कृष्ट है, इस समाधि में ब्रह्म की प्राप्ति भी बहुत अच्छी है उसमें अपने स्वरूप का ज्ञान होता है और ईश्वर के स्वरूप का भी ज्ञान होता है ।।११९।।

[**उच्यते हि वासनयाऽनर्थख्यापनम्, सा च वासना जीवन्मुक्तस्य नास्तीति न युक्तं**] पूर्वपक्षी कहता है-वासना से अनर्थ का दर्शन होता है, और वह वासना का संस्कार जीवन मुक्त में नहीं होता, ये कथन

हि ते प्रवर्धन्ते वासनारूपस्य निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वं मोक्षे भवति, वासनारूपनिमित्ता-भावात्तस्यालब्धसमाधिकस्य जीवन्मुक्तस्य नानर्थदर्शनं भवति, सुषुप्तिगतस्य तु सुषुप्तेरनन्तरं भवत्येवानर्थदर्शनं वासनाया विद्यमानत्वात्। तस्मात् सुषुप्तितः समाधिरुत्कृष्टतरा तत्र ब्रह्मसम्पत्तिश्चाप्युत्कृष्टतरा सस्वात्मबोधा ।।११९।।

उच्यते हि वासनयाऽनर्थख्यापनम्, सा च वासना जीवन्मुक्तस्य नास्तीति न युक्तं यतो वासना संस्कारः, संस्कारादेव जीवन्मुक्तस्य चरमदेहस्य भोगक्रियाऽन्तिमा कथ्यते परन्तु क्रियासन्तानात् संस्कारसन्तानः प्रवर्तते इत्थमेकैकां क्रियां प्रति नवीन एकैकः संस्कारः प्रवर्तेत तेन लब्धसमाधिकस्य जीवन्मुक्तस्यापि संस्कारापत्तिर्वासनाप्रसक्तिः स्यात् । अत्रोच्यते -

---

अयुक्त है [**यतो वासना संस्कारः, संस्कारादेव जीवन्मुक्तस्य चरमदेहस्य भोगक्रियाऽन्तिमा कथ्यते**] क्योंकि वासना संस्कार है, और संस्कार से ही जीवन मुक्त चरम देह वाला जो व्यक्ति है उसकी भोग क्रिया अन्तिम कही जाती है [**परन्तु क्रियासन्तानात् संस्कारसन्तानः प्रवर्तते**] परंतु क्रिया की संतान से संस्कार की संतान उत्पन्न होती है [**इत्थमेकैकां क्रियां प्रति नवीन एकैकः संस्कारः प्रवर्तेत**] इस प्रकार से अनेक क्रियाएँ होंगी एक-एक क्रिया से एक-एक नया संस्कार बनेगा [**तेन लब्धसमाधिकस्य जीवन्मुक्तस्यापि संस्कारापत्तिर्वासनाप्रसक्तिः स्यात्**] इस कारण से जिसको समाधि प्राप्त हो गई, जीवन मुक्त हो गया उसको भी अनेक संस्कारों की प्राप्ति हो जाएगी। **अत्रोच्यते** - इसका उत्तर देते हैं-

एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्तको न तु प्रतिक्रियं संस्कारभेदा बहुकल्पनाप्रसक्तेः ।।१२०।।

सूत्रार्थ= एक संस्कार से अनेक क्रियाएँ हो जाती है, प्रत्येक क्रिया के लिए अलग अलग संस्कार की अपेक्षा नहीं होती। यदि प्रत्येक क्रिया का संस्कार माना जाए तो संस्कारों का अंत भी नहीं होगा जिससे मोक्ष भी असंभव हो जाएगा।

[**(एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्तकः) एको हि संस्कारः क्रियां निर्वर्तयति यावत्क्रियासमाप्तिः क्रियासन्तानसमाप्तिर्वा स एवैकः संस्कारः प्रवर्तते**] एक ही संस्कार क्रिया को उत्पन्न करता है जब तक वो क्रिया समाप्त हो, एक ही संस्कार चलता रहता है [**(न तु प्रतिक्रियं संस्कारभेदाः) न हि प्रतिक्रियं प्रतिक्रियासन्तानं भिन्नभिन्नः संस्कारो नवो नवः संस्कारः समुद्भवति**] और न ही प्रत्येक क्रिया के लिए या क्रिया संतान के लिए अलग-अलग संस्कार नया-नया संस्कार उत्पन्न नहीं होता [**(बहुकल्पनाप्रसक्तेः) क्रियासंस्कारयोः पौनःपुन्येन बहुकल्पनाप्रसंगो भवेत्**] यदि प्रत्येक क्रिया का संस्कार मानें तो बार-बार क्रिया से बहुत से संस्कार हो जाएंगे, बहुकल्पना प्रसंग हो जाएगा तो मोक्ष होना असंभव हो जाएगा, [**न तदा तत्कल्पनासमाप्तिर्भवेत्**] और तब उस कल्पना से समाप्ति संस्कार की न होगी। [**अतः स लब्धसमाधिको जीवन्मुक्तश्चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः पूर्वसंस्कारलेशतो भोगक्रियामनुतिष्ठन् न पुनः संस्कारवशगो भवति**] अतः वह समाधि प्राप्त व्यक्ति जो जीवन मुक्त हो गया है चक्रभ्रमणवत शरीर को धारण करता हुआ जो पूर्व के संस्कार बचे हुए हैं उसके कारण वह भोग क्रिया का अनुष्ठान करता रहता है और नए नए संस्कारों के अधीन

एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्तको न तु प्रतिक्रियं संस्कारभेदा बहुकल्पनाप्रसक्तेः ।।१२०।।

(एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्तकः) एको हि संस्कारः क्रियां निर्वर्तयति यावत्क्रियासमाप्तिः क्रियासन्तानसमाप्तिर्वा स एवैकः संस्कारः प्रवर्तते (न तु प्रतिक्रियं संस्कारभेदाः न हि प्रतिक्रियं प्रतिक्रियासन्तानं भिन्नभिन्नः संस्कारो नवो नवः संस्कारः समुद्भवति (बहुकल्पनाप्रसक्तेः) क्रियासंस्कारयोः पौनःपुन्येन बहुकल्पनाप्रसंगो भवेत्, न तदा तत्कल्पनासमाप्तिर्भवेत्। अतः स लब्धसमाधिको जीवन्मुक्तश्चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः पूर्वसंस्कारलेशतो भोगक्रियामनुतिष्ठन् न पुनः संस्कारवशगो भवति तस्य तदन्तिमभोगक्रिया संस्कारलेशतः प्रवृत्ता संस्कारलेशतो भोगः समाप्यते, यथा कुलालचक्रं वेगरूपसंस्काराद् भ्रमति संस्कारलेशान्नाग्रे पुनः संस्कारसम्भवः। उक्तं यथा ''नापनीतक्लेशः 'कर्माशयः' कर्मसंस्कारः प्ररोहसमर्थः'' (योग० २.१३ व्यासः) तस्मात्सुषुप्तिमतः

वह नहीं होता [**तस्य तदन्तिमभोगक्रिया संस्कारलेशतः प्रवृत्ता संस्कारलेशतो भोगः समाप्यते**] उसकी अन्तिम भोग क्रिया बचे हुए संस्कार से उत्पन्न होती है और बचे हुए संस्कार से भोग को प्राप्त करता रहता है, यथा [**कुलालचक्रं वेगरूपसंस्काराद् भ्रमति संस्कारलेशान्नाग्रे पुनः संस्कारसम्भवः**] जैसे कुम्हार का चाक वेग रूपी संस्कार से घूमता रहता है और वेग के समाप्त होने पर वह नहीं घूमता फिर संस्कार संभव नहीं होता दुबारा संस्कार से नहीं घूमता।[**उक्तं यथा ''नापनीतक्लेशः 'कर्माशयः' कर्मसंस्कारः प्ररोहसमर्थः''**] जैसे कहा है- जिस कर्माशय का जो क्लेश हटा दिया गया है ऐसी स्थिति में वे कर्म संस्कार अगला जन्म करने में समर्थ नहीं होगा [**(योग० २.१३ व्यासः) तस्मात्सुषुप्तिमतः समाधिमान् तूत्कृष्टतरः**] इसलिए सुषुप्ति अवस्था की स्थिति की तुलना में जो समाधि प्राप्त है उसकी स्थिति उत्कृष्ट है।।१२०।।

[**मोक्षे तु स्याज्जीवात्मनो भोक्तृत्वाभावस्तस्य स्वरूपनिष्ठत्वात्, समाधौ भोक्तृत्वाभावो भवेद् भोक्तृबुद्धेर्निरुद्धत्वात्**] समाधि काल में भी भोग से निवृत्ति होती है, भोगने की बुद्धि वृत्ति को रोक रखा है ईश्वर से आनंद प्राप्त करने के कारण, [**सुषुप्तौ भोक्तृत्वाभावो गाढ़निद्रयाऽभिभूतत्वात्**] सुषुप्ति में भी भोक्तृभाव से निरुद्ध है प्रगाढ़ निद्रा में क्या भोग करेगा, [**अनेन बाह्यबुद्धिर्भोक्तृत्वसाधिकेति गम्यते**] जब जीवात्मा सुख-दु:ख आदि का भोग करेगा तो बाह्य बुद्धि से भोग करेगा [**तर्हि यदुज्भिज्जं शरीरं निर्दिष्टं तत्र बाह्यबुद्धेरभावोऽस्ति**] आपने छः प्रकार के शरीर कहे थे उनमें जो उद्भिज्ज शरीर हैं उसमें तो बाह्य बुद्धि का अभाव है [**तेन तत्र भोक्तृत्वं न सिध्यति**]इससे वहाँ तो भोग सिद्ध होता ही नहीं,[**भोक्तृत्वाभावाच्छरीरत्वमपि न सेत्स्यतीत्याशंकायामाह** -] भोगतृत्व का अभाव होने से वह शरीर भी कैसे सिद्ध हो पाएगा? ऐसी आशंका पर कहते हैं-

न बाह्यबुद्धिनियमः ।

वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतितृणवीरुधादीनामपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत् ।।१२१-१२२।।

सूत्रार्थ= भोग में बाह्य बुद्धि का नियम नहीं है, भोग में आंतरिक बुद्धि से भी सुख-दु:ख होता है । जैसे वृक्ष, गुल्म, लता, औषधि, वनस्पति, घास, इन सब भोक्ताओं का भी भोगायतन है, जैसे पहले और शरीर

समाधिमान् तूत्कृष्टतरः ।।१२०।।

मोक्षे तु स्याज्जीवात्मनो भोक्तृत्वाभावस्तस्य स्वरूपनिष्ठत्वात्, समाधौ भोक्तृत्वाभावो भवेद् भोक्तृबुद्धेर्निरुद्धत्वात्, सुषुप्तौ भोक्तृत्वाभावो गाढनिद्रयाऽभिभूतत्वात्, अनेन बाह्यबुद्धिर्भोक्तृत्वसाधिकेति गम्यते तर्हि यदुद्भिज्जं शरीरं निर्दिष्टं तत्र बाह्यबुद्धेरभावोऽस्ति तेन तत्र भोक्तृत्वं न सिध्यति, भोक्तृत्वाभावाच्छरीरत्वमपि न सेत्स्यतीत्याशंकायामाह -

न बाह्यबुद्धिनियमः ।

वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतितृणवीरुधादीनामपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत् ।। १२१-१२२।।

बताए थे ।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति - दोनों सूत्रों में परस्पर संबंध है-

[(बाह्यबुद्धिनियमः-न) भोक्तृत्वे बाह्यबुद्धेर्नियमो नास्ति बाह्य बुद्धि हो तभी भोग हो ऐसा नियम नहीं है, भवति बाह्यबुद्ध्याऽपि भोक्तृत्वं परन्तु तत्र न नियमः] बाह्य बुद्धि से भी भोग होता है, परंतु बाह्य बुद्धि होगी तभी भोग होगा ऐसा प्रतिबंध नहीं है, **[यतो बाह्यबुद्धिमन्तरेणापि खल्वन्तर्बुद्ध्या भोक्तृत्वं भवति हि]** क्योंकि बाह्य स्थूल भोग के बिना भी आंतरिक दृष्टि से बुद्धि से सुख-दुःख का ज्ञान भोग होता है **[(वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतिवीरुधादीनाम्-अपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत्) वृक्षादीनामुद्भिज्जशरीराणामन्तःसंज्ञानामपि जीवात्मभोगायतनत्वमस्ति पूर्ववदूष्मजादिजंगमशरीरवत्]** वृक्ष आदि उद्भिज्ज शरीरों में आंतरिक अनुभूतियाँ होती हैं, जैसे कि पहले छः प्रकार के शरीर बताए थे उष्मज आदि जंगम शरीर के समान।।१२१-१२२।।

तदेतद् वृक्षादीनां भोक्तृभोगायतनत्वमन्तःसंज्ञत्वं च स्मृतेश्च ।।१२३।।

सूत्रार्थ= श्रुति से और स्मृति से ये सिद्ध है कि वृक्षों में आत्मा है, कर्मफल है योनि है।

[(स्मृतेः-च) स्मृतेश्च श्रुतेश्च सिध्यति ये स्मृति और श्रुति से सिद्ध है। **श्रुतिस्तावत् ''सूर्य चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठ शरीरैः''(ऋ० १०.१६.३)]** श्रुति का प्रमाण देते हुए कहते हैं, (इस प्रमाण को ऋग्वेद से लिख लेंगे) **[''योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः। स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथा श्रुतम्''(कठो० २.५.७)]** कुछ जीवात्माएँ शरीर को धारण करने के लिए योनि को प्राप्त करते हैं, जिनमें कुछ पशु आदि का शरीर प्राप्त करते हैं। अन्य जीवात्माएँ वृक्ष वनस्पति का शरीर प्राप्त करते हैं। जैसा कर्म होता है वैसा फल (शरीर) मिलता है । **[''अस्य महतो वृक्षस्य यो मूले...यदेकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति... सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति... जीवापेतं किलेदं म्रियते''(छान्दो० ६.११.१-३)]** इस बड़े महान वृक्ष के मूल में कोई कुल्हाड़ी चलाए तो वह कुछ पानी छोड़ता है। जब वह जीवात्मा इतने बड़े वृक्ष के एक शाखा को छोड़ देता है

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -

(बाह्यबुद्धिनियमः-न) भोक्तृत्वे बाह्यबुद्धेर्नियमो नास्ति, भवति बाह्यबुद्ध्याऽपि भोक्तृत्वं परन्तु तत्र न नियमः, यतो बाह्यबुद्धिमन्तरेणापि खल्वन्तर्बुद्ध्या भोक्तृत्वं भवति हि (वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतिवीरुधादीनाम्-अपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत्) वृक्षादीनामुद्भिज्जशरीराणामन्तःसंज्ञानामपि जीवात्मभोगायतनत्वमस्ति पूर्ववदूष्मजादिजंगमशरीरवत् ।।१२१-१२२।।

तदेतद् वृक्षादीनां भोक्तृभोगायतनत्वमन्तःसंज्ञत्वं च स्मृतेश्च ।।१२३।।

(स्मृतेः-च) स्मृतेश्च श्रुतेश्च सिध्यति । श्रुतिस्तावत् ''सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठ शरीरैः'' (ऋ० १०.१६.३) ''योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः। स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथा श्रुतम्'' (कठो० २.५.७) ''अस्य महतो वृक्षस्य यो मूले...यदेकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति... सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति...

वहाँ उसका संबंध टूट जाता है अथवा वह शाखा सूख जाती है, जब पूरे वृक्ष को जीवात्मा छोड़ देता है तो पूरा वृक्ष सूख जाता है। जब जीव वृक्ष को छोड़ देता है तो वह वृक्षरूपी शरीर मर जाता है [**स्मृतिः खल्वपि ''शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः''(मनु० १२.९)**] स्मृति वचन भी यह कहता है- शरीर से जो कर्म दोष किए जाते हैं उन शारीरिक अपराधों के कारण मनुष्य स्थावर आदि योनि को प्राप्त होता है [**सूत्रे स्मृतिनिर्देशस्य प्राधान्यम् 'श्रुतेश्च' इत्येतेन सूत्रेणापि भवितव्यमासीत्**] सूत्र में स्मृति निर्देश की प्रधानता है - 'श्रुतेश्च' इस प्रकार से भी सूत्र हो सकता था। [**परन्तु 'न बाह्यबुद्धिनियमः' इति कथनस्य प्राधान्यात् स्मृतिकथनप्राधान्यमत्र**] परंतु इस प्रकार से सूत्र नहीं बनाया ''स्मृतेश्च'' स्मृति की प्रधानता रखी है। पिछले सूत्र में कहा था की ''बाह्य बुद्धि का नियम नहीं है'' , इस कथन को ध्यान में रखते हुए, यहाँ स्मृति की प्रधानता होगी। [**यतस्तत्र वृक्षादीनामन्तर्बुद्धित्वं स्पष्टं विहितम् ''अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः''(मनु० १.४९)**] क्योंकि इन वृक्ष आदि को स्मृति शास्त्रों में अंतस अनुभूति बाला स्पष्ट रूप से बताया है ''ये जो वृक्ष आदि योनि के प्राणी है ये आन्तरिक अनुभूति वाले सूख-दुःख को भोगते रहते हैं''।।१२३।।

वृक्षादि यदि जीव हैं देह है और वहाँ बो आन्तरिक अनुभूति वाले है। प्रश्न है- वो कर्म का आचरण कैसे करेंगे? क्योंकि कर्म तो बाह्य संज्ञा से संपादित होते हैं। इस आकांक्षा पर कहते हैं-

न देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं वैशिष्ट्यश्रुतेः ।।१२४।।

सूत्रार्थ= केवल शरीर मात्र मिल जाने से कर्म करने का अधिकार नहीं मिलता, क्योंकि कर्म करने के लिए विशेष योग्यता की अपेक्षा होती है।

[**(देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं न) देहमात्रत एव कर्माधिकारित्वं कर्मानुष्ठायित्वं कर्मविधानं नास्ति**] सिद्धांती कहते हैं- वृक्षादि को कर्म करने का अधिकार नहीं है, देहमात्र के मिलने से कर्म करने का

जीवापेतं किलेदं म्रियते'' (छान्दो० ६.११.१-३) स्मृतिः खल्वपि ''शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः'' (मनु० १२.९) सूत्रे स्मृतिनिर्देशस्य प्राधान्यम् 'श्रुतेश्च' इत्येतेन सूत्रेणापि भवितव्यमासीत्। परन्तु 'न बाह्यबुद्धिनियमः' इति कथनस्य प्राधान्यात् स्मृतिकथनप्राधान्यमत्र यतस्तत्र वृक्षादीनामन्तर्बुद्धित्वं स्पष्टं विहितम् ''अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः'' (मनु० १.४९) ।।१२३।।

वृक्षादयो जीवानां देहास्तत्र च तेऽन्तःसंज्ञा पुनस्तैः कथं कर्माण्यनुष्ठातव्यानि, कर्माणि तु बहिः संज्ञया सम्पद्यन्ते-इत्याकांक्षायामुच्यते -

न देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं वैशिष्ट्यश्रुतेः ।।१२४।।

(देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं न) देहमात्रत एव कर्माधिकारित्वं कर्मानुष्ठायित्वं कर्मविधानं नास्ति

अधिकार या कर्म का अनुष्ठान अथवा कर्म का विधान नहीं है। [**यतः (वैशिष्ट्यश्रुतेः) विशिष्टत्वश्रवणात्**] क्योंकि कर्म करने के लिए विशेष योग्यता (होनी चाहिए) सुनी जाने से, [**न हि सर्वप्राणिनां कर्मविधायिका श्रुतिः**] सब प्राणियों को कर्म करने का अधिकार है, ऐसा कोई श्रुति वचन नहीं है। [**किन्तु ''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।''(यजु० ४०.२)**] किन्तु शास्त्र में तो ये कहा गया है कि - कर्म करते हुए व्यक्ति सौ वर्ष तक जीने कि इच्छा करे। (ये कर्म करने का अधिकार मनुष्यों को है)यदि मनुष्य निष्काम कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे तो वह कर्म के बंधन में नहीं पड़ेगा, इसके अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं। [**नरस्य-मनुष्यस्य कर्मविधायिका श्रुतिरस्ति**] कर्म करने का अधिकार मनुष्य को है, सबको नहीं। [**तस्मान्न दोषो वृक्षादीनामन्तःसंज्ञत्वात् कर्माभावे**] इसलिए वृक्ष आदि आंतरिक अनुभूति वाले है वे कोई कर्म नहीं कर पाते तो इसमें कोई दोष नहीं है, [**नहि वृक्षादिषु कर्मापेक्षा ते तु भोगदेहा एव**] वृक्षादि में कर्म की अपेक्षा नहीं है वे तो भोग देह है ।।१२४।।

यतो हि -

त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः ।।१२५।।

सूत्रार्थ= तीन प्रकार के शरीरों की जीवात्माओं के लिए व्यवस्था है, एक है कर्मदेह जिसमें कर्म की प्रधानता है, दूसरा है उपभोग देह पशुपक्षियों की, उसमें उपभोग की प्रधानता है और तीसरा है उभयदेह- जिसमें मनुष्य कर्म भी करते हैं और भोग भी भोगते हैं।

[**(त्रिधा व्यवस्था) त्रिप्रकारा व्यवस्था देहविषये सा चेत्थं यत् (त्रयाणां कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः) सांकल्पिकशरीरवतां वेदप्रकाशकमहर्षीणामग्न्यादीनां कर्मदेहः**] देह के विषय में शरीर के विषय में तीन प्रकार की व्यवस्था है, एक है कर्मदेह दूसरा है भोगदेह और तीसरा उभयदेह (ये जो तीन देह है ये प्रधानता के कारण तीन प्रकार के हैं)। जैसेकि पहले छः प्रकार के शरीर हुए सांकल्पिक शरीर वाले वेद का प्रकाश करने वाले अग्नि आदि चार ऋषियों के जो शरीर थे, वे कर्म देह थे।, [**नहि ते**

।यतः (वैशिष्ट्यश्रुतेः) विशिष्टत्वश्रवणात्, न हि सर्वप्राणिनां कर्मविधायिका श्रुतिः । किन्तु ''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।'' (यजु० ४०.२) नरस्य-मनुष्यस्य कर्मविधायिका श्रुतिरस्ति । तस्मान्न दोषो वृक्षादीनामन्तःसंज्ञत्वात् कर्माभावे, नहि वृक्षादिषु कर्मापेक्षा ते तु भोगदेहा एव ।।१२४।।

यतो हि -

त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः ।।१२५।।

(त्रिधा व्यवस्था) त्रिप्रकारा व्यवस्था देहविषये सा चेत्थं यत् (त्रयाणां कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः) सांकल्पिकशरीरवतां वेदप्रकाशकमहर्षीणामग्न्यादीनां कर्मदेहः, नहि ते भोगाय प्रादुर्भूताः किन्तु वेदप्रकाशनं हि तेषां कर्म तस्मात् ते कर्मदेहाः। मनुष्येतराणां पशुपक्ष्यादीनां प्राणिनामुद्भिज्जानां वृक्षादीनां चोपभोगदेहस्तेषां कर्माचरणासम्भवात्। विधिनिषेधदृष्ट्या

भोगाय प्रादुर्भूताः किन्तु वेदप्रकाशनं हि तेषां कर्म तस्मात् ते कर्मदेहाः] वे जो चार ऋषियों के शरीर थे वे भोग के लिए उत्पन्न नहीं हुए थे किन्तु वेद का प्रकाश करना पढ़ना-पढ़ाना, प्रचार करना यही मुख्य कर्म था, इसलिए वे संसार में आए और कर्मदेह कहलाए। **[मनुष्येतराणां पशुपक्ष्यादीनां प्राणिनामुद्भिज्जानां वृक्षादीनां चोपभोगदेहस्तेषां कर्माचरणासम्भवात्]** मनुष्यों से जो भिन्न हैं पशु-पक्षी आदि हैं इन सबका जो शरीर है वह उपभोग देह है (ये भोगप्रधान देह हैं) इसलिए कर्म का आचरण असम्भव होने से, ये कर्म देह नहीं हैं अपितु भोग देह हैं। **[विधिनिषेधदृष्ट्या पुण्यपापकर्मानुष्ठानासम्भवात् ते तूपभोगदेहाः]** (यहाँ असम्भव न लिखकर गौंण लिखना चाहिए) विधि निषेध की दृष्टि से उनके लिए कर्म का विधान ज्यादा नहीं है भोग प्रधान है। **[मनुष्याणामुभयदेहः कर्मभोगदेहास्ते कर्मापि कुर्वन्ति भोगञ्चानुतिष्ठन्ति]** मनुष्यों के जो शरीर हैं वे उपभोग देह हैं, क्योंकि ये कर्म भी करते है और कर्मों के फल को भोगते भी हैं, **[तस्मान्मनुष्याःकर्मोपभोगदेहाः]** इसलिए मनुष्यो का कर्म करने का और भोगने का देह होने से उभय देह कहलाता है ।।१२५।।

किन्तु -

न किञ्चिदप्यनुशयिनः ।।१२६।।

सूत्रार्थ= जो अनुशयी जीव है वह जिस-जिस शरीर में जाएगा वहाँ उसका कोई भोग या कर्म नहीं होगा, उसकी तो केवल यात्रा मात्र है।

[(अनुशयिनः किञ्चित्-अपि न) अनुशयः पुनर्जन्मार्थपुण्यपापसंस्कारस्तथा परशरीरावेशपराक्रमश्च यस्यास्तीति साऽनुशयी] अनुशय= पुनर्जन्म की प्राप्ति के लिए पुण्य पाप का संस्कार पर शरीर में प्रवेश करने की शक्ति है जिस योगी की वो भी अनुशयी है (मरने के साथ आत्मा अपने कर्म साथ लेकर चलता है वो अनुशयी और जो योगी है मृतक शरीर में घुसने की योग्यता रखता है वह भी अनुशयी होता

पुण्यपापकर्मानुष्ठानासम्भवात् ते तूपभोगदेहाः। मनुष्याणामुभयदेहः कर्मभोगदेहास्ते कर्मापि कुर्वन्ति भोगञ्चानुतिष्ठन्ति, तस्मान्मनुष्याःकर्मोपभोगदेहाः।।१२५।।

किन्तु -

न किञ्चिदप्यनुशयिनः ।।१२६।।

(अनुशयिनः किञ्चित्-अपि न) अनुशयः पुनर्जन्मार्थपुण्यपापसंस्कारस्तथा परशरीरावेशपराक्रमश्च यस्यास्तीति साऽनुशयी तस्य किञ्चिदपि तद्देहे कर्म वा भोक्तव्यं वा नास्ति यतो न स तद्देहाभिमानी स तु तत्रानुशयी। अनुशयी भवति द्विविधः, एकस्तु वृक्षादिषु स्थावरयोनिषु तथाऽन्यो मनुष्यादिषु जंगमयोनिषु।

है। किन्तु योगी का मृतक शरीर में घुसना ये बात अमान्य है) [**तस्य किञ्चिदपि तद्देहे कर्म वा भोक्तव्यं वा नास्ति**] अनुशयी जीव जिस देह में बैठा है वह न तो कोई कर्म करेगा और न कोई भोग करेगा [**यतो न स तद्देहाभिमानी स तु तत्रानुशयी**] क्योंकि वह उस शरीर का अभिमानी जीव नहीं है वह तो वहाँ अनुशयी है। [**अनुशयी भवति द्विविधः, एकस्तु वृक्षादिषु स्थावरयोनिषु तथाऽन्यो मनुष्यादिषु जंगमयोनिषु**] अनुशयी दो प्रकार का होता है, एक तो वृक्षादि स्थावर योनि में और दूसरा मनुष्यादि में जंगम चलने फिरने वाले में (ये दूसरे वाला चलने फिरने वाला अमान्य है)। [**यस्तु वृक्षादिषु भवत्यनुशयी स तु परतन्त्रः स्वकर्मानुसारेणानुशयवान् सन् चन्द्रलोकादावृत्य वृक्षादिष्वनुशेते**] किसी जीव को मनुष्य योनि के बाद वृक्ष आदि में बैठा हुआ जो अनुशयी जीव है वह परतंत्र है, अपने कर्म के अनुसार वह वृक्ष आदि में बैठा है। [**उक्तं यथा ''कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च''**] जैसा कि वेदान्त दर्शन में कहा गया है- कर्म पूरा हो जाने पर वो अनुशयी हो जाता है श्रुति और स्मृति से ये सिद्ध होता है कि शरीर छो्ने के बाद जीवात्मा दूसरे शरीर में जाता है, और जैसा यहाँ से गया था वैसा ही लौटकर आता है [**(वेदान्त० ३.१.८) ''अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्''**] जिनमें जीवात्मा पहले से निवास कर रहे हैं ऐसे शरीरों में अनुशयी जीव कुछ देर के लिए जाकर टिक जाता है [**(वेदान्त० ३.१.२४) ''अथ य इमें ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते...ते पुनर्निवर्तन्ते**] और जो यहाँ गाँव में निवास करके यज्ञादि सामाजिक परोपकार दान आदि के कार्य करते हैं, वे फिर से लौट आते हैं उनका पुनर्जन्म हो जाता है [**यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति। अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्रूप एव भवति। तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्...''(छान्दो० ५.१०.२-७)**] जैसे मरने के बाद आत्मा आकाश में जाता है आकाश से वायु, वायु से धुएँ की स्थिति को प्राप्त हो गए, धुएं से कच्चे बादल में गया। कच्चे बादल से घने बादल में, घने बादल से वर्षा के साथ-साथ धरती पर आए, फिर जो खेती में चावल, जौं, औषधि, वनस्पति हैं उनमें वो आत्माएँ पहुँच जाते हैं। वहाँ से निकालना उनका मुश्किल हो जाता है पुनर्जन्म में पड़ जाते हैं, जिस-जिस अन्न में वह गए वह अन्न जिस-जिस मनुष्य ने खाया उसके शरीर में चला गया और कोई पशु खाएगा तो उसके शरीर में चला जाता है फिर उसके वीर्य से उसके संतान के रूप में जन्म लेता है। जो-जो यहाँ अच्छे कार्य करते हैं वे शीघ्र ही शरीर छोडने के बाद

यस्तु वृक्षादिषु भवत्यनुशयी स तु परतन्त्रः स्वकर्मानुसारेणानुशयवान् सन् चन्द्रलोकादावृत्य वृक्षादिष्वनुशेते। उक्तं यथा "कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च" (वेदान्त० ३.१.८) "अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्" (वेदान्त० ३.१.२४) "अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते...ते पुनर्निवर्तन्ते यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति । अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्रूप एव भवति । तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्..." (छान्दो० ५.१०.२-७) ते एतेऽनुशयिनो वृक्षादिषु खल्वनुशयाना वृक्षादीनामन्तःसंज्ञया भोगमनुतिष्ठतां तद्भोगेन सम्पर्करहितास्तत्र एवानुशेरते न तेषां भोगस्तत्र भवति तत्र तु तेषां यात्रामात्रमेव

अच्छी योनि को प्राप्त होते हैं [**ते एतेऽनुशयिनो वृक्षादिषु खल्वनुशयाना वृक्षादीनामन्तःसंज्ञया भोगमनुतिष्ठतां तद्भोगेन सम्पर्करहितास्तत्र एवानुशेरते**] ये समस्त अनुशयी जीव वृक्षादि में निवास करते हुए और जो अन्तः सज्ञा से भोग कर रहे हैं वृक्ष शरीर से। उस वृक्ष वाली आत्माओं से ये अनुशयी आत्मा संपर्क रहित होती हैं केवल वहाँ निवास करते हैं [**न तेषां भोगस्तत्र भवति तत्र तु तेषां यात्रामात्रमेव**] वहाँ ये अनुशयी जीव का कोई भोग या कर्म नहीं होता केवल इनकी तो यात्रा मात्र है। [**अन्योऽनुशयी भवति योगी यः परदेहावेशपराक्रमवान् भवति**] दूसरा अनुशयी योगी है वह दूसरे के देह में प्रवेश करने कि क्षमता वाला है [**स परदेहेऽनुशेते परदेहे प्रविशति**] वह योगी दूसरे देह में अनुशयी बन कर घुस जाता है और वहाँ निवास करता है। [**उक्तं हि योगदर्शने "बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः"**] योगदारशन के सूत्र में कहा है कि- बंधन का कारण शिथिल कर देने से और शरीर से बाहर निकले की क्रिया समझ लेने से चित्त दूसरे के शरीर में प्रविष्ट होता है [**(योग० ३.३८) तथाविधस्य परशरीराविष्टस्यानुशयिनो योगिनस्तच्छरीरवर्ति न कर्म न च भोक्तव्यं तत्र परशरीरे भवति**] इस प्रकार से दूसरे के शरीर में प्रविष्ट हुए योगी का उस शरीर में होने वाला न तो वह कर्म करता है और न ही वहाँ कोई सुख दुःख भोगता है, केवल शरीर में घुस जाता है [**तच्छरीरस्थक्रमभोगाभ्यां स न सम्पृच्यते तत्र तु तस्य योगकौतूहलप्रदर्शनमेव**] उस दूसरे शरीर में होने वाले कर्म और भोग से ये संयुक्त नहीं होता, वह तो केवल योग विद्या का कौतूहल प्रदर्शन दिखाना मात्र है (ये मान्यता ठीक नहीं है)।।१२६।।

तस्यानुशयिनः कुतो न भोगादिरित्युच्यते - उस अनुशयी जीव को ये भोग आदि सुख-दुःख क्यों नहीं होते? इस पर कहते हैं-

न बुद्धयादिनित्यत्वमाश्रयविशेषेऽपि वह्निवत् ।।१२७।।

सूत्रार्थ= बुद्धि आदि पदार्थ सदा ही जीवात्मा को सुख दुःख का भोग नहीं कराते, जब तक उनको आश्रय विशेष न मिल जाए। जैसे अग्नि किसी पदार्थ में विद्यमान है किन्तु उपयुक्त साधन न मिलने तक उद्बुद्ध नहीं होती।

[**(आश्रयविशेषे-अपि) अनुशयिनः पुनर्जन्मप्राप्तये वृक्षादिष्वभिनिविष्टस्य जीवस्य तथा**

। अन्योऽनुशयी भवति योगी यः परदेहावेशपराक्रमवान् भवति स परदेहेऽनुशेते परदेहे प्रविशति । उक्तं हि योगदर्शने "बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः" (योग० ३.३८) तथाविधस्य परशरीराविष्टस्यानुशयिनो योगिनस्तच्छरीरवर्ति न कर्म न च भोक्तव्यं तत्र परशरीरे भवति तच्छरीरस्थक्रमभोगाभ्यां स न सम्पृच्यते तत्र तु तस्य योगकौतूहलप्रदर्शनमेव ।।१२६।।

तस्यानुशयिनः कुतो न भोगादिरित्युच्यते -

न बुद्ध्यादिनित्यत्वमाश्रयविशेषेऽपि वह्निवत् ।।१२७।।

(आश्रयविशेषे-अपि) अनुशयिनः पुनर्जन्मप्राप्तये वृक्षादिष्वभिनिवष्टस्य जीवस्य तथा योगसिद्ध्या परशरीरे प्रविष्टस्य योगिनोऽनुशयिनः खल्वाश्रयविशेषे भोगमये भोगकर्ममये च भोगादिकमित्थं न सम्भवति। यतः (बुद्धयादिनित्यत्वं न) भोगादिकं तु भवति

योगसिद्ध्या परशरीरे प्रविष्टस्य योगिनोऽनुशयिनः खल्वाश्रयविशेषे भोगमये भोगकर्ममये च भोगादिकमित्थं न सम्भवति] जो अनुशयी जीव पुनर्जन्म की प्राप्ति के लिए वृक्षादि में बैठा है उस जीव का और दूसरा जो योग सिद्धि वाला है जो दूसरे शरीर में बैठा है उस योगी का। आश्रय विशेष होने से भोग आदि कर्म प्राप्त नहीं होता। [**यतः (बुद्धयादिनित्यत्वं न) भोगादिकं तु भवति बुद्ध्यादिभिर्बुद्ध्यहंकारमनोज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियैरात्मोपकरणैर्नह्येतैर्विना भोगादिकं सम्भवति**] क्योंकि भोग आदि तो बुद्धि के द्वारा होता है, बुद्धि, अहंकार मन ज्ञानेन्द्रिय हो कर्मेन्द्रिय हों । इन उपकरणों के विना भोग नहीं होता [**बुद्धयहंकारमनोज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियाणां न नित्यत्वं न ह्येतानि नित्यानि**] बुद्धि, अहंकार, मन, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय ये नित्य नहीं हैं इनका नित्यत्व नहीं है, **नहि सर्वदाऽऽत्मना सह तथैव व्यक्तत्वेनाभिसम्बध्यन्ते व्यक्तभावेनोपकरणत्वं भजन्ते किन्त्वनभिव्यक्तरूपाणि**

[**(वह्निवत्) यथा ह्यग्निराश्रयविशेषेऽप्यनभिव्यक्तः सन् न दहनादिकार्यं कर्तुं समर्थो भवति यावत् तस्य दाहकधर्मो नाभिव्यक्तो भवेत्**] जैसे अग्नि आश्रय विशेष में पदार्थ विशेष में है पर अभिव्यक्त नहीं है जैसे लकड़ी में अग्नि होती है जब तक रगड़ें गे नहीं अग्नि अभिव्यक्त नहीं होगी, ऐसे ही सूक्ष्म शरीर को जब तक स्थूल शरीर से नहीं जोड़ेंगे तब तक वह कार्य नहीं करेगा (जीवात्मा को सुख दुःख का भोग नहीं होगा) ।।१२७।।

अपरो हेतुरत्रैव - और इसी विषय में अगला हेतु देते हैं-

आश्रयासिद्धेश्च ।।१२८।।

सूत्रार्थ= वह जो वृक्षादि है वह अनुशयी जीव का आश्रय नहीं है, इसलिए उसको वहाँ भोग नहीं होगा।

[**(आश्रयासिद्धेः-च) चकारो हेत्वन्तरसमुच्चयार्थः** सूत्र में जो "च" है वह हेतु अर्थ में है । **यः खल्वनुशयिन आश्रयो वृक्षादिर्वा परदेहो वा तस्यासिद्धेरसिद्धत्वात् सदातनायानाश्रयत्वात् स्थिराश्रयत्वाभावात्, स तु खल्वाश्रयः पुनर्जन्मप्रयोजनाय यात्रामात्रमथ योगिनः परशरीरावेशश्च योगलीलामात्रं योगक्रीडाप्रदर्शनार्थं योगकौतूहलप्रदर्शनार्थम्**] जो यह अनुशयी जीव का आश्रय है वृक्षादि

बुद्धयादिभिर्बुद्धयहंकारमनोज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियैरात्मोपकरणैर्नह्येतैर्विना भोगादिकं सम्भवति बुद्धहंकारमनोज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियाणां न नित्यत्वं न ह्येतानि नित्यानि, नहि सर्वदाऽऽत्मना सह तथैव व्यक्तत्वेनाभिसम्बध्यन्ते व्यक्तभावेनोपकरणत्वं भजन्ते किन्त्वनभिव्यक्तरूपाणि (वह्निवत्) यथा ह्यग्निराश्रयविशेषेऽप्यनभिव्यक्तः सन् न दहनादिकार्यं कर्तुं समर्थो भवति यावत् तस्य दाहकधर्मो नाभिव्यक्तो भवेत् ।।१२७।।

अपरो हेतुरत्रैव -

आश्रयासिद्धेश्च ।।१२८।।

(आश्रयासिद्धेः-च) चकारो हेत्वन्तरसमुच्चयार्थः । यः खल्वनुशयिन आश्रयो वृक्षादिर्वा परदेहो वा तस्यासिद्धेरसिद्धत्वात् सदातनायानाश्रयत्वात् स्थिराश्रयत्वाभावात्, स तु खल्वाश्रयः पुनर्जन्मप्रयोजनाय यात्रामात्रमथ योगिनः परशरीरावेशश्च योगलीलामात्रं योगक्रीडाप्रदर्शनार्थं योगकौतूहलप्रदर्शनार्थम् । तथा पुनर्जन्मार्थो वृक्षाद्य आश्रयोऽसिद्धः स्वत एवोपकरणरहितः योगसिद्धये

परदेह वो जीवात्मा के भोग के लिए सिद्ध नहीं है, क्योंकि सदा के लिए वो उसका आश्रय नहीं है और स्थिर आश्रय भी नहीं है, उसका जो आश्रय है वह तो पुनर्जन्म के लिए यात्रा मात्र है। [**तथा पुनर्जन्मार्थो वृक्षाद्य आश्रयोऽसिद्धः स्वत एवोपकरणरहितः**] और पुनर्जन्म की प्राप्ति के लिए जो वृक्षादि है वो अनुशयी जीव का आश्रय तो असिद्ध ही है, वह स्वतः ही स्थूल शरीर के रहित है [**योगसिद्धये च परदेहोऽप्यसिद्धोऽशक्त उपकरणशक्तिहीनस्तादृशे देहे योगिनः प्रवेशस्य योगकौतूहलं भवति**] ।।१२८।।

अनुशयिनो योगिनः परशरीरप्रवेशो नाशंकनीयो नासम्भव इत्याह -

भूमिका परिवर्तन किया है-

योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः ।।१२९।।

सूत्रार्थ= खंडन करने योग्य नहीं हैं, यम नियमों से होने वाली सिद्धियाँ । जैसे जन्म औषधि आदि सिद्धियों से लाभ होता है।

[**(योगसिद्धयः-अपि न-अपलपनीयाः) योगसिद्धयः संयमसिद्धयः ''बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः'' (योग० ३.३८) परशरीरावेशादिसिद्धयोऽपि न तिरस्कार्याः**] योगदर्शन में जो सिद्धियाँ कही गयी है उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिए [**किन्तु स्वीकार्या मन्तव्याः सन्ति**] योगदर्शन में जो यम नियमों की सिद्धियाँ बताई गयीं हैं वे सत्य हैं। [**(औषधादिसिद्धिवत्) यथा हि ''जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः'' (योग० ४.१) इति सूत्रे खल्वोषधिमन्त्र तपोजाः सिद्धयो यथा स्वीक्रियन्ते मन्यन्ते**] जैसे इस सूत्र में जन्म औषधि तपस्या आदि-आदि से जो सिद्धियाँ स्वीकार की

च परदेहोऽप्यसिद्धोऽशक्त उपकरणशक्तिहीनस्तादृशे देहे योगिनः प्रवेशस्य योगकौतूहलं भवति ।।१२८।।

अनुशयिनो योगिनः परशरीरप्रवेशो नाशंकनीयो नासम्भव इत्याह -

योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः ।।१२९।।

(योगसिद्धयः-अपि न-अपलपनीयाः) योगसिद्धयः संयमसिद्धयः ''बन्धकारणशैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः'' (योग०३.३८) परशरीरावेशादिसिद्धयोऽपि न तिरस्कार्याः किन्तु स्वीकार्या मन्तव्याः सन्ति (औषधादिसिद्धिवत्) यथा हि''जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः'' (योग० ४.१) इति सूत्रे खल्वोषधिमन्त्र तपोजाः सिद्धयो यथा स्वीक्रियन्ते मन्यन्ते तथैव समाधिसिद्धेरपि सूत्रे प्रतिपादनाद् योगिनः परशरीरावेशादिसिद्धयोऽपि स्वीकार्या मन्तव्याः सन्ति न निषेध्याः । अत्र विज्ञानभिक्षुभाष्ये ''ईश्वराभावेऽपि योगशक्त्या सृष्टिकर्तृत्वसम्भवोऽस्ति'' इति कथनमनर्गलमेव, सृष्टावेव योगिसम्भवः पुनस्तद्द्वारा सृष्टिरचनं प्रलापमात्रं न च योगसूत्रेषु क्वचिदप्येतदुपलभ्यते ।।१२९।।

गयी हैं, वे ठीक हैं [**तथैव समाधिसिद्धेरपि सूत्रे प्रतिपादनाद् योगिनः परशरीरावेशादिसिद्धयोऽपि स्वीकार्या मन्तव्याः सन्ति न निषेध्याः**] वैसे ही योगदर्शन में जो यम नियमों की सिद्धियाँ है वे भी स्वीकार की गयी हैं। [**अत्र विज्ञानभिक्षुभाष्ये ''ईश्वराभावेऽपि योगशक्त्या सृष्टिकर्तृत्वसम्भवोऽस्ति'' इति कथनमनर्गलमेव**] यहाँ विज्ञान भिक्षु भाष्य में लिखा है, कि ''ईश्वर के न होने पर भी योग शक्ति से सृष्टि रचना आदि कार्य संभव है'', ऐसा उनका कथन ठीक नहीं है, [**सृष्टावेव योगिसम्भवः पुनस्तद्द्वारा सृष्टिरचनं प्रलापमात्रं न च योगसूत्रेषु क्वचिदप्येतदुपलभ्यते**] योगी सृष्टि की रचना कैसे कर लेगा, ''पहले सृष्टि बनेगी तब तो योगी बनेगा'' इस प्रकार की बाते करना प्रलाप मात्र हैं, योग सूत्रों में ये बात कहीं भी उपलब्ध नहीं होती ।।१२९।।

तत्रैतेषु प्रकृतेषु देहेषु - ये जो प्रकरण में छः प्रकार के शरीर बताए थे, इन सब छः प्रकार के शरीरों में-

न भूतचैतन्यं प्रत्येकानुपलब्धेः सांहत्ये च सांहत्ये च* ।।१३०।।

सूत्रार्थ= भूतों में चेतनता नहीं है भूतों से मिलकर जो शरीर बना वह अचेतन है, क्योंकि प्रत्येक भूत का अलग अलग परीक्षण करने पर किसी में भी चेतन नहीं पाई गई, इस कारण से।

[**(सांहत्ये च भूतचैतन्यं न) अथ च भूतानां सांहत्ये सति खलु ये देहा अभिनिष्पन्नास्तत्र देहेषु यच्चैतन्यं तद् भूतचैतन्यं भूतानां चैतन्यं नास्ति**] और भूतों का संघात होने पर ये जो शरीर आदि उत्पन्न होते हैं इन देहों में जो चेतनता है वह भूतों कि चेतनता नहीं है। [**यतः (प्रत्येकानुलब्धेः) प्रत्येकस्मिन् पृथक्पृथग्भूते चैतन्यं नोपलभ्यते तस्मात्**] क्योंकि प्रत्येक भूत का परीक्षण कर लिया कहीं पर भी चेतना नहीं मिली, [**यः खलु धर्मोऽल्पोऽप्यवयवे न विद्यते स न समुदायेऽभिव्यज्यते**] किसी भी पदार्थ को इकट्ठा करने पर चेतना नहीं आई इसलिए भूत में चेतन नहीं है। [**तस्मात् तत्र देहे चैतन्यं चेतनस्यात्मन इति**

तत्रैतेषु प्रकृतेषु देहेषु -

न भूतचैतन्यं प्रत्येकानुपलब्धेः सांहत्ये च सांहत्ये च* ।।१३०।।

(सांहत्ये च भूतचैतन्यं न) अथ च भूतानां सांहत्ये सति खलु ये देहा अभिनिष्पन्नास्तत्र देहेषु यच्चैतन्यं तद् भूतचैतन्यं भूतानां चैतन्यं नास्ति । यतः (प्रत्येकानुलब्धेः) प्रत्येकस्मिन् पृथक्पृथग्भूते चैतन्यं नोपलभ्यते तस्मात्, यः खलु धर्मोऽल्पोऽप्यवयवे न विद्यते स न समुदायेऽभिव्यज्यते । तस्मात् तत्र देहे चैतन्यं चेतनस्यात्मन इति मन्तव्यम् । ''न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः'' (सांख्य० ३.२०) इत्युक्तत्वादप्यत्र पुनः कथनं प्रसंगपूर्त्यर्थं तथाग्रे च ''अस्त्यात्मा...'' (सांख्य० ६.१) आत्मप्रसंगोत्थापनार्थं यद् यस्य हि देहे चैतन्यं स देहादतिरिक्तो भूतेभ्योऽनभिनिष्पन्नश्चेतन आत्माऽस्तीति कृत्वा न पुनरुक्तिर्दोषावहा। सांहत्ये च सांहत्ये च द्विः कथनमध्यायपरिसमाप्त्यर्थम्।

मन्तव्यम्] इसलिए शरीर में जो चेतनता दिखाई पड़ती है वह आत्मा कि है । **[''न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः'' (सांख्य० ३.२०) इत्युक्तत्वादप्यत्र पुनः कथनं प्रसंगपूर्त्यर्थ]** यद्यपि तीसरे अध्याय में ये बात कही थी कि भूतों में चेतना नहीं है, फिर भी यहा पुनः कथन क्यों किया? प्रसंग को पूरा करने के लिए कहा। **[तथाग्रे च ''अस्त्यात्मा...'' (सांख्य० ६.१) आत्मप्रसंगोत्थापनार्थ]** आगे छटे अध्याय में सूत्र आ रहा है ''अस्ति आत्मा'' ये आत्मा का प्रसंग आ रहा है इसलिए यहाँ कह दिया शरीर में जो चेतनता है वह भूतों कि नहीं है आत्मा कि है **[यद् यस्य हि देहे चैतन्यं स देहादतिरिक्तो भूतेभ्योऽनभिनिष्पन्नश्चेतन आत्माऽस्तीति कृत्वा न पुनरुक्तिर्दोषावहा]** शरीर के भीतर जिसकी चेतनता है वह शरीर से भिन्न पदार्थ है और वह भूतों से उत्पन्न नहीं हुआ। इसलिए जो बात दुबारा कही गयी इसमें कोई दोष नहीं है। **[सांहत्ये च सांहत्ये च द्विः कथनमध्यायपरिसमाप्त्यर्थम्]** सूत्र में जो सांहत्ये च सांहत्ये च दो बार कहा गया है यह अध्याय समाप्ति का।।

छठा अध्याय

अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात् ॥ १ ॥

(आत्मा—अस्ति) गत पञ्चम अध्याय के अन्तिम सूत्र से देह में चैतन्य का भूतों से प्रकट होना खण्डित कर दिया, तब किसका चैतन्य है? इस पर इस सूत्र में वर्णित है कि देह में आत्मा है, जिसका चैतन्य उसमें है। देह में चैतन्य के वर्तमान होने से उसमें आत्मा है, यह प्रसङ्ग यहां उठाया जाता है, क्योंकि देह में आत्मा है (नास्तित्व-साधनाभावात्) आत्मा के नास्तित्व साधन के अभाव से आत्मा है। आत्मा का चैतन्य स्वरूप है, कोई भी ऐसा साधन नहीं है जिससे 'अहम्=मैं' यह आत्मानुभव स्वचैतन्यरूप निराकृत किया जा सके ॥ १ ॥

और भी—

देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात् ॥ २ ॥

(असौ देहादिव्यतिरिक्तः) वह देह में होता हुआ भी देह अन्तःकरण इन्द्रियों से स्वरूपतः भिन्न है। क्योंकि (वैचित्र्यात्) विलक्षण होने से देह तो बाल्य, कौमार्य, यौवन, वार्धक्य परिणाम को ग्रहण करता है। बाल्य आदि अवस्थाओं में परिणाम को प्राप्त होता है वैसा आत्मा नहीं। वह तो सब अवस्थाओं में 'अहम्'='मैं' इस प्रतीति से वैसा ही रहता है। अन्तःकरण इन्द्रियों की विकलता में भी 'मैं' अनुभूति वैसी ही रहती है। मृत देह में रूप, स्पर्श आदि देह धर्म तो होते हैं किन्तु उससे विलक्षण स्फूर्ति, बोलना, मनन, बोध आदि आत्म-धर्म नहीं मिलते, ये तो जीवित देह में ही रहते हैं, मृत देह और जीवित देह में बाह्य धर्म समान होने पर भी जीवित देह में स्फूर्ति भाषण, मनन, बोध, अहम्भाव आदि विलक्षण धर्म आत्मा को सिद्ध करता है ॥ २ ॥

दूसरा हेतु कहते हैं—

षष्ठीव्यपदेशादपि ॥ ३ ॥

(षष्ठीव्यपदेशात्—अपि) षष्ठी विभक्ति के सम्बन्ध व्यवहार से भी देह आदि से भिन्न आत्मा सिद्ध होता है, कि मेरा देह मेरा मन, मेरी आँख "**उत स्वया तन्वा संवदे.......**" (ऋ० ७।८६।२)=अपनी देह

से संवाद करता हूं—"**तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु**" (यजु० ३४। १)=मेरा मन शिवसङ्कल्पवाला हो। "**चक्षुर्मे पाहि**" (यजु० २।१६)=मेरी आंख की रक्षा कर, इत्यादि भेदव्यवहार देह आदि से भिन्न आत्मा को सिद्ध करता है॥ ३॥

यहां शङ्का करके समाधान करता है—

न शिलापुत्रवद् धर्मिग्राहकमानबाधात्॥ ४॥

(शिलापुत्रवत्—न) वह षष्ठी व्यपदेश शिलापुत्र की भांति गङ्गतेल नहीं, जैसे शिलापुत्र शब्द में षष्ठी व्यपदेश है। शिलापुत्र पत्थर से बने पुतले का शरीर, शिर, हाथ, पैर आदि है। क्योंकि शिलापुत्र ही शिलापुत्र का शरीर है तथा शिर आदि उसके ही खण्डरूप हैं। वैसा यहां षष्ठी व्यपदेश नहीं है। क्योंकि (धर्मिग्राहकमानबाधात्) धर्मी=चेतन धर्मी देह आदि से व्यतिरिक्त आत्मा का ग्रहण करने वाला मान=प्रत्यक्ष आदि प्रमाण बाधा जाता है इस हेतु से। शिलापुत्र का शरीर आदि षष्ठी व्यपदेश तो उससे भिन्न मनुष्य करता है, उसका शरीर शिर या नेत्र। प्रत्युत मेरा शरीर मन या नेत्र यहां देह में तो प्रत्यक्ष 'अहम् आत्मा'=मैं आत्मा कहने वाला आत्मस्वरूप तत्त्व करता है। व्यपदेशकर्ता व्यपदेश से भिन्न होता है यह प्रत्यक्ष प्रमाण का बाधप्रसङ्ग होता है अभेद में। अनुमान भी बाधा जाता है अभेद में। शिलापुत्र का शरीर तो वैसा ही रहता है परन्तु प्राणी का देह तो चलता है। इससे अनुमान किया जाता है कि देह के यथेष्टसंचालन में समर्थ देह आदि से भिन्न चेतन आत्मा है। शब्द प्रमाण भी बाधा जाता है अभेद में। "**उत स्वया तन्वा संवदे....**" (ऋ० ७। ८६। २) यहां 'स्वया तन्वा' अपनी देह से यह भेदनिर्देश है। "**तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु**" (यजु० ३४।) मेरा मन शिवसङ्कल्पवाला हो। यहां मन का भेदनिर्देश है। "**चक्षुर्मे पाहि**" (यजु० २। १६) मेरी आंख की रक्षा कर। यहां आंख का भेद निर्देश है॥ ४॥

उस देह आदि से अतिरिक्त चेतन आत्मा को—

अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता॥ ५॥

(कृतकृत्यता—अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या) कृतकृत्यता=कृतकार्यता चेतनस्वरूप आत्मा की सार्थकता आत्मभाव है, अत्यन्त दुःखनिवृत्ति से, दुःखरूप अनात्मसम्पर्क विमुक्ति से॥ ५॥

अत्यन्त दुःखनिवृत्ति से कैसे कहते हो? अत्यन्त सुखप्राप्ति से क्यों

नहीं हो कृतकृत्यता मोक्ष में? इस पर कहते हैं—

यथा दुःखात् क्लेशः पुरुषस्य न तथा सुखादभिलाषः ॥ ६ ॥

(यथा दुःखात् पुरुषस्य क्लेशः) पुरुष का जैसा दुःख से क्लेश द्विष्टता, उद्विग्नता हानिकर होती है (तथा सुखात्—अभिलाषः—न) वैसी सुख से अभिरुचि हृष्टता लाभकारी नहीं होती। नाश कार्य के रचनापेक्षया बलवान् होने से प्राप्ति की अपेक्षा दुःख का अभाव श्रेष्ठ है, शरीर की पुष्टि की अपेक्षा नीरोगता श्रेष्ठ है। ऐसे ही मोक्ष में भी अत्यन्त दुःखनिवृत्ति ही वाञ्छनीय है ॥ ६ ॥

और फिर—

कुत्रापि कोऽपि सुखी न* ॥ ७ ॥

(कुत्र—अपि कः—अपि सुखी न) किसी भी स्थान पर कोई भी जन सुखी नहीं है ॥ ७ ॥

क्योंकि सुखी का जो सुख है—

तदपि दुःखशबलमिति दुःखपक्षे निःक्षिपन्ते विवेचकाः ॥ ८ ॥

(तत्—अपि दुःखशबलम्—इति) वह सुख भी दुःखमिश्रित है, ऐसा मानकर (विवेचकाः—दुःखपक्षे निःक्षिपन्ते) विवेकी उस सुख को दुःखकोटि में स्थापित करते हैं, विषमिश्रित अन्न की भांति। कहा भी है योगदर्शन में—"**परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः**" (योग० २।१५)=परिणाम—ताप—संस्कार रूप दुःखों से सत्त्वादि गुणों के विरोधी व्यवहार से विवेकी के लिये सब दुःख ही है ॥ ८ ॥

दुःखनिवृत्ति ही पुरुषार्थत्व कहते हो उसमें सुखलाभ के अभाव से अपुरुषार्थत्व है, क्योंकि सुखलाभ के लिये मनुष्य पुरुषार्थ करते हैं। इस विषय में कहते हैं—

सुखलाभाभावादपुरुषार्थत्वमिति चेन्नैवं ***विध्यात् ॥ ९ ॥**

(सुखलाभाभावात्—अपुरुषार्थत्वम्—इति चेत्) दुःखनिवृत्ति

* 'सुखी न' अनिरुद्धपाठ। 'सुखीति' विज्ञानभिक्षुपाठ।

** 'चेन्नैव' (अनिरुद्धपाठ) 'चेन्न' (विज्ञानभिक्षुपाठ)।

'सुखलाभ का अभाव' होने से अपुरुषार्थत्व है, यदि ऐसी कल्पना की जावे तो (न—एवं द्वैविध्यात्) ऐसी कल्पना न करनी चाहिए, क्योंकि यहां सांसारिक दुःखनिवृत्ति की भांति केवल दुःखनिवृत्ति ही नहीं है किन्तु यहां पुरुषार्थ की द्विविधता है, यहां की दुःखनिवृत्ति में पुरुषार्थ दो प्रकार का है। जो यहां दुःखनिवृत्ति है, पुरुषार्थरूप उसी में असांसारिक सुखनिष्पत्ति=अध्यात्म सुख-सम्पत्ति भी अनिवार्यतः सांख्यसिद्धान्त में होती है, अतः दो प्रकार का पुरुषार्थ यहां है। कहा भी है "**समाधि-सुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता**" (सां० ५। ११६) अतः सुखलाभाभाव का दोष नहीं आता। अध्यात्मसुखलाभ या ब्रह्मानन्द-सुखलाभ तो उसके अन्तर्गत है ही—"**सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता**" (तै० ३। १। २)=वह ब्रह्म के साथ सब कामनाओं को प्राप्त होता है। "**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन**" (तै० ९। ३)=ब्रह्म के आनन्द को जानता हुआ किसी से डरता नहीं।

विज्ञानभिक्षुभाष्य में "पुरुषार्थद्वैविध्यात् सुखत्वदुःखाभावत्वाभ्या-मित्यर्थः सुखी स्याम् दुःखी न स्यामिति हि पृथक् हि लोकानां प्रार्थना दृश्यते" (विज्ञानभिक्षुभाष्यम्)=दो प्रकार के पुरुषार्थ से सुखी होऊं, न होऊं, इस प्रकार पृथक् ही लोगों की प्रार्थना दीखती है। सुखप्राप्ति भी पुरुषार्थ है, दुःखनिवृत्ति भी पुरुषार्थ है, तब केवल दुःखनिवृत्तिरूप पुरुषार्थ में विज्ञानभिक्षु भाष्यानुसार मोक्ष में एकाङ्गिनी कृतकृत्यता और पुरुषार्थता है॥ ९॥

अच्छा, हो पुरुषार्थ की द्विविधता से अत्यन्तदुःखनिवृत्ति में अदोष तथा कृतकृत्यता पुरुष की, परन्तु दुःखसम्पर्क ही पुरुष में नहीं बन सकता। क्योंकि—

निर्गुणत्वमात्मनोऽसङ्गत्वादिश्रुतेः॥ १०॥

(आत्मनः—निर्गुणत्वम्) पुरुष का निर्गुणत्व है, निर्गुण है वह (असङ्गत्वादिश्रुतेः) उसका असङ्गत्व श्रुति में प्रतिपादन से—"**असङ्गो ह्ययं पुरुषः**" (बृ० ४। ३। १५)॥ १०॥

समाधान करता है—

परधर्मत्वेऽपि तत्सिद्धिरविवेकात्॥ ११॥

(परधर्मत्वे—अपि) लौकिक दुःख आदि परधर्म=अन्तःकरण धर्म है। पूर्व कह दिया ही है—"**अन्तःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम्**" (सांख्य०

५। २५)। योगदर्शन में भी—"कर्मफलं विपाकस्तदनुगुणा वासना आशयास्ते च मनसि वर्तमाना पुरुषे व्यपदिश्यन्ते स हि तत्फलस्य भोक्ता" (योग० १। २४, व्यास:)=कर्मफल के अनुसार वासना-आशय ये मन में रहते हुए भी पुरुष में कहे जाते हैं, वह ही उसके फल को भोगता है। परन्तु अन्त:करण के धर्म होने पर भी (अविवेकात्) अन्त:करण के संसर्ग से उसके स्वामिभाव से (तत्सिद्धि:) पुरुष में दु:खत्व आदि की सिद्धि होती है॥ ११ ॥

वह यह—

अनादिरविवेकोऽन्यथा दोषद्वयप्रसक्तेः॥ १२ ॥

(अविवेक:—अनादि:) अविवेक अनादि होता है अन्यथा उस अविवेक के अनादित्व स्वीकार न करने पर सादित्व हो, तो उसके आदित्व में दो दोष आते हैं कि किससे उसका आदित्व है? यह प्रश्न है। पुन: उसका आदित्व किससे है? इस प्रकार कल्पना में अनवस्था दोष प्रसङ्ग आता है। अन्य यह दोष भी कि उसके आदित्व से पूर्व विवेक होना चाहिए ही, विवेक होने पर पुन: अविवेक की उत्पत्ति नहीं हो सकती, उसके अभाव रूप होने से। प्रकाश के होने पर अन्धकार उत्पत्ति की कल्पना युक्त नहीं यह अविवेक से सादित्व में असम्भव होने का दोष है। किसी से 'प्रकाश का आवरक' के समान निमित्त कल्पित किया जावे, यदि फिर उसका निमित्त कल्पना की अनवस्था दोषकल्पना होजावे। इस प्रकार दोनों दोषों के प्रसङ्ग से अविवेक आदि नहीं है, किन्तु अनादि ही है, अभाव रूप होने से, अन्धकार की भांति॥ १२ ॥

अनादि होता हुआ भी—

न नित्य: स्यादात्मवदन्यथाऽनुच्छित्ति:॥ १३ ॥

(नित्य:—न स्यात्—आत्मवत्) अविवेक नित्य नहीं है, आत्मा की भांति उसके अभावरूप होने से। भावरूप अनादि नित्य होता है जैसे आत्मा (अन्यथा अनुच्छित्ति:) अन्यथा अविवेक के नित्यत्व में अनुच्छित्ति=अनाश हो॥ १३ ॥

होता है उस अविवेक का नाश, वह कैसे यह कहते हैं—

प्रतिनियतकारणनाश्यत्वमस्य ध्वान्तवत्॥ १४ ॥

(अस्य प्रतिनियतकारणनाश्यत्वं ध्वान्तवत्) जैसे अन्धकार की प्रतिनियत कारणनाश्यता है, अन्धकार प्रतिनियतकारण से=नितान्त-

नियतकारण=अबाध्यनियत कारण से नाश को प्राप्त होता है, क्योंकि उसका प्रतिद्वन्द्वीरूप कारण प्रकाश से नाश होता है। वैसे ही अविवेक भी प्रतिनियतकारण=अबाध्यकारण से अपने प्रतिद्वन्द्वी कारण विवेक से नाश को प्राप्त होता है, अतः उससे उसका नाश्यत्व है ॥ १४ ॥

इसी प्रकार—

अत्रापि प्रतिनियमोऽन्वयव्यतिरेकात् ॥ १५ ॥

(अत्र—अपि प्रतिनियमः) विवेक में भी अविवेक नाश के लिये प्रतिनियम=प्रतीकार नियति=प्रतिद्वन्द्वी भाव है (अन्वयव्यतिरेकात्) विवेक होने पर अविवेक का नाश, विवेक न होने पर अविवेक की प्रवृत्ति होती है, यह अन्वय व्यतिरेक होने से ॥ १४ ॥

वह यह विवेक से नष्ट होने वाला—

प्रकारान्तरासम्भवादविवेक एव बन्धः ॥ १६ ॥

(अविवेकः—एव बन्धः) अविवेक ही पुरुष का बन्धन हेतु है, उससे बन्धता है इससे बन्धनहेतु है। क्योंकि (प्रकारान्तरासम्भवात्) दूसरे हेतुओं के सम्भव न होने से=स्वभाव आदि का हेतु होना खण्डित किए जाने से। अतः पुरुष को विवेक सम्पादन करना चाहिए ॥ १६ ॥

विवेकसम्पन्न किए हुए अविवेककृत बन्धन नष्ट हुए पुरुष का—

न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यानावृत्तिश्रुतेः ॥ १७ ॥

(मुक्तस्य पुनः—बन्धयोगः—न) मुक्त का फिर बन्धन का योग बन्धनसम्बन्ध नहीं होता है मुक्ति में (अनावृत्तिश्रुतेः) अनावृत्ति के श्रवण से—"**तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्य......एतममृतमभयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्ते**" (प्रश्नो० १।१०)=तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा, विद्या से परमात्मा को खोजकर अमृत-परायण मोक्ष को पाकर जन्मार्थ पुनः नहीं लौटता ॥ १७ ॥

क्योंकि—

अपुरुषार्थत्वमन्यथा ॥ १८ ॥

(अन्यथा—अपुरुषार्थत्वम्) यदि मुक्ति से जन्म ले तो विवेक की अपुरुषार्थता हो जावे। अतः मुक्ति की अवधि को उल्लंघन कर वह अपने या दूसरों का उद्धार करने को नहीं लौटता, जैसा आजकल कुछ लोग मानते हैं ॥ १८ ॥

और भी—

अविशेषापत्तिरुभयोः ॥ १९ ॥

(उभयोः—अविशेषापत्तिः) दोनों मुक्त और बद्ध में समानता आ जावे ॥ १९ ॥

जिस मुक्ति के लिये पुरुषार्थ किया जाता है वह किस रूप वाली है? इस आकांक्षा पर कहते हैं—

मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्न परः ॥ २० ॥

(अन्तरायध्वस्तेः परः—न मुक्तिः) पुरुष के शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, नित्यानुभव में जो अन्तराय=दुःखगणबाधक=अविवेक है जिस से पुरुष प्रतिकूलता अनुभव करता है उसका नाश मुक्ति है, उस से भिन्न मुक्ति-स्वरूप नहीं ॥ २० ॥

यहां तो अन्तरायनाश मुक्ति कही जाती है जिसके लिये पुरुषार्थ करना चाहिए, किन्तु—"**सुखलाभापवादपुरुषार्थत्वमिति चेन्नैवं द्वैविध्यात्**" (सांख्य० ६। ९) इस सूत्र में पुरुषार्थ की द्विविधता होना और लाभ रूप में स्वीकार की है परन्तु यहां सूत्र में हान दिखलाया, पूर्व सूत्र में लाभ भी दिखलाया। इस पर कहते हैं—

तत्राप्यविरोधः ॥ २१ ॥

(तत्र—अपि—अविरोधः) यद्यपि मुक्ति का अर्थ विमुक्ति=हान=दुःख का हान=अन्तरायध्वंस है, इस से भिन्न लाभात्मक अर्थ नहीं है, तथापि उस लाभ में ज्ञानपूर्वक=दुःखहानपूर्वक=अन्तरायध्वंसपूर्वक ब्रह्मानन्दलाभ में भी अविरोध है, विरोध नहीं है—"**समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता**" (सांख्य० ५। ११६)। इस प्रकार पूर्व कथनानुसार, दो प्रकार का पुरुषार्थ मुक्ति में सांख्य सिद्धान्त में स्वीकार होने से ॥ २१ ॥

इस प्रकार अन्तरायध्वंस=दुःखनिवृत्ति मुक्ति है अथवा दुःखनिवृत्ति और ब्रह्मानन्दप्राप्ति दोनों रूप मुक्ति है या ब्रह्मानन्दप्राप्ति मुक्ति है, इस विषय में—

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ॥ २२ ॥

(अधिकारित्रैविध्यात्—नियमः—न) अधिकारियों के तीन प्रकार उत्तम—मध्यम—मन्द भेद होने से मुक्ति की परिभाषा का नियम नहीं। कोई दुःखनिवृत्ति ही मुक्ति है, इस परिभाषा से सन्तुष्ट होकर विवेक साधते हैं, वे उत्तम अधिकारी हैं। कुछ दुःखनिवृत्ति और ब्रह्मानन्दप्राप्ति मुक्ति है, इस परिभाषा से विवेक आरम्भ करते हैं, वे मध्यम अधिकारी

हैं। कोई तो ब्रह्मानन्द रूप मुक्ति ही मन में धारकर विवेक के लिये यत्नशील होते हैं, वे मन्द अधिकारी हैं॥ २२॥

उन में ब्रह्मानन्द-प्राप्ति मुक्ति यह मन्तव्य और कथन—

दार्ढ्यार्थमुत्तरेषाम्॥ २३॥

(उत्तरेषाम् दार्ढ्यार्थम्) मन्द अधिकारियों के विवेकसम्पादन के लिये दृढतार्थ होगा कि विवेक का अवश्य अनुष्ठान करें। कहा है मुक्ति में आनन्द प्रसिद्धि "**विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम्**" (सांख्य० ५।६८)॥ २३॥

विवेक सम्पादन के लिये योगाभ्यास भी अनुष्ठान करने योग्य है, उस में प्रथम—

स्थिरसुखमासनमिति न नियमः॥ २४॥

(स्थिरसुखम्—आसनम्—इति नियमः—न) स्थिर सुख=शरीर का निश्चल सुख जिस में हो वही आसन अनुष्ठान करने योग्य है, यही आसन का तात्पर्य है, किसी आसन-विशेष का नियम नहीं=प्रतिबन्ध नहीं॥ २४॥

अब मुख्य योगसाधन—

ध्यानं निर्विषयं मनः॥ २५॥

(निर्विषयं मनः—ध्यानम्) विषयरहित=वृत्तिरहित निरुद्धवृत्तिवाला, सत्त्व आदि गुणों के अधिकारों से रहित मन ही ध्यान नामक मुख्य योगसाधन है॥ २५॥

क्यों जी! पुरुष ध्यान आदि का अनुष्ठान करे या न करे, दोनों अवस्थाओं में वह वैसा ही होता है। पुरुष में किसी का आना-जाना नहीं होना चाहिए, उसके निःसङ्ग होने से—"**असङ्गो ह्ययं पुरुषः**" (बृह० ४।३।१५) इस पर कहते हैं—

उभयथाऽप्यविशेषश्चेन्नैवमुपरागनिरोधाद्विशेषः॥ २६॥

निःसङ्गेऽप्युपरागोऽविवेकात्॥ २७॥

इन दोनों सूत्रों की एकवाक्यता है—

(उभयथा—अपि—अविशेषः—चेत्) ध्यान आदि के अनुष्ठान से या न अनुष्ठान से, दोनों प्रकार से भी पुरुष समान ही रहता है। उसके असङ्ग होने से व्यर्थ ध्यान आदि अनुष्ठान है, यदि यह कहा जावे तो (न—एवम् उपरागनिरोधात्—विशेषः) ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि

ध्यान आदि से उपरागनिरोध से पुरुष में विशिष्टता होती ही है। क्योंकि (निःसङ्गे—अपि—उपरागः—अविवेकात्) निःसङ्ग पुरुष में अविवेक से उपराग=संसर्गापत्ति होती है॥ २६, २७॥

और वह उपराग—

जपास्फटिकयोरिव नोपरागः किन्त्वभिमानः ॥ २८ ॥

(जपास्फटिकयोः—उपरागः-इव न) जपापुष्प और स्फटिक के संसर्ग से जपा-फूल का रंगाभास स्फटिक में होता है, वैसा वह उपराग नहीं होता (किन्तु—अभिमानः) पुरुष के चेतन होने से उस राग का अभिमान करता है, अपने में आरोपित करता है, अतः पुरुष में जपा स्फटिक की भांति उपराग न होकर अभिमान होता है॥ २८॥

और फिर—

ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभिस्तन्निरोधः ॥ २९ ॥

(ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभिः—तन्निरोधः) ध्यान, धारणा, प्राणायाम, आसन, अभ्यास, वैराग्य, यम, नियम के द्वारा उस अभिमान का निरोध होता है॥ २९॥

और भी—

लयविक्षेपयोर्व्यावृत्त्येत्याचार्याः ॥ ३० ॥

(लयविक्षेपयोः) लय—वृत्तियों=प्रवृत्तियों का निगूढ मूर्च्छित भाव—निद्राभाव, विक्षेप—वृत्तियों का व्यापार प्रमाणविपर्यय, विकल्प-स्मृतिरूप, इन दोनों की (व्यावृत्त्या—इति—आचार्याः) निवृत्ति से उसका निरोध उपरागरूप अभिमान का निरोध होता है, ऐसा अनेक आचार्य मानते हैं॥ ३०॥

उस ध्यान आदि अनुष्ठान में—

न स्थाननियमश्चित्तप्रसादात् ॥ ३१ ॥

(स्थाननियमः—न चित्तप्रसादात्) ध्यान में स्थान का नियम अपेक्षित नहीं। चित्त की प्रसन्नता से ध्यान सम्भव है। जिस स्थान में चित्त प्रसन्न हो, चित्त अनुकूलता का अनुभव करे, वहां ध्यान आदि करना चाहिए॥ ३१॥

हो ध्यान आदि योगाभ्यास के अनुष्ठान से पुरुष के उस अभिमान की निवृत्ति, उस उपरागरूप अभिमान की आदि हेतुभूत प्रकृति कैसे और किस रूपवाली है? इस आकांक्षा पर कहते हैं—

प्रकृतेराद्योपादानताऽन्येषां कार्यत्वश्रुतेः ॥ ३२ ॥

(प्रकृतेः—आद्योपादानता) समस्त जगद्रचना में प्रकृति का आद्य उपादानत्व है, क्योंकि (अन्येषां कार्यत्वश्रुतेः) जगरचना से पूर्व अन्य पूर्वसृष्ट महत्तत्त्व, अहङ्कार, तन्मात्र, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी का कार्यत्व श्रवण से—"**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ॥**" (श्वेता० ४। ५) यहां सत्त्वगुण-रजोगुण-तमोगुणमयी प्रकृति का उपादानत्व आद्य कहा है। और महत्तत्त्व आदियों के कार्यत्व की श्रुति—"**एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी**" (मुण्डको० २। १। ३) तथा "**एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः। आकाशाद् वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी**" (तै० उ० २। १) इन दोनों वचनों में महत्तत्त्व, आकाश, वायु आदि की उत्पत्ति कही गई है ॥ ३२॥

क्यों जी! प्रकृति ही आद्य उपादान है, पुरुष क्यों नहीं आद्य उपादान? वह भी तो नित्य है। इस पर कहते हैं—

नित्यत्वेऽपि नात्मनो योग्यत्वाभावात् ॥ ३३ ॥

(आत्मनः—नित्यत्वे—अपि न योग्यत्वाभावात्) पुरुष का नित्यत्व होने पर भी वह जगत् का उपादान नहीं है, उसकी योग्यता के अभाव से। पुरुष में जगत् का उपादान होने की योग्यता=सत्त्वादि गुणयोग और परिणाम धर्म नहीं है ॥ ३३ ॥

और भी—

श्रुतिविरोधान्न कुतर्कापसदस्यात्मलाभः ॥ ३४ ॥

(श्रुतिविरोधात्) श्रुतिविरोध से=पुरुष यदि उपादान हो जगत् का तो श्रुति का विरोध होता है—"**न तस्य कार्यं करणं च विद्यते**" (श्वेता० ६। ८)=उसका कार्य नहीं, उससे कुछ कार्य नहीं बना, न उसके इन्द्रिय आदि करण हैं। पुनः (कुतर्कापसदस्य—आत्मलाभः—न) जो कुतर्क से अपने पक्ष को अन्यथा स्थापित करता है उसका आत्मलाभ=आत्मज्ञान नहीं होता है, वह आत्मविवेकी नहीं होता, क्योंकि परिणाम धर्म आत्मा में स्वीकार करके कैसे आत्मलाभ हो ॥ ३४ ॥

और—

पारम्पर्येऽपि प्रधानानुवृत्तिरणुवत् ॥ ३५ ॥

(पारम्पर्ये—अपि) कार्यरूप जगत् की कारणपरम्परा में भी

(प्रधान-वृत्तिः) प्रकृति नामक अव्यक्त प्रधान का अनुवर्तन-अनुगत वर्तमानत्व है (अणुवत्) अणु की भांति। जैसे किसी कार्य वस्तु, घट, घड़ा, वस्त्र आदि का कारणपरम्परा में अणु उसका अत्यन्त सूक्ष्म भाग ही अनुवृत्त-अनुगत होता है। उनमें घड़े का कारण कपाल-ठीकरे, उनका कारण ईंटें, ईंटों का कारण मृत्तिकापिण्ड, फिर मिट्टी के अणु अत्यन्त सूक्ष्म अंश-कारण हैं, वस्त्र का कारण तन्तु-तन्तुओं का कारण रुई, उसका कारण रुई के अणु अत्यन्त सूक्ष्म भाग हैं। इसी प्रकार समस्त जगत् का कारण पृथिवी आदि स्थूल भूत, उनका कारण तन्मात्राएं-सूक्ष्म भूत, उनका कारण अहङ्कार, उसका भी कारण महतत्त्व, पुनः उसका भी प्रधान-प्रकृति नामक अव्यक्त उपादान कारण अनुवृत्ति से परम्परा में सिद्ध होता है। पुरुष उस रूप में उपादानत्वभागी नहीं होता है। प्रधान-प्रकृति में ही अतुलसूक्ष्मता कारणपरम्परा में है। कहा भी है—"**न चालिङ्गात् परं सौक्ष्म्यस्ति......अतः प्रधाने सौक्ष्म्यं निरतिशयं व्याख्यातम्......अन्वयिकारणं पुरुषो न भवति**" (योग० १।४५, व्यासः) अर्थात् प्रकृति से परे सूक्ष्मता नहीं है, प्रधान- प्रकृति में सूक्ष्मता अतुल कही है, क्योंकि पुरुष अन्वयिकारण क्रमशः अन्तिम सूक्ष्म नहीं है॥ ३५॥

फिर उसकी—

सर्वत्र कार्यदर्शनाद् विभुत्वम्॥ ३६॥

(सर्वत्र कार्यदर्शनात्—विभुत्वम्) सारी दिशाओं में समस्त ब्रह्माण्ड में कार्य के देखने से उस उपादान कारण प्रधान-प्रकृति नामक अव्यक्त का विभुत्व-व्यापकत्व ब्रह्माण्डव्यापित्व-विश्वव्यापित्व है। प्रधान-प्रकृति का विभुत्व ब्रह्माण्ड को अपेक्षित करके है। लोकलोकान्तर की अपेक्षा से व्यापकत्व दर्शाया है, ब्रह्माण्ड से बाहिर भी विराजमान है। श्रुति में जैसे कहा है—"**एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः**" (यजु० ३१। ३)-इतना जगत् उसकी महिमा है, पुरुष परमात्मा इससे बड़ा है॥ ३६॥

प्रधान-प्रकृति का विभुत्व सर्वत्र कार्य देखने से कहते हो, अनन्त होने से नहीं। जहां कहीं उसका लोक-लोकान्तर रूप कार्य कार्यरूप में परिणाम है वहां-वहां गति के बिना न हो सके। और जो गति क्षोभ नामक होती है जिसके विषय में कहा है—"**एकं बीजं बहुधा यः करोति**" (श्वेता० ६। १२)-एक बीज को जो बहुत प्रसार कर देता है। फिर उसकी आद्यकारणता कैसे है, इस पर कहते हैं—

गतियोगेऽप्याद्यकारणताऽहानिरणुवत् ॥ ३७ ॥

(गतियोगे—अपि) गतियोग होने पर भी वैसे लोक-लोकान्तर रूप परिणाम की प्राप्ति के लिये क्रिया सम्बन्ध होने पर भी उसकी (आद्यकारणताऽहानिः—अणुवत्) आद्यकारणता की हानि नहीं होती, अणु की भांति। जैसे अणु गति के योग से=क्रिया के सम्बन्ध से घट, मठ वस्त्र आदि की आद्यकारणता के भागी हैं, जैसे पार्थिव आदि अणु गतियोग में पृथिवीपिण्ड आदि के मूल कारण हैं, वैसे ही गतियोग प्रधान=प्रकृति की आद्यकारणता का घातक नहीं है ॥ ३७ ॥

अणु के समान कहा है। यदि प्रसिद्ध अणुओं की भांति आद्यकारणता प्रधान की भी है तो अणुस्वीकार से कार्यसिद्धि हो जावे, पुनः प्रधान स्वीकार की आवश्यकता नहीं है। इस आकांक्षा पर कहते हैं—

प्रसिद्धाधिक्यं प्रधानस्य न नियमः ॥ ३८ ॥

(प्रसिद्धाधिक्यं प्रधानस्य) कारणत्व से प्रसिद्ध अणुओं से आधिक्य =ज्येष्ठत्व प्रधान=प्रकृति का आद्यकारणता में है, (नियमः—न) अतः नियम नहीं कि अणु समस्त जगत् की आद्यकारणता के भागी हों। हां पृथिवी आदि पिण्डों के या पृथिवी आदि भूतों के आद्य कारण। वे अणु हैं, उनके सूक्ष्म अंश तन्मात्रनामक हैं, परन्तु उनका भी कारण अहङ्कार है, उसका भी महत्तत्त्व है, फिर उसका भी कारण प्रधान=प्रकृति है। अतः प्रधान का आद्यकारणता में ज्येष्ठत्व है ॥ ३८ ॥

यह अन्य भी हेतु प्रधान के ज्येष्ठत्व में है कि—

सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात् ॥ ३९ ॥

(सत्त्वादीनाम्—अतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात्) सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण की प्रकृतिधर्मता नहीं। सत्त्व, रजः, तमः गुण प्रकृति के धर्म नहीं तद्रूप होने से, तत्स्वरूप होने से, प्रकृति के सत्त्वादिगुणमय होने से। कहा भी है पूर्व—"**सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः**" (सांख्य० १।६१) अणु तो सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण वाले हैं न कि तद्रूप=सत्त्वादिरूप= सत्त्वादिमय, किन्तु स्वस्वभूतविषयक गन्ध आदि गुण वाले हैं, कहा भी है—"पार्थिवस्याणोर्गन्धतन्मात्रं सूक्ष्मो विषयः, आप्यस्य रसतन्मात्रं, तैजसस्य रूपतन्मात्रं, वायव्यस्य स्पर्शतन्मात्रमाकाशस्य शब्दतन्मात्रम्" (योग० १।४५ व्यासः)=पृथिवी के अणु की गन्धतन्मात्रा, जल के अणु की रसतन्मात्रा, अग्नि के अणु की रूपतन्मात्रा, वायु के अणु की

स्पर्शतन्मात्रा, आकाश के अणु की शब्दतन्मात्रा है। प्रधान=प्रकृति की गुणवत्ता नहीं किन्तु गुणमयता है, अतः अणुओं से प्रकृति की ज्येष्ठता है॥ ३९॥

उस इस महत्त्वपूर्ण जड रूप प्रधान=प्रकृति की ऐसी महती प्रवृत्ति किसलिये है?—

अनुपभोगेऽपि पुमर्थं सृष्टिः प्रधानस्योष्ट्रकुङ्कुमवहनवत्॥ ४०॥

(प्रधानस्य सृष्टिः—पुमर्थम्—अनुपभोगे—अपि) प्रकृति की सृष्टि=सर्जनप्रवृत्ति पुरुष के लिये=पुरुषप्रयोजन के लिये है, अपना उपभोग न होने पर भी (उष्ट्रकुङ्कुमवहनवत्) उष्ट्रकुङ्कुमवहन की भांति=जैसे ऊंट अपने उपभोग के अभाव में बहुमूल्य केसर को परार्थ=दूसरे के लिये वहन करता है। ऐसे ही प्रकृति की सृष्टि=सर्जनप्रवृत्ति भी स्वार्थ नहीं किन्तु परार्थ अर्थात् पुरुष के लिये है॥ ४०॥

जिससे प्रकृति की सृष्टि परार्थ है=पुरुष के लिये है, अत एव—

कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्॥ ४१॥

(कर्मवैचित्र्यात्) पुरुषों के विविधकर्म के होने से (सृष्टिवैचित्र्यम्) सृष्टि की विविधता है=विविध सृष्टि होती है॥ ४१॥

हो कर्मवश से विविध सृष्टि, उस विविध सृष्टि के उत्पाद—नाश कार्य कैसे होते हैं, इस आकांक्षा पर कहते हैं—

साम्यवैषम्याभ्यां कार्यद्वयम्॥ ४२॥

(कार्यद्वयं साम्यवैषम्याभ्याम्) विविध सृष्टि का उत्पाद और नाश ये दो कार्य सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण की विषमता और समता से होते हैं। सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण की विषमता=न्यून-अधिकयोग से विविधसृष्टि का उत्पाद और उनकी समता से नाश होता है, क्योंकि सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण की साम्यावस्था प्रकृति है, यह कहे जाने से॥ ४२॥

क्यों जी! सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण की विषमता होने पर भी विमुक्त के प्रति प्रधान=प्रकृति की सृष्टि क्यों नहीं होती, इस विषय में कहते हैं—

विमुक्तबोधान्न सृष्टिः प्रधानस्य लोकवत्॥ ४३॥

(विमुक्तबोधात्) मैं विमुक्त हो गया=जीवन्मुक्त हो गया इस बोध

से विमुक्त के प्रति (प्रधानस्य सृष्टिः—न) प्रधान=प्रकृति की सृष्टि नहीं होती (लोकवत्) लोक की भांति कृतकृत्य होने से, जैसे लोक में भोजन खाया हुआ मनुष्य फिर भोजन के लिये प्रवृत्त नहीं होता॥ ४३॥

अच्छा, विमुक्त सृष्टि के भोगार्थ न प्रवृत्त हो, किन्तु प्रधान के विभु होने से सर्वत्र उसके सृष्टिकार्य के लिये प्रवृत्त होने से विमुक्त के लिये भी उसकी सृष्टि की पहुँच हो जावेगी, इस पर कहते हैं—

नान्योपसर्पणेऽपि मुक्तोपभोगो निमित्ताभावात्॥ ४४॥

(अन्योपसर्पणे—अपि मुक्तोपभोगः—न) भोग्या प्रधान सृष्टि का उपसर्पण=पहुंचने=मुक्त के समीप पहुँचने पर भी मुक्त का उपभोग नहीं होता है (निमित्ताभावात्) उपभोग के निमित्तभूत वासना के अभाव से। वासना विवेक से निवृत्त हो गई, अतः मुक्त के समीप में प्राप्त प्रधान=प्रकृति की सृष्टि का उपभोग नहीं होता॥ ४४॥

अतः कोई मुक्त हैं और कोई बद्ध पुरुष हैं, इस प्रकार—

पुरुषबहुत्वं व्यवस्थातः॥ ४५॥

(व्यवस्थातः—पुरुषबहुत्वम्) मुक्त-बद्ध व्यवस्था से पुरुष बहुत हैं॥ ४५॥

आशङ्का करके समाधान करते हैं—

उपाधिश्चेत्तत्सिद्धौ पुनर्द्वैतम्॥ ४६॥

(उपाधिः—चेत्) पुरुष के मुक्तत्व-बद्धत्व में कारण उपाधि है, पुरुषबहुत्व नहीं, पुरुष तो एक ही है, मुक्तत्व-बद्धत्व को आश्रित कर पुरुषबहुत्व साधना युक्त नहीं क्योंकि उसका बहुत्व उपाधिकृत है। यदि यह कहा जावे तो (तत्सिद्धौ पुनः—द्वैतम्) उपाधि से भेदसिद्धि में फिर वैसे ही द्वैत मुक्तत्व, बद्धत्व स्थित हैं ही, इस से कोई मुक्त और बद्ध पुरुष हैं, वैसा ही पुरुषबहुत्व रहता है॥ ४६॥

उपाधि स्थिर नहीं, वह तो आविद्यक=मिथ्या=असत्य है, इस से पुरुष का मुक्तत्व, बद्धत्व भेद भी स्थिर नहीं, अतः पुरुषबहुत्व नहीं है। इस पर कहते हैं—

द्वाभ्यामपि प्रमाणविरोधः॥ ४७॥

(द्वाभ्याम्—अपि प्रमाणविरोधः) उपाधि के दोनों प्रकारों से अर्थात् स्थिरत्व-अस्थिरत्व, वास्तविकत्व-अवास्तविकत्व=सत्यत्व-मिथ्यात्व से भी प्रमाणविरोध है। प्रमाण पुरुषबहुत्व का—"**ये तद्विदुरमृतास्ते**

भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति'' (बृह० ४। ४। १५) यहां प्रमाण में मुक्त भी बहुत, बद्ध भी बहुत हैं, यह स्पष्ट है। उपाधि के स्थिरत्व में मुक्त और बद्ध भेद, ये पुरुष का ही सिद्ध होता है मुक्त और बद्ध दो ही पुरुष हों न कि बहुत मुक्त और बहुत बद्ध पुरुष। उपाधि के अस्थिरत्व में भी प्रमाणविरोध है ही, प्रमाण में बहुत्व प्रतिपादन से। इसलिये दोनों प्रकार प्रमाणविरुद्ध हैं। प्रमाण में तो मुक्त भी बहुत और बद्ध भी बहुत हैं, अतः पुरुषबहुत्व भलीभांति सिद्ध हुआ।

अनिरुद्धवृत्ति और विज्ञानभिक्षुभाष्य में यह और इस से पूर्व का सूत्र दोनों सूत्र द्वैत साधने को अन्यथा व्याख्यात किए हैं। ये दोनों सूत्र पूर्वपक्ष को उठाकर पुरुषबहुत्व साधने के लिये हैं, न कि द्वैत साधने के लिये। वहां उत्तर सूत्र—''द्वाभ्यामपि प्रमाणविरोधः'' में प्रमाण विरोध कैसे है, उन्होंने इस में कोई श्रुति उद्धृत करके या उदाहरण देकर नहीं दिखलाया। विज्ञानभिक्षुभाष्य में 'पुरुषोऽविद्या' यह भी अप्रासङ्गिक कल्पना की है ॥ ४७ ॥

क्यों जी! अद्वैत श्रुति भी तो है—''**असङ्गो ह्ययं पुरुषः**'' (बृह० ४।३।१५)=यह पुरुष असङ्ग है। इस प्रकार एकत्व-बहुत्व प्रतिपादक श्रुतियों का परस्परविरोध आता है। इस पर कहते हैं—

द्वाभ्यामप्यविरोधान्न पूर्वमुत्तरञ्च साधकाभावात् ॥ ४८ ॥

(द्वाभ्याम्—अपि—अविरोधः) पुरुष के एकत्व-बहुत्व प्रतिपादक श्रुतियों से सांख्य-सिद्धान्त का अविरोध ही है, विरोध नहीं है उन में एकत्व-श्रुति जातिपरक होने से पूर्व कहे गए के अनुसार—''**असङ्गो ह्ययं पुरुषः**'' (बृह० ४। ३। १५) यहां जातिपरक एक वचन है—''**नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात्**'' (सांख्य० १। १५४) यह पूर्व कह दिया है। तथा बहुत्वश्रुति के व्यक्तिपरक होने से पुरुष बहुत हैं। अतः (पूर्वम्—उत्तरं च न साधकाभावात्) अन्यथा पुरुषबहुत्वकल्पना दोष नहीं आता, जैसे उपाधि से पूर्वदोष कहा है। और न उत्तरदोष प्रमाणविरोध होता है, यहां सांख्यसिद्धान्त में साधक के अभाव से=दोषसाधक के अभाव से ॥ ४८ ॥

अच्छा, उपाधि से पुरुषबहुत्व न हो किन्तु पुरुष तो एक ही है, परन्तु वह प्रकाशस्वरूप है, निज प्रकाश से अपने आत्मा को बहुत रूप से प्रकाशित करता है, यहां कहता है—

प्रकाशतस्तत्सिद्धौ कर्मकर्तृविरोधः ॥ ४९ ॥

(प्रकाशतः—तत्सिद्धौ) पुरुष का निज प्रकाश से बहुत्वसिद्धि में पुरुषत्वसिद्धि से (कर्मकर्तृविरोधः) कर्म, कर्ता का विरोध आता है। कर्म और कर्ता भिन्न-भिन्न होते है, एक ही का कर्मत्व और कर्तृत्व दोनों नहीं होते, प्रकाशक प्राकाश्य को अपेक्षित करता है जिस को वह प्रकाशित करे। प्राकाश्य के बिना प्रकाशकसिद्धि भी नहीं होती। अतः यह उक्त कल्पना ठीक नहीं ॥ ४९ ॥

फिर यह दूसरा दोष है—

जडव्यावृत्तो जडं प्रकाशयति चिद्रूपः ॥ ५० ॥

(जडव्यावृत्तः—चिद्रूपः) पुरुष जड से भिन्न चेतनस्वरूप सूर्य के समान जड प्रकाशवान् नहीं है। अतः चेतन होता हुआ वह (जडं प्रकाशयति) जड अन्तःकरण, इन्द्रिय शरीररूप जड को प्रकाशित करता है, जड उसका प्राकाश्य होता है, स्वप्रकाश प्रसङ्ग नहीं है, स्वयं प्रकाश-स्वरूप होने से। अतः पुरुषबहुत्व पुरुष के प्रकाशस्वरूप होने से ठीक नहीं है ॥ ५० ॥

यदि इस प्रकार पुरुष प्रकाशस्वरूप सूर्य की भांति प्रकाश धर्मवान् नहीं तो— "**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**" (यजु० ३१।१८) यहां पुरुष को आदित्यवर्ण=सूर्य जैसा प्रकाशवान् कहा है। इस श्रुति से विरोध हो जावे। इस पर कहते हैं—

न श्रुतिविरोधो रागिणां वैराग्याय तत्सिद्धिः ॥ ५१ ॥

(श्रुतिविरोधः—न) श्रुति से विरोध नहीं है, क्योंकि श्रुति में (रागिणां वैराग्याय तत्सिद्धेः) रागीजनों के वैराग्यों के लिये=संसार से वैराग्य के उत्पादनार्थ सूर्य जैसा प्रकाशवान् वह परम पुरुष परमात्मा सूचित किया है, उससे भिन्न संसार तमोरूप है। तमोरूप संसार से वैराग्य रागी को हो जावे, अतः परम पुरुष परमात्मा को सूर्य के समान प्रकाशवान् कहा गया है। उसे ही जानकर मृत्यु का अतिक्रमण कर सकता है और अमृतत्व को प्राप्त कर सकता है, यह लक्ष्य भी वैराग्य का निर्दिष्ट किया है। अतः परम पुरुष के प्रकाशवान् होने की सिद्धि श्रुति में है, स्वतः पुरुषबहुत्व कल्पना में सूत्रशैली से विपरीत योजित किया है, वह ठीक नहीं ॥ ५१ ॥

क्यों जी! परमपुरुष के प्रकाशवान् होने की श्रुति में जगत् से

वैराग्य की कल्पना व्यर्थ करते हो किन्तु जगत् ही नहीं। जगत् तो मिथ्या है, स्वप्न की भांति है, वैराग्य सम्पादन निरर्थक है। इस पर कहते हैं—

जगत्सत्यत्वमदुष्टकारणजन्यत्वाद् बाधकाभावात् ॥ ५२ ॥

(जगत्सत्यत्वम्) जगत् का सत्यत्व है, मिथ्यात्व नहीं है, स्वप्न जैसा या माया जैसा, सीपी में चान्दी की भांति, रस्सी में सर्प की भांति नहीं। क्योंकि (अदुष्टकारणजन्यत्वात्) दुष्ट कारण से जगत् का जन्यत्व=उत्पत्ति नहीं, जैसे निद्रादोष से स्वप्न, तथा इन्द्रियदोष से=संस्कारदोष से शङ्खपीतता जैसे होती है, ऐसा नहीं। दूर से या अल्प प्रकाश से सीपी में चान्दी का भ्रम होने के समान रस्सी में सर्पभ्रम के समान नहीं। किन्तु—"**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्**" (ऋ० १०। १९०। ३) श्रुति में परमात्मा से जगत् की उत्पत्ति स्पष्ट कही है (बाधकाभावात्) बाधक के अभाव से भी जगत् स्वप्नवत् या मायावत् नहीं, सीपी में चान्दी जैसा या रस्सी में सर्प जैसा नहीं। जगत् का बाधक भी कोई उपलब्ध नहीं होता, जैसे स्वप्नवस्तु का बाधक जागरण या जैसे मायावाले का सीपी में चान्दी का। रस्सी में सर्प का बाधक आवरणद्रव्यविच्छेद, सावधान दृष्टि और प्रकाश होता है, वैसा यहाँ नहीं है। जगत् तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से उपलब्ध होता ही है ॥ ५२ ॥

और फिर—

प्रकारान्तरासम्भवात् सदुत्पत्तिः ॥ ५३ ॥

(प्रकारान्तरासम्भवात्) जगत् के उत्पत्ति-विषय में प्रथम अध्याय में कहे अन्य प्रकारों के निराकृत होने से (सदुत्पत्तिः) सद्रूप ही अनभिव्यक्तता से विद्यमान जगत् की उत्पत्ति अभिव्यक्ति होती है। अतः जगत् का मिथ्यात्व या मायात्व नहीं है ॥ ५३ ॥

अच्छा, जगत् मिथ्या न हो, हो उसका अस्तित्व, जगत् संहत और संहत परार्थ होने से पुरुष के भोगार्थ है। वह फिर उस में जगत् में पुरुष=जीवात्मा का साक्षात्कर्तृत्व है या उस से भिन्न का? इस आकांक्षा पर कहते हैं—

अहङ्कारः कर्ता न पुरुषः ॥ ५४ ॥

(अहङ्कारः कर्ता) अहङ्कार कर्तृत्वव्यापार वाला है, अहंवृत्तिवाले अन्तःकरण का कर्तृव्यापार है उसके चलन-विचलन धर्मवाला होने से (पुरुषः—न) पुरुष कर्ता नहीं=कर्तृत्वव्यापारवाला नहीं, उसके निष्क्रिय

होने से चलन-विचलन धर्मरहित होने से ॥ ५४ ॥

हो अहङ्कार कर्ता-कर्तृत्वव्यापार वाला, परन्तु अहङ्कार भोक्ता नहीं है, उसके संहत परार्थ होने से। पुरुष भोक्ता है, यह हेतुसहित कहते हैं—

चिदवसाना भुक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात् ॥ ५५ ॥

(भुक्तिः—चिदवसाना) भोग चित्-चेतन पुरुष में अवसान-संस्थान आश्रय लेने वाला है-पुरुष के निमित्त है-पुरुष के लिये है। क्योंकि (तत्कर्मार्जितत्वात्) पुरुष के तत्कर्माजित होने से, तत्कर्म-उस अहङ्कार के कर्म, तत्कर्म-अहङ्कार के कर्म अर्जित-उपार्जित-आचरित सञ्चित जिसके लिये हैं वह तत्कर्मार्जित पुरुष, उसके तत्कर्मार्जित होने से—अहङ्कार के कर्म पुरुष के लिये सञ्चित होने से। अथवा उस पुरुष के लिये कर्म तत्कर्म-तदर्थ कर्म अर्जित किए जिसने वह तत्कर्मार्जित अहङ्कार, उस अहङ्कार के कर्म से अर्जित होने से। दोनों विग्रहों में अहङ्कार ही पुरुष के लिये कर्मों का अनुष्ठान करता है उसके परार्थ होने से, पुरुष के लिये होने से कुठार की भांति करण-उपकरण साधन अहङ्कार पुरुष का है— "....**करणत्वाद् वास्यादिवत्**....." (सांख्य० ५।६९) अतः पुरुष भोक्ता है। कहा भी है—"**भोगापवर्गार्थं दृश्यम्**" (योग० २।१८)॥ ५५॥

क्यों जी! पृथिवीलोक से उत्कृष्ट चन्द्र आदि लोक में उसके कर्मवश उत्कृष्ट भोगार्थ गए हुए पुरुष की वहां कृतकृत्यता हो जाती है, अथवा वहाँ से भी पुनर्जन्म ग्रहणार्थ आता है। इस पर कहते हैं—

चन्द्रादिलोकेऽप्यावृत्तिर्निमित्तसद्भावात् ॥ ५६ ॥

(चन्द्रादिलोके—अपि—आवृत्तिः) चन्द्र आदि लोक में भी पुरुष की वहाँ स्थिरता या कृतकृत्यता नहीं किन्तु वहां भी पुनर्जन्मावृत्ति होती है (निमित्तसद्भावात्) पुनर्जन्म के निमित्त अविवेक वासना आदि के वर्तमान होने से ॥ ५६ ॥ अपितु—

लोकस्य नोपदेशात् तत्सिद्धिः पूर्ववत् ॥ ५७ ॥

(लोकस्य) संसार की-लोकस्थ की-प्रत्येक लोकस्थ मनुष्य की-मनुष्यमात्र की (उपदेशात् तत्सिद्धिः—न) उपदेशमात्र से-उपदेश श्रवणमात्र से मुक्तिसिद्धि नहीं होती है (पूर्ववत्) पूर्वकथन की भांति श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार के अनुष्ठान से मुक्ति सिद्धि होती है ॥ ५७ ॥

उपदेश श्रवण मात्र से भी मुक्ति होती है, ऐसा श्रुति कहती है— "**श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते**" (कठो० १।३।१६) अर्थात् श्रवण करके मेधावी ब्रह्मलोक में महिमा को प्राप्त होता है। इस पर कहते हैं—

पारम्पर्येण तत्सिद्धौ विमुक्तिश्रुतिः ॥ ५८ ॥

(विमुक्तिश्रुतिः) उपदेश-श्रवण से विमुक्ति होती है, इस में श्रुति है (पारम्पर्येण तत्सिद्धौ) परम्परा से उस श्रवणचतुष्टय सिद्धि में माननी चाहिए कि श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात् करके होती है यह अभिप्राय है। क्योंकि वहां ही अन्त में पढ़ा गया है कि "**मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्। ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद् विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव**" (कठो० २।६।१८) यहां योगविधि भी उपाय कहा है। वहां ही यह भी कहा है कि "**एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा**" (कठो० १।२।१३) इस वचन में श्रुत्वा=श्रवण करके, सम्परिगृह्य=मनन करके, प्रवृह्य=निदिध्यासन करके, आप्य=साक्षात्कार करके। इस प्रकार श्रवणचतुष्टय स्पष्ट है ॥ ५८ ॥

विमुक्ति के अनन्तर श्रुति के विषय में पूर्वपक्षरूप से कहते हैं—

गतिश्रुतेश्च व्यापकत्वेऽप्युपाधियोगाद् भोगदेशकाललाभो व्योमवत् ॥ ५९ ॥

(व्यापकत्वे—अपि) आत्मा के व्यापकत्व स्वीकार करने पर भी (उपाधियोगात् गतिश्रुतेः—च) उपाधिसम्बन्ध से गतिश्रुति के=उसकी जो देहान्तरगतिश्रुति है—"**योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः। स्थाणुमन्येऽनसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्**" (कठो० २।५।७)=कुछ जीवात्माएं मनुष्य आदि योनि को प्राप्त होते हैं शरीरधारण के लिये। कुछ स्थावर=वृक्षादि को प्राप्त होते हैं जैसा जिसका ज्ञान और कर्म है। इस गतिश्रुति का देहरूप उपाधि के सम्बन्ध से सम्भव है=उस आत्मा की देहान्तरगति सम्भव है। कैसे? (व्योमवत्) जैसे व्यापक आकाश घट आदि उपाधियोग से जहां-तहां गतिवाला होता है वैसे ही आत्मा के व्यापक होने पर भी गतिनिमित्त से (भोगदेशकाललाभः) भोग के देश-काल का लाभ हो जावेगा, अतः आत्मा विभु मानना चाहिए ॥ ५९ ॥

उत्तर देते हैं—

अनधिष्ठितस्य पूतिभावप्रसङ्गान्न तत्सिद्धिः ॥ ६० ॥

(अनधिष्ठितस्य पूतिभावप्रसङ्गात्) आत्मा व्यापक होता हुआ देहरूप उपाधि के योग से भोग के देश-काल को प्राप्त करता है। यह ही माने देहरूप उपाधि प्राप्त के अनन्तर, परन्तु उत्पन्न होते हुए देह के आत्मा से अनधिष्ठित होने से, गल जाने, सड़ जाने का प्रसङ्ग हो जावे, अतः (तत्सिद्धिः—न) आत्मा के व्यापकत्व की सिद्धि नहीं होती, तथा व्यापकत्व से, देहोपाधियोग से गति स्वीकार में भोगसिद्धि भी नहीं होती ॥ ६० ॥

क्यों जी! उत्पन्न होता हुआ देह आत्मा के अधिष्ठान की अपेक्षा न करे किन्तु अदृष्ट की अपेक्षा करे, अदृष्ट के योग से देह की उत्पद्यमानता तथा अपूतिभाव=न सड़ना हो सके। इस पर कहते हैं—

अदृष्टद्वारा चेदसम्बद्धस्य तदसम्भवाज्जलादिवदङ्कुरे ॥ ६१ ॥

(अदृष्टद्वारा चेत्) यदि अदृष्टद्वारा देह की उत्पद्यमानता हो, तो (असम्बद्धस्य तदसम्भवात्) जीवात्मा के सम्बन्ध के बिना अदृष्ट प्रवृत्त नहीं होता। उस ऐसे उसके असम्बद्ध अदृष्ट का वहां देह शुक्र आदि में सम्भव न होने से देह की उत्पत्ति का हेतु होना असम्भव है (अंकुरे जलादिवत्) अंकुरोत्पत्ति में बैजिक जीवत्व=बीजसम्बन्धी या बीजरूप जीवत्व के बिना, जैसे जल खाद्य आदि योग का हेतु निरर्थक है ॥ ६१ ॥

और फिर यह अन्य दोष है—

निर्गुणत्वात् तदसम्भवादहङ्कारधर्मा ह्येते ॥ ६२ ॥

(निर्गुणत्वात्) आत्मा के निर्गुण होने से गुणसम्पर्करहित होने से केवल चेतनस्वरूप होने से (तदसम्भवात्) उस में अदृष्ट का असम्भव है, अतः यह सिद्धान्त युक्त नहीं। क्योंकि (एते—अहङ्कारधर्माः—हि) ये अदृष्ट आदि अहङ्कार के धर्म हैं ॥ ६२ ॥

और भी—

विशिष्टस्य जीवत्वमन्वयव्यतिरेकात् ॥ ६३ ॥

(विशिष्टस्य जीवत्वम्) अहङ्कार से विशिष्ट—'अहम्=मैं' इस प्रतीति से युक्त 'अहम्=मैं' इस अभिमान से युक्त आत्मा का जीवत्व=जीवसंज्ञा है (अन्वयव्यतिरेकात्) अन्वय व्यतिरेक से, जहां 'अहम्=मैं' अनुभूति है वह जीव है, जहां नहीं है वह जीव नहीं ॥ ६३ ॥

अहङ्कारविशिष्ट आत्मा जीव यह कह दिया, उस ऐसे जीव की कार्यसिद्धि कैसे होती है ? क्या ईश्वराधीन होती है ? इस पर कहते हैं—

अहङ्कारकर्त्रधीना कार्यसिद्धिर्नेश्वराधीना प्रमाणाभावात्॥ ६४॥

(अहङ्कारकर्त्रधीना कार्यसिद्धिः) जीव की कार्यसिद्धि=कार्यनिष्पत्ति या कर्मप्रवृत्ति अहङ्काररूप कर्त्ता के अधीन होती है, क्योंकि अहङ्कार से युक्त ही जीव है (ईश्वराधीना न) ईश्वराधीन नहीं। क्योंकि (प्रमाणाभावात्) जीव का कर्म ईश्वराधीन है इस में प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। जीव कर्म करने में ईश्वर के अधीन नहीं, अपितु स्वतन्त्रता से कर्म करने के लिए श्रुति है—"**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः**" (यजु० ४०।२) कर्मों को करते हुए सौ या अधिक वर्षों तक जीने की इच्छा करे। सांख्यकर्ता की दृष्टि में ईश्वरसत्ता है यह सिद्ध होता है, अतएव उसके अधीन जीव के कर्म करने का निषेध है॥ ६४॥

जीव की कर्मसिद्धि अहङ्कार के अधीन मानी गई और वह अदृष्ट के अधीन माननी चाहिए। जैसे-जैसे जिस-जिस जीव का अदृष्ट होगा वैसी-वैसी उस-उस जीव की कार्यसिद्धि होगी। इस पर कहते हैं—

अदृष्टोदभूतिवत् समानम्॥ ६५॥

(अदृष्टोदभूतिवत् समानम्) अदृष्टोदभूति=अदृष्टोत्पत्ति=जीव की अदृष्टोत्पत्ति की भांति समान है। जीव की अदृष्टोत्पत्ति भी अहङ्कार-निमित्तक है, यह पूर्व कह आए हैं—"**चिदवासना भुक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात्**" [५५] अतः समानता है। अदृष्टाधीन मन्तव्य में भी अहङ्काराधीन ही कार्यसिद्धि होती है, यह आजाता है॥ ६५॥

अच्छा, हो जीव की कार्यसिद्धि=कर्मप्रवृत्ति अहङ्काररूप अन्तःकरण द्वारा, परन्तु उसके कर्मफल भोग की अनुभूति किस उपकरण से सेवन करता है जो मुक्ति भोगानुभूति "**चिदवसाना भुक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात्**" [५५] इस सूत्र में कही है—

महतोऽन्यत्॥ ६६॥

(अन्यत्—महतः) कार्यसिद्धि=कर्मप्रवृत्ति से अन्यत्=भिन्न कार्य भोक्तव्य=भोग=भोगानुभूति तो महत्तत्व=बुद्धिरूप अन्तःकरण का कार्य है, उसके द्वारा भोग की अनुभूति जीव करता है। बुद्धि के आश्रित ही सब भोग हैं यह प्रसिद्ध है, क्योंकि "**असङ्गो ह्ययं पुरुषः**" (बृह०

४।३।१५) भोग तो बुद्धि से सेवन करता है। उसके अभाव में भोगाभाव होगा, फिर विमुक्ति यह भी समझना चाहिए॥ ६६॥

अब महत्तत्व के अनन्तर प्रकृति का पुरुष के साथ कैसा सम्बन्ध है, यह कहते हैं—

कर्मनिमित्तः प्रकृतेः स्वस्वामिभावोऽप्यनादिर्बीजाङ्कुरवत्॥ ६७॥

(प्रकृतेः स्वस्वामिभावः—अपि) प्रकृति का पुरुष के साथ 'पुरुषेण=पुरुष के साथ' यह अर्थापत्ति से प्रस्तुत प्रकरण से 'प्रकृतेः' षष्ठी सम्बन्ध से आता है। प्रकृति का पुरुष के साथ स्वस्वामिभाव सम्बन्ध है, प्रकृति तो 'स्व' है पुरुष का और पुरुष स्वामी है उसका। वह यह प्रकृति पुरुष का स्वस्वामिभाव सम्बन्ध भी (बीजाङ्कुरवत्—अनादिः कर्मनिमित्तः) बीज अंकुर की भांति प्रवाहरूप से अनादि है, जैसे बीज और अंकुर का सम्बन्ध प्रवाह से प्रवृत्त होता है, बीज होने पर अंकुर, अंकुर होने पर बीज। वैसे ही स्व होने पर स्वामी और स्वामी होने पर स्व होता है। वह यह प्रकृति-पुरुष का स्वस्वामिभाव कर्मनिमित्तक है स्वाभाविक या नित्य नहीं। कर्मशब्द से यहां धर्म-अधर्म संस्कार अभीष्ट है। कर्मक्षय हो जाने पर स्वस्वामिभाव सम्बन्ध का अभाव हो जाता है, उसके अभाव से मोक्ष हो जाता है, यह भी समझना चाहिए॥ ६७॥

उस विषय में पञ्चशिख का मत कहते हैं—

अविवेकनिमित्तको * वा पञ्चशिखः॥ ६८॥

(वा) अथवा (अविवेकनिमित्तकः) अविवेक हेतु जिसका है ऐसा वह यह प्रकृति-पुरुष का स्वस्वामिभाव सम्बन्ध है (पञ्चशिखः) ऐसे ही पञ्चशिख कहते हैं। यहां 'वा' पूर्वापेक्षा से विशिष्टता दर्शाने के लिये है, पञ्चशिख प्रमाण प्रदर्शन है॥ ६८॥

मतान्तर कहते हैं—

लिङ्गशरीरनिमित्तक इति सनन्दनाचार्यः॥ ६९॥

(लिङ्गशरीरनिमित्तकः) वह ही प्रकृति-पुरुष का स्वस्वामिभाव सम्बन्ध लिङ्गशरीरनिमित्तक है। लिङ्गशरीर से यहां स्थूल शरीर धारण

---

* 'अविवेकनिमित्तकः' अनिरुद्ध का, 'अविवेकनिमित्तः' विज्ञानभिक्षु का पाठ है।

करने के लिये जो वासनाशक्ति है, वह गृहीत है, यह लक्ष्य है (इति सनन्दनाचार्यः) ऐसा सनन्दनाचार्य मानते हैं॥ ६९॥

इस प्रकार प्रकृति-पुरुष के स्वस्वामिभाव होने पर स्वामी पुरुष स्वभूता प्रकृति को जब देखता है तब उसके अन्दर 'पुरुष के अन्दर' भोगप्रवृत्ति उपजती है=प्रकट होती है, अतएव वह महत्तत्त्व=बुद्धि से युक्त होता है। जैसे कहा है—"**महतोऽन्यत्**" [६६] पश्चात् भोगार्थ चेष्टा के लिये अहङ्कार को स्वीकार करता है, चेष्टा, कर्म का प्रादुर्भाव होता है अहङ्कार साधन से। कहा है—"**अहङ्काराधीना कार्यसिद्धिः**" [६४] पुनः कार्यसाधन के लिये इन्द्रियों का अधिष्ठाता होता है, इन्द्रियों पर अधिष्ठातृत्व करता है, इन्द्रियों पर अधिष्ठातृत्व के लिये शरीर में प्रविष्ट होता है, शरीर में प्रविष्ट होकर उन इन्द्रियों से विषयों के प्रति दौड़ धूप करता है, पुनः त्रिविध दुःखों को अनुभव करता है। यह है स्वस्वामिभाव का परिणाम। अतः—

यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः॥ ७०॥

(यत्—वा तत्—वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः—तदुच्छित्तिः कार्या) जो कोई भी निमित्त हो प्रकृति-पुरुष के स्वस्वामिभाव सम्बन्ध का उसका उच्छेद=उसका नाश करना पुरुषार्थ=पुरुष स्वरूप का लाभ है—"**असङ्गो ह्ययं पुरुषः**" (बृह० ४।३।१५)=यह पुरुष असङ्ग है, सङ्ग-रहितरूप में इसे देखना है जो कि आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिरूप मोक्ष=ब्रह्मसम्पत्तिरूप प्रसाद भावनीय=सम्पादनीय है। अन्त में द्विरुक्ति अध्याय समाप्ति निमित्त और ग्रन्थ समाप्तिनिमित्त भी है॥ ७०॥

सांख्यदर्शन में स्वामिब्रह्ममुनिकृत भाषाभाष्यसहित
षष्ठअध्याय समाप्त हुआ।

ब्रह्ममुनिकृत भाषाभाष्यसहित सांख्यदर्शन समाप्त।

❑❑❑